विनयपत्रिका दीनकी बाप आपुहि बाचो:

विनय पीयूष

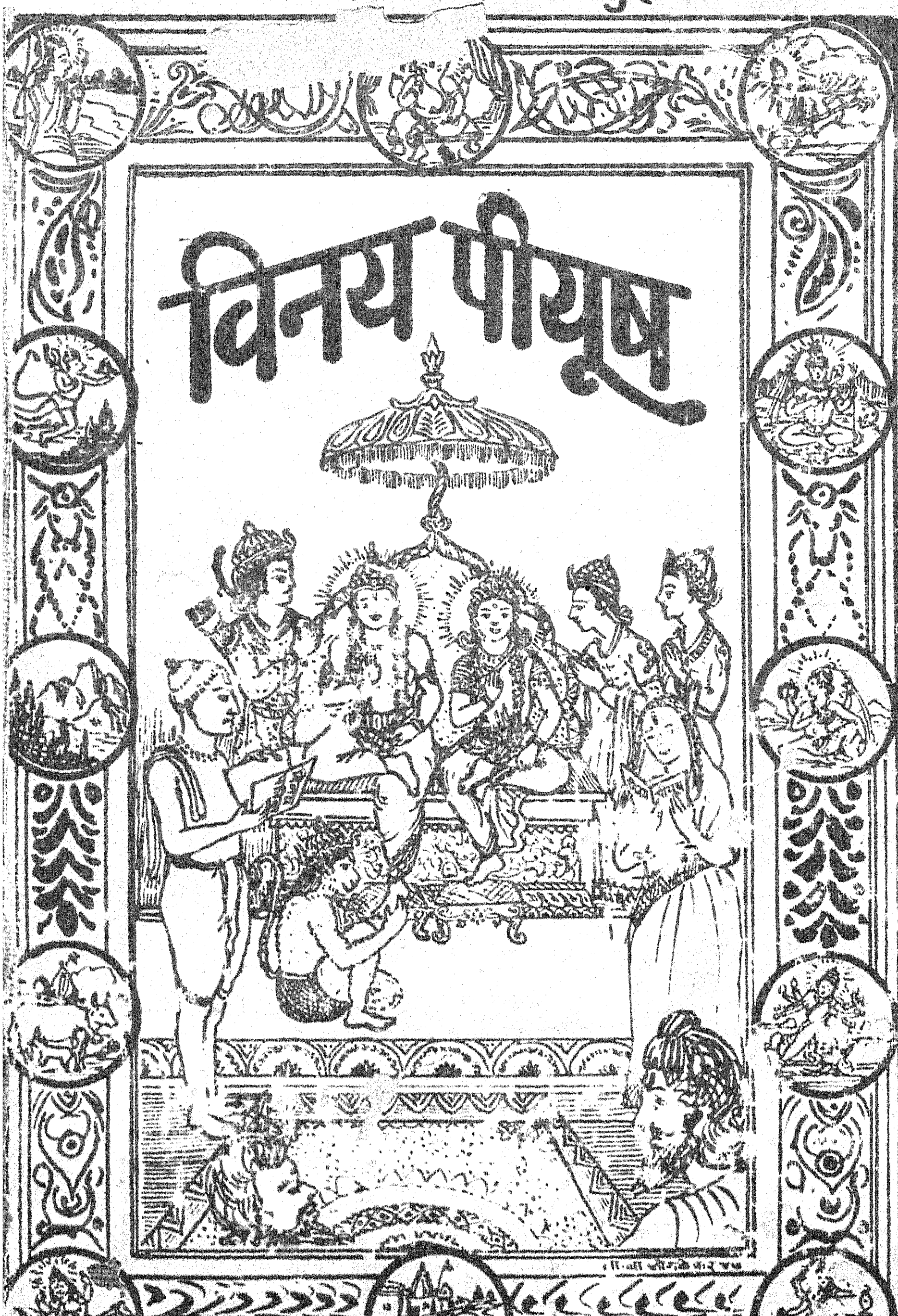

लेखक

महात्मा श्री अंजनीनंदन शरणजी

॥ श्रीरूपकलादेव्यैनमः ॥

विनय-पीयूष

[सर्व सिद्धांत समन्वित विनयपत्रिकाका सबसे बृहत् तिलक]

प्रथम हिलोर

(पद १ से २४ तक)

लेखक

महात्मा श्री अंजनीनन्दन शरणजी (ज० मु० श० सीतला सहाय सावंत बी० ए० एल्एल्बी०, भूतपूर्व एडवोकेट, हाईकोर्ट, इलाहाबाद। सम्पादक, "मानस-पीयूष" और "मानसमणि")

द्वितीय संस्करण] सन् १९४७ ई० [मू०

प्रकाशक

पं. रामचंद्रदास

साहित्यरत्न, साहित्यालंकार, मानसकेसरी, मॉट्. डिप्.

पीयूष धारालय

विट्ठलक्रीडाभवन, बड़ोदा।

लेखकद्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित

मुद्रक

पं. मोतीदासजी चेतनदासजी

श्री कबीर प्रिन्टींग प्रेस

सीयाबाग, बड़ोदा।

श्रीमंत सरकार हुक्म अंक No. (D) 53/44 Date 26-11-45

के आधारपर मुद्रित।

॥ श्री ॥

ॐ नमः भगवते श्रीमते रामानन्दाचार्याय
श्रीसीतारामचन्द्राभ्यांनमः ।

ॐ नमः भगवत्यैऽस्मदाचार्यायै श्रीरूपकलादेव्यै
श्रीसन्तगुरुभगवच्चरणकमलेभ्योनमः ।

ॐ नमोभगवते मङ्गलमूर्तये कृपानिधये गुरवे मर्कटाय
श्रीरामदूताय सर्वविघ्नविनाशकाय क्षमामन्दिराय
शरणागतवत्सलाय श्रीसीतारामपदप्रेमापराभक्तिप्रदाय
श्रीहनुमते नमोनमः ।

ॐ साम्बशिवायनमः । श्रीगणेशायनमः । श्रीसरस्वत्यैनमः ।
परमाचार्याय श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासायनमः ।

॥ श्रीगुरुभ्योनमः ॥

नम्र निवेदन

प्रभु श्रीसीतारामचंद्रजीकी महत्कृपासे प्रातःस्मरणीय गोस्वामी तुलसीदासजीकृत विनय-पत्रिकाके विनय-पियूष नामक सर्व सिद्धांत समन्वित सबसे बृहत् तिलकके प्रथम हिलोरका परिवर्धित द्वितीय संस्करण पीयूष धारापान करनेवाले भक्तवरोंके करकमलोंमें देनेमें बड़ी खुशी होती है।

विनय-पियूषमें विनय-पत्रिकाके १ से २४ तकके पदोंकी टीका लगभग ४२५ पृष्ठमें हुई है। इसमें शब्दार्थ, पद्यार्थ, टिप्पणीयाँ और सूचियाँ होनेसे अन्य भाषाभाषीभी सरलतासे इससे लाभ उठा सकते हैं। शुद्धता, स्वच्छता और आकर्षताकी ओर पूरा ध्यान दिया गया है। फिरभी जो त्रूटियाँ रह गयी हैं उसकेलिये दास क्षमाप्रार्थी है।

सद्गुरुदेव महात्मा श्री अंजनीनंदन शरणजीकी आज्ञा शिरसावंद्य मनाकर प्रभु श्रीसीतारामचंद्रजीने जो सेवा करायी है इससे दास कृतकृत्य हो गया है। आपका आशिर्वादही दासको आगामी कार्य-संचालनकेलिये समर्थ कर सकता है।

सद्गुरुदेव राज्यरत्न राजप्रीय प्रो. ग. य. माणिकरावजीकी तनमनधनसे सहायताके बलपरही दास प्रकाशन कार्य कर सका हैं। आपकी कृपादृष्टिही दासको पथप्रदर्शन करके ध्येयपूर्तिकी ओर अग्रसर कर सकती है।

विनय-पीयूषके प्रकाशनार्थ श्रीमंत गायकवाड सरकारने इजाजत देकर पुण्यकार्य करनेमें हाथ बँटाया है।

कबीर प्रेसके संचालक पं. मोतीदासजीने आधुनिक युद्धकालीन विपरीत परिस्थितिमें विनय-पीयूषके प्रकाशनमें शीघ्रता करके उपकृत किया है।

इन सबकी कृपाकेलिये दास उन्हें धन्यवाद देता है और उनका सदाकेलिये ऋणी हैं।

विनीत

गुढ़ीपाडवा

२३-३-४७

रामचंद्रदास

प्रकाशक

श्रीरूपकलादेव्यैनमः

भूमिका

भारतवर्षके सनातनधर्मावलंबी स्मार्त और वैष्णव तथा साधुसमाजमें इस ग्रन्थरत्नका जितना आदर और सम्मान बराबर चला आ रहा है, उसका तो कहना ही क्या? पर इधरके साहित्यिक समाजमेंभी उसे अपनानेकी चेष्टा की है। प्राचीन टीकाकार बाबा हरिहरप्रसादजी महाराज, बाबू शिवप्रकाशजी आदि तो परम भागवत वैष्णवही थे। साधुओंका तो यह अपना सर्वस्व है, जीवनधनही है, उपास्य है। हाँ, विद्वत्समाजनेभी इसे श्रीमद्गोस्वामीजीका सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ माना है। इनमेंसे कुछ विद्वानोंके विचार सूक्ष्मरीतिसे उन्हींके शब्दोंमें हम यहाँ उद्धृत करते हैं। १ इसे भक्ति और ज्ञानकी साक्षात् मूर्ति कहनाभी अत्युक्ति न होगी। २ इसमें गोसाईंजीने अपनी ग्रामीण भाषामें बड़े बड़े कठिन वेदान्तके मसले रख दिये हैं जिसके समझनेमें वेदान्तियोंकी अक्ल चकरा जाती है। ३ इसमें उत्तम काव्य, ऊँचे दरजेका सङ्गीत, सांसारिक अनुभव, आध्यात्मिक ज्ञान और ईश्वरप्रेमका पंचामृत पाया जाता है। ४ हिन्दी साहित्यका यह अनमोल रत्न है। ५ यदि संसारभरकी पुस्तकोंको एकत्र करके मुनादी कर दी जाय कि ये सब पुस्तकें कल जला दी जायेंगी, जिसे जो पुस्तक बचाना मंजूर हो वह आजही उस पुस्तकको निकाल ले, (तो) मुझे आशा है कि हिन्दूमात्रका हाथ इस पुस्तकके बचानेकेलिये ज़रूर आगे बढ़ेगा। बस, इसीसे इसकी उपयोगिता समझ लेनी चाहिये। ६ D. Grierson regards it as Tulsidas's very best work. ७ ऐसा सर्वांगपूर्ण विनयका ग्रन्थ किसी परिपूर्ण साहित्यमें एकाधही मिलेगा। संस्कृत साहित्यमेंभी इस ढंग और कोटिका ग्रन्थ बड़े तर्क वितर्कके पश्चात् प्रस्तुत किया जा सकता है। अन्य साहित्योंकी बातही क्या?

इस दासकी समझमें तो श्रीमद्गोस्वामीजीका यह ग्रन्थ पाठ करते समय ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने हमारेही हृदयंगत भावोंका चित्र खींचकर श्रीसरकारके सामने रख दिया है। हमें प्रभुके सामने उनको केवल अपने मुखसे दुहरा देना है। वे हम सरीखे महाअधम, महा-पतितको श्रीसरकारके सामने लिये चलते हैं। पगपगपर हमें निराश होतेसमय उनके पतितपावन अधमोद्धारण बिरदका सहारा देते चलते हैं। कभी कभी शिक्षाभी देते हैं जिसमें हम प्रभुके सम्मुख शीघ्र हो जायँ, डरें नहीं। यथा, "भलो मानि हैं रघुनाथ जो हाथ जोरि माथो नाइ है।" बस और करनाही क्या है? कितना सरल साधन है!

पदोंकी रचनासे ज्ञात होता है कि गोस्वामीजी सङ्गीतकलाके भारी पंडित थे। जिस रागके उपयुक्त जो पद रचा गया है उसका भावभी उसी रागके अनुरूप है। जो केवल पिंगलशास्त्रका विद्वान् है पर संगीत शास्त्रका मर्मज्ञ नहीं है, गवैया नहीं है। उसको इसमें दोष दिखाई देते हैं। वस्तुत: संगीतशास्त्रानुसार इसकी रचना हुई। उसके अनुसार इसमें दोष नहीं मिलेंगे।

उपर्युक्त उद्धरणोंसे इस ग्रन्थरत्नके शुद्ध पाठ और उसकी विस्तृत सरल व्याख्याकी आवश्यकता तो प्रेमी पाठकोंके ध्यानमें आ गयी होगी।

संवत् १९८५ में जब यह दीन श्रावणकुंज, अयोध्याजीमें संवत् १६६१ वाली श्रीरामचरितमानस बालकांडकी पोथीकी प्रतिलिपि लिख रहा था तब माघ शुक्ल ५ (वसन्तपंचमी) को उस कांडके अन्तमें महन्त श्रावणकुंजके हाथका लिखा हुआ संवत् १६६६ वाली विनय-पत्रिकाका परिचय प्रथम प्रथम दासको मिला।

सन् १९३४ ई० में श्रीरामचरितमानसका **"मानस-पीयूष"** नामक सबसे बृहत् तिलकका प्रथम संस्करण, जो दास १९२६ ई० से छपाता और प्रकाशित करता रहा था, पूरा छपकर प्रकाशित हो जानेपर दासका चित्त श्रीयुगलसरकारकी प्रेरणासे "**विनय**" की ओर गया। दासने सं० १६६६ वाली पोथीकी खोज की और उस पोथीको जाकर देखकर उससे लाला श्रीभगवानदीनजीकी (सं० १९८५ वाले संस्करणकी)

पुस्तकका पाठ संशोधन कर काशीहीमें रहकर एक पोथी लिखकर तैयार कर फिर उसकाभी मिलान सं. १६६६ वाली प्रतिसे कर लिया। इस पोथीका पाठ इतना सुंदर है कि जी फड़क उठा। कितनेही पाठ, जिनमें टीकाकारोंने सिरपच्ची किया है, उससे हल हो गये। उसमें एक खूबी (उत्कृष्टता) यह है कि हरताल और काट छाँट प्रायः नहींके बराबर हैं। पंडितोंके हाथोंसे वह अछूता बच गया है। इसमें कुल १७४ पद थे। लेखककी भूलसे १७५ संख्या हो गयी है।

उससमय हमें श्रीभागवतदासजी एवं मिरज़ापुरके श्रीबेनीजी कायस्थकी पोथियाँ भोंसला घाटपर श्रीजानकीवल्लभलालजूके मन्दिरमें श्री पं० राघोवल्लभाशरणजीसे प्राप्त हुईं। उनसे दूसरी पुस्तक (मुरादाबाद, लक्ष्मीनारायण प्रेसवाली) संशोधित कर इस दीनने इनके पाठके अनुसार शेष पदोंको (जो सं. १६६६ वाली पोथीमें नहीं थे) लिखा।

इसप्रकार उपर्युक्त तीनों पोथियोंसे इस दीनने एक पूरी स्वहस्त-लिखित पुस्तक शिवरात्रि सं० १९९१ वि० को प्रारम्भ कर चैत्र कृष्ण २ गुरुवार सं० १९९१ को तैयार कर ली।

तत्पश्चात् जब 'मानस-पीयूष' (प्रथम संस्करण) की सब पुस्तकें गीताप्रेस, गोरखपुरको काशीसे रवाना कराके यह दीन गोरखपुर गया, तब उसी यात्रामें बलरामपुर राज्यमें जाकर सं० १८७९ वि० की श्रीप्रल्हाददासजीकी हस्तलिखित पोथी देखकर अपनी हस्तलिखित पोथीमें इस दीनने उसके पाठान्तर लिख लिये। यह कार्य संभवतः १५-१६ मार्च सन् १९३५ ई० शनिवार फाल्गुन शु० १२ सं० १९९१ वि० को संपन्न हुआ। यह पोथी लक्ष्मणकुंड श्रीअयोध्याजी श्रीसरयूतटपर श्रीप्रल्हाददासजीने स्वयं किसी पोथीसे उतारी थी। प्राचीन पोथियोंमेंसे यही एक पोथी है, जिसमें प्रथम प्रथम श्रीजानकीजीवाला (प्रक्षिप्त) तीसरा पद देखनेमें आया, जो और किसी प्राचीन पोथीमें नहीं पाया जाता। इससे अनुमान हुआ कि यह पद शृङ्गाररसनिष्ठ महात्मा-ओंसे किसीका रचा हुआ है और सम्भवतः श्रीलक्ष्मणकिलापर उसकी असली प्रति होगी। परन्तु पता लगानेपरभी आजतक उसका पता न

लगा। सं० १८७९ वाली इस पोथीका पाठभी बहुत कुछ शुद्ध रहा होगा। परन्तु लोगोंने उसका पाठ भ्रष्ट कर दिया है। असली पाठ क्या था इसका पता उससे ठीक नहीं चल सकता।

इसके पश्चात् हमें सं० १८९३ की एक सुंदर हस्तलिखित पुस्तक काशीजीसे श्रीजमुनादास वैश्यके हाथकी लिखी मिली और एक सं० १९१५ वि० की श्री ६ रामसुंदरदासजी रामायणी, छावनी बाबा मणिरामजी, श्रीअयोध्याजीसे मिली।

वीरकविजी (पं० श्रीमहावीरप्रसाद मालवीय) लिखते हैं कि उन्होंने सं० १७७४ की एक हस्तलिखित प्रतिका पाठ अपनी टीकामें रक्खा है। मूल आधार वही है यद्यपि सहायता सं० १८८५ की प्रति लिपिसेभी ली है। अतएव उनकी छपायी हुई टीकाके पाठको हमने सं. १७७४ का पाठ मान लिया है। श्रीरामस्वामी कौन हैं, उनका स्थान चित्रकूटमें कहाँ है जहाँसे उनको यह पोथी मिली, इसका पता टीकासे नहीं चला। यदि कोई प्रेमी जानते हों तो लिखकर दासको अनुगृहीत करें।

हमारा अनुभव है कि प्राय: हिंदीकी छपी पुस्तकें (विशेषत: वे जो पैसापूजक प्रकाशकोंको दे दी जाती हैं) असली प्रतियोंके अनुकूल नहीं होतीं। हमने "विनय-पीयूष" में यत्र तत्र इस बातको दिखायाभी है। प्रथम तो लोग साधारणतया वही छाप दिया करते हैं कि अनेक प्राचीन पोथियोंसे संशोधित करके पाठ रक्खा है। पर वे किसी पोथीका न तो नाम देते हैं और न वस्तुत: उन्होंने प्राचीन हस्तलिखित पोथियोंको देखाही है। प्रकाशकोंका प्राय: यही शेवा है, रवैया है।

सं० १६६६ वाली पोथीका नाम 'श्रीरामगीतावली' है। इसमें केवल १७४ पद थे जिसमेंसे चार पद आजकलकी छपी हुई गीतावली रामायणमें पाये जाते हैं। प्रचलित "विनयपत्रिका" की पुस्तकमें २७८ पद हैं।

सं. १६६६ वाली प्रतिमें क्यों इतनेही (१७४) पद हैं? उसका नाम "श्रीरामगीतावली" क्यों है? क्या १०९ वा १२५ पद, जो अन्य सभी पोथियोंमें पाये जाते हैं, प्रक्षिप्त हैं? ये प्रश्न स्वाभाविकही हृदयसे उठते हैं।

इसके विषयमें इस दीनका अनुमान यह है कि संगीत कलाकुशल पूज्य कविने समयसमयपर कुछ गीतके पद रचे और फिर उनको एकत्र करके उस ग्रन्थका नाम "श्रीरामगीतावली" रख दिया। कुछ वर्षोंके बाद किसी कारणसे उन्होंने कुछ विनयके पद और लिखे, जिसमें श्रीगणेशजी, श्रीसूर्यभगवान्, श्रीदुर्गाजी, श्रीकालीजी, श्रीयमुनाजी, श्रीकाशीजी, श्रीलक्ष्मणजी, श्रीभरतजी, श्रीशत्रुघ्नजी और श्रीजानकीजीके सम्बन्धके एकभी पद नहीं हैं। अधिकसे अधिक ३ पद (३, ८, ११) शिवजीके, दो गंगाजीके (१९, २०), दो चित्रकूटके (२३, २४) और चार हनुमान्जीके (३२, ३३, ३४, ३५,) हो सकते हैं। शेष सब श्रीरामजीके संबंधके हैं। पद २७९ श्रीरामगीतावलीमें नहीं है। वह पद यह है।

"मारुति मन रुचि भरत की लखि लषन कही है।
कलिकालहु नाथ नाम सो प्रतीति प्रीति एक किंकर की निबही है॥
सकल सभा सुनि लै उठी जानी रीति रही है।
कृपा गरीब निवाजकी देखत गरीब को सहसा बाँह गही है॥
बिहँसि राम कह्यो सत्य है सुधि मैं हूं लही है।
मुदित नाथ नावत बनी तुलसी अनाथकी परी रघुनाथ सही है॥"

पद २७८ भी नहीं है, जिसमें "पवनसुवन रिपुदवन भरत लाल लखन दीन की। निज-निज अवसर सुधि किये बलि जाउं दास आस पूजि है खास खीन की॥" इस प्रकार विनय की गयी है। श्रीलक्ष्मणजी, श्रीभरतजी, श्रीशत्रुघ्नजी, श्रीहनुमानजी और अंबा श्रीजनकनन्दिनीजूने श्रीसरकारसे आपकी सिफ़ारिश की है यह बात उपर्युक्त उद्धरणोंसे स्पष्ट है। अतएव विनयपत्रिकामें इनके पद न हों यह कब उचित एवं संभव हो सकता है? इस विचारसे यह निश्चय होता है कि

पूज्य कविने स्वयं दोनोंको किसी समय एकत्र कर उस पूरे ग्रंथका नाम 'विनय-पत्रिका' रक्खा और दरबारमें पेश किया। "विनय-पत्रिका" नाम उन्हींका रक्खा हुआ है; यह " बिनयपत्रिका दीनकी बाप आपुही बाँचो ". (पद २७७) से सिद्ध है।

अन्तके तीन पद तभी संगत हो सकेंगे जब श्रीलक्ष्मणजी आदिके विनयके पदभी उसमें हों जिनमें सरकारसे सुध दिलाने, सिफ़ारिश करनेके भाव भरे हों।

" मूल गुसाईंचरित " से हमारे अनुमानकी पुष्टि होती है। बाबा बेनीमाधवदासजी उसमें लिखते हैं कि ' रामगीतावली ' उन गीतोंका संग्रह है जो वे कोकिलकंठ बालकोंको गानेकेलिये बना दिया करते थे। कुछ वर्षोंबाद जब कलियुगने उनको डाँटा और उन्होंने श्रीहनुमान्‌जीसे शिकायत की तब श्रीहनुमान्‌जीने उनसे विनयावली रचनेकी सलाह दी। इसपर " श्रीरामविनयावली " रची गयी।

पं० शिवलालपाठकजीकी एक जीर्ण शीर्ण पुस्तकमें विनयपत्रिकाका नाम ' रामविनयावली ' मिलता है। इसके कुछ अंशकी नक़ल नागरी-प्रचारिणी सभी, काशीके पुस्तकालयमेंभी थी। परन्तु इस दीनको वहाँकी सूचीमें दी हुई कई पुस्तकें देखनेको नहीं मिलीं जब यह दीन वहाँ लगभग १९३५ ई० में गया था।

यहां यहभी बता देना असंगत न होगा कि प्रायः पूर्वरचित पदोंमें कलियुगकी शिकायतके पद नहीं हैं। जो पीछे रचे गये हैं उनमें हैं।

संभवतः १७४ ही पद होनेके कारण ना. प्र. सभा और गीताप्रेस एवं औरभी किसी टीकाकारने सम्वत् १६६६ वाली प्रतिकी ओर ध्यान नहीं दिया। नहीं तो उनके पास द्रव्य और जन दोनोंही आवश्यक सामग्रियाँ मौजूद थीं। वे विनयका शुद्ध संस्करण निकाल सकते थे ऐसा कुछ लोग भलेही कहें। पर इस दीनकी समझमें तो इस ओर उनका ध्यान विशेष आकर्षित न होनेका कारण एकमात्र यह है कि यह सेवा प्रभुको इस दीनसे लेनी थी। इसीसे श्रीमद्गुरुदेवद्वारा यह आज्ञा उन्होंने दी और हठात् वह सेवा इस सेवाचोरसे करा ली।

सन् १९३५ हीमें दासने क्षेत्रसंन्यास ले लिया। तबसे दास श्रीअयोध्याजीके बाहर कहीं नहीं जाता। इसलिये फिर दास विशेष खोज नहीं कर सका।

सं० १९५१ की व्यङ्कटेश्वर प्रेसकी छपी तथा उसके चोरी जानेपर सं० १९५७ की छपी (अर्थात् सं० १९५१ वालीका पुनर्संस्करण) और बाबा हरिहरप्रसादजीकी छपी टीकाभी देखनेको मिली।

सं० १९९९ कार्तिक मासमें दैवयोगसे मुझे विजयानगर (ईजा-नगर) बनारस, कोठी लीलाके व्यास श्रीगजाधरदासजीके यहाँकी एक प्राचीन हस्तलिखित पोथी (जो मुझे रामायणी बाबा श्रीरामसुन्दरदासजीसे पूर्व कभी प्राप्त हुई थी) अपने अस्तव्यस्त पड़े हुए रद्दी कागज़ोंमें मिल गयी। यह पोथीभी सुन्दर अक्षरोंमें साफ़ लिखी हुई है। यह लगभग २०० वर्ष पुरानी होगी। इसमें आदि अन्तके पन्ने नहीं हैं।

श्रीगोस्वामीजीकी हस्तलिखित वा उनके समयकी कोई पूरी पोथी न उपलब्ध होनेसे विश्वस्त हस्तलिखित पोथियोंके सिवा शुद्ध पाठकी खोजका और साधनही क्या हो सकता है? जो विश्वस्त हो उसीकी कसौटीपर अन्यकी परख करके शुद्ध पाठतक पहुँचा जा सकता है। ऐसा विचार कर इस दीनने सं. १६६६ वाली पोथीको प्रधान और सब प्रकार विश्वस्त और सुन्दर समझकर शुद्धपाठकी परखकेलिये कसौटी बनाया। विजयानगरके व्यास जिससे कथा कहते थे वह पोथी सं. १६६६ वाली को छोड़ अन्य समस्त पोथियोंसे बहुत शुद्ध प्रतीत होती है।

श्रीभागवतदासजी आदिकी पोथियोंका पाठ सं. १६६६ की प्रतिसे रुपयेमें चार आना मिलता है और विजयानगरके व्यासकी पोथीका पाठ रुपयेमें बारह, चौदह आना मिलता है। अतएव जो पद इसमें श्रीराम-गीतावलीमें मिले वे हमने ज्योंके त्यों उसमेंसे ले लिये। इसके बाद जो पद इसमें नहीं हैं उसकेलिये हमने व्यासजीकी पोथीको कसौटी माना है। यह पोथी दो सौ वर्षसे उपरकी बतायी जाती है। आदि अंतके पन्ने न होनेसे संवत्का पता नहीं चल सकता। इसके अठारहवे पन्नेमें विनयका नववाँ पद "सिव सिव होइ प्रसन्न" है जिसपर संख्या ४०० दी हुई है। पन्ना १०३, पद २७६ (जो उसमें ६६७ है) के 'कहा न कि'

पर समाप्त होता है। चौदह, पन्द्रह पद जो इसमें नहीं हैं उनके शुद्धपाठका निर्णय करनेमें अत्यन्त कठिनाई प्रतीत हो रही है।

सं० १७७४ वाला कहा जानेवाला पाठ इन समस्त पोथियोंसे बहुत कम मिलता है। यह पोथी इन कसौटियोंपर कसी जानेपर बहुत अशुद्ध प्रतीत होती है और प्रामाणिक नहीं जान पड़ती।

उपर्युक्त दोनों प्राचीन पोथियोंके बाद बाबा हरिहरप्रसादजी और सं० १९५१ की पुस्तकोंका पाठ उत्तम साबित हुआ।

इन सब प्रतियोंसे दासने अपने पाठकेलिये फिरसे एक दूसरी स्वहस्तलिखित पोथी तैयार की। मूल पाठ सं० १६६६ काही प्रायः उन सब पदोंमें है जो उसमें मिलते हैं। चार छः स्थानोंमें जहां अर्थ नहीं लग सका वहाँ व्यासजीकी पोथीका पाठ रक्खा गया है और नीचे (फुट नोटमें) सं. १६६६ का पाठ दे दिया गया है। अन्य लगभग १२० पदोंका पाठ विजयानगरकी पोथीके अनुसारही प्रायः रक्खा है और शेष आठदसका पाठ श्रीभागवतदास आदिसे चुना गया है। समस्त पोथियाँ, जिनकी चर्चा उपर की गयी है प्रायः उन सबोंका पाठ पादटिप्पणीमें दे दिया गया है।

माघ, फाल्गुन सं. १९९९ में बाबू शिवप्रकाशजी, श्रीबैजनाथदासजी, पं० रामेश्वरभट्टजी (तीसरा संस्करण सन् १९२५ ई०), लाला भीभगवान-दीनजी और वियोगीहरिजीकी टीकाओंका पाठभी हमने देखा और उसकोभी पीछे हमने अपनी पोथीमें बढ़ा दिया। यह काम १ मार्च १९४३ ई० को समाप्त हुआ।

श्रीभट्टजीके तीसरे संस्करणका पाठ सं. १६६६ और व्यासजीकी पोथियोंका बहुत अंशमें मिलता है और कहीं कहीं हरिहरप्रसादजी और सं० १९५१ की पुस्तकोंसे लिया हुआ जान पड़ता है। उन्होंने यह कहीं नहीं लिखा कि किस पोथीसे उन्होंने पाठ लिया है। अनुमान होता है कि उन्होंने तीसरे संस्करणके समय सं. १६६६ वाली एवं कोई और प्राचीन हस्तलिखित पोथी अवश्य देखी है और बहुत अंशमें पाठ उन्हींके अनुसार रक्खा है। बहुतसे स्थानोंमें उनके पाठ सं. १६६६ की पोथी से मिलते हैं

जो और कहीं देखनेमें नहीं आये और बहुतोंमें व्यासजीकेही पाठ मिले। लाला श्रीभगवानदासजीका पाठ प्रायः १९५१, मुरादाबाद और डुमराँव-वाली छपी पुस्तकोंसे लिया हुआ जान पड़ता है। यही पाठ प्रायः श्रीवियोगी हरिजीका है। कहीं कहीं पाठभेद है।

हमने सन् १९४३ में मानसमणिमें बहुतसे पाठान्तरोंको दिया था और पाठकोंसे प्रार्थना की थी कि उनपर विचार करें। पर किसीने कृपा न की। पं. श्री राजबहादुर लमगोड़ाजीने अपने विचार लिखकर भेजे और इधर पं० देवदत्त शर्माजीने छपते समय 'विनय-पीयूष' देखा तो उन्होंनेभी प्रसन्नता और प्रेमपूर्वक विना कहे हुए स्वयं अपने विचार लिख भेजे। इन दोनों महानुभावोंको इस कृपाका धन्यवाद देता हूँ। दीन आशा करता है कि इस छोटीसी खोजसे लोगोंको कुछ लाभ हो।

टीका:—सबसे पहली टीका डुमराँवनरेश श्रीयुत् महाराज जयप्रकाशजी-के भाई बाबू शिवप्रकाशजीकीही जान पड़ती है। इसका प्रथम संस्करण सं. १९४१ काशीका है। लेखकी तिथिका पता इसमें नहीं है। अंतमें यह दोहा है, "**भोजवंश अवतंस कहि जयप्रकाश महाराज। रजधानी डुमराँव है तिन सुभग समाज। तिनके लघु भाई सुहृद शिवप्रकाशजिहि नाम। तिनने यह टीका करी सकल शास्त्रको धाम॥**" मुं. नवलकिशोर प्रेस, लखनऊमें इसकी पाँचवी आवृत्ति १९०७ ई० में प्रकाशित हुई।

इस टीकाकी पूरी छाया श्रीवैजनाथदासजीकी टीकामें है। इसीके भावोंको लेकर उन्होंने विस्तृत रूपसे एक बड़ी टीका 'विनय प्रदीपक' नामकी सं० १९४७ भाद्र शुक्ल ११ को पूर्ण की जो नवलकिशोर प्रेससे प्रकाशित हुई। यदि इसमेंसे पुनरुक्तियाँ निकाल दी जायँ तो दो तिहाई पुस्तकसे अधिक न रहेगी। यह पुरानी देशीय भाषा (ठेठ हिंदी) में है।

ठाकुर बिहारीलाल सिरश्तेदार, ओड़छा राज्यने तो डुमराँववाली टीकाकोही नकल कर डाला और लक्ष्मी व्यङ्कटेश्वर प्रेसने उसे प्रकाशित किया। इनपर नालिश हो सकती थी। ऐसी धूर्त्तता प्रेसवाले प्रकाशक बहुत करते हैं।

डुमराँव और वैजनाथजीवाली टीकाओँका प्रचार इस प्रान्तमें बहुत हुआ। इनके बादकी जितनी टीकाएँ हैं, उनमें इन्हीं दोनोंके भावार्थ अपने अपने शब्दोंमें प्राय: टीकाकारोंने रख दिये हैं। पं० रामेश्वर भट्ट और वियोगीहरिजीकी टीका खास तौरपर वैजनाथजीकेही आधारपर है। कठिन स्थलोंपर लोगोंने भावार्थ कहकर या शब्दोंको ज्यों का त्यों रखकर छोड़ दिया है। उनके समझाने या उनकी व्युत्पत्ति आदिकी खोज करनेका प्रयत्न नहीं किया है। कथाएँ जो बाबू शिवप्रकाशजीने अपनी टीकामें दी हैं प्राय: वही सब टीकाकारोंने ज्योंकी त्यों अपने शब्दोंमें दी हैं।

बाबा हरिहरप्रसादजी महाराजकी टीकाकी भाषा हमारेलिये इतनी दुरूह है कि हम उसके मूलपाठको छोड़ उससे कुछभी लाभ न उठा सके। काशीराज्यके लोग उस भाषाके बोलनेवाले होंगे, यदि वे उसे प्रचलित हिन्दी भाषामें करा दें तो संभव है कि वहभी कुछ कामकी सिद्ध हो। पाठ उसका कहींसे लिया गया यह हमको पुस्तकसे पता नहीं चलता।

जो प्रेमी पाठकोंके सामने इस दीनका परिश्रम फलरूप "विनय-पत्रिका" आ रही है, उसका पाठ प्राय: प्रचलित समस्त पोथियों और पुस्तकोंसे विलक्षण और नवीन प्रतीत होगा। दासने अपने भर पाठोंपर बहुत विचार किया और खास खास स्थलोंपर उन विचारोंको "विनय-पीयूष" में लिखभी दिया है। प्राचीनतापर बहुत ध्यान दिया गया है।

यह पाठ किसी एक पोथी या पुस्तकमें कहीं आपको देखने सुननेमें न आया होगा और न आवेगा, तब इस पाठवाली पुस्तककी टीका कहाँसे मिल सकती है?

श्रीसरकारकी आज्ञा होनेपरभी इस टीकाका कार्य दासको भारी भार लगता था। दास उससे मुँह चुराताही रहा। फिरभी "मानस-पीयूष" के प्रेमियोंके विशेष आग्रहसे टीकाका लिखना संभवतः आश्विन शु० १० सं. १९९० वि. को प्रारम्भ हुआ। परन्तु पौषमें फिर स्थगित हो गया। इस प्रकार जैसे तैसे चैत्र कृ० १९९२ तक ४८ पदोंकी एक टीका तैयार हुई जो वृन्दावन श्रीहरिदेवजीके मन्दिरके स्थानाधिपति वेदान्तशिरोमणि

श्री ६ रामानुजाचार्यजी महाराज ले गये। दासका चित्त इधर लिखने पढ़नेके कामसे बराबर भागता रहा है, वृद्धावस्था है और आँखेंभी बहुत कमज़ोर हो गयी है। श्रीअवधसे बाहर जानेका नियम नहीं है और श्रीअयोध्याजीमें कोई ऐसा प्रेम नहीं जो इस कामको कर सकता। संभव था कि वह छपती जाती तो दास उसे पूरी लिख चुका होता।

श्रीवृन्दावनसे वह हस्तलिखित टीका सालभरमें लौटी परन्तु उसमें यत्रतत्र अमूल्य टिप्पण वेदान्तशिरोमणि महाराजजीके मिले। यह देखकर फिर उत्साह बढ़ा और जैसे तैसे एक साधारण टीका तैयार हुई और वृन्दावन गयी। श्रीवेदान्तशिरोमणिजीके अमूल्य टिप्पणोंके-लिये यह दीन उनका अत्यन्त कृतज्ञ है। उनको देखकर फिर हमने उपनिषदों, पुराणों, भगवद्गुणदर्पणभाष्य आदि ग्रन्थोंसे पं. रामकुमार-दासजी, वेदान्तभूषण, श्रीअयोध्याकी सहायतासे बहुत काम लिया।

दो वर्ष शरीर बहुत अस्वस्थ रहा। आशा तो यही थी कि **श्रीसरकार** अपने समीप लिये चलते हैं। पर फिरभी बेशर्म जिन्दगीने पीछा न छोड़ा। इसकेबाद अपूर्वभूत संसार युद्ध छिड़ गया। "मानस-पीयूष" का दूसरा बहुत बृहत् संस्करण लिखा पड़ा रह गया। "विनय-पीयूष" को कौन पूछे?

अनेक मित्रों और प्रेमियोंने हठ किया कि पूरी बृहत् टीका लिख दी जाय। पर दासका हठ यही रहा कि छपना प्रारंभ होगा तभी आगे लिखी जायगी। बाबू शारदाप्रसादजी, व्यवस्थापक 'मानस संघ', रामबन के उद्योगसे प्रयागमें छपनेका प्रबंध हुआ और छःसात मासमें पांच फर्मे छपे। छपाई अशुद्ध और खराब, आर्डरी प्रुफ अंधा, लीपापोता देखकर जी घबड़ा गया और वहाँ छपाना बंद कर दिया गया। परन्तु इसमेंभी प्रभुकी असिम कृपा देख पड़ी। उनके ढंग निराले हैं। इसतरह उन्होंने दाससे कमसे कम एक हजार पृष्ठकी टीका साफ़ लिखा ली। साथही उसके छपनेका सुयोग्य प्रबंध कर दिया।

३९ पदोंका प्रथम संस्करण " मानस-पीयूष " कार्यालय, महल्ला दारागंज, प्रयाग, के अध्यक्ष **श्रीयुत् अनन्तरामजी श्रीवास्तवने** दो खण्डोंमें प्रकाशित किया। परंतु वे बीमार हो जानेसे आगेके भाग अभीतक

न छपाये जा सके। इसकी माँग इतनी बढ़ी कि हमें तुरन्त उसीका दूसरा संस्करण छपानेकी आवश्यकता हो गयी।

पं. रामचंद्रदासजी और राजरत्न राज्यप्रिय प्रो. माणिकरावजी इन्होंने बड़ौदामें इसके दूसरे संस्करणके छपने और स्वयं प्रूफभी देख देनेका गुरुतर भार अपने ऊपर ले लिया। यह दीन उनका बहुतही कृतज्ञ है और इसकेलिये उनको हार्दिक धन्यवाद देता है। पुस्तककी शुद्धता, सुन्दरता और आकर्षता आदि सब आपही दोनों महात्माओंके परिश्रमका फल हैं।

हम उपर कह आये हैं कि प्रायः सभी टीकाकारोंने पद्यार्थ न देकर केवल भावार्थही लिखे हैं। कठिन शब्द ज्यों के त्यों जहाँ तहाँ वैसेही रह गये हैं। पाठान्तर यदा कदा देभी दिये गये हैं पर उनपर किसीमें कुछ विचार नहीं प्रकट किये हैं। इन विषयोंमें लाला भगवानदीनजीकी टीकाहीमें कुछ विशेषता दृष्टिगोचर होती है।

सीधा सादा अर्थ जिसमें कोई शब्द मूलकाभी न छूटे और जो व्याकरण और शुद्ध व्युत्पत्तिके अनुसार पद्यार्थ हो, जिसे अँग्रेजीमें Literal translations, paraphrase and simple meaning of what Tulsidas wrote " (रेवरेन्ड ग्रीव्ज़ साहेबके शब्दोंमें) कह सकें ऐसी टीका कोई प्रचलित पाठोंवाली " विनय-पत्रिका " परभी नहीं है और इस विनय-पीयूष का तो पाठही सबसे निराला है।

" विनय-पीयूष " में प्रथम छोटे बडे, सरल और कठिन सभी शब्दोंके अर्थ विस्तारसे शब्दार्थमें दिये गये हैं। संभव है कि विद्वानोंको इनकी आवश्यकता न हो। पर दासने तो विनयपत्रिकाका एक अबोध विद्यार्थी बनकर इसको अपने सन्तोषार्थ तैयार करना प्रारम्भ किया था। फिर मित्रोंकी राय उसमें काट छाँट करनेकी नहीं हुई। इसलिये वह विनयपत्रिकाके विद्यार्थीकेलिये हो सकता है कि उपयोगी हो। यह अवश्य है कि आद्यन्त जो इसका अध्ययन कर लेगा उसे शब्दार्थमें दिये हुए शब्दोंपर फिर कदाचित्ही कोई कोश देखनेकी इच्छा हो।

जो हिन्दी भाषासे अनभिज्ञ हैं और अन्य भाषाओंके विद्वान् हैं, उनका काम विशेषतर इस शद्बार्थसे चल जायगा। फिर तो पद्यार्थ और भावार्थ वे लगा लेंगे और गूढ़ विषयोंपर प्रकाश डाल सकेंगे।

दासको न तो साहित्यकाही ज्ञान है और न व्रजभाषा, अवधी भाषा आदिका। इसकेलिये तो दास लाला भगवानदीनजी आदि टीकाकारोंका-ही सदा कृतज्ञ रहेगा।

शद्बार्थके बाद पद्यार्थ है। उसके पश्चात् फिर शब्दों, वाक्यों और मुहावरोंके विशेष भाव टिप्पणियोंमें दिये गये हैं।

कठिन प्रसंगोंमें जहां जहां कठिनाइयोंका सामना पड़ा, दासकी (श्रीसीतारामकृपासे) जो समझमें आया वह लिख दिया है और भावार्थान्तर वा अर्थान्तरमें अन्य टीकाकारोंके अर्थ और भावभी दे दिये हैं। हमारा काम किसीका खण्डन करना नहीं है। सभीने जो लिखा है वह अपनी-अपनी समझके अनुसार उचित और बहुत अच्छा लिखा है। ग़लती प्रत्येक मनुष्यसे हो सकती है। हमने जो भावार्थान्तर सब टीकाकारोंके दिये हैं, वे इसलिये कि जो पाठक तुलनात्मक अभ्यास करना चाहते हों उनको सहायता मिलें। वे स्वयं विचार करें और जिसे उत्तम समझें उसे ग्रहण करें।

कथाएँ जो हमने इसमें दी हैं, वे सब प्रामाणिक दी हैं। स्वयंभी पुराणों, रामायणों, इतिहासों और पत्रिकाओं इत्यादिको पढ़कर उनसे उद्धृत की है और प्रमाणभी लिख दिये हैं। इसमें गणेशजी, सूर्यभगवान्, रुद्र, भैरव, गंगा, गुणनिधिद्विज आदिकी कथाएँ जो दी गयी हैं वे अबतक किसीभी प्रकाशित और अप्रकाशित पुस्तकोंमें देखने और सूननेमेंभी नहीं आयी होंगी। साथही जो कथाएँ टीकाकारोंने दी हैं उनकाभी संक्षिप्त उल्लेख कर दिया गया है।

गोस्वामीजीकी संगीत कलाकी परिचयचारुताभी स्थल स्थलपर दृष्टिगोचर करायी गयी है।

श्रीगणेशजी, सूर्यनारायण और शिववेष आदिके आध्यात्मिक रहस्यभो जो महानुभावोंने लिखे हैं, इसमें उद्धृत कर दिये गये हैं।

दास संस्कृत बिलकुल नहीं जानता। संस्कृत ग्रन्थोंको टीकाओंकी सहायतासे पढ़करही हमने मूल उद्धृत कर दिया है। छपा हुआ मूल यदि अशुद्ध है तो इसमेंभी अशुद्धिका रहना क्या आश्चर्य है !

अलङ्कार आदि हमने प्रायः पं० महावीरप्रसाद मालवीय, और वीरकविजीकी टीकासे लिया है।

हम यह नहीं कह सकते कि यह टीका किसीकेभी कामकी होगी या नहीं। हमें सन्तोष यही है कि श्रीसरकारने जो इस शरीरसे सेवा चाही, कृपा करके जबरदस्ती ले ली और उसपर रीझे हैं। इस शरीरसे संबंध रखनेवाली श्रीमती मीरादेवीकोभी भूलना न चाहिये। शब्दोंकी सूची उसीने तैयार कर दी है।

त्रुटियोंसे पूर्ण जो कुछ हमारी एकत्र की हुई, बुरी भली, शुभाशुभ पूँजी है वह श्रीसरकारके सामने भेंट कर दी गयी है और अब आपके सामनेभी है। गर पसन्द उफ़तद ज़हे इज़्ज़ो शरफ़।

इस तिलकमें एक विशेषता यहभी है कि इसमें समस्त देवताओंका जहाँ जैसा स्वरूप वर्णित है वहाँ उसीके अनुसार पक्षपातरहित व्याख्या की गयी है। इसमें सब शास्त्रोंके सिद्धान्त दिये गये हैं। द्वैतवाद, अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, शैववाद सभी वादोंके अनुसार व्याख्या की गयी है। सबके मत इसमें हैं, क्योंकि यह ग्रंथ मानवमात्रकेलिये है, न कि वैष्णवमात्रकेलिये।

"बार बार माँगौं कर जोरे।
बसहुँ राम सिय मानस मोरे॥"

दीन
अंजनीनन्दनशरण

सांकेतिक अक्षरोंका विवरण

हस्तलिखित पोथियाँ	सांकेतिक अक्षर
१ सं० १६६६ की श्री भगवान् ब्राह्मणकी लिखी प्रति। रामनगर, काशी।	६६
२ सं० १८६९ की श्री चौधरी छुन्नीसिंहकी एक पोथी। रामनगर, काशी।	३९
३ श्री भागवतदासजीकी प्रतिलिपि।	भा०
४ सं० १८७८ की श्री बेनीकायस्थकी लिखी पोथी। मिरज़ापूर।	बे०
५ सं० १८७९ की श्री प्रह्लाददासकी लिखी पोथी। राज्यपुस्तकालय, बलरामपुर।	प्र०
६ सं० १८९३ की श्री जमुनादास वैश्यकी लिखी पोथी।	ज०
७ सं० १९१५ की श्री रामरतदासकी लिखी पोथी।	'१५
८ ईजानगर (विजयानगर) के व्यास की पोथी।	रा०

छपी हुई पुस्तकें

१ मूल, व्यंकटेश्वर प्रेस। सं० १९५१	'५१
२ ,, ,, सं० १९५७	
३ मुरादाबाद लक्ष्मीनारायण यंत्रालय।	मु०
४ चरखारी नरेशकी लीथोमें छपी टीका। सन् १८७६	च०
५ बाबू शिवप्रकाश (डुमराँव) की टीका। सं० १९४१	डु०
६ श्री वैजनाथजीकी लीथोमें छपी टीका। सं० १९४७	वै०
७ श्री सीतारामीय बाबा हरिहरप्रसादजीकी टीका। सन् १९०४	ह०
८ वीरकवि पं० महावीरप्रसाद मालवीयकी टीका।	७४
९ पं० रामेश्वरभट्टजीकी टीका, तीसरा संस्करण। सन् १९२५	भ०
१० लाला श्रीभगवानदीनजीकी टीका। सं० १९८५	दी०
११ श्री वियोगी हरिजीकी टीका। सं० १९८७	वि०
१२ मास्टर बिहारीलाल, टीकमढ़की टीका।	टी०
१३ पं० रामकुमारजीके खर्रे।	खर्रा, रा०, कु०
१४ डु० मु० वै० भ० दी० और वि० का समुच्चय।	आ०

पदसूचि

अंक	पद	विनय	पृष्ठ
१	गाईऐ गनपति जगबंदन ।	श्रीगणेशजी	१
२	दीनदयाल दिवाकर देवा ।	श्रीसूर्यजी	१८
३	को जाचिए संभु तजि आन ।	श्रीशिवजी	३२
४	दानि कहुँ संकर से नाहीं ।	,,	४८
५	बावरो रावरो नाहु भवानी ।	,,	५८
६	मागिऐ गिरिजापति कासी ।	,,	६९
७	कस न दीनपर द्रवहु उमावर ।	,,	७४
८	देव बड़े दाता बड़े संकर बड़े भोरे ।	,,	८८
९	सिव सिव होइ प्रसन्न करि दाया ।	,,	९६
१०	देव मोह तम तरनि हर रूद्र शंकर सरन ।	श्रीअर्धनारीश्वरजी	१०७
११	देव भीषनाकर भैरव भयंकर भूत ।	श्रीभैरवजी	१३९
१२	सदा संकरं संप्रदं सज्जनानंददं	श्रीशिवजी	१६७
१३	सेवहु सिवचरनसरोज रेनु ।	,,	१९६
१४	देखो देखो बनु बन्यो आजु उमाकंत ।	,,	२०७
१५	दुसह दोष दुख दलनि करु देवि दाया ।	श्रीदुर्गाजी	२२६
१६	जय जय जगजननि देवी ।	श्रीकालिकाजी	२५०
१७	जय भगीरथनंदिनि मुनिचय चकोर चंदिनि ।	श्रीगंगाजी	२६१
१८	जयति जय सुरसरी जगदखिल पाविनी ।	,,	२७८
१९	हरति सकल पाप त्रिबिध ताप ।	,,	२९६
२०	ईस सीस बससि त्रिपथ लससि ।	,,	२९६
२१	जमुना ज्यों ज्यों लागी बाढन ।	श्रीयमुनाजी	३००
२२	सेइअ सहित सनेह देह भरि ।	श्रीकामधेनुजी	३०८
२३	सब सोच बिमोचन चित्रकूट ।	श्रीचित्रकूटजी	३३९
२४	अब चित चेति चित्रकूटहि चलु ।	,,	३५१

श्रीगणेशायनमः

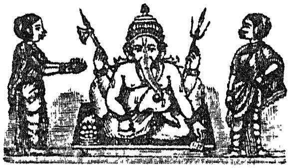

॥ विनय-पीयूष ॥

श्रीरामायनमः †

१ (१) राग गौरा *

गाइऐ[1] गनपति जगबंदन। संकर-सुअन भवानी-नंदन ॥१॥
सिद्धिसदन गजबदन विनायक। कृपासिंधु सुंदर सब-लायक ॥२॥
मोदक प्रिय मुद-मंगल-दाता। विद्यावारिधि बुद्धि विधाता ॥३॥
मांगत तुलसिदास कर जोरें। बसहुं[2] राम-सिय मानस मोरें ॥४॥

(व्याख्याकारका मंगलाचरण)

जनकसुता जगजननि जानकी। अतिसय प्रिय करुनानिधानकी ॥
ताके जुग पद कमल मनावउँ। जासु कृपा निर्मल मति पावउँ ॥
जस कछु बुधि बिबेक बल मोरें। तस लिखिहहुं हिय 'हरि' के प्रेरें ॥
करइ मनोहर मति अनुहारी। सुजन सुचित सुनि लेहु सुधारी ॥

---

† ६६ में 'श्रीरामायनमः' है। ६९ में 'श्रीगणेशाय नमः' है। भा०, वे० में 'श्रीजानकीवल्लभोविजयते' है। कोष्टकांतर्गत संख्या १६६६ की पोथी की है।

*राग बिलावल—भा०, बे०, आ०। गौरी—प्र०। गौरा–६६। भा० में इसके बाद 'अथमङ्गलाचरण' और प्र० में 'अथश्रीगणेशजूकापद', शब्द है।

उठा त्योंही सबसे प्रथम इसी तत्वका विकास हुआ। कुछ लोगों के मतसे 'शुश्रूषा, श्रवण, ग्रहण, धारण, ऊहापोह और अर्थविज्ञान' बुद्धिके सात गुण हैं। इस विषयपर आधुनिक विद्वानोंमेंसे तिलक महोदयने अपने गीता-रहस्यमें विस्तारसे लिखा है कि बुद्धिकेभी दो रूप हैं-एक वासनात्मिका बुद्धि जिसके गुण ऊपर लिखे गए और जिससे बाहरी वस्तुओंका ज्ञान हमें होता है और दूसरी व्यवसायात्मिका बुद्धि जिससे हम उस ज्ञानके होनेके उपरान्त निर्णय करते हैं। बिधाता=विस्तार करनेवाला, उत्पन्न वा तैयार करनेवाला। कर=हाथ। सिय=सीताजी, माधुर्य्यमें 'सिय' नाम बोला जाता है। मानस=मन, हृदय। मोरें=मेरे।

पद्यार्थ—श्रीगणेशजीका गुण 'गाईये' जो गणोंके स्वामी, जगत्‌वंदनीय, शङ्करजीके पुत्र, श्रीपार्वतीजीको आनन्द देनेवाले, सिद्धियोंके निवासस्थान, हस्तिमुख, विघ्नोंके स्वामी, दयाके समुद्र, रूपवान् तथा प्रियदर्शन और सब प्रकारसे लायक हैं, जिनको लड्डू प्रिय हैं, जो आनन्द मङ्गलके देनेवाले, विद्याके समुद्र और बुद्धिके विधाता हैं। मैं तुलसीदास हाथ जोड़कर (यह वरदान) माँगता हूं कि श्रीसीतारामजी मेरे हृदयमें बसें।

टिप्पणी—१ 'गाईऐ' इति। (क)-इस शब्दका अर्थ टीकाकारोंने भिन्न भिन्न किया है*। इस प्रकारकी क्रियाका प्रयोग अनेक स्थलोंपर कविने किया है, यथा-'सेइअ सहित सनेह देह भरी कामधेनु कलिकासी' (२२) 'मागिऐ गिरिजापति कासी' (६) 'को जाचिये संभु तजि आन' (३) इत्यादि। इस प्रकार 'गाइऐ' के इतने अर्थ हो सकते हैं-गाइये, गान करना चाहिये, गाता हूं, (गुण) गान करें।

(ख)—इस ग्रन्थका आरम्भ 'गाइऐ' शब्दसे किया गया है, यह साभिप्राय है। 'गाइऐ' पदको आदिमें रखनेका प्रयोजन यह है कि

*श्रीवैजनाथजी और दीनजी इसे वर्तमानकालिक क्रिया और 'गनपति'को संबोधन मानकर अर्थ करते हैं—'हे गणेशजी! मैं आपके गुणगान करता हूँ।' भट्टजी अर्थ करते हैं-'ऐसे गणेशजीका भजन करो' और वियोगीजीका अर्थ है—'श्रीगणेशजीका गुण गान करो'।

१—गानेके वास्तेही इस ग्रन्थका निर्माण हुआ है । २—गान देवताओंको प्रिय है–'गीतेन प्रीयते देवः सर्वज्ञः पार्वतीपतिः। गोपीपति रनंतोपि वंशध्वनी वशंगतः।' ३—गानविद्यामें गणेशजी प्रसिद्ध हैं। ४—गान सुखी लोगोंको सुखका निधान और दुःखियोंके दुःखका हरण करनेवाला है। (पं० रा० कु० च०)। यथा–'सुखिनि सुखनिवासो दुःखितानां विनोदः श्रवणहृदयहारी मन्मथस्याग्रदूतः। रतिरसभविधाता वल्लभः कामिनीनां जयति जगतिनादः सप्रभेदोपभेदः ॥' (संगीत रत्नाकर)।

(ग)—'गाइऐ' पाठसे ग्रंथमें रगण गण पड़ता है जो विनाशक है–'राऽग्निर्मध्यलघुर्विनाशमनिलो देशाटनं सोन्त्यगः' इति छन्दःसंग्रहे। यह उत्तम नहीं माना जाता, इसीसे प्रायः महानुभावोंने 'गाइय' पाठ कर दिया है। परन्तु यह ग्रंथ प्रार्थना वा देवस्तुतिसंबंधी है। देवस्तुतिमें गण–अगणका विचार नहीं किया जाता। यथा—'देवता वाचका शब्दा ये च भद्रादिवाचकाः। ते सर्वे नैव निंद्याःस्युर्लिपितो गणतोऽपि वा ॥'

२—'गनपति०' इति। (क) 'गनपति'का भाव कि आप शिवजीके भूतप्रेतादि गणोंमेंसे विघ्नकारक गणोंके स्वामी हैं। वे गण क्रूर स्वभाव के, उपद्रवी और विघ्नकारक होते हैं, स्वामीकी वन्दनासे वे बाधक न होंगे। (ख) 'जगबन्दन' इति। प्रथम कहा कि गणपतिका गुणगान करना चाहिये, अब बताते हैं कि क्यों और क्या गुणगान करना चाहिये। क्योंकि वे जगत्‌-वन्दनीय हैं, प्रथमपूज्य हैं, यथा–'प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ' (बा०)। मंगलकार्यमें इनकी जो पूजा नहीं करता उसके कार्यमें विघ्न उपस्थित होते हैं*। पुनः, 'गनपति' कहकर 'जगबंदन' कहनेका भाव यह है कि क्रूर-स्वभाव के गणोंके स्वामी होनेसे कोई यह न समझे कि आपभी क्रूरस्वभाव के

* पं० श्रीरामवल्लभाशरणजी बतलाते थे कि सिंधुमन्थनसमय जब मन्दराचल डूबने लगा और देवता–दैत्य घबराए तब भगवान्‌ने प्रकट होकर पूछा कि क्या विघ्नेशजीका पूजन नहीं हुआ? उसी समय उनका पूजन किया गया।

होंगे अतः जगवन्दन कहकर जनाया कि आप मंगलमूर्ति, सौम्यस्वभाव के और रामभक्त हैं, नहीं तो जगत्पूज्य न होते।

३—'संकरसुअन भवानीनंदन' इति। यहां 'संकरसुअन' और 'भवानी-नंदन'में माता और पिता दोनोंका नाम लेकर दोनोंके पुत्र अलग अलग कहनेसे पुनरुक्तिके ख्यालसे दो एक टीकाकारोंने 'सुअन' को दिपदेहली मानकर 'भवानी शंकरके पुत्र और आनन्द देनेवाले' ऐसा अर्थ किया है। पर वस्तुतः जान बूझकर कविने दो शब्द अभिप्रायसे दिये हैं।—

(क) पुत्र तो शङ्करजीके हैंही पर भवानीके आनन्द देनेवाले हैं। स्कंदपुराणकी कथा है कि पार्वतीजीने गणेशजी और स्वामी कार्तिकजीसे एक बार कहा कि जो सबसे पहले पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करके आवेगा उसके साथ ऋद्धि-सिद्धिका विवाह होगा। स्कन्द (कार्तिकेयजी) अपने बाहन मोरपर चले। पर गणेशजीने सोचा कि माता तो पृथ्वीका रूप हैं, इन्हींकी परिक्रमा क्यों न कर लें। यह विचार कर माताकी परिक्रमा करके इन्होंने माताको प्रणाम किया। पार्वतीजीने ऋद्धि-सिद्धिका विवाह इनके साथ कर दिया। (श० सा०)—पार्वतीजीके आनन्दका कारण इनकी मातामें यह श्रद्धाभी हो सकती है। दूसरा आनन्दका यह कारण यह है कि भवानीने (एक कथाके अनुसार) इन्हें अपनी शक्तिसे उत्पन्न किया और दूसरी कथाके अनुसार इनके लिये बहुत व्रत-तप-आदि करनेपर इनकी उत्पत्ति हुई अतः प्रिय हुआही चाहें। पुनः (ख)—शङ्करसुवन और भवानीनन्दन कहकर जनाया कि आप माता और पिता दोनोंके पृथक्-पृथक् उत्कृष्ट गुणोंसे अलंकृत हैं। पिता 'शङ्कर' अर्थात् जगत्का कल्याण करनेवाले हैं और माता परोपकारिणी हैं, भवकी पत्नि हैं, भव (शङ्करजी) से प्रश्न कर-करके जगत्का उपकार करती हैं—यह पुराणोंसे प्रगटही है। इस तरह दो पद देकर

पद्मपुराण सृष्टिखण्डमें संजयजीके व्यासजीसे प्रश्न करनेपर कि 'प्रतिदिन की पूजामें सबसे पहले किसका पूजन करना चाहिये?' उन्होंने बताया है कि "विघ्नोंको दूर करनेकेलिये सर्वप्रथम गणेशजीकी पूजा करनी चाहिये।'

माता और पिता दोनों सम्बन्धोंसे आपकी उत्कृष्टता और कुलीनता प्रकट की, आपको कल्याणकर्ता और परोपकारी जनाया।—(वै०)। पुनः, (ग)—किसीकी माता श्रेष्ठ होती है, किसीके पिता। दोनोंके पुत्र पृथक् पृथक् कहकर आपके माता और पिता दोनोंकी श्रेष्ठता दिखाई। पुनः, (घ)—शिवजीके पुत्र और भवानीके आनन्दकर्त्ता कहनेका एक भाव यह भी है कि गणेशजीका आविर्भाव गर्भसे नहीं है। (पं० रा० कु०)

४—'सिद्धिसदन' इति। सिद्धि और बुद्धि दोनों गणेशजीकी शक्तियां हैं, इसीसे दोनोंके नाम इस पदमें लिखे गए—'सिद्धिसदन' और 'बुद्धि बिधाता'। (टि० ३ भी देखिये) (पं० रा० कु०)

श्रीगणेशजीकी उत्पत्तिकी कथा ब्रह्मवैवर्तपुराणके गणेशखण्डके अध्याय ७ में है। प्रथम षष्ठाध्यायमें पार्वतीजीका पुत्रप्राप्तिक यज्ञ करनेका वर्णन है जिसमें समस्त देवता, मुनि, महर्षि आदि आये थे। शिवजीने उस महासभामें विष्णुभगवान्से प्रार्थना की जिसे सुनकर भगवान्ने व्रतादिका उपदेश किया। व्रताराधनसे संतुष्ट हो पार्वतीजीपर कृपा करके श्रीकृष्ण भगवान्का प्रकट होना और वर देना वर्णन किया गया है। (अध्याय९ श्लो० १६) अष्टमाध्याय-पर्यंत गणेशजीका रूप वर्णन किया गया है।

ये स्मार्तोंके पञ्चदेवोंमेंसे एक हैं। वैवस्वत मन्वन्तरके इन गणेशजीका सारा शरीर मनुष्यकासा है पर सिर हाथीकासा, चार हाथ और एक दांत है, तोंद निकली हुई, सिरपर तीन आँखें और ललाटपर अर्द्धचन्द्र है।

'गजबदन' इति—हस्तिमुखप्राप्तिकी कथा इस प्रकार वर्णन की गई है—शङ्करजीके पुत्रोत्सवमें आमंत्रित सब देवताओंने आकर बालक गणेशजीको आशीर्वाद देकर विष्णु विधि शिवादि सहित सभी महासभामें सुखपूर्वक विराजमान् हुये। तदनन्तर सूर्यपुत्र शनिश्चर आए और त्रिदेवको प्रणाम कर उनकी आज्ञासे पार्वतीजीके महलमें गणेशजीके दर्शनार्थ गए—'एतस्मिन्नन्तरे तत्रद्रष्टुं शङ्करनन्दनम्। आजगाम महायोगी सूर्यपुत्रः शनैश्चरः॥ अत्यन्त नम्रवदन ईषन मुदित लोचनः।' (अ० ११–५, ६) इनको नीचे मस्तक किये हुये देख पार्वतीजी बोलीं कि हमको और हमारे

पुत्रको क्यों नहीं देखते हो ? मुख नीचे क्यों किये हो ? 'कथं मा नम्र वक्त्रस्त्वं श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम् । किं नपश्यसि मां माधो बालकं वा ग्रहेश्वर ॥१८॥' शनिश्चरने अपनी पत्नीसे प्राप्त शाप इसमें कारण बताया कि हमारी दृष्टि जिसपर पड़ेगी उसका नाश हो जायगा । † शापकी कथा सुनकरभी पार्वतीजीने न माना और कुतूहलसे कहा कि तुम निशंक होकर मुझको और मेरे पुत्रको देखो—(अ० १२ । २) बहुत समझानेपरभी न माननेपर शनिने धर्मको साक्षी कर ज्योंही नेत्रके कोरसे सौम्यदृष्टि शिशुके मुखपर डाली, दृष्टिमात्रसे उसका सिर कट गया—'सव्य लोचनकोणेन ददर्श च शिशोर्मुखम् ।५। शनेश्चर दृष्टिमात्रेण चिच्छेद मस्तकं मुने । विवेश मस्तकं कृष्णे गत्वा गोलोकमीप्सितम् । ७ ।' और वह छिन्न मस्तक अपने अंशी श्रीकृष्ण भगवान्में प्रविष्ट हो गया । पार्वतीजी पुत्रशोकसे मूर्छित हो गईं, कैलासपर कोलाहल मच गया, सब देवता विस्मित हो गये, सबको मूर्छित देख भगवान्ने गरुड़पर सवार हो पुष्पभद्रा नदितीर जाकर देखा कि वनमें गजेन्द्र हाथिनीसहित सो रहे हैं और उनका सुन्दर बच्चा अलग पड़ा हुआ है । तुरंत सुदर्शनसे उसका मस्तक काटकर गरुड़पर रखकर वे वहाँ आये जहाँ शिशुका धड़ गोदमें लिये हुये पार्वतीजी बैठी थीं और उस मस्तकको शिशुके धड़पर लगाया । सिरपर लगतेही बालक जी उठा और उसने हुंकार की—रुचिरं तच्छिरस्सम्यक् योजयामास बालकम् । २० । ब्रह्मस्वरूपो भगवान् ब्रह्मज्ञानेन लीलया । जीवयामास तं शीघ्रं हुंकारोच्चारणेन च । २१ । पार्वती बोधयित्वातु कृत्वा

† शनिश्चरकी पत्नि चित्ररथ गन्धर्वकी कन्या थी । यह बड़े उग्र स्वभावकी थी । एक बार शनि भगवद्ध्यानमें मग्न थे । उसीसमय यह श्रृंगार किये मद-माती इनके पास गई, ध्यानावस्थित होनेसे इन्होंने उसकी ओर नहीं देखा । उसीपर उसने शाप दे दिया ।—'हरेः पादं ध्यायमानं पश्यन्ति मदमोहिता । मत्समीपं समागत्य सस्मिता लोललोचना ॥ २९ ॥ शशाप मामपश्यन्तिमृतुना-शाच्च कोपतः । बाह्यज्ञान विहीनञ्च ध्यान संलग्न मानसम् ॥ ३० ॥ न दृष्टाहं त्वयायेननकृतंमृतु रक्षणम् । त्वया दृष्टं च यद्वस्तु मूढ सर्वं विनश्यति ॥ ३१ ॥'

क्रोडेचतं शिशुम् । बोधयामास तां कृष्ण आध्यात्मिक बिबोधनैः ।' (अ० १२ । २२ ।)

यह कथा तो प्रामाणिक ग्रन्थसे लिखी गई है, पर इसकी उत्पत्ति और सिर कटनेकी कथा ऐसीभी सुनी जाती है कि—" एकबार जब शिवजी कहीं गये हुए थे, भवानीके शरीरपर पसीना छूटनेपर वे शरीरको मलने लगीं। जैसे जैसे शरीर मलती गई वैसे वैसे मैल निकलता गया। उस मैलको एकत्र कर उन्होंने एक मूर्त्ति बनाई। मूर्त्ति बनतेही उसमें चेतना आ गई और वह भवानीसे बोली कि 'आपसे हमारा जन्म हुआ है, आप जो आज्ञा दें सो मैं करूँ।' माताने आज्ञा दी कि 'द्वारपर बैठो, कोई अन्दर न आने पावे।' इसके बाद शिवजी आये। गणेशजीने उनको रोका। दोनोंमें युद्ध हुआ। अंततोगत्वा शिवजीने उसका सिर काट डाला और भीतर गये। पार्वतीजीके प्रश्न करनेपर उन्होंने द्वारपालका वध कह सुनाया जिससे वह बहुत व्याकुल हो गई। तब शिवजीने गणोंको आज्ञा दी कि प्रातःकाल जहाँ कहीं किसीका पुत्र दक्षिण मुख पड़ा मिले उसका सिर काटकर इसपर लगा दो—(श० सा० ७५६)"।

(२) पद्मपुराण सृष्टिखण्डमें पुलस्त्यजीने भीष्म पितामहजीसे गणेशजीके जन्मकी कथा इस प्रकार कही है—" एक समयकी बात है कि गिरिजाजीने सुगंधित तैल और चूर्णसे अपने शरीरमें उबटन लगवाया और उससे जो मैल गिरा उसे हाथमें उठाकर उन्होंने एक पुरुषकी आकृति बनाई, जिसका मुख हाथीके समान था। फिर खेल करते हुये भगवती-पार्वतीने उसे गंगाजीके जलमें डाल दिया। गंगाजी पार्वतीजीको अपनी सखी मानती थी। उसके जलमें पड़तेही वह पुरुष बढकर विशाल काय हो गया। पार्वतीजीने उसे पुत्र कहकर पुकारा। फिर गंगाजीनेभी पुत्र कहकर सम्बोधित किया। देवताओंने गाङ्गेय कहकर सम्मानित किया। इस प्रकार गजानन देवताओंके द्वारा पूजित हुए। ब्रह्माजीने उन्हें गणोंका आधिपत्य प्रदान किया"।

(३) 'भवानीनंदन' और 'मोदकप्रिय' के सम्बन्धमें पद्मपु० सृष्टिखण्डमें संजयप्रति व्यासद्वारा कही हुई यह कथाभी प्रसङ्गानुकूल है—"पार्वती-

देवीने पूर्वकालमें भगवान् शंकरजीके संयोगसे स्कन्द और गणेश नामके दो पुत्रोंको जन्म दिया। उन दोनोंको देखकर देवताओंकी पार्वतीजीपर बड़ी श्रद्धा हुई और उन्होंने अमृतसे तैयार किया हुआ एक दिव्य मोदक पार्वतीजीके हाथमें दिया। मोदक देखकर दोनों बालक उसे मातासे माँगने लगे। तब पार्वतीजी विस्मित होकर पुत्रोंसे बोली—'मैं पहले इसके गुणोंका वर्णन करती हूँ, तुम दोनों सावधान होकर सुनो। इस मोदकके सूँघनेमात्रसे अमरत्व प्राप्त होता है और जो इसे सूंघता वा खाता है वह सम्पूर्ण शास्त्रोंका मर्मज्ञ, सब तन्त्रोंमें प्रवीण, लेखक, चित्रकार, विद्वान, ज्ञान विज्ञान्के तत्त्वको जाननेवाला और सर्वज्ञ होता है। इसमें तनिकभी संदेह नहीं। पुत्रो! तुममेंसे जो धर्माचरणकेद्वारा श्रेष्ठता प्राप्त करके आयेगा, उसीको मैं यह मोदक दूँगी। तुम्हारे पिताकीभी यही सम्मति है"।

माताके मुखसे ऐसी बात सुनकर परम चतुर स्कन्द मयूरपर आरूढ़ हो तुरंतहीं त्रिलोकीके तीर्थोंकी यात्राकेलिये चल दिये। उन्होंने मुहूर्त्तभरमें सब तीर्थोंका स्नान कर लिया। इधर लंबोदरधारी गणेशजी स्कन्दसेभी बढ़कर बुद्धिमान् निकले। वे माता–पिताकी परिक्रमा करके बड़ी प्रसन्नताके-साथ पिताजीके सम्मुख खड़े हो गए। क्योंकि मातापिताकी परिक्रमासे संपूर्ण पृथ्वीकी परिक्रमा हो जाती है। यथा-'**सर्वतीर्थमयी माता सर्वदेवमयः पिता। मातरं पितरं तस्मात् सर्वयत्नेन पूजयेत्॥ मातरं पितरञ्चैव यस्तु कुर्यात् प्रदक्षिणम्। प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा**'॥—(पद्म. पु. सृष्टिखण्ड ४७-११-१२।) फिर स्कन्दभी आकर खड़े हुये और बोले–'मुझे मोदक दीजिये'। तब पार्वतीजी बोलीं—'समस्त तीर्थोंमें किया हुआ स्नान, देवताओंको किया हुआ नमस्कार, सब यज्ञोंका अनुष्ठान तथा सब प्रकारके संपूर्ण व्रत, मन्त्र, योग और संयमका पालन, ये सभी साधन माता पिताके पूजनके सोलहवें अंशके बराबरभी नहीं हो सकते। इसलिये यह गणेश सैकड़ों पुत्रों और सैकड़ों गणोंसेभी बढ़कर है। अतः देवताओंका बनाया हुआ यह मोदक मैं गणेशकोही अर्पण करती हूँ। मातापिताकी भक्तिके कारणही इसकी प्रत्येक यज्ञमें सबसे पहले पूजा होगी।' महादेवजी बोले–'इस गणेशकेही अग्रपूजनसे संपूर्ण देवता प्रसन्न हों'। व्यासजी कहते हैं

कि पहले गणेश पूजन कर लेनेसे यज्ञोंका फल कोटि कोटिगुना अधिक होगा। जो स्तुति वहां ६१। २६–२८ में वर्णित है वह इस तरह प्रारंभ होती है— **गणाधिप नमस्तुभ्यं सर्वविघ्नप्रशान्तिद। उमानंदप्रद प्राज्ञ त्राहि मां भवसागरात्॥ विघ्नराज नमस्तुभ्यं सर्व दैत्यैकसूदन'॥**

६—'गनपति जगबंदन........सब लायक' के भाव—

(क) 'गनपति'से आपका नाम, 'जगबंदन'से श्रीरामनामके प्रभावसे प्रथमपूज्य अर्थात् रामजीके स्वरूप तथा आपकी उपासना, 'शंकरसुवन' और 'भवानीनंदन'से माता पिताका नाम एवं उत्कृष्ट कुलीनता इत्यादि, 'सिद्धिसदन' और 'कृपासिंधु'से बड़े ऐश्वर्यमान होते हुयेभी परमदयालु और स्मरण-मात्रसेही मङ्गलके करनेवाले तथा सिद्धिके दाता, 'गजबदन' और 'सुंदर'से आपका रूप, 'विनायक'से विघ्नविनाशन, 'कृपासिन्धु'से करुणागुण-संपन्न एवं उदार और शीघ्र प्रसन्न होनेवाले और 'सबलायक'से सब प्रकारसे योग्य जनाया।

(ख) 'सिद्धिसदन गजबदन बिनायक' और 'कृपासिंधु सुंदर सब लायक'में यथासंख्यसे अर्थ करनेपर यह भाव निकलता है कि सिद्धिसदन होते हुयेभी आप कृपासिंधु हैं। अतएव सिद्धियाँ प्राप्त करनेमें उपासकको कठिनाईका सामना नहीं करना पड़ता। गजबदन कहनेसे पशुत्व दोष आरोपण होता है। अतः उसके निवारणार्थ 'सुंदर' विशेषण दिया अर्थात् आपकी दिव्य भव्यमूर्त्ति है, यह जनाया।

श्रीवैजनाथजी और दीनजीका मत है कि 'गजबदन' से बड़ा मुख होनेसे बड़ी बात कहने, बड़े कार्य करने और बड़ा वरदान देनेवाला जनाया। अतः 'गजबदन' कहनेमें भाव यह है कि मेरी बिनती बखानकर श्रीरामजीसे कहिये।

बिनायक अर्थात् विघ्नोंके स्वामी होते हुये भी विघ्न न डालकर आप सब प्रकारसे लायक पुरुषोंकेसे काम करते हैं।

(ग)—'सब लायक' अन्तमें कहनेका भाव यह है कि गणोंके अध्यक्ष तथा जगत्पूज्य इत्यादि होनेके पूर्ण गुणधर्म आपमें

वर्तमान हैं, आप सब प्रकार अपने पदके सुयोग्य पात्र और अधिकारी हैं। आपको इहलोक और परलोक दोनोंहीके ऐश्वर्य देनेका सामर्थ्य है।

(घ) 'सिद्धिसदन, सबलायक'से प्रभाव और 'कृपासिंधु' से सौलभ्य गुण कहा है।

७ 'मोदकप्रिय मुदमंगलदाता।' इति। (क) मोदक मीठा होता है, 'मोदक प्रिय' कहकर आपको सात्विक जनाया। पुनः, 'मोदकप्रिय' कहकर 'मुदमंगलदाता' कहनेका भाव यह है कि लड्डूमात्र थोड़ी पूजासेही प्रसन्न हो जाते हैं। लेना थोड़ा, देना बहुत सुख। लेना प्राकृत वस्तु, देना ऐहिक और पारलौकिक दोनों सुख। (ख) 'विद्यावारिधि' का भाव कि विद्याकी प्राप्ति जिसको होती है उसे आपकी ही कृपासे। बुद्धिका विधाता कहनेका भाव कि आपके अनुग्रहबिना बुद्धिका प्रकाश वा विस्तार नहीं होता। बिधाताका भाव यहभी होता है कि आप जैसी चाहें वैसी बुद्धि कर दे सकते हैं। मेरी बुद्धि ऐसी कर दीजिए कि मैं निरंतर श्रीसीतारामजीका स्मरण कर सकूँ। पुनः, भाव कि—'यह विनयपत्रिका है जो श्रीरघुनाथजीके समीप कलिसे दाद पानेकेलिये भेजी जा रही है। भक्त कविको विद्या, और बुद्धि दोनोंकी आवश्यकता है। अतः ये दोनों विशेषण साभिप्राय हैं। (ग) 'मोदकप्रिय मुदमंगलदाता' से सौलभ्यगुणयुक्त जनाया, 'विद्यावारिधि'से प्रभुकी प्राप्ति करा देनेमें समर्थ और 'बुद्धिबिधाता'से प्रभाव कहा। विद्या और बुद्धि येभी गुण हैं*। पुनः, (घ) 'हरिहरहि हरता, बिधिहि बिधिता श्रियहि श्रियता जेहि दई'। (१३५) इस प्रमाणके

* श्रीबैजनाथजीने गुणकी परिभाषा यह दी है—'जग व्यापक जग बसकरन जगत सराहत जाहि। जग चाहत जेहि तेहि सुकवि गुणगण कहिए ताहि॥' और इसकी व्याख्याभी इस प्रकारकी है कि 'जग व्यापक'—वह गुण जो सबमें व्यापक होते हैं जैसे शक्ति, वीर्य, तेज, शौर्य्य आदि। 'जग वशकरन' जैसे सौंदर्य, चातुर्य आदि। 'जगत सराहत जाहि'—'जैसे क्षमा, दया, शील, उदारता आदि परोपकारक गुण। 'जग चाहत जेहि' जिनकी

अनुसार श्रीसरकारकी कृपासे प्राप्त अधिकारवाले अधिकारी पुरुष होनेसे अधिकृत अधिकारमें पूर्ण होते हुये उपासकोंको स्वरूपज्ञानप्रदान और शास्त्रजन्यज्ञानके धारण करनेवाली बुद्धिको विस्तार करते हैं, यह जनाया।

८ 'गजबदन' आदि के आध्यात्मिक भाव—(क) 'गणेशजीका विशाल मस्तक उनकी महती बुद्धिका सूचक है। इसी बुद्धिके बलसे इनका क्षुद्र अधोभाग इनके विशाल ऊर्ध्वभागको सहारा देता है और परम लघु जन्तु मूषकसे वाहनका काम चलता है। इसका तात्पर्य यह है कि यदि आभ्यन्तरिक ज्ञान और बुद्धि प्रचुररूपमें प्राप्त हों तो उनके बलसे बहुत स्वल्प बाह्य सामग्रीसे कार्य उत्तमतासे चल सकता है। समाजमें कोई कोई बड़े नेता होनेकी योग्यताके साथ जन्म लेते हैं। वे इन्हीं श्रीगणेशके कृपापात्र होते हैं। श्रीगणेश अर्थात् बुद्धिमान् थोड़े परिश्रमसे बड़ा कार्य करते हैं।

(ख) 'एक बार श्रीमहादेवजीको अपने एक यज्ञमें बुलानेके लिये देवताओंको निमंत्रण भेजना था। कार्तिकेयसे यह काम अवधिके भीतर न हो सका। तब श्रीगणेशजीपर यह भार छोड़ा गया। किंतु उनका वाहन क्षुद्र मूषक था जो बहुत मंदगतिसे चलनेवाला था। अतः श्रीगणेशजीने बुद्धिसे काम किया। श्रीमहादेवजीमें सब देवताओंका वास है, ऐसा समझकर उन्हींकी तीन बार परिक्रमा करके उन्होंने सब देवताओंको वहीं निमंत्रण दे दिया। परिणाम यह हुआ कि सब देवताओंको यज्ञ और निमंत्रणकी जानकारी हो गई और सबके सब यज्ञमें संमिलित हुए।' (पं० श्रीभवानीशंकरजी। शिवाङ्क कल्याणसे।) अतः 'बुद्धिविधाता' विशेषण सार्थकही है।

(ग) 'गजबदन' का तात्पर्य है—"विचारशक्ति पशुकी तरह एकमुखी बुद्धि। गजबदन एकमुखी विशाल बुद्धिका द्योतक है। 'विनायक'

चाह सबको है परन्तु जो दुर्लभ हैं। जैसे विद्या, कुलिनता, स्वतन्त्रता, आनन्द, ज्ञान इत्यादि। इस वंदनामें गणेशजीको शक्ति, सौंदर्य, दया, विद्या आदि चारों प्रकारके गुणोंसे युक्त दिखाया है।

(विशिष्ट: नायक: विनायक: अर्थात् सर्वेश्वर) यह शब्द गणपति भगवान्‌के इशित्व और वशित्वका सूचक है। सर्व प्रथम वन्दनीय होनेका निदर्शक अप्रतर्क्य शब्द है।" (देवदत्त शास्त्रीजी)

(घ) 'मोदक प्रिय' इति। वस्तुत: यह एकही मोदक है जो देवताओंद्वारा प्रदत्त माता भवानीने धर्माचरणविशिष्ट श्रद्धालु सुत गणपतिको दिया। देखा जाय तो यह खानेका पदार्थ नहीं है, धारण करनेका है। जिसप्रकार तीन ऋणोंका सूचक (स्मारक) यज्ञोपवीत द्विजातिमात्रसे धारण किया जाता है, उसी प्रकार मातासे प्राप्त ब्रह्मांड (अंडकोश) रूपक मोदक गणपतिके धारण करनेकी वस्तु है। भाव यह है कि भवानीके सर्व सामर्थ्य-संपन्न युगल पुत्रोंसे ब्रह्मांडकी रक्षाकी आशा रखनेवाले देवोंने ब्रह्मांडनिदर्शक मोदक माँको दिया कि जननी जिसे योग्य समझे उसीको यह रक्षाभारसूचक मोदक प्रदान करें। दोनों पुत्र ललचाए, परंतु माँ जानती थी कि यह खेलने खानेकी चीज़ नहीं। यह तो शाश्वत्वदायित्व निभानेका पद है। (भार है) अत: उन्होंने परीक्षा ली और उसमें उत्तीर्ण गजाननको उसे सहर्ष सौंप दिया।

यह व्यावहारिक नियम है कि माँ बाप अपनी उपार्जित संपत्ति समर्थ पुत्रको सौंपकर सुखी और निश्चिन्त होते हैं। तदनुसार स्वोपार्जित समस्त ब्रह्मांडकी रक्षाका भार पिता माताने एकमत होकर श्रद्धालु, दयालु, सिद्धिसदन, विनायक विघ्नेश्वरको सौंप दिया। मातापिताद्वारा प्राप्त संपत्तिकोश किसे नहीं प्रिय होता ? अत: गणपतिभी स्वकीय जनक जननीसे प्राप्त मोदकसे अति प्रेम करते हैं। (देवदत्त शास्त्रीजी)

९ 'मांगत तुलसिदास कर जोरें।' इति। (क) यह उपासनाकी रीति है कि 'सब करि माँगहिं एक फलु रामचरनरति होउ' (अ० १२९)। और शिववाक्यभी है कि 'सबकर फल हरि भगति भवानी'। (ख)–'कर जोरें'–हाथ जोड़ कर, बद्धाञ्जलियुक्त। यह परम विनम्रतासूचक मुद्रा है। इससे देव शीघ्र प्रसन्न होते हैं। यथा—'अंजली परमामुद्रा क्षिप्रं देव प्रसादिनी'। पुन:, भाव कि जो वर चाहते हैं वह परम दुर्लभ है, अत: हाथ जोड़कर विनय करते हैं।

१० 'बसहुँ रामसिय मानस मोरें'। यहाँ सीताराम न कहकर रामसिय कहा। प्रायः शक्तिका नाम प्रथम कहा जाता है। जैसे, गौरीशंकर, भवानीशंकर, लक्ष्मीनारायण, राधाकृष्ण। 'राम' को प्रथम कहनेका कारण चरखारी टीकाकार यह कहते हैं कि जो कोई बसनेको कहता है सो पुरुषहीसे कहता है। अतः 'बसहुँ रामसिय' कहा।

११ इस ग्रंथमें आदिमें श्रीगणेशजीका मंगलाचरण किया है। इस-तरह गोस्वामीजीने अपने अतिप्रसिद्ध बारह ग्रंथोंमेंसे छःमें गणेशवन्दना की है और छःमें नहीं की। ऐसा करके उन्होंने पूर्वाचार्य्योंकी दोनों रीतियाँ दिखाई हैं। वह यह कि कोई आचार्य गणेशवन्दना करते हैं और कोई नहींभी करते (पं० रा० कु०)।

आरम्भमें श्रीगणेशजीकी वन्दना करनेका अभिप्राय यहभी हो सकता है कि गणेशजी अद्वितीय लेखक थे। अठारहो पुराणोंके मननशील द्रुतलेखक श्रीगणेशजीही हैं। किसीभी कार्यको निर्विघ्न समाप्त करनेकी कामनासे सिद्धिदाता गणेशजीका स्मरण पूजन प्रारम्भमें किया जाता है। आस्तिक हिन्दू लेखकोंका विश्वास है (दृढ़ धारणा है) कि सिद्धिदाता श्रीगणेशजी प्रसिद्ध और अद्वितीय लेखक हैं। अतः ग्रंथारंभके पूर्व इनका स्मरण अवश्य करते हैं। ऐसा करनेसे ग्रंथसमाप्तिमें विघ्नकी संभावना नहीं रहती। (देवदत्त शास्त्रीजी)

१२ गणपति वन्दनासे कोई कविकी रामानन्यभक्तिमें शङ्का करते हैं। पर यह उन लोगोंकी भूल है। (१) प्रथम तो इस शङ्काहीमें दूषण है। क्योंकि यहाँ यह मान लिया गया है कि अनन्य उपासक अपने इष्ट देवकेसिवा किसी औरकी वन्दना नहीं करता। अनन्यताका यह अर्थ नहीं है कि वह अपने इष्टदेवको परिच्छिन्न बना देता है। अनन्य उपासक संपूर्ण जगत्‌को सियाराममय देखता है। वह माता, पिता, गुरुकीही नहीं, वरंच अपनेसे छोटेसे छोटे सभीकी वन्दना करता है। गणेशकी तो बातही क्या? यथा—'सो अनन्य जाके असि मति न टरइ हनुमत। मैं सेवक सचराचर रूप स्वामी भगवंत'। (क०) 'उमा जे रामचरन रत गत

ममता मद क्रोध। निज प्रभुमय देखहिं जगत केहिसन करहिं बिरोध' (उ०)। कवि तुलसीनेभी यही किया है। यथा-'जड़ चेतन जग जीवजत सकल राममय जानि। बंदउँ सबके पदकमल सदा जोरि जुगपानि॥ देव दनुज नर नाग खग प्रेत पितर गंधर्ब। बंदउँ किन्नर रजनिचर कृपा करहु अब सर्ब॥ सियाराममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥' इस प्रकारकी वन्दना उनकी अनन्यताके परिपुष्टकारी भावकाही द्योतक है।

(२) गोस्वामीजीकी अनन्यताके जाज्वल्य उदाहरण उनके अंतिम शब्द हैं। वे वन्दना करके क्या माँगते हैं। 'सबहूँ रामसिय मानस मोरें'। इसी तरह जहाँ जिसकी वन्दना की है, वहाँ उन्होंने श्रीसीताराम पदप्रेमही माँगा है। सबका यथोचित आदर करतेहुएभी उन्होंने व्यभीचारकी गंधभी नहीं लगने दी। अपने इष्टको छोड़ कभी दूसरेकी भक्ति नहीं चाही। यथा—'सेए न दिगीस न दिनेस न गनेस गौरी। हितु कै न माने विधि हरिउ न हर' (२५०)। सबकी कृपा चाही है, सोभी केवल रामभक्तिकेलिये। इससे अनन्यतामें किंचित् दोष नहीं आता।

(३) वेदान्तशिरोमणि श्रीरामानुजाचार्यजी बताते हैं कि 'भगवान्के चार प्रकारके अवतार शास्त्रोंमें कहे गये हैं। आवेश, अंश, कला और पूर्ण। जिसमें उपचित पुण्य विशेष हो ऐसे जीवात्माके अंदर शक्ति आवेश होकर कार्य करनेवाला आवेशावतार। जैसे, ब्रह्मावतार, इन्द्रावतार, शिवावतार, इत्यादि। इन्हीं आवेशावताररूप अधिकारी पुरुषोंमें श्रीगणेशावतारभी है। अतः 'वसवोष्टौ त्रयः काला रुद्रा एकादशस्मृताः। तारकादश चैवांशास्त्वमेव रघुनंदनः॥' इत्यादि प्रमाणानुसार श्रीगोस्वामीजी 'गणपति, रुद्र, शक्ति और सूर्यादि देवताओंके-अंदर आवेशावतार श्रीजानकीवल्लभही तत्त्व दैवतरूपमें हैं ऐसा समझकर वन्दन (स्तुति) करते हुए पूर्णावतार श्रीसरकारके श्रीचरणारविन्दकी भक्ति माँगते हैं।' अतः अनन्यताका भंग न समझना चाहिये।

१३ इस ग्रन्थमें क्रमसे गणेशजी, सूर्यदेव, शिवजी, (३–१४) धात्री शिवशक्ति श्रीपार्वतीजी (१५–१६), गंगाजी (१७–२०), यमुनाजी (२१), क्षेत्रपाल—काशी, चित्रकूट (२३–२४), श्रीहनुमान्‌जी (२५–३५), समष्टिबन्दना (३६), श्रीलक्ष्मणजी (३७–३८), श्रीभरतजी (३९), श्रीशत्रुघ्नजी (४०) और श्रीजानकीजी (४१–४२) की वन्दना करके श्रीरामजीकी वन्दना की गई है। इसका कारण विशेष यह है कि गोस्वामीजी अपनी विनय श्रीरघुनाथजीके करकमलोंमें पहुँचाना चाहते हैं। महाराज राजराजेश्वरके दरबारमें वह सहसा एकदम बिना कर्मचारियोंकी कृपाके पहुँचना कैसे संभव है ? यंत्रराजमें जहाँ साङ्गदेव सपरिवार श्रीरघुनाथजीका पूजन लिखा एवं किया जाता है वहाँ प्रथम द्वारपाल श्रीगणेशजीका, फिर सूर्य आदिका पूजन होता है और अंतमें प्रधान पूजन होता है *। अतः तुलसीदासजीभी उसी क्रमसे गणेशादिकी स्तुति करते हुए उनकी दयाको उत्तेजित कर उनकी कृपासे आगे बढ़ते जाते हैं और सफल मनोरथ होते हैं।

श्रीरघुवीर विहारस्थल तथा अपनेको जहां प्रभुके दर्शनका सुख मिला उस चित्रकूटको 'गृह' जानकर उसकी महिमा वर्णन की गई है।

---

* प्रमाण अगस्त्यसंहितायाम्–'श्रीरामद्वारपीठाङ्गं परिवारतया स्थिता। २। ये सुरास्तानिहस्तौमि तन्मूलाः सिद्धयो यतः। वन्दे गणपतिं भानुं तिलकस्वामिनं शिवम्। ३। क्षेत्रपालं तथा धात्रीं विधातारमनन्तरम्। गृहाधीशं गृहं गङ्गां यमुनां कुलदेवताम्। ४। प्रचण्ड चण्डो च तथा शङ्खपद्मनिधी अपि। वास्तोष्पतिंद्वार लक्ष्मीं गुरुं वागधिदेवताम्। ५। एतान् संपूज्य भक्त्याहं श्रीरामद्वारदेवतान्। महामंडूक कालाग्नि रुद्राभ्यां प्रणमाम्यहम्। ६।'। (पूर्वार्द्ध अ० १०)

२ (१९) राग बिलावल *

दीनदयाल दिवाकर देवा। करै[1] मुनि मनुज सुरासुर सेवा ॥१॥
हिम तम करि केहरि करमाली। दहन[2] दोष दुख दुरित रुजाली ॥२॥
कोक कोकनद लोक प्रकासी। तेज प्रताप रूप रस रासी ॥३॥
सारथि पंगु दिव्य रथ-गामी। हरि संकर बिधि मूरति स्वामी ॥४॥
बेद पुरान प्रगट जसु जागै। तुलसी रामभगति[3] बर मांगै ॥५॥

शब्दार्थ—दीन=गरीब, दुखी, जिसकी दशा गिरी हुई हो, पुरुषार्थहीन। दयाल=दया करनेवाले। दिवाकर=दिवा (दिवस, दिन)+कर (करनेवाला) सूर्य। देवा=देव। मनुज=मनुष्य। असुर=दैत्य, दानव और राक्षस तीनोंका बोधक है। देवताओंका विरोधी। हिम=पाला। तम=अंधकार। करि=हाथी। केहरि=सिंह। करमाली=कर (किरणोंकी)+माली (मालाका धारण करनेवाला) किरणसमूह जिसमें हो, सूर्य। दहन=जलाने, भस्म वा नाश करनेवाला। दोष=अवगुण, अपराध। दुरित=पाप। रुजाली=रुज (रोग)+आली (पंक्ति, समूह, परंपरा) रोग समूह। कोक=चकई, चकोर, चक्रवाक और चकवा, कोकके पर्यायवाची शब्द हैं। यह एक पक्षी है जो जाड़ेके दिनोंमें जलाशयोंके किनारे दिखाई देता है और वैशाखतक रहता है। अधिक गरमी पडतेही यह भारतवर्षसे चला जाता है। यह दक्षिण छोड़ सारे भारतवर्षमें पाया जाता है और प्रायः झुंडमें रहता है। लंबाई हाथ भरतक होती है। इसके शरीरपर कई भिन्न भिन्न रंगोंका मेल दिखाई

---

* प्र० में यहांभी 'रागु बिलावल'के पश्चात् 'अथ श्रीसूर्यका पद' है और इसीतरह आगेके पदोंमेंभी है।

१ करै—६६, भा०, बे०। प्र० में 'करै' का 'कर' और ज० में 'करि' बनाया है। कर—ह०, ७४, ५१, १५, आ०।

२ दलन—भा०, बे०। दहन—६६, प्र०, ह०, ज०, ७४, आ०।

३ भक्ति—भा०, बे०, डु०, मु०, वै०।

पड़ता है। पीठ और छातीका रंग पीला तथा पीछेकी ओर खैरा होता है। किसी किसीके बीचमें काली और लाल धारियाँभी होती हैं। पूंछका रंग कुछ हरापन लिये होता है। डैनोंपर कई रंगोंका गहरा मेल दिखाई पड़ता है। यह अपने जोड़ेसे बहुत प्रेम रखता है। बहुत कालसे इस देशमें ऐसा प्रसिद्ध है कि रात्रिमें वह अपने जोड़ेसे अलग रहता है। कवियोंने इसके रात्रिकालके इस वियोगपर अनेक युक्तियाँ बाँधी हैं। यथा—'संपति चकई भरत चक मुनि आयसु खेलवार। तेहि निसि आश्रम पींजरा राखे भा भिनुसार" (अ०)। इसीको सुरखावभी कहते हैं। कोकनद=लाल-कमल। लोक=संसार, ब्रह्मांड, प्राणी, लोग। प्रकासी (प्रकाशिन्)=प्रकाश करने, खिलाने वा सुख देनेवाले। यथा—'उयेउ अरुन अवलोकहु ताता। पंकज लोक कोक सुखदाता।' (बा०) तेज=जो देखा या सहा न जा सके, कांति, दीप्ति, प्रकाश। यथा—(भगवद्गुणदर्पणे) 'दुष्प्रेक्ष्यत्वं च येन स्यात्तत्तेजः समुदाहृतम्'। प्रताप=बल, पराक्रम आदि महत्वका ऐसा प्रभाव कि उसके कारण विरोधी या उपद्रवी लोग शांत रहते हैं। जिससे औरोंको ताप मालूम हो (पं० रा० कु० वै०)। यथा—'जाकी कीरति सुजस सुनि होत शत्रु उर ताप। जग डेरात सब आपहीं कहिये ताहि प्रताप॥' (भाषाभूषण। वै०) रूप=विना भूषणकेही शरीरका सुंदर लँगना उसका 'रूप' कहा जाता है। यथा—'अङ्गानि भूषतान्येव निष्काद्यैश्च विभूषणैः। येन भूषितवद्भाति तद्रूपमिति कथ्यते॥' (भगवद्गुणदर्पणे) 'बिनु भूषण भूषित जु तनु रूप अनूपम गौर' (वै०) रस=टि० ५ और पद १६९ में इसकी व्याख्या की जायगी। रासि (राशि)=ढेर। सारथि (सं०)=रथ आदिका चलानेवाला। पंगु=जिसके पैर होते नहीं; पंगुल। दिव्य=अलौकिक, प्रकाशमान्, आकाशसे संबंध रखनेवाले तथा खूब साफ और सुंदर। रथ=प्राचीन कालकी एक सरकारी स्वारी जिसमें चार या दो पहिये हुआ करते थे और जिसका व्यवहार युद्ध, यात्रा, विहार आदिके लिये हुआ करता था। विशेष टि० ६ में दिया गया है। गामी=चलनेवाले। मूरति (मूर्त्ति)=प्रतिमा, विग्रह,

स्वरूप। जसु (यश)=धर्मपथपर चलनेसे तथा बाहुबलसे जो ख्याति प्राप्त होती है। प्रगट (प्रकट)=प्रत्यक्ष, स्पष्ट। जागना=चमकना, जगमगाना, जोर शोरसे साक्षात् होना, प्रसिद्ध होना।

पद्यार्थ—हे दिनोंपर दया करनेवाले! हे सूर्यदेव! मुनि, मनुष्य, देवता और असुर आपकी सेवा करते हैं। आप पाला और अंधकार-रूपी हाथियोंके (नाश करनेके) लिये सिंहरूप हैं। आप किरणसमूहके धारण करनेवाले, (प्राणियोंके) दोष, दुःख, पाप और रोग समूहके भस्म करनेवाले, चकवा चकवी, कमल और लोक (मात्र) को प्रफुल्लित करनेवाले तथा तेज, प्रताप, रूप और रसकी राशि हैं। आपका सारथी पंगुल है। आप दिव्य रथपर चलनेवाले हैं। हे स्वामी! आप हरि, (विष्णु भगवान्) शंकर और ब्रह्माजीकी मूर्त्ति हैं। वेदों और पुराणोंमें साक्षात् आपका यश जगमगा रहा है। तुलसीदास आपसे रामभक्ति वरदान माँगता है।

टिप्पणी-(१) 'दीनदयाल दिवाकर देवा' इति। (क) 'दीनदयाल' अर्थात् दीनोंपर निःस्वार्थ कृपा करते हैं। मानसके 'मूक होइ बाचाल पंगु चढ़ै गिरिबर गहन। जासु कृपा सो दयाल द्रवउ सकल कलिमल दहन॥' इस सूर्यपरक सोरठेसे मिलान कीजिये। गुंगेको वाणी पाना, पंगुलको पर्वतपर चढ़नेका सामर्थ्य हो जाना, आपकी कृपासे कहा गया है। यहाँभी 'दीनदयाल' कहकर आगे 'दिवाकर' पद देकर दया दिखाते हैं। विना प्रयोजन, विना कहेही, विना स्वार्थके किसीके दुःखसे दुखी होकर कृपा करनेको 'दया' कहते हैं। यथा 'दया दयावतां ज्ञेयं स्वार्थं तत्र न विद्यते।' (भ० गु० द०)। अर्थात् दयावानोंमें उसीको दया समझना चाहिये जिसमें स्वार्थ न हो। पुनश्च यथा 'अनिर्हेतुकीय परदुःखनिवारणेक्षया दया'। रहस्य वेदान्तकी परिभाषा यह है 'स्वार्थ निर्पेक्ष परदुःखासहिष्णुत्व दया परदुःखनिर्चिकीर्षा वा' अर्थात् जिससे किसीभी स्वार्थकी संभावना न हो उसका दुःख न सह सकना अर्थात् उसके दुःखमें दुःखी हो जाना 'दया' कहलाती है। यथा 'परदुख दुखी दयाल।' अथवा दुसरेके दुःखको

निवारण करनेकी सदिच्छाको 'दया' कहा जाता है। वह निस्वार्थ दया क्या है, यह 'दिवाकर' से जनाया। दिनको करते हैं, आपके उदयसेही दिन होता है। यथा 'तहइ दिवस जहँ भानु प्रकासू'। प्रायः रात्रिमें शुभ धर्म कर्म नहीं होते। संपूर्ण धर्मादिक कर्म अर्थात् कर्मकाण्ड सूर्योदयसेही प्रारंभ होते हैं। धर्मकर्महीन सारा जगत् दीन रहता है। उदय होकर दिन करना 'दया' है। विना कहेही लोकोपकार हेतु आप ऐसा करते हैं।

महाभारत वनपर्वमें युधिष्ठिरजीने जो सूर्य भगवानकी स्तुति की है उसमें कहा है कि 'आप बिना किसीकी सहायताकी अपेक्षाके तीनों लोकोंके हितमें लगे रहते हैं। यदि आपका उदय न हो तो सारा जगत् अंधा हो जाय। धर्म, अर्थ, और कामसंबंधी कर्मोंमें किसीकी प्रवृत्तिही न हो। ब्राह्मणादि द्विजाति संस्कार, यज्ञ, मंत्र, तपस्या और वर्णाश्रमोचित कर्म आपकी कृपासेही करते हैं।' धौम्यऋषिने युधिष्ठिरजीसे सूर्य भगवान्‌की महिमा बताते हुए कहा हैं कि 'सृष्टिके प्रारंभमें जब सभी प्राणी भूखसे व्याकुल हो रहे थे तब भगवान् सूर्यने दया करके पिताके समान अपने किरणकरोंसे पृथ्वीका रस खींचा और फिर दक्षिणायनके समय उसमें प्रवेश किया। इस प्रकार जब उन्होंने क्षेत्र तैयार कर दिया, तब चन्द्रमाने उसमें औषधियोंका बीज डाला और उसीके फलस्वरूप अन्नकी उत्पत्ति हुई। उसी अन्नसे प्राणीयोंने अपनी भूख मिटाई। तात्पर्य कि सूर्यकी कृपासे अन्न उत्पन्न होता है।' अतएव 'दीनदयाल' और 'दिवाकर' कहा। (महाभारत वनपर्व) यथा 'पुरासृष्टानि भूतानि पीड्यन्ते क्षुधयाभृशम्। ततोऽनुकंपया तेषां सविता स्वपिता यथा। ४। गत्वोत्तरायणं तेजो रसानुद्धृत्य रश्मिभिः। दक्षिणायनमावृत्तो महीं निविशते रविः। ६। निषिक्तिश्चन्द्र तेजोभिः स्वयोनौ निर्गते रविः। औषध्यः षडसा- मेध्यास्तदन्नं प्राणिनां भुविः। ८। एवं भानुमयं ह्यन्नं भूतानां प्राणधारणम्। ९।' इससेही छओं रसोंवाली औषधियां उत्पन्न होती हैं। (यह एक कारण 'रसराशि' कहनेकाभी हो सकता है। टि० ५ देखिये।)

(ख) 'दिवाकर'का भाव कि प्रकाश करनेवाले चन्द्रमा और अग्निभी हैं। यथा 'तेजहीन पावक ससि तरनी।' (लं०) चन्द्रमा और अग्निसे अंधकार भलेही दूर हो जाय परंतु ये दिन नहीं कर सकते। यथा 'राकापति षोडस उअहिं तारागन समुदाय। सकल गिरिन्ह दव लाइये रवि बिनु राति न जाय॥' (उ०)। किसी और प्रकार दिन नहीं होता, अतः 'दिवाकर' कहा।

(ग) 'देवा' इति। 'देव' का भाव कि आपका दिव्य रूप है, आप देवता हैं, लोग आपकी उपासना करते हैं। सूर्यदेवभी पंचदेवोपासनामें एक उपास्य देव हैं।

'दिवाकर देवा' इति। सूर्य एक होते हुयेभी कालभेदसे नाना रूप धारण करके प्रत्येक मासमें तपते रहते हैं। एकही सूर्य बारह रूपोंमें प्रकट होते हैं। मार्गशीर्षमें मित्र, पौषमें सनातन विष्णु, माघमें वरुण, फाल्गुनमें सूर्य, चैतमासमें भानु, वैशाखमें तापन, ज्येष्ठमें इंद्र, आषाढमें रवि, श्रावणमें गभस्ति, भादोंमें यम, आश्विनमें हिरण्यरेता और कार्तिकमें दिवाकर तपते हैं। संभवतः यह स्तुति कार्तिकमें लिखी गई हो, इसीसे इसमें 'दिवाकर' नामसे वन्दना की गई।

२ 'करै मुनि मनुज सुरासुर सेवा' इति। (क) मुनि सर्वदेशी हैं अर्थात् तीनों लोकोंमें हैं। यथा 'त्रिकालज्ञ सर्वज्ञ तुम्ह गति सर्वत्र तुम्हारी'। 'मनुज'से भूलोकवासी, 'सुर'से स्वर्गलोकनिवासी और 'असुर'से पातालनिवासी जनाये। इसप्रकार त्रैलोक्यनिवासीयोंसे सेवित जनाया। (ख) मुनि, मनुज आदि सब संध्योपासना करके अर्घ्य देते हैं। यही 'सेवा' है। जलाञ्जलि देना, आदित्यहृदय आदिका पाठ करना, रविवारका व्रत करना, इत्यादि सब 'सेवा' है। असुर सूर्यके रथको ठेलते हैं, यह उनकी सेवा है। (टि० ६ देखिये)। पद्मपुराण सृष्टिखण्डमें वैशम्पायनजीने व्यासजीसे प्रश्न करते हुए यही कहा है कि देवता, बड़े बड़े मुनि, सिद्ध, चारण, दैत्य, राक्षस तथा ब्राह्मण आदि समस्त मानव इनकी सदाही आराधना किया करते हैं।

३ (क) 'हिम तम करि केहरि करमाली' इति। सूर्यको सिंह और 'हिम तम' को हाथी कहा। भाव कि जैसे सिंह नखों और दाँतोंसे हाथीका मस्तक विदीर्ण करता है वैसेही सूर्य अपने किरणसमूहरूप नख और दाँतोंसे हिम और तमरूपी हाथियोंका नाश करते हैं। यहाँ परम्परित रूपक है। पुनः, पाला और अंधकार काले, वैसेही हाथी काला, सिंहके नख और दांत बहुत और चमकीले, वैसेही किरणें बहुत और श्वेत तथा तेजोमय, यह समता है। सूर्य अनन्त किरणोंका समूह है। इसीसे इनका एक नाम सहस्रांशुभी है। अतएव ' करमाली कहा।

पद्मपुराण सृष्टिखण्डमें बताया है कि यह तेज (सूर्य) आदिब्रह्मके स्वरूपसे जलमें प्रकट हुआ। इनका तेज न सह सकनेके कारण देवताओंने ब्रह्माजीसे प्रार्थना की कि आप ऐसी कृपा करें कि हम सूर्यका दर्शन और पूजन कर सकें। तब ब्रह्माजीने सूर्यकी स्तुति कर उनसे प्रार्थना की कि जिस प्रकार आपके अत्यन्त प्रखर किरणोंमें कुछ मृदुता आ सके वह उपाय कीजिये। आदित्यने उत्तरमें कहा कि 'निस्संदेह हमारी कोटि कोटि किरणें संहारक हैं। आपही किसी शक्तिद्वारा इन्हें खरादकर कम कर दें।' तब ब्रह्माजीने विश्वकर्माको बुलाया औ वज्रकी सान बनवाकर उसीपर सूर्यको आरोपित करके उनके प्रचण्ड तेजको छांट दिया। उस छँटे हुए तेजसेही श्रीविष्णु भगवान्‌का सुदर्शनचक्र, यमदण्ड, श्रीशंकरजीका त्रिशूल, कालका खड्ग, कार्त्तिकेयकी शक्ति और दुर्गाजीके विचित्र शूलोंका निर्माण हुआ। इस तरह सूर्यदेवकी एक हजार किरणें शेष रह गईं, बाकी सब छांट दी गईं।

(ख) 'दहन दोष दुख दुरित रुजाली' इति। अकृत्यकरणादिक निषिद्धानुष्ठान 'दोष' हैं। काम, क्रोध, मद, लोभ, मत्सर, मोह, द्वेष आदि दोष माने गये हैं। जन्म, मरण, दारिद्र्य आदि दुःख हैं। यथा 'नहि दरिद्र सम दुख जगमाहीं।' परधन, परदारापहरण आदि दुरित (पाप) हैं। कुष्ठ आदि रोग हैं। सूर्य दोषादिके नाशक हैं, यह भविष्योत्तरके

आदित्यहृदयसे सिद्ध है। यथा 'विस्फोटक कुष्ठानि मंडलानि विचर्चिका। ये चान्ये दुष्टरोगाश्च ज्वरातीसारकादयः। जपमानस्य नश्यन्ति०' (वै०)। * अर्थात् चेचक, कोढ़, दाद, ज्वर, पेचिश इत्यादि दुष्ट रोग आपके जपसे नष्ट हो जाते हैं। सूर्य चिकित्सासे समस्त रोग दूर हो जाते हैं। Sun Bath सूर्यस्नान अर्थात् धूपसेवन एवं रविवारके व्रतसे अनेक रोग जाते रहते हैं। विज्ञानसेभी यह सिद्ध हो चुका है। पुनः, प्रातःकालकी संध्यासे रात्रिके पाप, मध्यान्हकी संध्यासे उच्छिष्ट, अभोज्य भोजन और दुश्चरितजन्य पाप और तीसरे पहरकी सन्ध्यासे दिनके पाप दूर होते हैं। 'आली' का अन्वय दोष, दुख, दुरित और रुज सबके साथ है।

महाभारत वनपर्वमें युधिष्ठिरजीके वचन हैं कि जो अनन्य चित्तसे आपकी पूजा और नमस्कार करते हैं उन्हें आधि, व्याधि तथा आपत्तियाँ नहीं सतातीं। आपके भक्त समस्त रोगोंसे रहित, पापोंसे मुक्त, सुखी और चिरजीवी होते हैं। यथा 'सर्वरोगैर्विरहिताः सर्वपाप विवर्जिता। त्वद्भावभक्तः सुखिनो भवन्ति चिरजीवितः। ३। ६७।

पद्मपुराण सृष्टिखण्डमें व्यासजीने वैशम्पायनजीसे कहा है कि यह (सूर्य) ब्रह्मके स्वरूपसे प्रकट हुआ। यह ब्रह्मकाही उत्कृष्ट तेज है। इसे साक्षात् ब्रह्ममय समझो। ये सूर्यदेव सत्वमय है। इनकेद्वारा चराचर जगत्का पालन होता है। ब्रह्माजी देवताओंसे कहते हैं कि सन्ध्याकालमें सूर्यकी उपासना करनेमात्रसे द्विज सारे पापोंसे शुद्ध हो जाते हैं। 'सन्ध्योपासनमात्रेण कल्मशात् पूततां व्रजेत् '(७५-१६)। सूर्यकी उपासना करने मात्रसे मनुष्यको सब रोगोंसे छुटकारा मिल जाता है। जो सूर्यकी प्रार्थना करते हैं वे इहलोक और परलोकमेंभी अंधे, दरिद्र, दुखी और शोकग्रस्त नहीं होते। अ० ७६ में श्रीशिवजीने स्कन्दजीसे रविवार और संक्रान्ति आदिके अवसरोंपर इनके पूजनका फल बताया है और पूजन विधिभी। 'ॐ

---

* ये श्लोक श्रीवैजनाथजीने 'यथा भविष्योत्तरे। आदित्यहृदये।' लिखकर दिये हैं। परन्तु वाल्मिकीय युद्धकाण्डके आदित्यहृदयमें यह श्लोक नहीं हैं।

'ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नमः' इस मंत्रके जपसे रोग दूर हो जाते हैं, कामनाएँ सिद्ध होती हैं। व्यासजीने बताया है कि चक्रवर्ती राजा भद्रेश्वरका कुष्ठ सूर्योपासनासे एक वर्षमें दूर हो गया। वे प्रतिदिन मन्त्रपाठ, नैवेद्य, फल, अर्घ्य, अक्षत, जपापुष्प, मदारके पत्ते, लाल चन्दन, कुंकुम, सिंदूर, कदलीपत्र, केलाफल आदिकेद्वारा पूजा करते थे। गुलरके पात्रमें अर्घ्य सजाकर निवेदन किया करते थे।

४ 'कोक कोकनद लोक प्रकासी' इति। चकवा आर चकईका वियोग रात्रिमें रहता है। सूर्योदय होनेपर इनका विरहवियोग दूर होकर दोनोंका संयोग होता है। यथा 'चक्क चक्कि जिमि पुरनरनारी। चहत प्रात उर आरतभारी॥' (अ०) कमल रात्रिमें संपुटित रहता है, सवेरा होनेपर पुनः विकसित हो जाता है। यथा 'कमल कोक मधुकर खग नाना। हरषे सकल निसा अवसाना॥' लोकमात्र प्रकाश पाकर अपने अपने कार्यमें प्रवृत्त होता है। इसप्रकार सूर्यदेव कोक, कमल और लोकमात्रको सुखी करते हैं। मिलान कीजिये 'उयेउ अरुन अवलोकहु ताता। पंकज लोक कोक सुखदाता।' (बा०)

५ 'तेज प्रताप रूप रस रासी' इति। 'रासी' का अन्वय तेजादि सबके साथ है। सूर्यके तेजका वर्णन जटायु और संपातिके प्रसंगमें वाल्मीकीयमें आया है। मानसमेंभी कहा है 'जरे पंख अति तेज अपारा। पर्‍यो धरनि अति करत चिकारा' (कि०)। नैयायिकोंने जहां तत्त्वोंका निर्णय किया हैं वहां सूर्यको तेजका समूह वा तेजकी मूर्त्तिही निर्णय किया है। 'शरीरं आदित्य लोके', अतः तेजराशि कहा। तेजसेही रूप है, यथा 'जिमि बिनु तेज न रूप गुसाईं', अतः रूपराशि कहा। तेज और प्रतापका जहां वर्णन होता है वहां प्रायः सूर्यके तेजसे उपमा दी जाती है। यथा 'रवि सम तेज सो बरनि न जाई' (उ०), 'जबतें रामप्रताप खगेसा। उदित भयेउ अति प्रबल दिनेसा' (उ०), 'प्रताप दिनेस से०' (क०) 'जिन्हके जस प्रतापके आगे। ससि मलीन रबि सीतल लागे' (बा०), अतः तेज प्रतापकी राशि कहा।

'रसराशि' कहकर जनाया कि (क) जलकी वृष्टि सूर्यहीसे होती है। यथा 'बरषत करषत आपु जल अर्घनि हरषत भानु।' 'बरषत हरषत लोग सब करषत लखै न कोई। तुलसी प्रजा सुभाग बस भूप भानुसो होइ ॥ (दोहा०) (ख) रसके बनानेवाले सूर्यही हैं, यद्यपि रस जलतत्वका गुण है *। (ग) जहाँ सूर्यकी किरणें पड़ती हैं वहीं सब रस उत्पन्न होते हैं। छायामें अन्नादि नहीं उत्पन्न होते। उपरोक्त कारणोंसे 'रसराशि' कहा। विष्णुपुराणमेंभी यही कहा है, यथा, आदत्ते रश्मिभिर्यन्तु क्षितिसंस्थं रसं रविः। तमुत्सृजति भूतानां पुष्ट्यर्थं सस्यवृद्धये। २-११-२४। पक्षं तृप्तितु देवानां पितॄणां-चैव मासिकीम्। शश्वत्तृप्तिंच मर्त्यानां मैत्रेयार्कः प्रयच्छति। २६।' इत्यादि। अर्थात् सूर्य अपनी किरणोंसे पृथ्वीमें रहनेवाले रसको खींच लेते हैं और उसी रसको प्राणियोंकी पुष्टि और अन्नकी वृद्धिकेलिये पुनः अपनी किरणोंद्वारा छोड़ते हैं। हे मैत्रेय! सूर्य पक्ष पक्षमें देवताओंकी तृप्ति, मास मासमें पितरोंकी तृप्ति और नित्यप्रति मनुष्योंकी तृप्ति करते हैं। यदि विस्तारसे देखना हो तो विष्णुपुराणके द्वितीय अंशके अ० ९, १०, ११ में देखिये। इससे गोस्वामी तुलसीदासजीके वैज्ञानिक ज्ञानका परिचय मिलता है।

६ 'सारथि पंगु दिव्य रथ गामी' इति। (क) सूर्यके सारथी अरूण हैं जो गरुड़के सगे भाई हैं। ये पंगुल हैं। पंगु होनेकी कथा इस प्रकार महाभारतमें दी हुई है कि दक्षकी दो कन्यायें कद्रु और विनता कश्यपजीकी पत्नि हुईं। दोनोंपर प्रसन्न होकर कश्यपजीने दोनोंसे वर माँगनेको कहा। कद्रूने एक हज़ार नागपुत्र माँगे और विनताने दो पुत्र माँगे जो तेज, बल, पराक्रम और शरीरमें कद्रूके पुत्रोंसे अधिक हो। दोनोंको वर देकर कश्यपजी चले गए। बहुत कालके पश्चात् कद्रुके दस सौ (एक सहस्र) और विनताके

---

* पद्मपुराण सृष्टिखण्ड अ० ७५ में ब्रह्माजीने कहा है कि हे सूर्यदेव! तुम्हीं रूप और गंध आदि उत्पन्न करनेवाले हो। रसोंमें जो स्वाद है वह तुम्हींसे आया है।

दो अंडे पैदा हुए। दासियोंने उन अंडोंको गर्म बर्तनोंमें रख दिया। पाँच सौ वर्षके बाद कद्रूके अंडोंमेंसे तो पुत्र निकले परन्तु विनताके अंडोंमेंसे बच्चे नहीं निकले। लज्जित और दुखी होकर विनताने एक अंडेको फोड़ डाला तो उसमेंसे एक अर्धकाय परिपक्व अर्थात् आधे शरीरका लड़का निकला। उस समयतक उसका आधाही शरीर बन पाया था जो खूब पुष्ट था। अपनेको आधे शरीरसे रहीत देखकर उस 'अनुरूप' पुत्रने क्रोधसे माताको शाप दिया कि तू जिस कद्रुके साथ ईर्ष्या रखती है, पाँच सौ वर्षतक तू उसकी दासी होगी। परन्तु यदि तू इस दूसरे अंडेकोभी तोड़कर मेरे सरीखे अंगभंग न कर देगी तो मेरे शापसे यही तुझे मुक्त करेगा। धैर्यपूर्वक तुझे इसके जन्मकालकी प्रतीक्षा करनी चाहिये। यदि इसकी बलवान् होनेकी इच्छा करती हो तो अभी पाँच सौ वर्षतक इसकी और प्रतीक्षा करना। इस प्रकार विनताको शाप देकर वह पुत्र आकाशमें उड़ गया और सूर्यके रथपर बैठकर उनका सारथी बन गया। यह प्रातःकालकी कालिमा उसीकी झलक है। (आदिपर्व अ० १६, श्लोक ८ से २३ तक)।

(ख) 'सारथि पंगु'से आपका सामर्थ्य और दीनदयालुता दर्शित की। पंगुलको सारथी बनाया फिरभी आपका रथ अत्यन्त वेगसे चलता है। वैजनाथजी **'योजनानां सहस्रे द्वे द्वे शते द्वेच योजने। एकेन निमिषार्द्धेन क्रममाण नमोस्तुते॥'** इस श्लोकका प्रमाण देकर बताते हैं कि सूर्यका रथ अर्द्धनिमिषमें ८८०८ कोस चलता है। भा० ५, २१, १९ में कहा है कि सूर्य भूमंडलके नौ करोड एक्यावन लाख योजन लंबे घेरेमेंसे प्रत्येक क्षणमें दो हज़ार दो योजनेकी दूरी पार कर लेते हैं।

(ग) 'दिव्य रथ गामी' कहकर जनाया कि रथ अलौकिक है, स्वयं प्रकाशमान् है, आकाशमार्गसे चलता है और बड़ाही सुन्दर है। इस रथमें एकही पहिया है, सात हरे रंगके घोड़े जुते हैं। यह स्वर्णमय है, इसका ढाँचा वज्रका है और यह प्रतिदिन नयाही बना रहता है। यथा भविष्योत्तरे, **'हरित हय रथं दिवाकरं कनकमय वज्रेणपञ्जरं प्रतिदिनमुदय नवं नवम्'॥** (वै०) इसे हाँकनेकी जरूरत नहीं पड़ती। सवारकी इच्छानुसार

वह स्वयं चलता है। यह रथ प्रतिमास भिन्न भिन्न सात सात गणोंसे अधिष्ठित होता है, यथा '**सरथोऽधिष्ठितो देवैरादित्यैर्ऋषिभिस्तथा। गन्धर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामणी सर्पराक्षसैः।** वि० पु० २-१०-२। **स्तुवन्ति मुनयः सूर्यं गन्धर्वैर्गीयते पुरः। नृत्यन्त्यप्सरसो यान्ति सूर्यस्यानु निशाचराः।२०। वहन्ति पन्नगा यक्षैः क्रियतेऽभीषु संग्रहः। बालखिल्यास्तथैवैनं परिवार्य समासते।२१।**' अर्थात् वह रथ देवताओं, आदित्यों, ऋषियों, गंधर्वों, अप्सराओं और उसके ठेलनेवाले सर्पों और राक्षसोंसे अधिष्ठित (युक्त) है। सूर्यके आगे आगे मुनिगण स्तुति करते हैं, गन्धर्वगण गान करते हैं और अप्सराएँ नृत्य करती हुई जाती हैं। इसी प्रकार सूर्यके पीछे निशाचरगण जाते हैं। सूर्यके रथको साँपोंने सँभाल रखा है। (भाव कि उसमें कील काँटे आदिका काम सर्पोंसे लिया जाता है) इन सर्पोंकी देखभाल यक्षोंकेद्वारा होती है। इसी प्रकार बालखिल्य लोग सूर्यको चारों ओरसे घेरे रहते हैं।

७ 'हरि संकर बिधि मूरती स्वामी' इति। त्रिदेवकी मूर्ति कहकर आपके द्वारा उत्पत्ति, पालन और संहार प्रतिदिन दिखाते हैं। यथा '**उदये ब्रह्मरूपस्तु मध्यान्हेतु महेश्वरः। अस्तमाने स्वयं विष्णुस्त्रयो-मूर्तिर्दिवाकरः॥**' (भविष्योत्तरे) अर्थात् उदयके समय ब्रह्मारूप, मध्यान्हमें शिवरूप और अस्तसमय विष्णुरूप रहते हैं। पुनश्च यथा '**एष ब्रह्मा च विष्णुश्च शिव स्कंदः प्रजापतिः।**' (वा. रा. युद्धकांड) पुनश्च, यथा **विष्णुशक्तिरवस्थानं सदादित्येकरोति सा॥** वि० पु० २-११-११। **सर्गादौ ऋङ्मयो ब्रह्मा स्थितौ विष्णुर्यजुर्मयः। रुद्रः साममयोऽन्ताय०।१३।**' अर्थात् वह विष्णुशक्ति आदित्यमें सब दिन निवास करती है। वह ऋग्वेदमय ब्रह्मामें स्थित होकर सृष्टि कराती है। उसी विष्णुशक्तिसे यजुर्वेदमय विष्णु पालन करते हैं और वही शक्ति सामवेदमय रुद्रमें प्रविष्ट होकर प्रलयका कारण होती है।

शंकर मूर्ति इससेभी कह सकते हैं कि 'प्रलयका समय आनेपर आपके क्रोधसेही संवर्तक अग्नि प्रगट होता है और तीनों लोकोंको जलाकर आपमें स्थित हो जाता है। आपकी किरणोंसेही रंगबिरंगे ऐरावत आदि

मेघ और बिजलियां पैदा होती हैं तथा प्रलय करती हैं।' (महाभारत वनपर्व अ० ३-५८) यथा 'संहारकाले संप्राप्ते तव क्रोधविनिसृतः। संवर्तकाग्निस्त्रलोक्यं भस्मीकृत्वाऽवतिष्ठते ॥'

ज्ञानियों और योगीयोंकी गति होनेसे विष्णुरुप कहा है। यथा 'त्वं गतिः सर्वसाङ्ख्यानां योगिनां त्वं परायणम्। अनावृतार्गलद्वारं त्वं गतिस्त्वं मुमुक्षुताम॥ 'वनपर्व अ० ३-३७।' 'त्वया सन्धार्य्यते लोकस्त्वया लोकः प्रकाश्यते। ३८।' अर्थात् आपमें परायण ज्ञानियों और योगीयोंकी गति आपही हैं। मुमुक्षुओंकी आपही गति और मुक्तिके खुले द्वार हैं। आपही समस्त लोकोंको धारण और प्रकाशित करते हैं। ये सब कार्य हरिके हैं, अतः हरिरूप कहा।

इसी तरह 'त्वं योनिः सर्वभूतानां त्वमाचारः क्रियावताम् ॥ ३-३६ ॥' इस लक्षणसे युक्त होनेसे ब्रह्मारूप कहा। *

'हिम तम करि केहरि करमाली'से लेकर 'सारथी पंगु दिव्यरथगामी' तक सूर्य भगवान्के गुण कहकर तब कहा कि आप 'हरि संकर बिधि मूरति' हैं। इससे पाया गया कि पूर्वोक्त गुण त्रिदेवके हैं। अतएव उनमेंभी तीनोंके रूप दिखाना चाहिए। अंधकारका नाश, दोष, दुख, दुरित, रुजालीका दहन करना 'संहार' कार्य है, इसमें शंकररूप दिखाया। 'कोक कोकनद लोक प्रकासी' यह सृष्टिकार्य होनेसे यहाँ ब्रह्मारूप हुए। और, 'सारथी पंगु०' पंगुलको सामर्थ्य देना विष्णुका काम हैं। यथा 'मूकं करोति वाचालं पंगुं लङ्घयते गिरिम्। यत्कृपा तमहं वन्दे

*श्री शिवजीने स्कन्दजीको (पद्मपुराण सृष्टिखण्ड ७६। ३१-३४।) जो आदित्यमंत्र बताया है उसमेंभी 'विधि हरि संकर मूरति' होना कहा है। यथा 'ॐ नमः सहस्रबाहवे आदित्याय नमोनमः। नमस्ते पद्महस्ताय वरुणाय नमोनमः। ३१। नमस्तिमिरनाशाय श्रीसूर्याय नमोनमः। नमःसहस्रजिह्वाय भानवेच नमोनमः। ३२। त्वंच ब्रह्मा त्वंच विष्णु रुद्रस्त्वंच नमोनमः। त्वमग्निस्सर्वभूतेषु वायुस्त्वंच नमोनमः। ३३। सर्वगः सर्वभूतेषु नहि किंचित्त्वया विना। चराचरे जगत्यस्मिन् सर्वदेहे व्यवस्थिताः। ३४।'

परमानन्द माधवम् ॥' अतएव 'रूपरसराशि' और 'सारथि पंगु०' में 'हरिमूरति' होना दिखाया।

८ (क) 'वेद पुरान प्रगट०' इति। इसमें शब्दप्रमाण अलंकार है। वेदमें प्रगट है, यथा 'ऋचः पूर्वाह्णे दिवि देव इयते यजुर्वेदे तिष्ठति मध्यो अह्नः सामवेदेनास्तमये महीपते।' इति श्रुतिः। विष्णुपुराणके प्रमाण ऊपर आ चुके हैं। सूर्यपूराणमें विशेषकर सूर्यकाही माहात्म्य वर्णित है। वेदमें तथा गायत्रीमें 'भर्ग' शब्दसे सूर्यके तेजका ग्रहण है। वेद मंत्र गायत्री यह है, 'ॐभूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गोदेवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥' सूर्यमण्डलको परब्रह्म कहा गया है।

श्री राजबहादुर लमगोड़ाजी कहते हैं कि 'हिम तम करि केहरि' यह बसन्तऋतुके सूर्यपर विशेषकर लागु है। वही 'हिम तम करि केहरि' हैं और उन्हींमें भौतिक चिकित्सा विज्ञानभी सुबह (Creative) उत्पादक, दोपहरमें (Protective) पालक, और सायंमें (Destructive) संहारक गुण बताता है।

९ 'सरोजनी नैडूजीभी कहती हैं कि गायत्री मंत्र विशेषत: सूर्यपरही लागु होता है। सारे वेदोंका वह मूल है। यहभी विचारणीय है कि कुरानका मूल सूरा फातहा कहलाता है जिसका अर्थ समझनेसे साफ पता चलता है कि वह गायत्रीका रूपान्तरही है। सोचनेकी बात है कि वहभी 'रब्बुल आलमीन' शब्दसमूहमें 'रवि' शब्दका अपभ्रंशही है। महात्मा ईसाभी रवि अंशसेही थे। बड़ा दिन (उनका जन्मदिन) वास्तवमें मकरसंक्रान्तिका दिन था। गणनाके हेरफेरसे प्रति शताब्दिमें एक दिनका फ़र्क होता जाता है और अब संक्रान्ति १४ जानवरीको होती है। ज्योतिषियोंको पता लगाना चाहिये कि भूल कहाँ है। ईसाई धर्ममें इसीसे रविवारका बड़ा मान है और 'रैबाई' शब्द बाइबिलमें बड़ा आदरसूचक है।'

९ 'प्रगट जस जागै' इति। यश प्रत्यक्ष जगमगा रहा है। इस कथनसे पद्मपु० सृष्टिखण्डके ब्रह्माजीद्वारा कहे हुए श्रीविष्णु और शिव

आदि देवताओंके दर्शन सब लोगोंको नहीं होते। ध्यानमेंही उनके स्वरूपका साक्षात्कार किया जाता है। किन्तु भगवान् सूर्य प्रत्यक्ष देवता माने गये हैं। पौ फटनेपर इनका दर्शन करनेसे राशिराशि पाप विलीन हो जाते हैं।' इन वचनोंका अभिप्रायभी आ जाता है।

१० 'तुलसी रामभगति बर मांगै' इति। यह उपासनाकी रीति है। सबका यथोचित आदर सम्मान करके आपके इष्टदेवकी अनन्यभक्ति माँगनी चाहिये। यथा 'सब करि मांगहिं एक फलु रामचरन रति होउ'

विशेषणोंके और भाव—(क) 'दीनदयाल'का भाव कि मैं दीन हूँ, मुझपर दया कीजिये। 'दिवाकर देवा' अर्थात् आप दिन करके जगत्को सजग करते हैं। वैसेही मेरे हृदयमें प्रकाश करके मेरे हृदयकी जड़ता हरिये। आप 'हिमतम करि करमाली' हैं। अतः ज्ञानकिरणद्वारा मेरे मोहादि तमको दूर कीजिये। 'कोक कोकनद लोक प्रकासी' का भाव कि जैसे कोकादिको सुख देते हैं वैसेही श्रीसीतारामजीसे मेरा संयोग कराके मुझे सुख दीजिये। 'सारथि पंगु' कहकर जनाया कि मेरी बुद्धि पंगु है। मैं श्रीरघुनाथजीतक पहुँचनेमें असमर्थ हूँ। आप कृपा करें कि दरबारतक मेरी रसाई हो जाय।

(ख) 'दीन दयाल दिवाकर देवा' से दया, 'हिमतम करि केहरि करमाली' से बल, सामर्थ्य और पराक्रम, 'कोक कोकनद लोक प्रकासी'से परोपकार, परायणता, 'तेज प्रताप रूप रस रासी' और 'सारथि पंगु'से तेज, प्रतापादि और सामर्थ्य, और 'हरि संकर बिधि मूरति स्वामी' से ऐश्वर्यादि गुण सूर्यमें दिखाए।

अनुप्रास (alliteration) बड़ेही सुंदर हैं। गोस्वामी तुलसीदासजीकी कलामें (alliteration Tennyson) अनुप्रास टेनिसन के काव्यसेभी सुंदर रीतिपर है। कारण कि कृत्रिमता नहीं जान पड़ती और इसीसे जी नहीं ऊबता। यह अलंकार बड़े बाहुल्यके साथ बिनयमें मिलता है। इससे हर जगह समझ लेना चाहिए। बार बार दोहराया न जायगा। (लमगोड़ाजी)

३ को जाचिए संभु तजि आन।

दीनदयाल भगत आरति हर। सबप्रकार समरथ भगवान ॥१॥
कालकूट जर[1] जरत सुरासुर निजपन लागि कियो[2] विषपान ।
दारुन दनुज जगत दुखदायक जार्‌यो[3] त्रिपुर एकहीं बान ॥२॥
जो गति अगम महामुनि दुर्लभ कहत संत श्रुति सकल पुरान ।
सोइ गति मरन काल अपने पुर देत सदासिव सबहिं समान ॥३॥
सेवत सुलभ उदार कलपतरु पारबतीपति परम सुजान ।
देहु कामरिपु *रामचरनरति तुलसिदास कहुँ कृपानिधान ॥४॥

शब्दार्थ—को=किससे, कौन । जाचिए (सं० याचना)=किसीसे प्रार्थनापूर्वक माँगना । संभु (शंभु)=कल्याणके उत्पन्न करनेवाले, कल्याणकी भूमि, शिवजी । तजि=छोडकर । आन=दूसरेसे । दीनदयाल= देखिये पद २ । भगत (भक्त)=भक्ति करनेवाला, सेवक, उपासक । आरति (आर्ति)=दुःख, पीड़ा, क्लेश । हर=हरनेवाला । प्रकार=तरह । समरथ (समर्थ)=शक्तिमान्, योग्य । भगवान=ऐश्वर्यवाला, षडैश्वर्ययुक्त । छः ऐश्वर्य ये हैं–ऐश्वर्य, बल, श्री, यश, ज्ञान और वैराग्य । पुनः, षडैश्वर्य, यथा 'उत्पत्तिप्रलयश्चैव जीवानामगतिं गतिम् । वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ॥ (विष्णु पु० षष्ठं अंश) अर्थात् उत्पत्ति, प्रलय, जीवोंकी गति और अगति, विद्या एवं अविद्याको जो जाने

१ जर–बै०, ज०, प्र० ('जुर' का 'जर' बनाया है ।) जुर–भ०, दी० । ज्वर–ह०, डु०, मु०, ५१, वै०, ७४, १५ ।

२ कियो–ह०, प्र०, ५१, ज०, ७४, १५, आ० । कीन्ह–भा०, बै० ।

३ जार्‌यो–ह०, १५, डु०, भ०, ७४, ६९, दी०, । मार्‌यो–भा०, बै०, प्र०, ज०, ५१, वै०, मु०, वि० ।

* कामरिपु रामचरनरति–बै०, आ० । रामपदनेहु कामरिपु–भा०, ह०, प्र०, ज०, ७४, १५ । आधुनिक समस्त टीकाकारोंने कामरिपु रामचरनरति पाठ रखा है । इसमें (Antithesis) विरोध खूब उभर आती है । अतः यही पाठ हमनेभी स्वीकार किया है ।

वह 'भगवान्' है। कालकूट=एक प्रकारका अत्यंत भयंकर विष जो समुद्र मंथनपर निकला था। जर (ज्वर)=ताप, जलन, ज्वाला। सुरासुर=सुर और असुर। पन (प्रण)=प्रतिज्ञा। लागि=लिये, वास्ते। यथा-'तुम्हहिं लागि धरिहौं नरदेहा।' (बा०)। पान कियो=पी लिया। विष=जहर। दारुन (दारुण)=भयंकर, महाकठिन। दनुज=दनुके पुत्र, दानव। दनु कश्यपजीकी एक पत्निका नाम है। उससे जो पुत्र उत्पन्न हुए वे दनुज और दानव कहलाए। जगत=संसार। दुखदायक=दुख देनेवाला। त्रिपुर=देखिये टि० ३ में। अगम=जहाँ कोई जा न सके, दुष्प्राप्य, कठिनतासे प्राप्त होनेवाली। अगम गति=कैवल्य, मुक्ति, परमपद। यथा-'लहत परमपद पय पावन जेहि चहत प्रपंच उदासी'। (२२) गति=मृत्यु के उपरान्त जीवात्माकी उत्तम दशा। महामुनि=बड़े श्रेष्ठ मुनि, जैसे-'विश्वामित्र महामुनि आये।' दुरलभ (दुर्लभ)=कठिनतासे प्राप्त होनेवाली। श्रुति=समस्त वेदवाक्य। सकल पुरान=सब पुराण। पुराण ये हिन्दुओंके धर्म-संबंधी आख्यान ग्रंथ हैं। पुराणका लक्षण श्रीमद्भागवतमें लिखा है कि 'सर्गोऽस्याथ विसर्गश्चं वृत्तिरक्षान्तराणि च। वंशो वंशानुचरितं संस्थाहेतुरपाश्रयः॥ १२।७।९॥ दशभिर्लक्षणैर्युक्त पुराणं तद्विदो-विदुः॥१०॥' अर्थात् सर्ग (महत्तत्व, अहंकार, पंचतन्मात्रा, पंचमहाभूत, कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय और मनकी उत्पत्ति अर्थात् सूक्ष्म रचना), विसर्ग (जीवोंसे अनुगृहीत सूक्ष्म रचनाके वासनामय चर और अचर सृष्टिकी रचना), वृत्ति, रक्षा (अच्युत् भगवान्‌के अवतारकी चेष्टा), मन्वन्तर (मनु, देवता, मनुपुत्र, सुरेश्वर, ऋषि और अंशावतार श्रीहरिके ये छः प्रकार), वंश (ब्रह्माप्रसूत राजाओंकी त्रैकालिक अन्वय), वंशानुचरित (वंशको धारण करनेवाले प्रधान पुरुषोंके चरित्र), संस्था (नैमित्तिक, प्राकृतिक, नित्य और आत्यन्तिक चार प्रकारके लय), हेतु (सृष्टि आदिकी अविद्याद्वारा कर्म करनेवाला जीव) और अपाश्रय (मायामय जीवोंकी वृत्तियोंमें और जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाओंमें जिसका व्यतिरेकान्वय हो वह ब्रह्म) इन दस लक्षणोंसे युक्त ग्रन्थोंको पुराण कहते हैं। महापुराण १८ हैं। विष्णु, नारद, श्रीमद्भागवत, गरुड़, पद्म, और बाराह ये ६

सात्विक हैं। ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन और ब्रह्म ये राजस हैं। मत्स्य, कूर्म, लिङ्ग, शिव, स्कंद, और अग्नि ये तामस हैं। (भा० १२-७-२३, २४। पाद्मोत्तरखण्ड) उपपुराणभी १८ हैं। गुरुड़पु० अ० २२७ श्लो० १-४ में उनके नाम ये कहे गये हैं-आदिपुराण, नृसिंह, कुमारका बनाया हुआ स्कन्द, नन्दीशका बनाया हुआ शिवधर्म, दुर्वासा, नारद, कपिल, वामन, औशनस, ब्रह्मांड, वारुण, कालिका, महेश्वर, साम्ब, सौर, पाराशर, मारीच, और भास्कर। पुराणसे महापुराण और उपपुराण दोनोंका ग्रहण होता है, क्योंकि लिखा है कि 'त्यक्तानुबंधग्रहणे सामान्यस्यग्रहणम्'। त्यक्त अनुबंधके ग्रहणसे सामान्य (समस्त) का ग्रहण होता है। सोई=वही। मरनकाल=मरते समय। पुर=नगर। सदाशिव=शिवजीका एक नाम। समान=घटती बढ़ती नहीं, समानरूपसे, तुल्य, एकसी। सेवत=सेवा करनेमें। सुलभ=सुगमतासे, मिलनेयोग्य। उदार=बड़े दाता, दानशील, महान्, श्रेष्ठ, यथा—'उदारो दातृ महतो इत्यमरे॥' कलपतरु (कल्पतरु)=कल्पवृक्ष। पुराणानुसार यह देवलोकका एक वृक्ष है जो समुद्रमन्थनसमय समुद्रसे निकला था और १४ रत्नोंमेंसे एक माना जाता है। यह इंद्रको दिया गया था। हिंदुओंका विश्वास है कि इससे जिस वस्तुकी प्रार्थना की जाय उसे यह देता है। यथा, 'जाइ निकट पहिचानि तरु छांह समन सब सोच। माँगत अभिमत पाव जग राउ रंकु भल पोच॥ अ० २६७॥' इसका नाश कल्पान्ततक नहीं होता। इसी प्रकारका एक पेड़ मुसलमानोंमेंभी माना जाता है जिसे 'तूबा' कहते हैं। इसके फूल श्वेत रंगके होते हैं। पारबतीपति=पार्वतीजीके स्वामी, शिवजी। परम=सबसे बढ़चढ़कर। सुजान=चतुर, विज्ञ। देहु= दीजिये, दो। कामरिपु=कामदेवके शत्रु। कहुँ=को। कृपा=विना किसी प्रतिउपकारकी आशाके दुसरेकी भलाई करनेकी इच्छा। कृपानिधान=कृपाके खज़ाना, भंडार वा आधार।

पद्यार्थ—शिवजीको छोड़ और किससे माँगा जाय? वे दीनोंपर दया करनेवाले, भक्तोंके दुःख हरानेवाले, सबप्रकारसे समर्थ और षडैश्वर्य-संपन्न हैं कालकूटकी ज्वालासे देवता और दैत्य जल रहे थे।

(उस समय) अपनी प्रतिज्ञा (की रक्षा) केलिये आपने विषको पी लिया। संसारको दुःख देनेवाले भयंकर दानव त्रिपुरको आपने एकही बाणसे जला दिया। सब संत, श्रुतियां और पुराण जो परमपद महामुनियोंको (भी) दुर्लभ बताते हैं वही परमपदरूपी गति सदाशिवजी सदा अपने पुरमें सबको मरते समय समानरूपसे देते हैं। सेवा करनेमें सुगम, कल्पवृक्षसमान उदार दाता (एवं श्रेष्ठ कल्पवृक्ष) और पार्वतीजीके पति हैं। हे कामदेवके शत्रु! हे दयासागर! (मुझ) तुलसीदासको श्रीरामचंद्रजीके चरणोंमें प्रेम दीजिये।

टिप्पणी—१ (क) ' को जाचिए संभु तजि आन ' इति। भाव यह कि यदि मांगना हो तो इन्हींसे मांगो। ऐसा उदार, और शीघ्र प्रसन्न होनेवाला दूसरा नहीं है। श्रीरामजीके चरणोंमें प्रेम देनेवाला ऐसा रामभक्त दूसरा नहीं है। भक्त कवि आगे यही माँगते हैं।

(ख) ' को जाचिए आन ' कहकर आगे ' दीनदयाल भगत आरति-हर० ' इत्यादिमें इनसेही माँगनेका कारण बताते हैं। इनसे न माँगकर अन्यसे माँगनेका क्या फल होगा यह आगे पद ४ में कहेंगे। ' ते मूढ़ मांगने कबहुँ न पेट अघाहीं '। दीनदयालादि जो गुण कहे हैं इनके उदाहरण वा प्रमाण अगले अंतरोंमें देते हैं।

(ग) दीनदयाल आदि गुणोंके क्रमका भाव—दीनोंपर दया करते हैं। दयालु हृदय होनेसे भक्तोंके दुःख दूर करते हैं। दयाभी हो, दुःख दूर करनेकी इच्छाभी हो, पर सामर्थ्य न हो तो वह दया व्यर्थ है। यथा ' प्रभु अकृपाल कृपाल अलायक जहँ जहँ चितहिं डोलावों ' इसीसे ' आरतिहर ' कहकर ' सब प्रकार समरथ ' कहा। फिर सब प्रकार समर्थ होनेका कारण बताया कि वे ' भगवान् ' हैं।

(घ) ' दीनदयाल 'से करुणामय, ' भगत आरतिहर 'से शरणागत-पालक और भक्तवत्सल जनाया। ' सब प्रकार समरथ 'से सामर्थ्य, ' भगवान 'से ऐश्वर्य, ' सेवतसुलभ 'से सौलभ्य, ' उदार कल्पतरु 'से श्रेष्ठ दातृत्व (हानिकारक वस्तु न देनेवाले) और ' पार्वतीपति 'से परोपकारत्व गुण कहे।

२ 'कालकूट जर जरत सुरासुर०' इति। (क) इस अंतरसे शिवजीको करुणामय, आर्तिहरण, और रामनामकी महिमाके जाननेवालोंमें अग्रगण्य जनाया। (ख) 'जर जरत सुरासुर'से विषकी विषमता कही। कालकूट ऐसा विष था कि देवता, दैत्य कोईभी न सह सके, औरोंकी क्या चली? 'बिष पान'से सामर्थ्य आदि दिखाया कि वह विकराल कालकूटभी आपका कुछ न कर सका। यथा 'बिषम गरल जेहि पान किय' 'जात जरे सब लोक बिलोकि तिलोचन सो बिष लोकि लियो है। पान कियो बिष भूषन भो करुनाबरुनालय साईं हियो है॥ (क०), 'नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फल दीन्ह अमीको।' (बा०)। समस्त देवताओंपर दया करके उनके कल्याणके लिये कालकूट पी गये, अतः दीनदयाल और शंभु (कल्याणकर्त्ता) कहा। (ग) 'निज पन लागि' इति। वह 'पन' क्या है? यह कि हम सबमें बडे हैं, सबके रक्षक हैं। भगवान् विष्णुने कहाभी है—"दैवतैर्मथ्यमानेतु यत्पूर्वं समुपस्थितम् ॥२३॥ तत्त्वदीयं सुरश्रेष्ठ सुराणामग्रतो हि यत्। अग्रपूजामिहस्थित्वा गृहाणेदं विषं प्रभो ॥२४॥ वा० रा० । १।४५।" अर्थात् देवताओंके मथन करनेसे जो कुछ पहले निकला वह यह आपके सामने है। वह आपकाही है। क्योंकि आप सब देवताओंमें श्रेष्ठ हैं। यह पहली पूजा यहां स्थित है। हे प्रभो! इस विषको ग्रहण कीजिए।

कालकूटकी कथा—श्रीमद्भागवत स्कंध ८, अध्याय ५ से ७ तक यह कथा इस प्रकार है कि 'छठे मन्वन्तरमें नारायण भगवान् अजित नामधारी हो अपने अंशसे प्रकट हुए। देवासुर संग्राममें दैत्य देवताओंका विनाश कर रहे थे। दुर्वासाऋषिको विष्णुभगवान्‌ने माला प्रसाद दिया था। उन्होंने इंद्रको ऐरावतपर सवार होकर रणभूमिकी ओर जाते देखकर वह प्रसाद उनको दे दिया। इंद्रने प्रसाद हाथीके मस्तकपर रख दिया जो उसने पैरोंके नीचे कुचल डाला। इसपर ऋषिने शाप दिया 'तू शीघ्रही श्रीभ्रष्ट हो जायगा'। इसका फल तुरंत उन्हें मिला। संग्राममें इन्द्रसहित तीनों लोक श्रीविहीन हुए। यज्ञादिक धर्मकर्म बंद हो गये। जब कोई उपाय न समझ पड़ा तब

इन्द्रादिक देवता शिवजीसहित ब्रह्माजीके पास सुमेरु शिखरपर गये। इनका हाल देखसुनकर वे सबको लेकर क्षीरसागर गये और एकाग्रचित्त हो परमपुरुषकी स्तुति करने लगे और यह भी प्रार्थना की कि 'हे भगवन्! हमको उस मनोहर मूर्त्तिका शीघ्र दर्शन दीजिए जो हमको अपनी इन्द्रियोंसे प्राप्त हो सके। भगवान् हरिने दर्शन दिया। तब ब्रह्माजीने प्रार्थना की कि 'हम लोगोंको अपने मंगलका कुछभी ज्ञान नहीं है, आप उपाय रचिये जिससे सबका कल्याण हो'। भगवान् बोले 'हे ब्रह्मा! हे शम्भुदेव! हे देवगण! वह उपाय सुनो जिससे तुम्हारा हित होगा। अपने कार्यकी सिद्धिमें कठिनाई देखकर अपना काम निकालनेके लिये शत्रुसे मेल कर लेना उचित होता है। जबतक तुम्हारी वृद्धिका समय न आवे तबतकके-लिये तुम दैत्योंसे मेल कर लो। दोनों मिलकर अमृत निकालनेका प्रयत्न करो। क्षीरसागरमें तृण, लता, औषधि और वनस्पति डालकर सिंधु मथो, मंदराचलको मथानी और वासुकीको रस्सी बनाओ। ऐसा करनेसे तुमको अमृत मिलेगा। सागरसे पहले कालकूट निकलेगा, उससे न डरना। फिर रत्नादिक निकलेंगे। इनमें लोभ न करना'। यह उपाय बताकर भगवान् अन्तर्धान हो गए।

इन्द्रादि देवता राजा बलिके पास सन्धिकेलिये गये। समुद्र मथकर अमृत निकालनेकी इन्द्रकी सलाह दैत्यदानव सभीको भली लगी। सहमत होकर दानव, दैत्य और देवगण मिलकर मन्दराचलको उखाड़ ले चले। राहमें थक जानेसे पर्वत गिर पड़ा। उनमेंसे बहुतेरे कुचल गये। इनका उत्साह भंग हुआ देखकर भगवान् गरुड़पर पहूँच गये और लीलापूर्वक एक हाथसे पर्वतको उठाकर गरुड़पर रखकर उन्होंने उसे क्षीरसागरमें पहूँचा दिया। वासुकीको अमृतमें भाग देनेका लालच देकर उनको रस्सी बननेको उत्साहित किया और मंद्राचलको जलपर स्थित रखनेके लिए भगवान्ने कच्छपरूप धारण किया। जब बहुत मथनेपरभी अमृत न निकला तब अजित् भगवान् स्वयं मथने लगे।

पहले कालकूट निकला जो सब लोकोंको असह्य हो उठा। तब भग-वान्का इशारा पाकर सब मृत्युञ्जय शिवजीकी शरण गये और जाकर

उनकी स्तुति की। भगवान्‌ने कहा कि ‘ आप सब देवताओंमें अग्रगण्य हैं। पहली वस्तु जो निकली उसपर आपकाही हक और हिस्सा है। अतएव इस अग्रपूजा (कालकूट) को आप ग्रहण कीजिये। भगवान् शंकर करुणावरुणालय इनका दुःख देखकर सतीजीसे बोले कि ‘ प्रजापति महान् संकटमें हैं। इनके प्राणोंकी रक्षा करना हमारा कर्त्तव्य है। मैं इस विषको पी लूंगा जिससे इनका कल्याण हो। ’ यथा ‘ तस्मादिदं भुञ्जे प्रजानां स्वस्तिरस्तु मे। ’ (भा० ८।७।४०)

भवानीने इस इच्छाका अनुमोदन किया। शेषदत्तजीने अपने खर्रेमें इस मौकेपर ‘ श्रीरामनामाखिलमंत्रबीजं संजीवनं चेद्धृदये प्रविष्टम्। हालाहलं वा प्रलयानलं वा मृत्योर्मुखं वा विषतां कुतो भयम्॥’ यह श्लोक देकर यह बताया है कि श्रीशिवजी यह कहकर कालकूटको पी गये। नन्दीपुराणमें श्रीनन्दीश्वरनेभी कहा है की श्रीरामनामके परम महत्वके प्रसादसे शिवजीने हालाहल पान कर लिया। यथा ‘ शृणुध्व भो गणास्सर्वे रामनाम परंबलम्। यत्प्रसादान्महादेवो हालाहलमयीं पिबेत्॥ जानाति रामनाम्नस्तु परत्वं गिरिजापतिः। ततोऽन्योन विजानाति सत्यं सत्यं वचो मम॥’ अर्थात् हे सब गणो! रामनामके परम बलको सुनो, जिसके प्रसादसे महादेवजीने हालाहलमय कालकूटको पी लिया। श्रीरामनामका परत्व जैसा गिरिजापति जानते हैं वैसा और कोई नहीं जानता। मेरा वचन सत्य है, सत्य है। गोस्वामीजीकाभी यही मत है। यथा ‘ नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फल दीन्ह अमीको॥ ’ ‘ प्रजापति महान् संकटमें हैं। इनके प्राणोंकी रक्षा करना हमारा कर्त्तव्य हैं ’ येही ‘ निज पन लागि ’ सूचक वचन हैं।

विषपानका आध्यात्मिक रहस्य—श्री वासुदेवशरणजी अग्रवाल एम. ए., एल्.एल्. बी. लिखते हैं कि ‘आध्यात्मिक तत्त्वोंके परिज्ञानके लिये भौतिक प्रयोगोंका आश्रय लिया जाता है। देवोंके अमृतपानके— साथ शिवके विषपानका घनिष्ठ संबन्ध है। जबतक शिवजी विष पीकर उसकी दाहक ज्वालाओंको शान्त नहीं कर देते तबतक देवता

अमृतका पान नहीं कर सकते। देखना चाहिये कि 'विष' क्या है? और शिवजीने विषको कंठमेंही क्यों रख लिया? निघंटुमें जलके १०१ नाम दिये गये हैं। उनमें दो शब्द 'विष' और 'अमृत' भी हैं। ये दोनों जलके पर्यायवाची हैं। लौकिक संस्कृतके कोषोंमेंभी विष और अमृत जलके पर्यायरूपमें पाये जाते हैं। बात यह है कि वीर्य या रेत जलकाही रूप है। रेतही कामका अधिष्ठान है। रेतसे जो शक्ति बनती है उसके दो रूप हैं। दैवी और आसुरी या अमृतरूप और विषरूप। उस शक्तिसे जब मनुष्य आत्मविनाशकी ओर प्रवृत्त होता है तब वह उसके विषरूपसे दग्ध होता है। उसीको संयमद्वारा शान्त बनाकर उसके सौम्यरूपसे जब वह अमृततत्वकी ओर बढता है तभी मानो जल या रेततत्वसे अमृतका आस्वादन करता है। विष और अमृत दोनों एकही समुद्रसे जन्म लेते हैं। विषके साथ यदि अमृतभी रहे तो विषकाही काम करेगा। अतएव विषके प्रकट होनेपर देवोंको यह आवश्यकता प्रतीत हुई कि कोई इसे पचाकर शान्त कर दे तो हमारे लिये अमृतपानका मार्ग सरल हो जाय। शिवजीके अतिरिक्त और किसी देवमें यह सामर्थ्य न था। शिवजीके विषपानका कारण उनका योग है। शिवजी योगीश्वर हैं। उन्होंने छओ चक्रोंपर पूर्ण अधिकार पा लिया है। अतएव शक्तिका जो विषाक्तरूप है उसको पचाने या भस्म करनेका सामर्थ्यभी उनको प्राप्त है। हम यह कह चुके हैं कि पांच चक्रोंका भेदन करलेनेकेबाद योगी पुनः कामके अधीन नहीं होता है। काम सर्वथा योगीके वशमें हो जाता है। अर्थात् वह कामके विकारोंको पूर्णतः जीत लेता है। जबतक यह स्थिति प्राप्त नहीं होती तबतक साधनाके मार्गमें निरंतर कामकी बाधाएँ आती हैं। काम या जलका विषस्वरूप जबतक योगीको जलाता रहता है तबतक वह अमृतका निर्बाधपान नहीं कर पाता है। शिवस्वरूप होकरही योगी कामसे अतीत हो जाता है। कामसे अतीत योगीही विषको पूरीतरह अपने वशमें कर पाता हैं। विषको जिसने अपने लिए निरापद् बना लिया है उन्हीं देवोंको अमृत पानकी सुविधा और सामर्थ्य प्राप्त होता है। विषको कंठ या पांचवें चक्रमें स्थापित करनेका रहस्य

यह हैं कि पांचवें चक्रमें आकरही योगी निर्भय और निरामय बनता है। यदि विष कंठसे नीचे रहे अर्थात् योगीकी साधना विशुद्धचक्रसे नीचे हो तो विष अपना प्रभाव अवश्य दिखलाता है। देवासुरोंके या विष और अमृतके आध्यात्मिक युद्धमें विषपानका सामर्थ्य रखनेवाला योगीश्वरही स्वयं विजयी होकर सबको विजय प्राप्त कराता है।'*

३ 'दारुन दनुज जगत दुखदायक०' इति। दनुज, दारुण और जगत दुःखदायकसे त्रिपुरासुरका बल कहकर 'जार्‍यो एकही बान' से शंकरजीका सामर्थ्य दिखाया कि ऐसे विकट योद्धाकोभी एकही बाणसे जला डाला।

'त्रिपुर' इति। भा। ७। १०। में लिखा है कि एक बार जब देवताओंने असुरोंको जीत लिया तब वे महामायावी शक्तिमान् मयदानवकी शरणमें गये। मयने अपनी अचिन्त्य शक्तिसे तीन विमान लोहे, चाँदी और सोनेके ऐसे बनाये कि जो तीन पुरोंके समान बड़े बड़े और अपरिमित सामग्रियोंसे भरे हुए थे। इन विमानोंका आनाजाना नहीं जाना जाता था। महाभारतसे पता चलता है कि ये तीनों पुर (जो विमानके आकारके थे) तारकासुरके तारकाक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली नामक तीनों पुत्रोंने मयदानवसे अपने लिये बनवाये थे। इनमेंसे एक नगर (विमान) सोनेका स्वर्गमें दूसरा चाँदीका अन्तरिक्षमें और तीसरा लोहेका मर्त्यलोकमें था। ऋग्वेदके कौषीतमें और ऐतरेय ब्राह्मणोंमें त्रिकका वर्णन है। यथा '(असुराः) हरिणीं (पुरं) हादो दिविचक्रिरे। रजतां अन्तरिक्ष लोके अयस्मयी-मस्मिन् अकुर्वत।' (कौं० ८। ८, ऐ० १। २३)। अर्थात् असुरोंने हिरण्यमयी पुरीको स्वर्गमें बनाया, रजतमयीको अन्तरिक्षमें और अयस्मयीको इस पृथ्वीलोकमें। तीनों पुरोंमें एक एक अमृतकुंडभी बनाया गया था। इन विमानोंको लेकर वे असुर तीनों लोकोंमें उड़ा करते थे।

---

* नोट—श्री अग्रवालजीके लेखसे योगका महत्व सिद्ध होता है। परंतु प्रेमी पाठकोंने श्री प्रल्हादजी, श्री मीराबाईजी, श्री अंगद भक्तजी, श्री कल्हस्वामीजी इत्यादि अनेक भगवद्भक्तोंके चरित्र पढे हैं। ये लोग योगी न थे, वरंच प्रेमी भक्त थे। इन लोगोंपर विष अपना प्रभाव किंचित्‌भी न दिखा सका, तब भला परमभक्त भगवान् शङ्करजीका कहना ही क्या?

अब देवताओं से अपना पुराना बैर स्मरणकर मयदानवद्वारा शक्तिमान होकर तीनों विमानोंद्वारा दैत्य उनमें छिपे रहकर तीनों लोकों और लोकपतियोंका नाश करने लगे। जब असुरोंका अत्याचार बहुत बढ़ गया तब सब देवता शङ्करजीकी शरण गये। शङ्करजीने एक ऐसा बाण तीनों पुरोंपर छोड़ा कि जिससे सहस्रशः बाण और अग्निकी लपटें निकलती जाती थीं। उस बाणसे समस्त विमानवासी निष्प्राण हो गिर गये। महामायावी मयने सबको उठाकर अपने बनाये हुए अमृतकुण्डमें डाल दिया जिससे वे सब फिर वज्रसमान पुष्ट हो गये। जब जब शङ्करजी त्रिपुरके असुरोंको बाणसे निष्प्राण करते थे, तब तब मयदानव सबको इसीप्रकार जिला लेता था। शङ्करजी उदास हो गये, तब उन्होंने भगवान्‌का स्मरण किया। भगवान्‌ने यह युक्ति की कि स्वयं गौ बन गये और ब्रह्मा को बछड़ा बनाकर बछड़े सहित तीनों पुरों में जा सिद्धरसके तीनों कूपों का सारा जल पी गये। दैत्यगण खड़े देखते रह गये। वे सब ऐसे मोहित हो गये थे कि रोक न सके। तत्पश्चात् भगवान् ने युद्धकी सामग्री तैयार की। धर्मसे रथ, ज्ञानसे सारथी, वैराग्यसे ध्वजा, ऐश्वर्यसे घोड़े,तपस्यासे धनुष,विद्या से कवच, क्रियासे बाण और अपनी अन्यान्य शक्तियोंसे अन्यान्य वस्तुओंका निर्माण किया। इन सामग्रीयों से सुसज्जित हो शङ्करजी रथपर चढ़े और एकही बाणसे अभेद्य विमानों को भस्म कर दिया। (भा० ७।१०)।

दूसरा आख्यानः—त्रिपुरोंकी उत्पत्ति और नाशका एक आख्यान महर्षि मार्कण्डेयने किसी समय धृतराष्ट्र से कहा था जो दुर्योधन ने महारथी शल्यसे (कर्णपर्वमें) कहा है। उसमें बताया है कि तारकासुरके तारकाक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली ऐसे तीन पुत्र थे, जिन्होंने घोर तप करके ब्रह्माजीसे यह वर माँग लिया था कि 'हम तीन नगरों में बैठ कर इस सारी पृथ्वी पर आकाश मार्गसे विचरते रहें। इस प्रकार एक हजार वर्ष बीतनेपर हम एक जगह मिलें। उस समय जब हमारे तीनों पुर मिलकर एक हो जायँ तो उस समय जो देवता उन्हें एक ही बाण से नष्ट कर सके, वही हमारी मृत्यु का कारण हो।' यह वर पाकर उन्होंने मयदानव के पास जाकर उससे तीन नगर अपने तपके प्रभावसे

ऐसे बनानेको कहे कि उनमेंसे एक सोनेका, एक चाँदीका और एक लोहेका हो। तीनों नगर इच्छानुसार आ जा सकते थे। सोनेका स्वर्ग में, चाँदीका अन्तरिक्षमें और लोहेका पृथ्वीमें रहा। इनमेंसे प्रत्येक की लम्बाई चौड़ाई सौ सौ योजन की थी। इनमें आपसमें सटे हुये बड़े बड़े भवन और सड़कें थीं तथा अनेकों प्रासादों और राजद्वारोंसे इनकी बड़ी शोभा हो रही थी। इन नगरोंके अलग अलग राजा थे। स्वर्णमय नगर तारकाक्षका था, रजतमय कमलाक्षका और लोहमय विद्युन्मालीका। इन तीनों दैत्योंने अपने अस्त्रशस्त्रबलसे तीनों लोकों को अपने वशमें कर लियाथा। इन दैत्यों के पास जहाँ तहाँ से करोड़ों दानव योद्धा आकर एकत्रित हो गये। इन तीनों पुरोंमें रहनेवाला जो पुरुष जैसी इच्छा करता, उसकी उस कामनाको मयदानव अपनी मायासे उसी समय पूरी कर देता था। यह तारकासुर के पुत्रोंके तपका फल कहा गया।

तारकाक्षका एक पुत्र 'हरि' था। इसने तपसे ब्रह्माजी को प्रसन्न कर यह बर प्राप्त कर लिया कि 'हमारे नगरोंमें एक बावड़ी ऐसी बन जाय कि जिसमें डालनेसे शस्त्रसे घायल हुए योद्धा औरभी अधिक बलवान् हो जायँ।' इस वरके प्रभावसे दैत्यलोग जिस रूप और जिस वेषमें मरते थे उस बावड़ीमें डालनेपर वे उसी रूप और उसी वेषमें जीवित होकर निकल आते थे। इस प्रकार उस बावड़ी को पाकर वे समस्त लोकों को कष्ट देने लगे। देवताओं के प्रिय उद्यानों और ऋषियोंके पवित्र आश्रमोंको उन्होंने नष्टभ्रष्ट करडाला। इन्द्रादि देवता जब उनका कुछ न कर सके तब वे ब्रह्माजी की शरण गये। ब्रह्माजीकी आज्ञासे वे सब शङ्करजीके पास गये और उनको स्तुति से प्रसन्न किया। महादेवजीने सबको अभयदान दिया और कहा कि तुम मेरे लिये एक ऐसा रथ और धनुषबाण तलाश करो जिनके द्वारा मैं इन नगरों को पृथ्वीपर गिरा सकूँ।

देवताओंने विष्णु, चन्द्रमा और अग्निको बाण बनाया तथा बड़े बड़े नगरोंसे भरी हुई पर्वत, बन और द्वीपोंसे व्याप्त वसुन्धराकोही उनका रथ बना दिया। इंद्र, वरुण, कुवेर और यमादि लोकपालोंको

घोड़े बनाये एवं मनको आधारभूमि बना दिया। इस प्रकार जब (विश्वकर्माका रचा हुआ) वह श्रेष्ठ रथ तैयार हुआ तब महादेवजीने उसमें अपने आयुध रक्खे। ब्रह्मदण्ड, कालदण्ड, रुद्रदण्ड और ज्वर ये सब ओर मुख किये हुये उस रथकी रक्षामें नियुक्त हुए। अथर्वा और अंगिरा उनमें चक्ररक्षक बने। सामवेद, ऋग्वेद और समस्त पुराण उस रथके आगे चलनेवाले योद्धा हुए। इतिहास और यजुर्वेद पृष्ठरक्षक बने। दिव्यवाणी और विद्याएँ पार्श्वरक्षक बनीं। स्तोत्र, वषट्कार और ओंकार रथके अग्रभागमें सुशोभित हुये। उन्होंने छहों ऋतुओंसे सुशोभित संवत्सरको अपना धनुष बनाया और अपनी छायाको धनुषकी अखण्ड प्रत्यंचाके स्थानोंमें रक्खा। ब्रह्माजी उनके सारथी बने। भगवान् शंकर रथपर सवार हुए और तीनों पुरोंको एकत्र होनेका चिंतन करने लगे। धनुष चढ़ाकर तैयार होतेही तीनों नगर मिलकर एक हो गये। शंकरजीने अपना दिव्य धनुष खींचकर बाण छोड़ा जिससे तीनों पुर नष्ट होकर गिर गये। इस तरह शंकरजीने त्रिपुरका दाह किया और दैत्योंको निर्मूलकर त्रिलोकका हित किया।

बाल्मीकीयसे पता चलता है कि दधीचि महर्षिकी हड्डियोंसे पिनाक बनाया गया था और भूषणटीकाकारका मत है कि भगवान् विष्णु बाण बने थे जिससे त्रिपुरासुरका नाश हुआ। यही धनुष पीछे राजा जनकके यहाँ रख दिया गया था। दधीचिकी हड्डियोंसे दो धनुष बने, शार्ङ्ग और पिनाक। वाल्मीकीय रा० बा० सर्ग ७५ के आधारपर कहा जाता है कि विष्णुभगवान्ने शार्ङ्गसे असुरोंको मारा और शंकरजीने तीनों पुरोंको जलाया।

पाठपर बिचार :– 'जार्‌यो' पाठ उत्तम है। भा० ७।१०।६८-७० में कहा है कि '**शरं धनुषि सन्धाय मुहूर्तेऽभिजितीश्वरः।६७। ददाह तेन दुर्भेद्या हरोऽथ त्रिपुरो नृप। दिवि दुन्दुभयो नेदुर्विमानशतसंकुलाः।६८। एवं दग्ध्वा पुरस्तिस्रो भगवान् पुरहा नृप**।७०।' इन उद्धरणोंमें 'ददाह' और 'दग्ध्वा' शब्द आये हैं जो 'जार्‌यो' पाठका समर्थन करते हैं।

४ (क) 'जो गति अगम०' इति। कैवल्यपद, सुगति, परमपद और गति ये शब्द शङ्करजीके सम्बन्धमें प्रयुक्त हुये हैं। अतः ये पाँचो

पर्यायवाची हैं। यथा, 'जोग कोटि करि जो गति हरि सों मुनि माँगत सकुचाहीं। वेद बिदित तेहि पद पुरारिपुर कीट पतंग समाहीं।४।', 'सुख संपति मति सुगति सुहाई। सकल सुलभ संकर सेवकाई।६।', 'जो गति अगम महामुनि गावहिं। तुअ पुर कीट पतंगउ पावहिं।७।', 'देव ज्ञान वैराग्य धन धर्म कैवल्य सुख सुभग सौभाग्य सिव सानुकूलं।१०।' और 'लहत परमपद पय पावन जेहि चहत प्रपंच उदासी।२२।'।

(ख) कैवल्य परमपद दुष्प्राप्य है, यथा 'अति दुर्लभ कैवल्य परमपद। कहत संत पुरान निगम आगम बद।' पद ३० (क) देखिये।

(ग) 'महामुनि दुर्लभ', यथा 'जोग कोटि करि जो गति हरि सों मुनि मांगत सकुचाहीं।४।' यहाँ प्रथम निदर्शना अलंकार है।

(घ) 'मरनकाल अपने पुर' से जनाया कि प्राणीको मरते समय मुक्ति देना और वह भी काशीपुरीहीमें, यह अधिकार आपको प्राप्त है, जैसा कि श्रीरामतापिनी उपनिषद्की श्रुतिसे स्पष्ट है। पुनः इससे यहभी सूचित होता है कि काशीवासी होनाभी आवश्यक नहीं है, केवल मरणसमय वहाँ होनेसेही यह सद्गति प्राप्त हो जाती है। पद ४ टि० ४ देखिये।

(ङ) 'सदाशिव' को पृथक् पृथक् दो शब्द मान लेनेसे भाव यह होगा कि निरंतर जीवोंको सद्गति प्रदान करते हैं। गति देनेमें 'सदाशिव' नाम दिया।

५ 'देत सदाशिव सबहिं समान' पदके आदिमें 'को जाचिए०' कहकर अब यहाँ दातृत्वगुण दिखाते हैं। 'सबहिं' अर्थात् ऊँच नीच पशु, पक्षी, कीड़े, पतंग आदि सभी जीव जन्तुओंको। यथा 'जो गति अगम महामुनि गावहिं। तव पुर कीट पतंगहु पावहिं।', 'समान' अर्थात् एकसी। यह नहीं कि ऊँचेको और, नीचेको और, पशु कीट पतंगको और, मनुष्यादिको और। इससे समद्रष्टा जनाया। 'जो' और 'सोइ' शब्दभी इसी सिद्धान्तकी पुष्टि करते हैं, यथा

'जासु नाम बल संकर कासी । देत सबहिं सम गति अबिनासी' (बा०),'अहं भवन्नाम गृणन् कृतार्थो वसामि काश्यामनिशं भवान्या मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं दिशामि मंत्रं तव रामनाम ॥' (अध्यात्म-रामायणे) अर्थात् हे राम ! मैं भवानीसहित निरंतर काशीमें वास करते हुए आपके नामको जपते हुए कृतार्थ होता रहता हूँ और वहां मरनेवालोंको उनकी मुक्तिकेलिये आपके रामनामात्मक मंत्रको देताहूँ।

६ (क) 'सेवत सुलभ' इति। सौलभ्य यह है कि मदारके पत्ते, बेलके पत्ते, धतूरेके फल फूल, वा अक्षत (चावल) और जलमात्र चढ़ा देनेसे इहलोक सुख तथा परलोक दे देतेहैं। यथा 'सेवा सुमिरन पूजिबो पाताखत थोरे' । कवितावली उत्तरकांडके निम्न उद्धरणोंसे मिलान कीजिये—

'रति सो रवनि सिंधु मेखला अवनिपति,
औनिप अनेक ठाढ़े हाथ जोरि हारि कै ।
संपदा समाज देखि लाज सुरराजहू के,
सुख सब बिधि दीन्हें हैं सँवारिकै ॥
इहां ऐसो सुख सुरलोक सुरनाथपद,
जाको फल तुलसी सो कहैगो बिचारिकै ।
आकके पतौआ चारि फूल कै धतूराके द्वै,
दीन्हें ह्वै हैं बारक पुरारि पर डारिकै ॥१६४॥'
'बारिबुंद चारि त्रिपुरारि पर डारिए तौ,
देत फल चारि लेत सेवा साँची मानि सो ॥१६१॥'
'पात द्वै धतूरे के दै भोरे कै भवेस सों
सुरेसहू की संपदा सुभाय सों न लेत रे ॥१६२॥'
'स्यंदन गयंद बाजि राजि भले भले भट,
धन धाम निकर करनिहूं न पूजै क्वै ।
बनिता बिनीत पूत पावन सोहावन औ,
बिनय बिबेक विद्या सुलभ शरीर ज्वै ॥

इहाँ ऐसो सुख परलोक सिवलोक ओक,
ताको फल तुलसी सो सुनौ सावधान ह्वै।
जाने बिनु जाने कै रिसाने केलि कबहुँक,
सिवहिं चढ़ाये ह्वै हैं बेल के पतौआ द्वै ॥१६३॥'

६ (ख) 'उदार कल्पतरु' इति। ऊँच नीच जोभी कल्पवृक्षके तले जाता है उसे वह कल्पतरु, जो कुछभी वह प्राणी मनमें इच्छा करता है, सब देता है। इसी तरह आपभी याचकका अभीष्ट पूरा करते हैं। अतः कल्पतरु कहा। पुनः, 'उदार कल्पतरु' विशेषण देकर जनाया कि आप उससे श्रेष्ठ हैं। वह बुरी भली सभी वस्तु देता है। परंतु आप हानिकारक वस्तु नहीं देते। कहावत है कि किसी मनुष्यने कल्पवृक्षके नीचे समस्त अभीष्ट सुख प्राप्त होनेपर विचारा कि कहीं सिंह न आकर खा ले। बस, विचार आतेही सिंह आया और उसे खा गया। शिवजीरूपी कल्पवृक्षमें यह बात नहीं है। इसीसे यहां उदार कहकर आगे 'परम सुजान' भी कहते हैं। 'परम सुजान' कहकर जनाया कि दोनोंही हृदयकी बात जान लेते हैं, परंतु कल्पवृक्ष 'सुजान' है और आप 'परम सुजान' हैं। भाव यह कि कल्पवृक्ष हृदयकी बात जानकर उसकी पूर्तिमात्र कर देता है। यह नहीं विचारता कि इससे माँगनेवालेका अनिष्ट होगा या इष्ट और अनिष्ट फलभी दे देता है। परन्तु शङ्करजी अनिष्ट फलवाली वस्तु माँगनेसेभी नहीं देते। वैजनाथजी लिखते हैं कि 'परम सुजान' से जनाया कि पूजा बने या न बने उसे नहीं देखते, केवल उसके भावको देख प्रसन्न हो जाते हैं।

(ग) 'पार्वतीपति' इति। पार्वती पर्वतकी कन्या हैं। पर्वत परोपकारी होते हैं। यथा **'संत बिटप सरिता गिरि धरनी। परहित हेतु सबन्हकी करनी।'** अतः पार्वतीजीभी परोपकारिणी हुईं। आपने शङ्करजीसे श्रीरामतत्व, श्रीरामचरित, श्रीरामनाममाहात्म्य इत्यादि पूछपूछकर जगत्का बड़ा उपकार किया है। यथा **'तुम्ह रघुबीर चरन अनुरागी। कीन्हिहु प्रश्न जगत हित लागी॥'** (बा०)। 'पार्वती-पति' कहकर शङ्करजीको परमपरोपकारी जनाया।

(घ) पार्वतीपति उपमेय, कल्पवृक्ष उपमान और उदारता धर्म है। 'समान' वाचक लुप्त है। अतः यहाँ वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। वीरकविजी लिखते हैं कि यहां व्यंग्यार्थ से व्यतिरेककी ध्वनि है। कल्पवृक्षका मिलना दुर्गम है और आप सेवा करतेही भक्तों को सुलभ होते हैं। इससे श्रेष्ठ कल्पतरु हैं।

७ ' देहु कामरिपु रामचरनरति० ' इति। तुलसीदासजी श्रीरघुनाथजी के चरणोंमें प्रेमका वरदान माँगते हैं। जिसके पास जो चीज़ होती है वही माँगी जाती है। अतएव यहाँ तक अन्तराओंमें श्रीशिवजीमें रामप्रेम और दानमें उदारता दिखाकर तब वर मांगते हैं। कालकूटभक्षण, काशी में जीवों को सद्गतिकी प्राप्ति इत्यादि सबके कारण रामभक्ति, रामनाम, रामभजनही हैं। यह ऊपर उदाहरणों द्वारा दिखा दिया है। कामके रहते भजन नहीं हो सकता। इसीसे भजन के लिये जहाँ तहाँ इसके त्याग का उपदेश दिया गयाहै। यथा ' **काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरकके पंथ। सब परिहरि रघुबीरहिं भजहु भजहिं जेहि संत ॥** ' [सुं०], ' **जहाँ काम तहँ राम नहिं जहां राम नहिं काम। तुलसी कबहुँ कि होत हैं रवि रजनी इक ठाम ॥** ', '**क्रोधिहिं सम कामिहि हरि कथा। ऊसर बीज बये फल जथा ॥** ' अतः शिवजी से प्रार्थना करते हैं कि आप कामरिपु हैं। आपसे काम डरता है। अतः आप उससे हमारी रक्षा करें।

पुनः, कामदेव त्रैलोक्यविजयी है। यथा ' **काम कुसुम धनु-सायक लीन्हे। सकल भुवन अपने बस कीन्हे ॥** ' (बा०), ' **एको पुत्रस्त्रिभुवनविजयी मन्मथो दुर्निवारः ।** ' (उद्भटसागरे ३-१३)। उसको भी आपने भस्म कर दिया। इस प्रकार 'कामरिपु' सम्बोधनसे आपका अद्भुत सामर्थ्य दिखाकर यह सूचित किया कि ऐसे समर्थ होने से आप हमारी रक्षा उससे अवश्य कर सकेंगे। इस पद के प्रारम्भ में ' को जाचिये संभु तजि आन ' कह कर यहाँ तक उसके कारण कहे।

कुछ पुस्तकोंमें ' देहु रामपदनेहु कामरिपु ' पाठ है। यदि उस

पाठको शुद्ध मानें तो 'देहु रामपदनेहु' कह कर 'कामरिपु' कहने का भाव यह होगा कि रामपद-प्रेम दीजिए और उसकी रक्षा का सामर्थ्यभी दीजिये। 'देहु कामरिपु' प्रथम कहने से यह भावभी प्रकट होता है कि कामने हमको बहुत भयभीत कर रखा है। उससे इतना घवड़ाये हुये हैं कि पहले 'कामरिपु' ही शब्द मुँह से निकल पड़ा। तात्पर्य्य कि कवि आतुर है कि शीघ्र उससे रक्षा की जाय। विशेष पद ७ में देखिये।

पुनः, 'कामरिपु' सम्बोधन देकर जनाया कि मुझे निष्काम रामभक्ति की चाह है। किसी प्रकारकी कामना कभी मेरे हृदयमें न उठे, ऐसी कृपा कर दीजिये। आप कामरिपु हैं। अतः निष्काम भक्ति देनेको समर्थ हैं।

८ 'कृपानिधन' का भाव कि हममें कुछभी भक्तिभाव साधन आदि पुरुषार्थ नहीं है जिसका हम भरोसा कर सकें। एकमात्र आप की कृपाकाही अवलम्ब है। आप अपने कृपालु स्वभावसे अपनी ओरसे कृपा कीजिये। पुनः भाव कि बिना आपकी कृपाके रामभक्ति मिलती नहीं। यथा '**जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भक्ति हमारी॥**" (बा०)। अतएव 'कृपानिधान' कहकर कृपा चाहते हैं। जो कृपाका निधान है वही कृपा कर सकताहै।

आदिमें सबप्रकार समर्थ कहा, और अन्तमें कृपानिधान। कृपा गुणमें भी वही भाव है कि एकमात्र हमही जीवका दुःख हरने को समर्थ हैं। अतएव भाव यह है कि तब मैं और किसके पास जाऊँ? आपही विषय विषसे और काम क्रोध लोभरूपी त्रिपुरसे मेरी रक्षा कीजिये और रामभक्ति दीजिये।

४ (४) राग धनाश्री* (भा०,बे०)

दानि[१] कहूँ[२] संकर से[३] नाहीं।

दीनदयाल दिबोई[४] भावत[५] जाचक सदा सोहाहीं॥१॥

---

* 'राग धनाश्री' शब्द ६६ में नहीं हैं। ६६ में यह पद अगले पद ५ के पश्चात् है जो 'राग कानरा' का है। १ दानि-६६, भा०, बे०, प्र०। दानी-५१, आ०, शि०, ७४। २ कहूँ-६६, भा०, बे०, डु०।

मारि कै मारू थप्यो जग मैं[6] जाकी प्रथम रेख भट माहीं।
ता ठाकुर को रीझि निवाजिबो[7] कह्यो क्यों परत मोहि[8] पाहीं ॥२॥
जोग कोटि करि जो गति हरि सों मुनि मांगत सकुचाहीं।
बेद बिदित तेहि पद पुरारिपुर कीट पतंग समाहीं ॥३॥
ईस उदार उमापति परिहरि अनत जे जाचन जाहीं।
तुलसिदास ते मूढ़ माँगने कबहुं न पेट अघाहीं ॥४॥

शब्दार्थ—दानी = जो दान दे। दान = वह धर्म्मार्थ कर्म जिसमें श्रद्धा या दयापूर्बक दूसरेको धनादि दिया जाता है। खैरात। से = सदृश, समान। दिबोई = (दिबो + ई) यह बुन्देलखंडी मुहावरा है। (दीनजी) देनाही। भावत = अच्छा लगता है। जाचक (याचक) = माँगनेवाला 'को जाचिए०' पद ३ देखिये। सोहाहीं=अच्छे वा प्रिय लगते हैं। मारू (मार) = कामदेव। थप्यो (संस्थापन) = स्थापित करना, ठहराना, प्रतिष्ठित करना, प्रभावयुक्त कर देना। मैं में। जा = जिस, रेख = गणना, गिनती। भट = योधा। माहीं (मध्य, माँझ, माँह) = में। ता = उस। ठाकुर = मालिक, सर्वशक्तिमान स्वामी। यह ठेठ हिन्दीका शब्द है। रीझि (सं. रंजन) = प्रसन्न होकर। निवाजिबो = निवाजिश करना। निवाजना (फ़ारसी शब्द 'निवाख्तन' से बना है) = कृपा करना। क्यों = क्योंकर, किस प्रकार, कैसे। कह्यो परत = कहा जा सकता है। परना (पड़ना) = जाना, सकना, जा सकना। मोहि = मुझसे। पाहिं (प्रा० पाह, पास) = (किसीके) प्रति; से। यथा 'कोउ न बुझाई कहै नृप पाहीं। ये बालक अस हठ भल नाहीं' (बा०)। जोग (योग) = उपाय, प्रयोग। कोटि =

कहुं ७४, आ० (छु०)। ३ से—६६, ह० छु०, भ०, १५। सम—भा०, बे०, ५१, आ०, ७४। सो—प्र०, ज०। ४ दिबोई—६६, भा०, बे०, ५१, ज०, आ०। देबोई—प्र०, ७४; ह०। ५ भावत—६६, भ०। भावै—औरोंमें। ६ मैं—६६ दी०, प्र०। में—भा०, बे०, छु०, बै०, वि०, भ०। मै—ह०। ७४, मु० में नहीं है। ७ निवाजब—७४। ८ मोहि—६६, पे०, भ०, ज०, । प्र०। मो—भा०, ह०, ५१, ७४, आ०(भ०)।

करोड़ों, अनेक। गति = पद ३ देखिये। सों = से। सकुचाहीं = सकुचाना, हिचकना। तेहि = उस। पद = गति, धाम, लोक। यथा '**होइ प्रसन्न दीन्हेउ सिवपद निज**। ऊपर 'जो गति' और यहां 'तेहि पद' कहकर 'गति' और 'पद' को पर्य्यायवाची जनाया। पुरारि = त्रिपुरासुरके अरि (शत्रु); शिवजी। पुरारिपुर = काशी। कीट = रेंगनवाले कीड़े, पतंग, उड़नेवाले छोटे छोटे जंतु। समाहीं = समाते हैं। समाना, प्रवेश करना; जाना। ईस (ईश) = समर्थ, स्वामी, ईश्वर। यह शब्द गोस्वामीजीने बहुत स्थलोंपर प्रायः शिवजीकेलियेही प्रयुक्त किया है, यथा '**एहि बिधि भयो सोच बस ईसा**।' (बा०), '**इस सीस बससि त्रिपथ लससि०**' (२०), '**ईस सीस पर बिभासि०**' (१७), इत्यादि। परहरि = छोड़कर। अनत = अन्यत्र, दूसरी जगह। जाचन = माँगने। ते = वे। मूढ़ = मूर्ख। माँगने = मंगन, मँगतां, माँगनेवाले, भिक्षुक। कबहुँ = कभीभी। पेट अघाहीं = पेट भरना, तृप्त होना, भरपेट भोजन मिलना, दरिद्रताका छूट जाना। यह ठेठ हिन्दी मुहावरा है। अघाना, तृप्त होना, मनका भर जाना, इच्छा पूर्ण होना।

पद्यार्थ:—श्रीशंकरजी सरीखे दानी कहींभी नहीं हैं। वे दीनोंपर बिना कारण दया करते हैं। उन्हें देनाहीं भाता है, याचक उनको सदा अच्छे लगते हैं। जिसकी योद्धाओंमें प्रथम गणना है उस कामदेवको मारकर अर्थात् भस्म करके (जिसने फिर) उसे जगत्‌में (पूर्ववत्) स्थापित कर दिया, उस स्वामीका रीझकर कृपा करना मुझसे क्योंकर कहा जा सकता है? करोड़ों प्रकारके (योग, यज्ञ, जप, तप, आदि) उपाय करके (भी) मुनि लोग भगवान् विष्णुसे जिस गतिको माँगते सकुचाते हैं, उसी वेदविख्यात् धाममें पुरारि (महादेवजी) के पुर (काशी) के कीड़े पतंगे समाते चले जाते हैं, अर्थात् प्रविष्ट होते हैं। यह वेदोंमें प्रसिद्ध है। तुलसीदासजी कहते हैं कि (ऐसे) समर्थ, महादानी, उमाजीके पति महादेवजीको छोड़कर जो अन्यत्र माँगने जाते हैं, उन मूर्ख भिखमंगोंका पेट कभीभी नहीं भर पाता। अर्थात् वे सदा कंगालही बने रहते हैं। उनको टुकड़े टुकड़ेके लाले

पड़े रहते हैं। भाव कि यदि वे शंकरजीसे माँगते तो सदाकेलिये अयाचक बन जाते। फिर कभी किसीसे माँगनेकी जरूरत नहीं पड़ती।

पूर्व पद ३ में कहा था कि 'को जाचिये शंभु तजि आन' इसपर यह कह सकते हैं कि 'औरभी तो देवता, भगवान् दाता, इत्यादि हैं। उनसे जाकर क्यों नहीं माँगते ?' इसपर कहते हैं कि 'दानि कहूं शंकर से नाहीं'। अर्थात् ऐसा कोई दानी हैं ही नहीं तब जाकर क्या करें ? मिलान कीजिये।

'दानी जो चारि पदारथको त्रिपुरारि तिहूं पुरमें सिर टीको।
भोरो भलो भले भायको भूखो भलोई कियेः सुमिरे तुलसीको॥
ता बिनु आसको दास भयो कबहूं न मिट्यो लघु लालच जी को।
साधो कहा करि साधन तैं जो पै राधो नहीं पति पारवतीको॥' क०॥

टिप्पणी:—१ (क) 'दिबोई भावत'। भाव कि यह उनकी स्वभावसिद्ध आदत है। उन्हें देनाही अच्छा लगता है। देनेसे कभी अघाते नहीं। इससे यहभी जनाया कि उन्हें यह चाह कभीं नहीं होती कि माँगनेवाला हमें कुछ पूजा चढ़ावे। माँगे भर, देनेको तो आप सदा तत्परही रहते हैं। यथा 'चाहै न अनंगअरि एको अंग मांगने को देबोई पै जानिये सुभाव सिद्ध बानिसो।' (क०)।

(ख) 'सदा सोहाहीं' इति। भाव कि (१) औरोंको समय समयपर सुहाते हैं और इनको सदा सुहाते हैं। इसीसे यह भी ज्ञात हुआ कि इनके पास याचकोंकी भीड़ सदा लगी रहती है। यथा 'जिमि उदारगृह जाचक भीरा'। इसीसे आगे 'उदार' भी कहा है। (२) औरोंको याचकोंकी भीड़ देख अंकुस लगता है, (बार बार माँगनेवाले मँगतापर दानी प्रायः रुष्ट हो जाते हैं) पर इनको उनकी भीड़ और उनका माँगना अच्छा लगता है। ये उनको देखकर प्रसन्न होते हैं। (३) और दातालोंग कुछ न कुछ स्वार्थ (यश, कल्याण इत्यादि) के लिये दान देते हैं, इससे स्वार्थ सिद्धिके पश्चात् उनको याचक नहीं सुहाते और आप तो निःस्वार्थ दान देते हैं। आपका यह स्वभावही है। अतः आपको सदा सुहाते हैं। इस तरह यहाँ शंकरजीका विलक्षण दातृत्वगुण दिखाया।

२ ' मारिकै मारु थप्यो जगमें जाकी प्रथम रेख० ' इति । (क) श्रीरामचरितमानस (बालकांड, दोहा ८२ से ८८ तक) में इसकी कथा है । कामदेवने जब शिवजीके मनमें क्षोभ उत्पन्न कर दिया और उनकी समाधि डगी, तब उन्होंने कोप करके अपना तीसरा नेत्र खोल कामदेवको भस्म कर दिया । यथा ' चितवत काम भयेउ जरि छारा ' । यह समाचार पा उसकी स्त्री रतिने सिर पीटती, विलाप करती आपके पास आ हाथ जोड़कर विनती की । उसपर करुणा करके आपने उसको अद्भुत वरदान देकर कामदेवको पुनः (बिना शरीरकेही) प्रभावशाली बना दिया । यथा ' प्रभु आसुतोष कृपाल सिब अबला निरखी बोले सही ॥
अब ते रति तव नाथ कर होइहि नाम अनंग ।
बिनु बपु ब्यापिही सबहि पुनि सुनु निज मिलन प्रसंग ॥ '

यही भाव कविने यहाँ ' थप्यो जग मैं ' से सूचित किया है । जिसने शत्रुता की उसकी स्त्री तथा उसपर तुरंतही इतनी कृपा ! शत्रुकोही वरदान ! बलिहारी, बलिहारी ! क्यों न हो ! ' सासति करि पुनि करहिं पसाऊ । नाथ प्रभुन्ह कर सहज सुभाऊ ॥ '

(ख) ' प्रथम रेख भट माहीं ' इति । पद ३ टि० ७ देखिये । पुनः, काम क्रोधादिका वर्णन जहां आता है वहां प्रायः इसका नाम प्रथम आता है । यथा ' काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरकके पंथ । ', ' तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ । ', ' काम क्रोध मद लोभ न जाके । ', और ' मिले रहैं मार्‍यो चहैं कामादि सँघाती ', इत्यादि । पुनः, योंभी कह सकते हैं कि कामक्रोधादि भट हैं । यथा ' सेनापति कामादि भट दंभ कपट पाखंड । ' (३०) । इनमेंसे कामही सबसे प्रथम गिना जाया करता है । ये सब भट जगत्को वशमें किये हुए हैं । इनमें काम सबका सरदार है; सो इसकोभी अपराध करनेपर शंकरजीने भस्म कर दिया ऐसा आपका सामर्थ्य है ।

मदनदहनका आध्यात्मिक रहस्य और उससे शिक्षा—आरोग्य, धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका मूल कारण कामदहन अर्थात् ब्रह्मचर्यपालन या जननेन्द्रियनिग्रह है । यह कामोपभोगकी प्रवृत्ति बड़ीही प्रबल है । काम

बड़े बड़े ऋषियों, मुनियोंकोभी क्षुभित कर देता है। गीतामेंभी कामकी प्रबलताका प्रमाण मिलता है। इसका पूर्ण निग्रह शिवजीके तृतीय नेत्र खुलनेसेही होता है यह शिवजीका तृतीय नेत्र सभी मनुष्योंके अभ्यन्तरमें अप्रकट और सुप्तरूपसे स्थित है। कामका पूर्णरूपसे निग्रह करनेकेलिये इस तृतीय नेत्रका विकास कर उसे जागृत करना होगा। अपनेको शरीर, प्राण, मन, चित्त, अहंकार और बुद्धि आदि न मानकर, इनसे परे जो शुद्ध चैतन्य है उसीको अपना असली रूप जानकर उसमें नित्य स्थित रहनाही तृतीय नेत्रको खोलना है। इस ज्ञानचक्षुके उदय होनेपर काम, जो कि प्रकृतिका एक गुण है, आपही शान्त हो जायगा; क्योंकि प्रकृतिका प्रभाव शुद्ध चैतन्यपर नहीं पड़ सकता। गीतामेंभी लिखा है कि अपनेको सबसे श्रेष्ठ आत्मा मानकर कामका दमन करे। (३।४३)। ऐसी आत्मभावनाका दीर्घकालतक मनन करनेसे और व्यवहारमेंभी इसी भावनाका स्मरण रखकर तदनुसार आचरण करनेसे दिव्य ज्ञानचक्षुका विकास होता है। जो कोई इस दिव्य ज्ञानचक्षुद्वारा सर्वत्र अखंड, एकरस, महाचैतन्यको अपनेमें और दूसरोंमें परिपूर्ण देखेगा, वही कामपर विजय प्राप्त कर सकेगा। चैतन्यके प्रकाशके सामने जड़ प्रकृतिका तम ठहर नहीं सकता। संतानके हेतुसे ऋतुकालमें स्वस्त्रीसमागम गृहस्थके लिये ब्रह्मचर्यके विरुद्ध नहीं है। (शिवाङ्कसे)

श्रीमान् गौड़जी लिखते हैं कि भगवान् शंकरने कामको जलाकर उमासे विवाह किया और पुत्र उत्पन्न करके देवताओंका काम किया। यह सब कर्तव्यबुद्धिसे किया, कामेच्छाकी प्रवृत्तिसे नहीं। उसके जलायेजानेसे संसारको यही शिक्षा देनी थी। यही मैथुनीसृष्टिका रहस्य है। हमारे पुराण स्पष्ट कह रहे हैं कि नर नारीकी उत्पत्ति बुद्धिके लिये हुई, विषयभोगकेलिये नहीं।

महामहोपाध्याय पं० श्रीप्रमथनाथजी, तर्कभूषण, लिखते हैं कि 'योगनिष्ठ त्रिपुरारिने समाधिके बलसे शरीरके नवद्वारोंमें अंतःकरणको निरुद्ध कर उसे हृदयकमलरूप अधिष्ठानमें अवस्थित कर रक्खा है एवं

क्षेत्रज्ञ जिसे अविनाशी ब्रह्म कहा करते हैं उसी आत्मस्वरूप परमात्माका वे आत्मामेंही साक्षात् कर रहे हैं। इस ध्यानगम्य योगीश्वरमूर्तिको देख-कर क्षणमात्रके लिये मदन किंकर्त्तव्यविमूढ हो गया। फिर कामदेव महा-देवके पास आकर कामनाराज्यकी सृष्टि करनेमें प्रवृत्त हो गया। परंतु यह कामका राज्य था, यह प्रेमका अर्थात् निष्काम अनुरागका राज्य नहीं था। इस राज्यमें क्या कभी भक्तके साथ भगवान्‌का मिलन हो सकता है? कामके सम्पर्कसे प्रेम कलुषित हो जाता है, हृदय भोगमें आसक्त होता है, प्रेम सूख जाता है, भक्त कामुक हो उठता है। ऐसी अवस्थामें भक्तके साथ भगवान्‌का मिलन कभीभी नहीं हो सकता। इसी कारण श्रीमहादेवजीका तृतीय नेत्र प्रज्वलित हो उठा। उससे विवेक आर वैराग्य-रूप ज्योतिपुंज निकला और उसने कामको भस्मसात् कर दिया। रतिका कामसम्पर्कजनित कलुषभाव दूर हो गया। वह प्रेमरूपा भक्तिपूर्णताको प्राप्त हुई। इसीका नाम देवाधिदेव श्रीमहादेवकी 'मदन दहन लीला' है। इसके बादही पार्वतीके साथ शिवका विवाह, प्रेम भक्तिकेसाथ सच्चिदानन्दविग्रह श्रीभगवान् सदाशिवकी अपूर्व मिलन लीला होती हैं।'

पं० सूर्यदीनशुक्लजी मदनदहन करके पुनः बिनुवपुत्याषनेका वरदान देना कथन करनेका अभिप्राय यह कहते हैं कि 'आपने बाहरके कठिन कामदेवको भस्म कर रतिके लिये आन्तरिक कामदेवको पुष्ट किया है। इसलिये मेरीं बाहरकी कठिन विषयवासना नष्ट कर आत्मारामकी ज्ञान वैराग्यादि कामना तथा भक्तिरूपी रतिके लिये कीर्तनवंदनादि आन्तरिक कामना पुष्ट कीजिये।'

४ (क) 'ता ठाकुरको रीझि निवाजिबो०' इति। भाव कि शत्रुता करनेपरभी तो यह असीम कृपा की, तब सन्मुख जीवोंपर प्रसन्न होकर जो कृपा करते हैं उसे कौन कह सकता है? वह तो अकथनीय है। मिलान कीजिये '**निर्बानदायक क्रोध जाकर भगति अवसहि बस करी।**' (ख) 'जोग कोटि करि माँगत सकुचाहीं' इति। संकोचका कारण यह है कि इतनेपरभी वे अपनेको उस गतिकी प्राप्तिका अधिकारी

नहीं समझते। इस प्रकार उस पदको दुष्प्राप्य दिखाकर काशीमें उसीकी प्राप्ति सहजही कीटादिको होना कहकर शिवजीकी दीनदयालुता, सामर्थ्य और उदारता दर्शित की है। कीट पतंगोंको वह पद सुलभ है, तब उच्चकोटिके जीवोंका तो कहना ही क्या? अन्यत्र मुनियोंको दुर्लभ और यहाँ जिनको कोई साधन नहीं उन कीट पतंगादिकोभी सुलभ यह उदारता है। (ग) 'समाहीं' में भाव यह है कि उसमें समाते जाते हैं। किसीको किंचितभी रोक नहीं है। यथा 'जो गति अगम महामुनि गावहिं। तुअ पुर कीट पतंगउ पावहिं॥' (१०) इस अंतरामें संकेत है कि काशी 'ज्ञान खानि अघहानिकर' है।

"वेद विदित०" इति। 'काश्यां तु मरणान्मुक्तिः इति श्रुति। अर्थात् काशीमें मरणमात्रसे कैवल्यकी प्राप्ति होती है। केदारखण्डमें श्रीशंकरजीकी करुणा एवं भक्तिका स्वरूप इस प्रकार खींचा हुआ मिलता है।
'**पेयं पेयं श्रवणपुटके रामनामाभिरामं, ध्येयं ध्येयं मनसि सततं तारकं ब्रह्मरूपम्। जल्पन्जल्पन्प्रकृतिविकृतौ प्राणिनांकर्णमूले, वीथ्यां वीथ्यामटति जटिलः कोऽपि काशीनिवासी॥**'

भूतभावन भगवान् विश्वनाथ काशीकी गलियोंमें कहते फिरते हैं कि तुम लोग अपने कानोंद्वारा सब जगह अभिरमण करनेवाले भगवान् रामके नामका पान करो और अपने मनमें सर्वदा निरंतर तारकब्रह्म रामनामका ध्यान करो। जिससमय प्राणीका स्वास्थ्य बिगड़कर विकृत हो जाता है और जब वह इस नश्वर संसारको छोड़नेको तैयार होता है तब भगवान् शंकर उसके कर्णमूलमें मोक्षदायक ब्रह्मतारक षडक्षर राममंत्रका उपदेश करते हैं। किसी एक नियत स्थानमें बैठकर यह काम नहीं करते, किन्तु वे काशीमें गलीगलीमें घूमघूमकर मनुष्योंको रामनामका स्मरण कराते हुए मोक्षमार्गमें भेजनेका उद्योग निरंतर करते रहते हैं। आपकी जीवोंपर ऐसी ममता और करुणा है।

जीवोंको मरतेसमय उपदेश करना श्रीरामतापनी उपनिषद्सेभी प्रमाणित होता है। यथा '**मुमूर्षोर्दक्षिणेकर्णे यस्यकस्यापि वा स्वयम्। उपदेक्ष्यसि मन्मंत्र स मुक्तो भविता शिव।**'

'मरणमात्रसे मुक्ति होती है' इसमें आजकलके पाश्चात्य शिक्षाप्राप्त महानुभावोंको संदेह होता है। वे अनेक शंकायें करते हैं। जैसे कि 'भला पापी और पुण्यात्माकी एकसी गति कैसे संभव है ? यदि है तो अन्याय है। फिर 'ऋतेज्ञानान्नमुक्तिः' अर्थात् विना ज्ञानके मुक्ति नहीं, यह श्रुतिवाक्यभी व्यर्थ एवं मृषा हो जाता है ?' हम आगे इन शंकाओंका समाधान कुछ विस्तारसे करेंगे, यहाँ केवल 'ऋतेज्ञानान्नमुक्तिः' इस श्रुतिवाली शंकाके विषयमें इतना मात्र कह देते हैं कि अथर्ववेदकी 'ज्ञानमार्ग च नामतः'। यह श्रुती कहती है कि श्रीरामजीके नामसे संपूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाता है, इसलिये 'ऋतेज्ञानान्नमुक्तिः' इस श्रुतिवाक्यमें मिथ्यात्व नहीं आ सकता। श्रीरामतारकब्रह्ममंत्रका उपदेश काशीजीमें शंकरजी मरतेसमय जीवोंको देते हैं इसके प्रमाण ये हैं,

'श्रीरामस्यमनुं काश्यां जजापवृषभध्वजः। मन्वन्तरसहस्रैस्तु जपहोमार्चनादिभिः॥ ततः प्रसन्नो भगवान् श्रीरामः प्राह शङ्करम्। वृणीष्व यदभीष्टं तद्दास्यामि परमेश्वर॥ मणिकर्ण्यां मम क्षेत्रे गङ्गायां वा तटे पुनः। म्रियते देहि तज्जन्तोर्मुक्तिनातो वरान्तरम्॥ क्षेत्रेऽत्र तव देशे च यत्र कुत्रापि वा मृतः। कृमिकीटादयोऽप्याशु मुक्ताः सन्तुनचान्यथा॥ मुमोर्षोर्दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम्। उपदेश्यसि मन्मंत्रं समुक्तो भविता शिव॥' इति श्रीरामतापनीयोपनिषत्। इसमें अत्रि और याज्ञवल्क्यजीके संवादमें लिखा है कि 'जप, होम अर्चनके द्वारा श्रीशिवजीने सहस्र मन्वन्तरपर्यन्त श्रीरामके नामका जप किया। तब प्रसन्न होकर भगवान्‌ने कहा कि हे महेश्वर ! मैं प्रसन्न हुआ, जो चाहो वर माँगो। शिवजी बोले कि 'मणीकर्णिकारूप मेरे क्षेत्रमें या श्रीगंगाके तटपर अथवा गंगाजीके भीतर जो मरे उसे मुक्ति दीजिये, मैं केवल यही वर चाहता हूँ। भगवान् श्रीरामजीने कहा हे शिवजी ! आपके इस क्षेत्रमें जहां कहींभी जो कोई कृमिकीटादि पर्यन्त जीव मरेगा वह शीघ्रही मुक्त हो जायगा, इसमें कोई संदेह नहीं। मरते समय जिस किसीके दाहिने कानमें आप स्वयं उपदेश करेंगे वह शीघ्र मुक्त हो जायगा।

यही बात भरद्वाजजीने मानसमें कही है। यथा 'आकर चारि जीव जग अहहीं। कासी मरत परमपद लहहीं॥ सोपि राममहिमा मुनिराया। सिव उपदेस करत करि दाया॥' और शिवजी स्वयं भी कहते हैं। यथा 'कासी मरत जंतु अवलोकी। जासु नाम बल करउँ बिसोकी॥'

पुन: पद्मपुराणमेंभी हमें इसका प्रमाण देखनेको मिलता है। उसके उत्तरखंड अध्याय २७०, श्लोक ४० में श्रीशिवजी स्वयं श्रीरामजीसे कहते हैं 'मुमूर्षोर्मणिकर्ण्यां तु अर्धोदकनिवासिनः। अहं ददामि ते मंत्रं तारकं ब्रह्मदायकम्॥' अर्थात् मरनेके समय मणिकर्णिका घाटपर गंगाजीमें जिस मनुष्यका शरीर गंगाजलमें पड़ा रहता है उसको मैं आपका ब्रह्मतारकमंत्र देता हूँ जिससे वह ब्रह्मको प्राप्त हो जाय। 'अर्धोदकनिवासिनः।' इन शब्दोंके अनुसार बंगाली लोग मृतप्राय प्राणीको अर्धजलमें रखकर उससे 'हरि बोल, हरि बोल,' कहलाते जहाँ तहाँ देखे जाते हैं।

६ (क) 'ईस उदार उमापति परिहरि०' इति। ईशता (सामर्थ्य) और उदारता दोनों गुण उपर टिप्पणीयोंमें दिखा आए हैं। 'उमापति' शब्द देकर आपको दृढ़प्रतिज्ञ जनाया। अर्थात् जो आप करनेकी प्रतिज्ञा कर लें उसमें कोई बाधक नहीं हो सकता। 'उमा' पार्वतीजीका उस समयका नाम है जब वे मातापिता आदिके समझानेपर नहीं मानीं और दृढ़तापूर्वक शिवजीसे विवाह होनेकेलिये तप करने चलीही गयी। 'हठ न छूट छूटै बरु देहा,' 'पुनि परिहरे सुखानेउ परना। उमहि नाम तब भएउ अपरना।' (बा०)।

इसकी कथा पद्मपु० सृष्टिखण्डमें है। श्रीपुलस्त्यजीने श्रीभीष्मजीसे कहा है कि जब पार्वतीजीने हिमाचलराजसे कहलवाया कि 'अपनी अभीष्ट वस्तुकी प्राप्तिकेलिये मैं तपस्याही करूँगी,' तब हिमवान्‌ने कहा, 'बेटी 'उ' 'मा' ऐसा न करो। तुम अभी चपल बालिका हो। तुम्हारा शरीर तपस्याका कष्ट सहन करनेमें समर्थ नहीं है। अब

घरकोही चलिये और वहीं इस कार्यकी सिद्धिके लिये कोई उपाय सोचिये।' पिताके ऐसा कहनेपरभी जब पार्वतीजी घर जानेको तैयार नहीं हुई तब हिमवान्‌ने मनहीं मन अपनी पुत्रीके दृढ़ निश्चयकी प्रशंसा की। इसी समय आकाशवाणी हुई 'गिरिराज! तुमने 'उ' 'मा' कहकर अपनी पुत्रीको तपस्या करनेसे रोका है, इसलिये संसारमें इसका नाम 'उमा' होगा। यह मूर्तिमति सिद्धि हैं। अपनी अभिलिषित वस्तु अवश्य प्राप्त करेगी।

(ख) 'ते मूढ़ मांगने०' इति। मूढ़का भाव कि वे अपनी हानि लाभ नहीं समझते।

५ (३) राग कानरा

बावरो रावरो नाहु[1] भवानी।
दानि बड़ो दिन देत दये[2] बिनु बेद बडाई भानी ॥१॥
निज घरकी घरबात[3] बिलोकहु हो[4] तुम्ह परम सयानी।
सिवकी दई संपदा देखत श्री सारदा सिहानी ॥२॥
जिन्हके भाल लिखी लिपि मेरी सुख की नहीं निसानी।
तिन्ह रांकन्ह[5] कहुँ नाक सँवारत हौं[6] आयो नकबानी ॥३॥
दुख[7]* दीनता दुखी इन्हकें दुख जाचकता अकुलानी।
यह अधिकार सौंपिए औरहिं भीखि[8] भली मैं जानी ॥४॥
प्रेम प्रसंसा बिनय ब्यंगि[9] जुत सुन बिधिकी बर बानी।
तुलसी मुदित महेस मनहिं मन जगतमातु मुसुकानी ॥५॥

---

१ नाहु—६६। नाह—इ०। नाहु—६९। नाह—भा०, बे०, प्र०, ७४, ज०, १५, ५१, आ०। २ दये—६६, प्र०, ज०, १५, इ०, वै०, भ०, दी०, वि०। दिये—भा०, बे०, मु०, डु०, ७४। ३ घरबात—६६, भा०, प्र०, दी०। बरबात—इ०, ७४, ज०, ५१, भ०, मु०, वि०। ४ हो—६६, ज०, मु०। हौ—भा०, इ०, आ०। ५ रांकन्ह कहु—६६। रांकन को—प्र०, ज०। रंकन्ह (वा, रंकन) को—औरोंमें। ६ हौं—भा०, बे०, ५९, १५, ७४। हों—६६, ज०, डु०। * ७—'दुख दीनता दुखी इन्हकें—६६, भा०, बे०, प्र०, इ०, भ०, ७४, दी०। दुखी दीनता दुखियन्हके—ज०, डु०, ५१, वै०, वि०। ८ भीख—इ०, १५, ५१, ७४, आ०। भीखि—६६, भ०। ९ व्यंग—ज०, दी०, बि०। बिंग—भा०, बे०, प्र०, ४५। व्यंग्य— ५१, बै०। व्यङ्ग—मु०, ७४। व्यंगि—६६।

शब्दार्थ—बावरा (सं० वातुल, जिसे वायुका प्रकोप हो) पागल, सनकी, जो कर्तव्याकर्तव्य न समझे और जो मनमें आया वही कर बैठे। रावरो = आपका। नाहु (नाह। सं० नाथ) = पति। दिन = नित्यप्रति। दये बिनु = जिसने पूर्व या इस जन्ममें किसीको कुछ दान नहीं दिया; बिना दिये हुएको। बड़ाई = मर्यादा। भानी (भानना) = भंग करना, तोड़ना, यथा 'सब कै सकति संभुधनु भानी', 'नाक में पिनाक मिस बामता बिलोक राम रोक्यो परलोक भारी भ्रम भानि कै।' (क०) घरबात=घरकी संपत्ति, गृहस्थी वा पूंजी। यथा 'कुसगात ललात जो रोटिन को घरबात घरे खुरपा खरिया।' (क०)। बिलोकहु (सं० बिलोकन =देखो। सयानी=चतुर संपदा=संपत्ति, धन। श्री=लक्ष्मीजी। सारदा (शारदा) = सरस्वती। सिहानी = सिंहाना, ईर्ष्या करना, पानेकेलिये ललचाना, यथा 'सूर प्रभुको निरखि गोपी मनहिं मनहिं सिहाति।' 'अवधराज सुरराज सिहाहीं। दसरथ धन लखि धनद लजाहीं।', 'देव सकल सुरपतिहिं सिहाहीं। आज पुरंदर सम कोउ नाहीं।' इसमें ललचाने के साथही प्रशंसाभी करनेका भाव रहता है। भाल = भौंहोंके ऊपरका भाग, ललाट। लिपि = अक्षरके अंकित चिह्न; कर्मरेख; बिधिके अंक। निसानी = चिह्नमात्र, नाम वा लेशमात्रभी। रांकन्ह (रंकन्ह) = रंकों; दरिद्रों, कंगालो। कहुं = के लिए, को। नाक = स्वर्ग, यथा 'सपने होइ भिखारी नृप रंक नाकपति होइ।' (अ०) सँवारत=सँवारना (सं० संवर्णन) = सजाना, बनाना। हौं = मैं। नकबानी = नाकमें दम। हौं आयो नकबानी = मेरे नाकों दम आ गया, मैं परेशान हो गया, हलकान हो गया। दुख (दुःख) = कष्ट। ऐसी अवस्था जिससे छुटकारा पानेकी इच्छा प्राणीमें स्वाभाविक हो। दीनता = दुःखसे उत्पन्न अधीनताका भाव। जाचकता = मंगनपना। अकुलाना = ऊबना, घबड़ाना, यथा 'परम सभीत धरा अकुलानी।' अधिकार = कार्यभार, प्रभुत्व। सौंपिए = सौंपना (सं० समर्पण) किसी वस्तुको दूसरेके अधिकारमें देना, सहेजना वा सुपुर्द करना। औरहिं = यह पुरानी विभक्तिका प्रयोग पूर्व कर्म, संप्रदान और संबंधकारकोंमें होता था। परन्तु यहाँपर

कर्म और संप्रदानमेंही 'को' के अर्थ में रह गया। औरकों, दूसरोंको। भीखि = भिक्षा; किसी दरिद्रिका दीनता दिखाते हुए उदर-पूर्तिकेलिये कुछ माँगना; भीख। प्रसंसा = (प्रशंसा) गुणवर्णन, स्तुति, बड़ाई। बिनय = विशेष नम्रता, विनंती। ब्यंगि (व्यंग्य) = गूढ़ और छिपा हुआ अर्थ। वह लगती हुई बात जिसका गूढ़ अर्थ हो। ताना, चुटकी। = जिसमें थोडेही अक्षरोंमें बड़ा विलक्षण अर्थ भरा हो। श्रीवैजनाथजी व्यंगकी परिभाषा यह देते हैं 'सूधो अर्थ जु बचनको तेहि तजि औरहि बैन। समुझि परै तेहि कहत हैं शक्ति व्यंजना ऐन ॥' इति काव्य निर्णये। अर्थात् जहाँ सीधे अर्थको छोड़कर हेरफेरसे दूसरा भाव प्रकट किया जाय। जुत (युत) = युक्त, सहित, मिली हुई। बानी (वाणी) = वचन; मुँहसे निकले हुए सार्थक शब्द। मुदित = आनंदित, प्रसन्न। महेस = महा + ईश = बड़े समर्थ, महादेवजी। मुसुकान = ऐसी मंद हँसी कि जिसमें न दाँत निकलें और न शब्द हो, मंदहास।

नोट—१ इस पदमें ब्रह्माजीद्वारा श्रीपार्वतीजीसे उलाहनेके ढंगपर श्रीशंकरजीके अतिशय दातृत्व गुणकी प्रशंसा व्यंगसे की गई है। देखने सुननेमें तो निन्दा मालूम होती है पर हैं वस्तुतः स्तुति। इस तरह यहां व्याजस्तुति अलंकार है।

२ इस पदमें जहाँ तहाँ अन्य टीकाकारोंके किये हुए अर्थोंसे बहुत भेद है। यह पद व्याजस्तुति अलंकारका इतना सुन्दर उदाहरण है कि शायदही कोई रसिक शिवभक्त ऐसा होगा जिसे यह पद कंठस्थ न हो। और 'बावरो रावरो नाहुं भवानी' तो जनश्रुतिही बन गयी है।

पदार्थ—हे भवानी! आपके पति तो बावले (से) हो गये है। * (बावलेपनके प्रमाण वा लक्षण आगे बताते हैं कि) वे बड़ेही दानी हैं,

* इसका अर्थ काकोक्तिसेभी कर सकते हैं। 'पागल हो गये हैं क्या!', 'पागल तो नहीं हो गये!'

नित्यप्रति देतेही रहते हैं, (यह तो प्रशंसाकी बात हैं, न कि पागलपनेकी। इसपर आगे कहते हैं कि) बिना दिये हुएको अर्थात् जिसने कभी किसीको कुछ दान नहीं दिया उसकोभी देते रहते हैं (इस तरह) उन्होंने वेदकी मर्यादा तोड़ डाली हैं आप तो परम चतुर हैं (जरा) अपने घरकी गृहस्थी (तो) देखिये। (अर्थात् घरमें तो आपके बिभूति, भाँग, धतूरा, खप्पर और स्वारीके लिये बैलही है, इतनी मात्र संपत्ति होनेपरभी मांगनेवालोंको इतना दे डालते हैं कि) शिवजीकी दी हुई संपत्तिको देखकर लक्ष्मी और शारदा सिहाती हैं। जिनके ललाटपर मेरी लिखी हुई कर्मरेखामें सुखका चिन्हमात्र नहीं हैं, उन्हीं दरिद्रोंकेलिये स्वर्ग सजाते सजाते मेरे नाकों दम आ गया है। दुःख और दीनता दुखी हो गये हैं और इन (दुःख दीनता) के दुःखसे याचकता व्याकुल हो गई है। यह अधिकार दूसरेको सुपुर्द कर दीजिये, मैंने तो अब भीख मांगनाही उत्तम समझा हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि ब्रह्माजीका प्रेम, प्रशंसा, विनय और व्यंगसे युक्त श्रेष्ठ वाणीको सुनकर महादेवजी मनही मन प्रसन्न हो रहे हैं और जगज्जननी श्रीपार्वतीजी मुस्कुरा रही है।

टिप्पणी—१ (क) 'देत दये बिनु बेद बड़ाई भानी' इति। बेदोंने यह मर्यादा बाँध दी है कि जो देवे सो पावे, जो बोवे सो काटे, बिना पाये न देना चाहिये। यथा '**करै जो करम पाव फल सोई। निगम नीति असि कह सबु कोई।**' (अ०), '**बवा सो लुनिय लहिय जो दीन्हा**' (अ०) '**हरिहुँ और अवतार आपने राखी बेद बड़ाई। लइ चिउरा निधि दई सुदामहिं जद्यपि बालमिताई**' (१६३), '**ना भुक्तक्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि। अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्॥**' (ब्रह्मवैवर्त्तपु० १।२७।७०)। इस तरह बिना पाये देनेसे, बिना कर्मफल भोगाये स्वर्ग दे देनेसे आपको निस्वार्थ दानी सूचित किया। (ख) पुनः, 'देत दये बिनु' का भाव कि यह उनकी जन्मसे स्वभावसिद्ध बान पड़ी है, यथा '**चाहै न अनंग हरि एकौ अंग मांगनेको देबोई पै जानिये सुभावसिद्ध बानी सो।**' (क०)।

(ग) 'वेदवाक्य इनकी करतूतिसे मिथ्या हो गया। यह व्यंग्यार्थ वाच्यार्थके बराबर तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यंग्य है। (वीर)। *

'बावरो' में यह भी भाव निकलता है कि उन्हें भाँग धतूरा खिला खिलाकर मन चले लोग मनमानी संपत्ति प्राप्त कर लेते हैं, इसीसे स्वयं नंगे रहते हैं और घरमें मूँजीभाँग और राखकाही ढेर लगा रहता है।

२ (क) 'निज घर की घरबात बिलोकहु०' इससे मिलान कीजिये।

'सीस बसै बरदा बरदानि चढ्यो
बरदा घरनिउ बरदा है।
धाम धतूरो बिभूति को कूरो
निवास जहाँ सब लै मरे दाहै।
ब्याली कपाली है ख्याली चहूँ दिसि
भाँग की टाटिन्ह के परदा है।
राँकसिरोमनि काकिन्ह भाग
बिलोकत लोकप को करदा हैं।'
'देत संपदा समेत श्रीनिकेत जाचकनि
भवन बिभूति भाँग बृषभ बहनु है।' (क०)

---

* भावार्थान्तर—१ 'वेदधर्म' में दानकी रीति यह है कि जो बड़े दानी प्रतिदिन दान देते हैं वे बिना दिये हुए याचकोंको देते हैं और जो प्रभातमें ले गया है, मध्यान्हमें आकर पुनः माँगे, तो उसे नहीं देते। शिवजीने यह वेदबड़ाई तोड़ दी। वे विचारते नहीं कि यह दुबारा लेने आया है। वे याचकोंको बराबर देते हैं चाहे जितनी बार वे माँगने आवे। (बै०)। २ वेदरीति तोड़नेकी दूसरी बात घरहीमें की है कि वेदरीति तो ऐसी है कि धर्मकार्योंमें तो पत्नि दक्षिण दिशामें रहती है। यथा 'सीमन्ते च विवाहे च चतुर्थ्यां सहभोजने। व्रते दाने मखे श्राद्धे पत्नि तिष्ठति दक्षिणे।, शयनसमय शय्यापर, बामदिशि इत्यादि समय बराबर आसन चाहिये। स्वाभाविक समाजमें पत्निको बराबर न बैठाना चाहिये, परन्तु शिवजीने प्रेममें आकर पार्वतीजीको वामांगमें मिला लिया, सदा वामाङ्गमें धारण किये रहते हैं, यह वेद एवं लोकविरुद्ध बात है।' (बै०)। ३ जैसा कर्म करे वैसा फल पावे, कर्म किये बिना फलकी प्राप्ति नहीं होती यह वेदकी बड़ाई है। इस मर्यादाका उल्लंघन किया है (रा० त० ब०)।

इसमें व्यंगसे कई भावार्थ निकलते हैं, (१) दूसरोंको इतनी संपत्ति दे दी कि श्री और शारदा सिहाती हैं और तुम्हारेलिये घरमें कुछभी नहीं, अतः उनको इस हरकतसे बाज़ रखना(रोकना) तुम्हारा कर्तव्य है। (२) घरकी संपत्ति लुटा दीं, घरमें कुछ न रह गया, फिरभी घरकी पर्वा नहीं। यहभी बावलापनही सिद्ध करता है। इसतरह व्यंग्यसे अपनेको पार्वतीजीका हितैषीभी जनाते हैं। (३) देते देते घरमें कुछभी न रह गया, अब तुम्हारीं बारी है, कहीं तुम्हेंभी न दे डालें। (४) लोकमें प्रसिद्ध है कि जितना ओढ़ाना हो उतना पैर पसारे, पर ये लोकमर्यादाके विरुद्ध करते हैं कि घरमें तो भूँजीभाँग नहीं और दे डालते हैं त्रैलोक्यका ऐश्वर्य, यह बुद्धिमानी नहीं है। (रा० त० ब०)। (५) अपने घरकी चीज, वस्तु देखो, कहीं तुम्हारीभी न कुछ दे डालें। (पं० रा० कु०)। इत्यादि।

(क) 'निज घरकी घरबात बिलोकहु' इति। कितना मीठा दुःख है? कितनी भावुकताकी शिकायत इसमें भरी हुई है? विद्यापतिजी श्रीमैनाजीसे कहलाते हैं '**यहि जोगियाके भाँग भुलैलक धतुर खोआई धन लेला।**' इस जोगड़ेको भाँग धतूर खिलाखिलाकर इसको बौरायकर सारी संपत्ति ले ली, घरमें भाँग धतूरा और राखही रह गयीं।

(ख) 'हो तुम्ह परम सयानी' इति। भाव कि इतनेसेही तुम समझ सकती हो, अधिक कहेनेकी आवश्यकता नहीं, यथा '**बहुत बुझाइ तुम्हहिं का कहऊँ। परम चतुर मैं जानत अहऊँ॥**' (लं०)। पुनः, भाव कि वे तो बौराहा हैं पर तुम तो सयानी हो, तुम्हें तो सोचना चाहिये था, अबभी बिगड़ा नहीं है, उनको सिखा लो। 'सयानी' का भाव कि तुम धर्मशास्त्र और वेदोंका सिद्धान्ततत्व भलीभाँति जानती हो। (वै०)

(ग) 'शिवकी दई संपदा देखत' इति। क्या संपदा देते हैं। यह कवितावलीमें देखिये।

रति सी रवनि सिंधु मेखला अवनिपति
औनिप अनेक ठाढ़े हाथ जोरि हारि कै।

संपदा समाज देखि लाज सुरराज कै
सुख सब विधि दीन्हें हैं सँवारि कै ॥
इहां ऐसो सुरलोक सुरनाथ पद ॥
स्यंदन गयंद बाजि राजि भले भट
धन धाम निकर करनिहूँ न पूजै क्वै ।
बनिता विनीत पूत पावन सोहावन औ
विनय विवेक विद्या सुभग सरीर ज्वै ॥
इहां ऐसो सुख परलोक सिवलोक ओक । (क० उ०) ।

(घ) 'श्री सारदा सिहानी' इति। जगतमें जो ऐश्वर्य है उस सबकी अधिष्ठात्री श्रीलक्ष्मीजी हैं, सो वेभी देखकर ललचा उठती हैं कि इतना ऐश्वर्य तो हमारे पासभी नहीं है जितना ये एक एक कँगलेको दे डालते हैं और सरस्वती सिहाती हैं कि ब्रह्मलोकमेंभी ऐसा ऐश्वर्य नहीं है और न मुझमें ऐसा सामर्थ्य है कि उनके दिये हुए ऐश्वर्यका बखान कर सकूं। इससे शिवजीको अपार अलौकिक संपत्तिका दाता जनाया। +

+ भावार्थान्तर—(१) 'श्री और शारदा मनहीमन प्रशंसा करती है कि धन्य हैं पार्वतीको जिन्हें ऐसा उदार पति मिला। उनकी यह प्रशंसा चाहे हँसी मजाकी, या डाहभरीही हो, कौन जाने ?' (वि०)। (२) 'लक्ष्मी और सरस्वति सराहना करती हैं। अर्थात् व्यंगभावसे हंसी उड़ाती है कि पार्वतीको अच्छेसे पाला पड़ा है।' (भ०)। (३) 'शिवजीने आपसे इतना प्रेम किया कि अर्धाङ्ग वामाङ्गमें तुमको मिला लिया, न वेदकी मर्यादाका ख्याल किया, न लोकका [टि० १ (ग) की पादटिप्पणी देखिये] यह देख जब गंगाजीने मान किया तब उनको सिरपर बिठा लिया, इत्यादि शिवजीकी दी हुई संपदा अर्थात् तुम्हारे इस श्रेष्ठ पद प्राप्तिरूपी ऐश्वर्यको देखकर श्री और शारदा इर्ष्या करती हैं। वेभी तुम्हारेही समान अपने अपने पतियोंमें वही पद पानेकी इच्छा करती हैं। तुमको अर्धाङ्गमें मिलानेसे विष्णुको और हमको तो आफ़त हो गयी है।' (वै०)। (४) 'सरस्वति इसलिये ईर्षा करती हैं कि शिवजीकी दी हुई संपत्तिका वर्णन हमसे नहीं हो सकता, अतः हमारी अप्रतिष्ठा होती है।' (दी०)

पाठान्तरपर विचार—‘ घरबात ’ प्राचीनतम पाठ है और फिरभी कई पोथियोंमें यह पाठ मिलता है। भावभी सुन्दर हैं जो ऊपर दिये गये हैं। यह शब्द गोस्वामीजीने अन्यत्रभी प्रयुक्त किया है, जिसके दो एक उदाहरण शब्दार्थमें दिये गये हैं। ‘ बरबात ’ का कोई भावभी यहाँ ठीक नहीं दीखता। टीकाकारोंने जो ‘ बरबात ’ पाठके भाव दिये हैं वे यहाँ दिये जाते हैं, (१) घरकी श्रेष्ठ बात देखो। कौन श्रेष्ठ बात सो नहीं कहते क्योंकि तुम परम सयानी हो, आपही बूझ लो। ‘ बरबात ’ का व्यंग्य यह है कि जिन शिवजीके घरमें राख धतूरा मात्र संपत्ति है, उनकी याचकोंको दी हुई संपत्ति देख श्री और शारदा सिहाती हैं।’ (क्ष०)। (२) अपने घरकी सुन्दर बातही देखो कि रावण, बाणासुर आदिको जो सम्पत्ति दे दी वह इंद्रादिको दुर्लभ है और अपने घरमें भूँजी भाँग नहीं, धतूरे और मसानकी राखके ढेर लगा रक्खे हैं। (भ०)। यही भाव वीर कविजीनेभी रखा है। (३) घरकी बात तो देखो! वह यह कि आपके पतिने देते देते सारी गृहस्थीही लुटा डाली है, घरमें आज भूँजी भाँगभी नहीं हैं।’ (वि०) (४) वेदरीति तोड़नेकी दूसरी बात घरहीमें की है। क्या घरकी बात है! यह कि ‘ निज बरबात ’ अर्थात् अपनी श्रेष्ठताकी बात देखो अथवा घर की ‘ बर ’ (शिवजीकी बड़ी पत्नि) अपनी बड़ी बहन गंगाजीकी और अपनी बात देखो कि किस प्रकार तुम दोनोंको निकट रक्खे हैं। तुम सयानी हो स्वयं विचार लो कि भला पतिपत्निका इसतरह निकट रहना वेद या लोकरीति हैं ?’ (वै०)।

विज्ञ पाठक स्वयं विचार लें कि ‘ बरबात ’ में कोई सुन्दर व्यंग्य बैठता है ? ‘ घरबात ’ का अर्थ न जानकर तथा केवल अन्य पूर्वकी टीकाओंको देखकर लोगोंने ‘ घर ’ का ‘ बर ’ बना लिया है।

(३) ‘ जिन्हके भाल लिखी लिपि मेरी०’ इति। ब्रह्माजीही प्रारब्ध लिखते हैं और जो वे लिख देते हैं वह अमिट होता था, यथा ‘ कठिन करम गति जान बिधाता। जो सुभ असुभ सकल फल दाता ॥.’ (अ०), ‘ सुनहु भरत भावी प्रबल जो बिधि लिखा लिलार। देव

दनुज नर नाग मुनि कोउ न मेटनिहार ॥ ' (अ०), ' जरत बिलोकेउँ जबहिं कपाला। बिधिके लिखे अंक निज भाला ॥ नर के कर आपन बध बाँची। ' (लं०), ' तुम्ह सन मिटिहि कि बिधिके अंका। मातु ब्यर्थ जनि लेहु कलंका ॥ (बा०)।

(ख) ' तिन्ह रांकन्ह कहुँ नाक सँवारत ' इति। यहभी वेद मर्यादा है कि जो जैसा शुभाशुभ कर्म करता है वैसा फल पाता हैं। विधाता कर्मानुसार फल भाग्यमें लिख देते हैं। ब्रह्माजीका कहना है कि जिसको हमने लिखा कि इसे अनेक जन्मपर्यंत दुःखही दुःख भोगना होगा, उसने यदि कभी किसी कारणसे चार अक्षत चढ़ा दिये तो ये उसे स्वर्ग दे देते हैं। भाव यह कि हमारा लिखा रद्द कर देते हैं। जिनके भाग्यमें हमने सुखका लेशमात्रभी नहीं रक्खा, उनको ये स्वर्गका राज्यतक दे देते हैं। स्वर्ग तो एकही है पर इनकी इस करतुतसे हमें नित्य नये स्वर्ग बनाने पड़ते हैं। यथा,

नाँगो फिरै कहै माँगनो देखि न खाँगो कछू जनि मांगिए थोरो।
राँकन्हि नाकप रीझि करै तुलसी जग जो जुरै जाचक जोरो ॥
नाक सँवारत आयो हौं नाकहिं नाहिं पिनाकिहिं नेकु निहोरो।
ब्रह्म कहै गिरिजा सिखवो पति रावरो दानि है बावरो भोरो ॥ (क०)

भाव कि एक तो वेदमर्यादा तोड़ी, दूसरे हमें जो मर्यादा दी है वहभी तोड़ देते हैं, भावीको मिटा देते हैं। अपने लिखेको मिटानेमें अपनेकोभी दुःख होता है, उसपरभी एक दिनका हो या एक रातके लिये हो तोभी अपमान सहकरभी ऐसा कर दूँ, पर यह तो नित्यहीकी इनकी बान पडी हुई है, अतः इनको सिखा दो कि ऐसा न करें।

(ग) ' हौं आयो नकबानी ' इति। नाकों दम आ गया, क्योंकि मेरा लिखा कुछ रहनेही नहीं पाता, नित्य काटना पड़ता है और नित्य नया स्वर्ग बनाना पड़ता है।

४ (क) ' दुख दीनता दुखी। ' इति। दरिद्रतासे बढ़कर दुःख नहीं है, यथा ' नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं। ' पापका फल दुःख

है, यथा '**करहिं पाप पावहिं दुख भय रुज सोक बियोग**'। दुःखसे 'दीनता' उत्पन्न होती है। इन दोनोंके निवासस्थान पापी हैं, दरिद्र हैं, सो शिवजी जब इनको नाकपति बना देते हैं तब इनको वहाँ-सेभी भागना पड़ता है, इनको कहीं रहनेका ठिकाना नहीं रह गया। अतः ये दुःखी और व्याकुल होकर मारे मारे फिरते हैं; यथा '**कतहुँ नहिं ठाऊँ कहँ जाऊँ कोसलनाथ दीन (बितहीन) हौं बिकल बिनु डेरे**' (२१०) दुःख और दीनता याचकताके अंग हैं। इसीसे दुःख और दीनताका दुःख देखकर वह व्याकुल हो गयी। भाव कि ये तीनों आकर मुझसे शिकायत करते हैं कि हमारे रहनेका तो कहीं स्थानही नहीं रह गया, आपका दिया हुआ निवासस्थान तो छिन गया, अब हम कहाँ जाकर रहें? आपने हमें बनाया है तो रहनेको जगहभी दीजिये। हम क्या करें? व्यंग्यसे भाव यह हुआ कि संसारमें इनके दातृत्वसे कोई दुःखी, दीन, दरिद्र रहही नहीं गया, जगत्‌मात्र अयाचक बन गया। यह व्याजस्तुति अलंकार है।

(ख) 'यह अधिकार' इति। यह अधिकार अर्थात् ब्रह्माकी पदवी, सृष्टिरचना, कर्मरेखाका लिखना, इत्यादि। (ग) 'सौंपिअ औरहिं' इति। भाव कि मेरा लिखा रहनेही नहीं पाता तब अधिकारही किस कामका? इससे मेरा इस्तीफ़ा है। इससे यहभी सिद्ध हुआ कि इनका अधिकार शिवजीके हाथमें है; अतः कहते हैं कि दूसरेको दे दीजिये, हमें न चाहिये। यथा '**ब्रह्मेंद्र चंद्रार्क बरुनाग्नि वसु मरुत जम अर्चि भवदंघ्रि सर्वेऽधिकारी**' (१०)। (घ) '**भीखि भली मैं जानी**' इति। भाव कि अभीतक तो मैं जानता था कि भीख माँगना बहुत निकृष्ट कर्म है और उसमें अनेक दुःख हैं पर शिवजीका दातृत्व देखकर कि जिसने इनसे माँगा वह बिना परिश्रम याचनामात्रसे इन्द्र और कुबेर बन गया। मुझे यह ज्ञान हो गया कि शिवजीके द्वारका भिखमंगाही बनना उत्तम है। एक बार माँगकर सदा इन्द्रकासा सुख क्यों न भोगूँ? लिपि लिखने मिटाने और स्वर्गादि बनानेका परिश्रम क्यों करूँ? भाव कि भीख माँगकर खा लेनेसे पैर पसारकर सोनेको तो मिलेगा!

यथा 'अब सुख सोवत सोच नहिं, भीखि माँगि भव खाई।' (बा०)। यहां वाच्यार्थसे प्रकट असुंदर गुणीभूत व्यंग है।

५ 'प्रेम प्रसंसा बिनय व्यंगिजुत०' इति। (क) प्रेम और व्यंग्यसे भरी वाणी ओतप्रोत है और व्यंग्यद्वारा सारे पदमें प्रशंसाभी है। अर्थात् सीधे सीधे वचनोंमें तो बावलापन कहा गया है पर व्यंग्यसे उन्हीं वचनोंसे सौलभ्य, औदार्य्य, ऐश्वर्यादि गुण प्रकट हो रहे हैं। फिरभी लोगोंने इस पदमें प्रेम, प्रशंसा आदिके अंश अलग अलग दिखाये हैं जो नीचे दिये जाते हैं। एकसाथही प्रेम, प्रशंसा, विनय और व्यंग्यभरी वाणीका वर्णन 'सहोक्ति अलंकार' है। १ प्रेम—'निज घरकी घरबात सयानी' क्योंकि जो जिसपर प्रेम करता है वही उसका भला चाहता है। २ प्रशंसा—'दानि बड़ो दिन देत दिये बिनु', 'सिवकी दई संपदा' क्योंकि इसमें दानकी महान् अधिकता कही गई है। ३ बिनय 'जिन्हके भाल यह अधिकार सौंपिऐ औरहि।' क्योंकि जो जिस कामका अधिकारी होता है वही उसके बनने बिगड़नेकी विनंती करता है। ४ व्यंग्य—'बावरो रावरो नाहुँ' 'भीखि भली मैं जानी' यह स्पष्ट व्यंग है और आशय से इसमें अतिशय उदारता प्रतिपादित की है। भाव कि उनके याचक हमसेभी अधिक सुखी हैं। अधिकार छोड भीख मांगना कभीभी भला नहीं समझा जाता।

(ख) 'बर बानी' इति भगवान् या उनके भक्तोंकी स्तुति जिस वाणीमें हो वह श्रेष्ठही है। श्रीवैजनाथजी लिखते हैं कि थोड़े अक्षरोंमें बहुत बड़ा अर्थ, विलक्षण चातुरी, रहस्ययुक्त, श्रवणरोचक, गूढ़ आशय और स्नेहवर्धक (प्रेमकी स्फूर्ति करनेवाली) होनेसे वाणीको 'बर' कहा है।

६ 'मुदित महेस मनहिं मन०' इति। (क) मनमेंही प्रसन्न हुए, अपने आनन्दको प्रगट न होने दिया, क्योंकि अपनी प्रशंसा सुनकर प्रसन्नता प्रकट करना ऐबमें दाखिल है। हँसनेका कारण ब्रह्माजीकी व्यंगस्तुति है। हँसे कि कैसे चतुर हैं, व्यंगमें झगड़ा करना चाहते हैं।

(ख) 'मुदित महेस' कहकर जनाया कि यह स्तुति वस्तुतः शिवजीकी की गयी है, पर श्रीपार्वतीजीकी ओटसे, और जब दोनों साथ बैठे थे तब की गयी हैं। (ग) ब्रह्माजीकी कर्मलिपिकोभी न्यून वा अधिक करने एवं मेटनेका सामर्थ्य होनेसे 'महेश' कहा। (च०) (घ) 'जगतमातु मुसुकानी' इति। पार्वतीजीसे साक्षात् विनय है. इससे वे प्रसन्न होकर प्रत्यक्ष मुस्कुरायी। विनयमें व्यंग्यसे पतिकी स्तुति समझकर हँसी। (ङ) 'जगतमातु' का भाव कि 'बावरो' और 'बेद बड़ाई भानी' इत्यादिके व्यंग्यको समझ गयी क्योंकि जगज्जननी हैं, इसीसे रुष्ठ न होकर मुस्कुरा दी।

६ (२) राग रामकरी*

मागिऐ[1] गिरिजापति कासीं[2]। जासु भवन अनिमादिक दासीं[2]॥
औढर[3] दानि द्रवत पुनि थोरें। सकत न देखि दीन कर जोरें॥
सुख संपति मति सुगति सुहाई। सकल सुलभ संकर सेवकाई॥
गये जे[4] सरन आरति[5] के लीन्हें। निरखि निहाल निमिष महँ कीन्हें॥
तुलसिदास जाचक जसु[6] गावै। बिमल भगति रघुपति[7] की पावै॥

शब्दार्थ:—गिरिजा = गिरि (पर्वत, हिमाचल) + जा (जायमान. पैदा) हिमाचलराजकी कन्या, पार्वतीजी। कासी = काशीमें। जासु = जिसके। भवन = घर। अनिमादिक = अणिमा आदिक। आदिक (आदि) आरंभका, प्रथम, प्रारंभमें हैं जिनके। दासी = सेवा करनेवाली; टहलनी। दासीं यह दासीका बहुवचन है। औढर (सं० अव + हिं + दार) = जिस ओर मनमें आया उसी ओर ढर पडनेवाला; जिसकी

---

* ६६ में सर्वत्र 'रामकरी' ही है। प्रायः औरोंमें 'रामकली' है।
१. मागिऐ (मागिये)–६६, ह० पु०, ७४, भा० बे०, प्र०। जाचिये–आ० (डु०) याचिये–मु०, ५१। २. ६६ में अनुस्वार है, औरोंमें नहीं है। ३. औढ़र–६६, ज०, ५१। अवढ़र–भा०, बे०, ७४. प्र०, ह०, वै०, ४. ७४, मु०, ५१, बै०, वि० में 'जे' नहीं है। ५. आरति–६६, ७४, भ०, मु०, डु०, दी०। आरत–भा०, बे०; ज०. प्र० १५, ह० वि०, बै० (पर टीकामें 'आरति' है। भूलमें छापेकी गलती जान पडती है)। ६ जसु–६६। जस—प्रायः औरोंमें। ७. रघुबर—प्र०।

प्रकृतिका कुछ ठीक ठीकाना न हो; मनमौजी ढरना। ढरनि – चित्तकी प्रवृत्ति, झुकाव; सहज कृपालता, दयाशीलता; दीन दशा दूर करनेकी स्वाभाविक प्रवृत्ति। औढरदानि=पात्रापात्र विचार रहित दान देनेवाला, जो ढरने योग्य नहीं उसपरभी ढरकर देनेवाला। द्रवत (सं० द्रवण)=पसीजना, पिघलना, बहुत प्रसन्न होना (च०) पुनि=बारंबार; और; फिरसे। बुँदेलखंडमें इसका प्रयोग बिना किसी अर्थकेभी होता है। जैसे कि 'मैं पुनि गयउँ बंधु सँग लागा।' (कि०) 'मैं पुनि पुत्रबधु असि पाई'। हमारी समझमें यहाँ 'पुनि' शब्द निरर्थक नहीं है। इसका प्रयोग वैसाही है जैसा कि फारसीमें 'मजिद बरां' का। अर्थात् इतनाही नहीं वरंच इतना औरभी। थोरें=थोड़ेहीमें, ज़रामें। सुख=आनंद। न्याय और वैशेषिकके अनुसार 'सुख' आत्माका एक गुण है। यह सुख दो प्रकारका कहा गया है। एक 'नित्य सुख' जो परमात्माके विशेष सुखके अन्तर्गत है। दूसरा 'जन्य सुख' जो जीवात्माके विशेष सुखके अन्तर्गत है। यह धन या मित्रकी प्राप्ति, आरोग्य और भोगादिसे उत्पन्न होता है। सांख्य और पातंजलके मतसे 'सुख' प्रकृतिका धर्म है और उसकी उत्पत्ति सत्यसे होती है। गीतामें सुख तीन प्रकारका कहा गया है। एक 'सात्विक' जो ज्ञान, वैराग्यके द्वारा प्राप्त होता है। दूसरा 'राजस' जो विषय तथा इन्द्रियोंके संयोगसे उत्पन्न होता है (जैसे संगीत सुनने, रूप देखने, स्वादिष्ट भोजन करने और संभोग आदिसे होता है)। और, तीसरा 'तामस' जो आलस्य और उन्मादादिके कारण उत्पन्न होता है। कुछ लोगोंने सुखको मनकाभी धर्म माना है*। वेदान्तानुसार 'सुख' और 'आनंद' पर्य्यायवाची

* गीता १८, यथा 'सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ। अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति ॥ ३६ ॥ यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्। तत्सुखं सात्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥ ३७ ॥ विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम्। परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसंस्मृतम् ॥ ३८ ॥ यदग्रे चानुबन्धेच सुखं मोहनमात्मनः। निद्रालस्यप्रमादोत्थ तत्तामसमुदाहृतम् ॥ ३९ ॥ न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः। सत्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिःस्यात्त्रिभिर्गुणैः ॥ ४० ॥'

होनेसे 'सुख' ब्रह्मका वाचक है। 'रसो वैसः' 'रसो ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति,' 'आनंदं ब्रह्मणो विद्वान्नबिभेति कुतश्चन' इत्यादि श्रुतियाँ इसकी प्रमाण हैं। वैजनाथजी 'सुख' से वनिता, भोजन, वस्त्र, पान, गंध, वाहन और नृत्यादि का अर्थ करते हैं। संपति = पद ५ 'संपदा' में देखिये। मति = बुद्धि। यहाँ निर्मल बुद्धिसे तात्पर्य है। भक्त इसीकी चाह करते हैं, यथा 'ताके जुग पदकमल मनावौं। जासु कृपा निर्मल मति पावौं॥' (बा०)। सुगति = उत्तम गति, मोक्ष। पद ३ देखिये। सुहाई (सं० शोभन। हिं० सुहाना) = सुहावनी, प्रिय लगनेवाली, सुंदर। सेवकाई = सेवा, टहल, खिदमत, यथा 'करहु सुफल आपनि सेवकाई।' (बा०)। सकल = कुल; सब; सब कुछ, सबको। सरन (शरण) = आश्रयमें, रक्षामें, पनाहकेलिये। के लीन्हें = को लिये हुए, यथा 'अपने बस कर लीन्हें', के लिये। आरति के लीन्हें = दुःख (से छुटकारा पाने, निवृत्ति) के लिये; दुःखको लिये हुए, दुःख (से पीड़ित होने) के कारण। यथा 'मैं तो बिगारी नाथ सो आरति के लीन्हें' (१४९)। दीनजी 'लीन्हें' का अर्थ 'सताये हुए' करते हैं। निरखि (सं० निरीक्षण। हिं० निरखना) = देखकर। जे = जो लोग। निहाल (फ़ारसी भाषाका शब्द है) = सब प्रकारसे संतुष्ट और प्रसन्न; पूर्णकाम। निमिष = उतना काल जितना पलक गिरनेमें लगता है, पलभर। महँ = में। बिमल=' वि' उपसर्ग शब्दके पहले लगकर ये अर्थ देता है। १ विशेष-जैसे, विकराल, विहीन। २ वैरूप्य-जैसे, विविधि। ३ निषेध या वैपरीत्य-जैसे, विक्रय (क्रय अर्थात् खरीदके विपरीत), विकच्छ (कच्छा रहित)। विमल में 'वि' निषेधका अर्थ देता है, मलरहित, निर्मल। भगति = शाण्डिल्यके भक्ति-सूत्रके अनुसार ईश्वरमें अत्यन्त अनुराग होना 'भक्ति' है। यथा, 'स परानुरक्तिरीश्वरे'। नारदभक्तिसूत्रमें भक्ति 'ईश्वरके प्रति परम-प्रेमरूपा और अमृतस्वरूपा' कही गयी है। यथा 'सात्वस्मिन् परम प्रेमरूपा', 'अमृतस्वरूपा च'।

पदार्थ :—श्रीपार्वतीजीके पतिसे माँगना चाहिये*। जिनका काशी घर है और अणिमादि सिद्धियाँ जिनके घरकी दासियाँ हैं। वे अवढर दानी हैं और थोड़ेहीमें पसीज जाते हैं। वे दीन (जन) को हाथ जोड़े हुए देख नहीं सकते अर्थात् हाथ जोड़े देखतेही कृपा करके उसका मनोरथ पूरा कर देते हैं×। शङ्करजीकी सेवासे सुख, संपत्ति, निर्मलबुद्धि, शुभगति (आदि) सभी कुछ सहजही प्राप्त हो जाते हैं। जो दुःख (निवृत्ति) केलिये उनकी शरणमें गये, उनको (आपने कृपा दृष्टिसे) देखकर पलकपात्रमें कृतकृत्य कर दिया। याचक तुलसीदास आपका यश गाता है, उसे श्रीरघुनाथजीकी निर्मल भक्ति मिले (अर्थात् प्रदान कीजिये)।

---

* 'मागिअे गिरिजापति कासी' का अर्थ इसतरहभी लोगोंने किया है। १. गिरजापतिसे काशीमें माँगना चाहिये। (पं० रा० कु०)। २. गिरजा तथा काशीके पतिसे माँगिये। (पं० रा० कु०, डु०, वीर)। ३. हे गिरिजापति ! मैं आपसे काशी (वास) माँगता हूँ (अर्थात् मुझको काशी प्राप्त हो) जिसमें घरघर अणिमादिक सिद्धियाँ दासी होकर रहती हैं। (च०)' ४. बैजनाथजी, दीनजी आदिनेभी 'कासी जासु भवन' इस तरह पदच्छेद करके अर्थ किया है। पर इसमेंभी शंका हो सकती है कि काशीको किसी पदमें घर नहीं कहा है, वरंच कैलाशको घर और काशीको कचहरी कहा है। यथा 'महाकल्पांत ब्रह्मांडमण्डलदवन भवन कैलास आसीन कासी' (१०), 'सेष सर्वेस आसीन आनंदबन दास तुलसी प्रनत त्रासहारी' (११)। संभव है कि इसीसे पं० राजकुमारजीनें दुसरी प्रकार अर्थ करना उचित समझा हो। अर्थ १ में कासीको शिवजीका द्वार जनाया (पं० रा० कु०)।

× दीनजी यह भाव लिखते हैं कि ज्योंही उसके हृदयमें हाथ जोड़नेका विचार उठता है त्योंही उसे निहाल कर देते हैं। वह हाथ जोड़नेके बजाय दोनों हाथ संपत्तिके बटोरनेमें लगा देता है, हाथ जोडनेकी नौबतही नहीं आती।

टिप्पणीः—१ (क) 'गिरिजापति' का एक भाव यह भी है कि रत्नगर्भा वसुंधराके सर्वोच्च आधारस्तंभकी एकमात्र कन्या एवं गृहस्वामिनी होनेके कारण उन्होंने अर्थसमस्याका उपाय रच दिया है कि ऋद्धि सिद्धिको अपनी पुत्रवधू बना रक्खा है जिससे पति चाहे जितना दान करें घटे नहीं। इसीसे 'जासु भवन अनिमादिक दासी' कहा। (ख) 'अनिमादिक' इति। अष्टसिद्धियोंमें अणिमाकी प्रथम गिनती की जाती है, अतः 'अणिमा आदि' कहकर आदिसे 'महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्तिः, प्राकाम्य, ईशित्व, और वशित्व' ये सात सिद्धियाँ सूचित की। विशेष पद १ 'सिद्धिसदन' में देखिये। (ग) 'द्रवत पुनि थोरें' इति। भाव कि बेलपत्र, अक्षत, मदारके पत्ते, जल और यह भी किंचित्‌ही चढ़ा देनेसे प्रसन्न हो जाते हैं, कोई विशेष पूजा, सेवा नहीं चाहते। विशेष पद 'सेवत सुलभ उदार' देखिये।

२ (क) 'सकत न देखि दीन कर जोरें' इति। भाव कि कुछभी न करे केवल हाथभर जोड़ दे तो तुरंत रीझ जाते हैं; यथा 'किये दूरि दुख सबन्हिके जिन्ह जिन्ह कर जोरे' (८)। यहाँ अत्यंत करुणामय स्वभाव दिखाया। (ख) 'सकल सुलभ संकर सेवकाई।' इति। 'औढरदानि' से अत्यन्त सौलभ्यगुण देखकर संदेह हो सकता है कि मामूली पदार्थ दे देते होंगे, उसपर कहते हैं कि ऐसा न जानो; सुख, संपत्ति आदि सभी कुछ सुगमतासे प्राप्त हो जाता है। सुखकी प्राप्ति, यथा 'जिमि सुख लहइ न संकर द्रोही" संपत्तिकी प्राप्ति, यथा 'सिवकी दई संपदा देखत श्री सारदा सिहानी' मतिकी प्राप्ति, यथा 'बिनु संभुकृपा नहिं भो बिबेक' गति प्राप्ति, यथा 'पुरारिपुर कीट पतंग समाहीं' 'सोइ गति मरनकाल अपने पुर देत सदासिव सबहिं समान'। (ग) दीनजी 'सुख, संपत्ति, मति और सुगति' से 'अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष चारों पदार्थोंका ग्रहण करते हैं।

३ 'औढरदानि' 'सकल सुलभ संकर सेवकाई' इति। शङ्कर-स्वरूपकी महिमा अमित है। इसका अर्थही है 'कल्याण वा सुखका

१०

करनेवाला'। बिना किसी भेदभावके समस्त जीवोंपर समान कृपाकोर रखनेके कारणही 'शङ्कर' नाम हैं और इसीसे महादेवजीको 'औढर-दानि' कहा है। इनका दान मनमौजी है, अटपटा है, बेढब है। वे उपासकसे अत्यन्त शीघ्र प्रसन्न होनेवाले हैं। ये सब बातें इस पदमें दर्शायी हैं। रघुपतिभक्ति माँगते हैं जो कल्याणरूपिणी है, अतः शङ्कर नामसे वंदना है। मिलान कीजिये 'देत न अघात रीझि जात पात आकहीके, भोलानाथ जोगी जब औढर ढरत है।' 'औढर ढरत है' अर्थात् बेतरह प्रसन्न होते हैं। यह अर्थ दीनजीने कवितावलीमें किया है।

४ (क) 'तुलसीदास जाचक जसु गावै' इति। दातृत्वगुण गाकर श्रीरामभक्ति माँगते हैं, क्योंकि बिना शिवजीकी कृपाके भक्ति नहीं मिलती। यथा, 'जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भगति हमारी'। (ख) रघुपतिका भाव कि सगुणरूप दशरथ-नन्दन श्रीरामजीकी भक्ति चाहते हैं, अद्वैतवादियोंके निर्गुण निराकारकी नहीं। (ग) 'पावै' का भाव कि सबको देते हैं, हमेंभी दीजिये। यहाँ बताया कि 'रघुपतिभक्तिप्राप्ति' का एक उपाय शिवजीभी है।

७ (१०)

कस न दीन पर द्रवहु उमाबर। दारुन बिपति हरन करुनाकर ॥
बेद पुरान कहत उदार हर। हमरि बेर का[१] भयेहु[२] कृपनतर[३] ॥
कवनि[४] भगतिकीन्ही गुननिधि द्विज। होइ[५] प्रसन्न दीन्हेहु सिवपद निज ॥
जो गति अगम महामुनि गावहिं। तुअ[६] पुर कीट पतंगउ पावहिं ॥
देहु कामरिपु रामचरन रति। तुलसिदास प्रभु हरहु भेद मति ॥

१ का—६६, ह०, १५, ड०। कस—भा०. बे०, आ० ड०. ७४। २ भयउ—भा०, बे०। भयेउ—ह०। भयहु—७४। भयेहु—प्रायः औरोमें। ३ कृपिन—ड०, ७४। कृपिनि—१५, ह०। कृपन—प्रायः औरोमें। ४ कवन—ह०, ५१, ७४। ५ होइ—६६, ५१, ७४, मु०. बे०, भ०। होय—भा०, बे०। है—ह०, १५, ड०, दी०, वि०। ६ तुअ—६६, भ०। तव—भा०, बे०, प्र०, ज०, ह०, ७४, १५, ५१।

शब्दार्थ:—कस = कैसे, क्यों। द्रवहु=पद ६ में देखिये। बर = दूल्हा, पति। बिपति = कष्ट, दुःख या शोककी प्राप्ति, भारी रंज, क्लेश या शोककी स्थिति। हरन (सं० हरण) = दूर करना, मिटाना, न रहने देना। करुनाकर–करुना + आकर = करुणाकी खान। करुणा + कर=करुणा करनेवाले। करुणा = वह मनोविकार वा दुःख जो दूसरोंके दुःखके ज्ञानसे उत्पन्न होता है और दूसरोंके दुःखको दूर करनेकी प्रेरणा करता है। यथा, 'दुःख दुःखिस्त्वामार्त्तानां सततं रक्षणत्वरा। परदुःखानुसंधानाद्विह्वली भवनंविभोः॥', 'कारुण्याख्य गुणो-ह्येष आर्त्तानां भीतिवारकः।' सहानुभूति और दया, तरस। हर = दुःख या क्लेशके हरनेवाले। यथा, 'दुःखानि पापानि हरतीति हरः।' शिवजी। बेर = बार, दफ़ा। कृपन (कृपणा) = कंजूस, सूम, दरिद्र, यथा, 'तैं उदार मैं कृपन पतित मैं तैं पुनित श्रुति गावै।' (११३) तर = एक प्रत्यय जो गुणवाचक शब्दोंमें लगकर दूसरेकी अपेक्षा आधिक्य सूचित करता है। जैसे, गुरुतर, श्रेष्ठतर, कृपनतर। बड़े, अधिक या विशेष कंजूस। कवनि = ('कः', किम्– यह संस्कृत सर्वनाम है।) कौनसी। द्विज = हिन्दुओंमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णके पुरुष, जिनको शास्त्रानुसार यज्ञोपवीत धारण करनेका अधिकार है। मनुके धर्मशास्त्रानुसार यज्ञोपवीत मनुष्यका दूसरा जन्म माना गया है। ब्राह्मण। निज = अपना, मुख्य, वास्तविक, सच्चा। पद = धाम; यथा, 'वेद विदित तेहि पद पुरारिपुर कीट पतंग समाही।(पद ४ देखिये) महामुनि = आत्मदर्शी मुनि। (वै०) (पद २ देखिये) तुअ = तव, तुम्हारा। पतंगउ = पतंगभी (पद ४ देखिये) 'उ, हु' कथितके अतिरिक्त 'औरभी' का सूचक है। यथा, रामहु = रामभी। 'आहो उताहो किमुत (विकल्पो) किंकिभूत (च) तु हि स्म ह वै' (इत्यमरकोशे)

पद्यार्थ—हे उमापति ! मुझ दीनपर आप क्यों नहीं द्रवते ? आप तो भयंकर विपत्तियोंके हरनेवाले और करुणाकी खान है। १। वेद पुराण (तो यही) कहते हैं कि 'हर' बड़े दाता हैं, (तब) क्या

हमारीही बार आप अत्यन्त सूम हो गये ? २। गुणनिधि ब्राह्मणने कौनसी भक्ति की थी (जिससे) हे शिवजी !, आपने प्रसन्न होकर उसे अपना धाम (शिवलोक) दे दिया । ३ । महामुनि लोग जिस गतिको दुर्लभ कहते हैं, वही गति आपके पुर (काशी) में कीड़े पतङ्गतक पाते हैं ।४। हे कामदेवके शत्रु ! श्रीरामजीके चरणोंमें मुझे अनुराग दीजिये ; तुलसीदासजी कहते हैं कि हे प्रभो ! * मेरी भेदबुद्धिको हर लीजिये ।५।

टिप्पणी—१ (क) ' कस न द्रवहु ' इति । विनय करनेमें कभी तो प्रार्थना करते हैं और कभी झगड़ा करते हैं । ' कस ' शब्दसे झगड़ना पाया जाता है । भाव यह कि जब आप करुणाकर कहलाते हैं तब मैं तो दीन हूँ मुझपरभी करुणा करके मेरा दुःख हरिये, नहीं तो करुणाकर कहलाना छोड़ दीजिये । यहाँ शिवजीसे अपना नाता ' करुणाकर ' और ' दीन ' का बताया । (ख) ' उमावर ' सम्बोधनका भाव यह है कि आप दृढ़प्रतिज्ञ और परोपकारी है । (' **ईस उदार उमापति परिहरि** ' पद ४ देखिये) । अतः हमपरभी कृपा कीजिये । (ग) ' दारुन बिपति हरन ' इति । '**दारुन दनुज जगत दुःखदायक जार्‍यो त्रिपुर एकही बान**' ' **कालकूट** जर जरत **सुरासुर निज पन लागि कियो विष पान** ' इत्यादि । ' दारुण विपति हरन ' के उदाहरण पूर्व दे आये हैं । ' दारुण विपत्ति हरण ' कहकर तब उसका कारण कहा कि आप ' करुणाकर ' हैं, इसीसे सबकी विपत्ति दूर करनेका स्वभाव है । (घ) ' बेद पुरान कहत उदार हर ' इति । जो बिना सेवाके दीनपर द्रवै वह उदार है। वेद पुराण आपकी उदारताके प्रमाण है। ये असत्य नहीं कहते, तब हमें क्यों नहीं देते ? अर्थात् हमें नहीं देते हो तो वेदोंको अप्रमाणित कर दीजिये । यथा, ' **किधौं बेदन्ह मृषा पुकार्‍यो** ' । शब्द प्रमाण देकर आगे ' गुणनिधि ' के उदाहरणसे प्रत्यक्ष प्रमाण देते हैं कि बिना सेवा आप प्रसन्न हुए थे ।

* दूसरा अर्थ—१. हे प्रभो ! मुझ तुलसीदासकी । २. हे तुलसीदासके प्रभु !

२ 'कवनि भगति कीन्ही गुननिधि द्विज' इति। गुणनिधिकी कथाएँ भिन्न भिन्न प्रकारसे टीकाकारोंने लिखी हैं। किसीने रामतत्त्वबोधिनीकी तो किसीने बैजनाथजीकी टीकाकी नकल अपने शब्दोंमें कर दी है, पर किसीने प्रमाण देने या खोजनेका कष्ट नहीं उठाया। हरिहरप्रसादजी लिखते हैं कि रा० इतिहास समुच्चय वा पुराणमें कथा है। बैजनाथजी लिखते हैं कि घंटा चुरानेकेलिये वह शिवमूर्तिपर चढ़ा था, घंटा खोल रहा था। शिवप्रकाशजी लिखते हैं कि आभूषणादि चुराकर जा रहा था तब पुजारियोंने देख लिया और ऐसा मारा कि वह मर गया।

कथा इस प्रकारभी सुनी जाती है कि उज्जैनके महाकालेश्वर शिवजीके पुजारीने एक पार्षद दिया रक्खा जिसका नाम गुणनिधि था। शिवजीका पूजन इत्यादि हो जानेपर शृङ्गार किया जाता है, फिर पूजन हो चुकने पर शृङ्गार उतारकर शयन कराया जाता है। शिवरात्रीके दिन विशेष आभूषण, शृङ्गार आदिका अमूल्य सामान देख परिचारक गुणनिधिके जीमें पाप आया। उसने सोचा कि माल बहुत है, लेकर क्यों न चल दें। विचार आतेही उसने ताला खोला। असबाववाले बक्सकी कुंजी ऊँचेपर आलय (ताक) में थी, अँधेरेमें चौकी न मिली तब उसने शिवलिङ्गपर पैर रखकर उसे उतारना चाहा। ऐसा करनेमें पैर फिसला और वह मर गया। शिवजीने यह समझकर कि इसने तो अपना शरीरही समर्पण कर दिया, उसे रीझकर अपना धाम दे दिया।

ये तो हुईं दन्तकथाएँ, जो टीकाओं और रामायणियोंकी कथाओंमें देखी और सुनी गयीं। खोज करते करते वे० भू० रामकुमारदासने इसकी कथा शिवपुराणमें देखी। शिवपुराण ज्ञानसंहिता अ० ७५ में गुणनिधिकी कथा मिलती है जिसका सारांश यह है कि वह महापापी था। एक जगह शिवरात्रिव्रतकी कथा हो रही थी। उसने अकस्मात व्रतके फलकी कथा सुन ली। कथा सुनकर जैसेही वह आगे बढ़ा कि उसकी मृत्यु हो गयीं। उसके समस्त पाप शिवरात्रिव्रतफलकथा श्रवणमात्रसे नष्ट हो गये और इतने मात्रसे उसे शिवलोककी प्राप्ति हो गयी।

इस तरह शिवपुराणकी कथाके अनुसार 'कवनि भगति कीन्ही०' में यह भाव व्यंजित होता है कि उसने तो पापही पाप किये, कभी आपकी शरणमेंभी नहीं आया। अकस्मात् उसके कानोंमें व्रतफलकी कथा पड़ गयी थी। उसपर आप इतनेहीपर रीझ गये थे और मैं तो दीन हो शरणमें आ कबसे विनंति कर रहा हूँ तबभी मुझपर नहीं द्रवते, सो क्यों! उपर्युक्त दन्तकथाओंके आधारपर व्यंग्यसे यह अभिप्राय है कि ऐसे दूषित कर्म करनेवाले, सिरपर पैर रखनेवाले चोरको अपना लोक दे डाला था और मैं शरणमें आया हूँ तो मेरी सुनतेभी नहीं, यह क्यों? क्या वैसेही आचरण आपको प्रिय हैं? शरणागत प्रिय नहीं हैं? व्यंग्यद्वारा इस उदाहरणसे आपकी 'औढर ढरनि' प्रमाणित करते हैं।

३ 'जो गति अगम महामुनि गावहिं।' इति। (क) इससे अपार करुणा और उदारता जनायी। (विशेष पद ३ और ४ देखिये) (ख) 'गावहिं' इति। जो बातें महर्षियोंने कही हैं वे पद्यमेंही कहीं; अतः देवताओं, मुनियों और वेदपुराणादिके संबंधमें प्रायः 'गाना' शब्दका प्रयोग आदर सूचित करनेकेलियेभी होता है। विस्तारसे कहनेके भावमेंभी इसका प्रयोग होता हैं। यथा, 'यह सब चरित कहा मैं गाई।' 'मुनिन्ह प्रथम हरिकीरति गाई। तेहि मग चलत सुगम मोहि भाई।' (बा०) (ग) 'कीट पतंगउ पावहिं' इति। पावहिं शब्द देकर जनाया कि बिना माँगे उनको मुक्ति मिल जाती है। कीट पतंगोंमें माँगनेकी बुद्धि कहाँ? 'कीटपतंगउ' पदसे जनाया कि जब ये मुक्ति पाते हैं तब भला जो भक्ति करते हैं उनकी सद्गतिमें संदेहकी जगह कहाँ हो सकती है?

काशीमें किस प्रकारकी मुक्ति मिलती है? इस विषयमें काशीखण्डमें लिखा है कि 'ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा पापयोनयः। कृमि म्लेच्छाश्च ये चान्ये संकीर्णाः पापयोनयः॥ कीटाः पिपीलिकाश्चैव ये चान्ये मृगपक्षिणः। कालेन निधनं प्राप्ता अविमुक्ते शृणु प्रिये॥ चन्द्रार्धमौलयः सर्वे ललाटाक्षा वृषध्वजाः अकामो वा सकामो वा तिर्यग्योनि गतोऽपि वा॥ अविमुक्ते त्यजन् प्राणान् मम लोके

महीयते ॥ ' अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र, म्लेच्छ आदि संपूर्ण पापयोनि अथवा वर्णसंकर जीव तथा कीड़े मकोड़े, च्यूंटियाँ, मृग और पक्षिगण तथा अन्यभी जितने जीव हैं वे सभी कालके वश हो मरनेपर मस्तकमें चन्द्रमा और ललाटमें नेत्र धारणकर वृषध्वज हो शिवका सायुज्य प्राप्त कर लेते हैं। इच्छा या अनिच्छासे पशु पक्षी आदि योनियोंमें प्राप्त हुआभी जीव इस काशीक्षेत्रमें प्राण त्याग करके मेरे लोकमें प्रतिष्ठित होता है।

पद्मपुराणमें यहभी कहा है कि काशीमें मरनेके अनन्तर क्रमशः सालोक्यादि चारों प्रकारकी मुक्तियाँ प्राप्त होती हैं। यथा, ' **काश्यां मृतस्तु सालोक्यं साक्षात् प्राप्नोति सत्तमः। ततः सरूपतां याति ततः सान्निध्य मश्नुते। ततो ब्रह्मैकतां याति न परावर्तते पुनः ॥** '

पं० श्रीमदनमोहनजी शास्त्री, काशी, लिखते हैं कि " सालोक्यादि मुक्तिकाभी क्षेत्रभेदसे तारतम्य है, जैसे काशीक्षेत्रमें सालोक्यमुक्ति, वाराणसी क्षेत्रमें सारूप्यमुक्ति, अविमुक्तिक्षेत्रमें सान्निध्यमुक्ति और अन्तर्गृहक्षेत्रमें सायुज्यमुक्ति होती है। यथा, ' **वाराणस्यां मृतोजन्तुः साक्षात्सारूप्यमश्नुते। अविमुक्ते विपन्नस्तु साक्षात्सन्निध्यमाप्नुयात् ॥** '

काशीमें मरणमात्रसे सभी जीवजन्तुओंकी मुक्ति होती हैं। मृत्यु चाहे जिस कारणसे हुई हो यह पद्मपुराण और ब्रह्मवैवर्तपुराणसेभी प्रतिपादित है। यथा, ' **सूच्यग्रमात्रमपि नास्ति ममास्पदेऽस्मिन्, स्थानं सुरैश्च विमृतस्य न यत्र मुक्तिः। भूमौ जले वियति वा भुविमध्यतो वा, सर्पाग्निदस्यु पविभिर्निहतस्य जन्तोः ॥** ' (पाद्मे) मेरे निवासस्थान इस काशीमें सुईकी नोक बराबरभी ऐसी जगह नहीं है जहाँपर मरे हुएकी मुक्ति न हो। भलेही देवताओंद्वारा या पृथ्वीपर, जलमें डूबकर, आकाशसे गिरकर, भूमिके अंदर धँसकर मरा हो अथवा साँप, अग्नि, डाकू या बिजलीके गिरने आदि किसीभी कारणसे उसका प्राण गया हो। पुनश्च, यथा, ' **जितेन्द्रियाः पापविवर्जिताश्च, शान्ता महान्ता मधुसूदनाश्रयाः। अन्येषु तीर्थेष्वपि मुक्तिभाजो भवन्ति काश्यामपि को विशेषः ॥ विशेषं शृणु वक्ष्यामि काश्याः कथयतो**

मम। कृतानि साधनान्यत्र स्वल्पान्यपि महामते॥ भवन्ति काशीमाहात्म्यात् सिद्धान्येव न संशयः। अन्यत्र साधुसुकृतैः कृतैर्मुच्येत वा न वा॥ अत्र साधनवैकल्ये काशी पूर्णं प्रकल्पयेत्।' 'जितेन्द्रिय; पापरहित, शान्त तथा भगवान्‌के भक्त महात्मा पुरुष तो अन्य तीर्थोंमेंभी मुक्तिलाभ कर सकते हैं, काशीमें कौनसी विशेषता है?' ऐसा प्रश्न उठाकर समाधान करते हैं कि 'साधन सम्पत्तिसे युक्त अधिकारियोंकी मुक्ति काशीसे अतिरिक्त स्थानोंमेंभी हो सकती है। परन्तु काशीमें तो सभीकी मुक्ति होती है यही उसकी विशेषता है। अतएव, काशीखंडमें कहा है कि जो कर्मबन्धनोंमें बँधकर जन्ममरणरूप संसारमें भयभीत हो रहे है तथा जो श्रुतिस्मृतिके ज्ञानसे रहित हो शौच तथा आचारको छोड़ बैठे है, जिनका मोक्ष होना कहीभी संभव नहीं हैं, उनकी एकमात्र काशीमेंही मुक्ति हो सकती है। यथा, 'संसारभयभीता ये ये बद्धाः कर्मबन्धनैः। येषांक्कापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः॥ श्रुतिस्मृतिविहीना ये शौचाचार विवर्जिताः। येषां क्वापिगतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः॥ काशीमें मरनेके विषयमें काल अथवा अवस्थाका कोई विशेष विचार नहीं है। यथा, "उत्तरं दक्षिणं वापि अयनं न विचारयेत्। सर्वोऽप्यस्य शुभः कालो ह्यविमुक्तप्रिये यतः।' (काशीखण्डे) यहाँ उत्तरायण और दक्षिणायनका विचार नहीं करना चाहिये। हे प्रिय! इस अविमुक्त क्षेत्रमें मरनेवालेकेलिये प्रत्येक शुभही है। सनत्कुमार संहितामेंभी कहा है 'रथ्यान्तरे मूत्रपुरीषमध्ये चाण्डालयोन्यथवा श्मशाने। कृतप्रयत्नोऽप्यकृतप्रयत्नो देहावसाने लभतेऽत्रमोक्षम्॥' अर्थात् गलीकूचोंके अंदर या मलमूत्रके नालोंमें अथवा चाण्डालके घरमें या श्मशानमें प्रयत्न करनेपर अथवा अनायासही काशीमें देहत्याग करके मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

काशीमें मरनेसे मुक्ति होती है इसके प्रमाण तो इतने हो चुके। अब यह प्रश्न उठता है कि यदि 'काशीमरणान्मुक्तिः' और उपर्युक्त पुराणादिके वाक्योंको मानते हैं तो अन्य श्रुतियों स्मृतियों आदिसे विरोध

होता है।

'ऋतेज्ञानान्नमुक्तिः।' 'न कर्मणामनुष्ठानैर्न दानैस्तपसापि वा। कैवल्यं लभते मर्त्यः किन्तु ज्ञानेन केवलम्' इति स्मृतिः। तथा 'तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय॥' अर्थात् 'ज्ञानके बिना मुक्ति नहीं होती,' मनुष्य यज्ञादिक कर्मोंके अनुष्ठान, दान और तपस्यासेभी मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता, वह तो केवल ज्ञानसेही सिद्ध हो सकता है। उस ब्रह्मको जानकरही मनुष्य अमृत (मोक्ष) पद प्राप्त कर सकता है। उसे पानेका और कोई मार्ग नहीं है।

इसका समाधान यों है, 'काशीमरणान्मुक्तिः' का तात्पर्य यह है कि काशीमें मरनेसे, पहले तत्त्वज्ञान होता है तब मुक्ति। इस पर पुनः प्रश्न होता है कि 'जन्य (होनेवाले) ज्ञानमें तो जीवित शरीरही कारण हुआ करता है, फिर काशीमें मर जानेके बाद तत्त्वज्ञान कैसे संभव हो सकता है? और यदि कहें कि मरनेके पूर्वही जीवित शरीरमें शिवजीके तारक-मंत्रोपदेशसे तत्वज्ञान हो जाता है तो काशीका मरना तत्त्वज्ञानका कारण नहीं सिद्ध हो सकता?' इसका उत्तर यों है, 'काशीमें मृत्यु हो जानेके अनन्तर अदृष्ट विशेषसे शरीरकी प्राप्ति होती है और उसकेद्वारा तत्त्व-ज्ञानकी उत्पत्ति होनेमें कोई प्रतिबंधक नहीं रह जाता, अथवा जिस प्रकार बिना शरीरकेही ईश्वरमें ज्ञान होना माना जाता है उसीतरह काशीमें मरे हुए जीवकीभी जीवित शरीरके अभावमेंभी ज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है।'

यहाँ यह शंका हो सकती है कि यदि सभी जीवोंकी मुक्ति मान ली जाय तो निषिद्ध कर्म करनेवालों और नियमपूर्वक विहितकर्म करनेवालों-में क्या विशेषता रह जाती है? ऐसी दशामें भले बुरेका विचार छोड़कर लोग मनमाना आचरण करने लग जायँगे! यदि बुरे कर्मोंका प्रतिकूल फल न मिले तो अत्यन्त प्रयत्नसे सिद्ध होने योग्य पुण्यकर्ममें कौन प्रवृत्त होगा? और, 'अशनं व्यसनं वासः काश्यां येषाममार्गतः। कीकटेन समां काशी गङ्गाप्यङ्गारवाहिनी॥' अर्थात् 'काशीमें जिन लोगोंका अशन, व्यसन अथवा निवास कुमार्गसे होता है उनकेलिये

काशी तो कीकट (मगध) के समान और गङ्गा आग बहनेवाली है ' इस शास्त्रवाक्यकी संगति कैसे होगी ?

इसका रहस्य गरुडपुराण और सनत्कुमारसंहिताके निम्न वाक्योंसे खुलता है । यथा,' **वाराणस्यां स्थितो यो वै पातकेषु रतः सदा । योनिं प्रविश्य पैशाचीं वर्षाणामयुतत्रयम् ॥ पुनरेव च तत्रैव ज्ञानमुत्पद्यते ततः । मोक्षं गमिष्यते सोऽपि गुह्यमेतत् खगाधिप ॥** ' (गरुड़ पु०) । अर्थात् 'जो काशीमें रहकर सदा पापमें रत रहते हैं, वे मरने पर तीस हजार वर्षकेलिये पिशाचयोनिको प्राप्त होते हैं, वहीं उन्हें तत्वज्ञानकी प्राप्ति होती है (रुद्रपिशाचभी देवयोनिकेही अन्तर्गत हैं । इसलिये वेभी ब्रह्मविद्या प्राप्त करनेके अधिकारी हैं ।) और फिर मुक्ति होती है । ' यही बात काशीखण्डमेंभी कही गयी है । यथा, ' **कृत्वापि काश्यां पापानि काश्यामेव म्रियेत चेत् । भूत्वा रुद्रपिशाचोऽपि पुनर्मोक्षमवाप्स्यति ॥**' श्रीसनत्कुमारसंहितामें कहा है कि ' जो बाहरका रहनेवाला पापी पुरुष काशीमें जाकर प्राणत्याग करता है वह यहीं शिवसायुज्य प्राप्त कर लेता है और यदि वह काशीमेंही पापाचरण करता हुआ मर जाता है तो उसकाभी फिर यहाँ जन्ममरण नहीं होता; बल्कि मेरे यम नामक गण उसे कर्मानुसार फलोंमें नियुक्त करते हैं और वह रुद्रपिशाचगणोंके साथ थोड़ेही नियमित समयमें उन समस्त फलोंको भोगकर शिवजीकी कृपासे ज्ञानोपदेश पाकर पिशाचयोनिसे मुक्त होता है । यथा, ' **यो वा गमिष्यत्यघकृद् बरिष्ठस्त्यक्त्वासुमत्रैव शिवं लभेत् । अत्रैव पापैः सहचेन्मृतोऽसौ न जन्ममृत्यू लभते च काश्याम् ॥ कालेन मे यामगणैः फलेषु नियोजितस्तत्सकलं प्रभुज्य । अल्पेन कालेन समस्तमेव सार्धं पुना रुद्रपिशाचरुद्रैः ॥ भवप्रसादेन कृतोपदेशः पिशाचयोनेरपि मुक्तिमेति** ' । यदि कहें कि ' अन्तःकरणकी शुद्धिकेविना काशीमें मरनेवालोंको तत्वज्ञान कैसे हो सकता है; क्योंकि तत्वज्ञान होनेकेलिये अन्तःकरणका शुद्ध होना आवश्यक है ? ' यह कहना ठीक नहीं, क्योंकि अनेक जन्मोंके संचित किये हुए पुण्यकर्मोंद्वारा जिनका चित्त शुद्ध

हो चुका है, उन्हींका काशीमें मरना संभव है। अतएव ब्रह्मपुराणमें कहा है 'अनेक जन्मसंसिद्धान् वर्जयित्वा महामुनीन्। नान्येषां मरणं तत्र यच्छन्त्येते विभीषणाः॥' अर्थात् ये भयावह रुद्रगण अनेक जन्मोंके सिद्ध महर्षियोंको छोड़कर और किसीको काशीमें नहीं मरने देते।

कुछ लोग यह कह सकते हैं कि काशीमें तो पापियोंकीभी मृत्यु होती देखी जाती है, परन्तु जिसका चित्त शुद्ध होगा उसमें पापकी वासना हो ही नहीं सकती। ऐसी दशामें यह नियम कैसे माना जाय कि 'अनेक जन्मोंके उपार्जित पुण्योंद्वारा शुद्धचित्त महात्माओंकीही यहां मृत्यु होती है?' यह भी ठीक नहीं, क्योंकि पूर्वोक्तरूपसे अन्तःकरण शुद्ध होनेपरभी प्रारब्ध पापके कारण कंस और शिशुपाल आदिके समान पापवासना संभव है, अतः उक्त नियममें कोई बाधा नहीं आती।

'मरणावस्थामें अपानवायुसे टकराकर जब मर्म फटने लगता है उस समय व्याकुलचित्त पुरुष तो कुछभी सुन नहीं सकता और असम्भावना तथा विपरीत भावनाभी मिटायी नहीं जा सकती, ऐसी स्थितिमें तत्वका साक्षात्कार असंभव है' इस तरहकी शंकाभी नहीं करनी चाहिये; क्योंकि अपरिमित महिमाशाली श्रीविश्वनाथकी कृपासे हर तरहकी वेदना मिट जानेपर चित्तको प्रसन्न रखनेकी शक्ति प्राणीके अन्दर हो सकती है और इस तरह श्रवण आदिकेभी संभव होनेसे असंभावना तथा विपरीत भावनाकी निवृत्तिमें किसी तरहकी बाधा नहीं आ सकती। मरणकालमें बाह्य इंद्रियोंकी अपेक्षाके बिनाही केवल हृदयमात्रसे श्रवण आदिकी उत्पत्ति होती है। इसलिये काशीमरणसे जो अत्यन्त शुद्ध हो चुका है और श्रीविश्वनाथजीके प्रत्यक्ष दर्शनसे जिसकी पापराशि नष्ट हो गयी है, उसके असंभावनादि प्रतिबन्धक तो नष्ट होही जाते हैं। जैसे गुरूके प्रभावसे अनादिकालिक अज्ञान मिट जाता है, वैसेही अनादि असंभावना तथा विपरीत भावनाभी मिटही जाती है।

इस तरह काशीके अलौकिक महत्त्व तथा वहाँके मरणका मोक्षदायकत्व सिद्ध हुआ। (पं० मदनमोहनजी शास्त्री, प्रिंसिपल, मारवाड़ी संस्कृत कालेज, काशी। शिवाङ्कसे)।

४ 'देहु कामरिपु रामचरनरति' इति। पद ३ मेंभी यही पाठ कुछ पोथियोंमें मिलता है। यदि दोनों जगह यही पाठ हो तो पुनरुक्तिमें भाव यह है कि जो पूर्व माँगा था वह अबतक मिला नहीं, इसीसे अब उलहना देते और झगड़ते हुए पुनः उसी वरको माँग रहे हैं। इसीसे उपालंभात्मक शब्दोंमें कहते हैं कि 'कस न द्रवहु'।

यदि 'देहु रामपदनेहु कामरिपु' पाठ वहाँ ठीक मानें तब भाव होगा कि एकबार 'रामपदनेहु' प्रथम और दूसरी बार 'कामरिपु' प्रथम देकर अन्वय व्यतिरेक भावसे यह जनाया कि दोनोंका परस्पर अन्योन्य विरुद्ध सम्बन्ध है; जहाँ रामप्रेम है वहाँ काम रह नहीं सकता और जहाँ काम है वहाँ रामप्रेम नहीं रह सकता। दोनोंका प्राबल्य दिखानेकेलियेभी दोनोंको एकएक बार प्रथम कहा। प्रथम रामपदप्रेम माँगा, इससे कामका नाश स्वयं हो जायगा। यथा, '**रामभजन बिनु मिटहिं कि कामा**' और यहाँ 'कामरिपु' सम्बोधन देकर पहले कामसे रक्षा चाही और तब रामपदप्रेम माँगा जिसमें स्थिरतापूर्वक रामप्रेम एकरस बना रह सके। विशेष पद ३ में देखिये।

वीरकविजी लिखते हैं कि 'कामरिपु' शब्द सव्यंग है कि हे प्रभो! अब आपने कामदेव सरीखे त्रिलोकविजयी योद्धाका विनाश किया, तब तुलसीदासकी भेदबुद्धिको दूर करना कौनसी बड़ी बात है? यह काव्यार्थापत्ति अलंकारकी ध्वनि है।

'जो गति अगम०' कहकर 'देहु कामरिपु ०' कहनेका भाव यहभी हो सकता है कि वह महादुर्लभ मुक्तिभी तो मैं नहीं माँगता, मैं तो श्रीरामपदप्रेमही माँगता हूँ, तब आप क्यों नहीं देते?

५ 'प्रभु हरहु भेदमति' इति। भेदमति=भेदबुद्धि। दुःखको सुख और सुखको दुःख मानना (रा० कु०)। परमेश्वरके अतिरिक्त जो देहादिक हैं उनमें सत्यबुद्धि (रा० त० बो.)।

देहाभिमानबुद्धि, (वै०) । वैषम्यभरी बुद्धि । इत्यादि अर्थ टीकाकारोंने दिये हैं ।

तुलसीग्रंथावली और विशेषतः मानस और विनय के अनेकानेक स्थलोंसे स्पष्टरूपसे यह सिद्ध है कि 'जीव और ब्रह्मका ऐक्य' यह सिद्धान्त गोस्वामीजीका नहीं है, उनका सिद्धान्त विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तही इस पक्षमें है, वे जीवको अनेक, नित्य, ब्रह्मसे भिन्न, मायाके वशमें हो जानेवाला इत्यादि मानते हैं। यथा '**ईश्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी ॥ १ ॥ ज्ञान अखंड एक सीतावर। माया बस्य जीव सचराचर ॥ माया बस्य जीव अभिमानी। ईस बस्य माया गुनखानी ॥ परबस जीव स्ववस भगवंता। जीव अनेक एक श्री कंता ॥२॥**(उ.७८)**जीव धरम अहमिति अभिमाना ॥३॥ मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहि बस कीन्हे जीव निकाया ॥४॥ माया बस परिछिन्न जड़ जींव कि ईस समान**' ॥५॥

भेदबुद्धिसे 'निज पर बुद्धि,' यह अपना है यह पराया है, यह मेरा है वह तेरा हैं, मैं तैं, मेरा तेरा, इत्यादिवाली जो बुद्धि है वही 'भेद-बुद्धि' है। यथा '**गई न निज पर बुद्धि रहे न राम लौ लाये।**' जीव जीवमें वैषम्य देखना, सबमें निज प्रभुकोही एकसमान रमण करते हुए न देखना, राममय वा सियाराममय न देखना, किसीको शत्रु किसीको मित्र मानना, अपनेसहित सबको भगवत् विभूति न देखना, इत्यादि बुद्धिही 'भेद बुद्धि' है, जो कविको अभिप्रेत है। यथा, '**मति मोरि बिभेद करी हरिये। जेहि ते बिपरीत क्रिया करिये। दुख सो सुख मानि सुखी चरिये ॥**' (लं)

भेदबुद्धिका कारण मोह है। यथा, '**तुलसीदास प्रभु मोहजनित भ्रम भेद बुद्धि कब बिसरावहुगे।**'

६ 'तुलसिदास प्रभु' का भाव कि आप प्रभु हैं, मैं सेवक हूँ; आप समर्थ हैं मैं निरसहाय, पुरुषार्थहीन और दीन हूँ। प्रभु अपने सेवककी और समर्थ असहायकी रक्षा करतेही हैं, रक्षा करना उनका कर्त्तव्य है। अतएव मेरी रक्षा काम और मोहसे कीजिये।

देव बड़े दाता बड़े संकर बड़े भोरे।
किये दूरि[1] दुख सबनिके जिन्ह जिन्ह कर जोरे ॥ १ ॥
सेवा सुमिरन पूजिबो पात[2] आखत थोरे।
दीबो[3] जहं लगि संपदा[4] सुख गज रथ घोरे ॥ २ ॥
गांव[5] बसत बामदेव[6] मैं कबहूं न निहोरे।
अधिभौतिक बाधा भई ते किंकर तोरे ॥ ३ ॥
बेगि बोलि बलि बरजिये करतूति कठोरे।
तुलसी दलि[7] रूंध्यो चहै[8] सठ साखि[9] सिहोरे ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—दाता=दानी। भोरे=भोलेभाले, सीधेसाधे, जिसे छलकपट आदि न आता हो। जो कुछ विचार न करे, जो कोई जो कुछ माँगे दे दे, जैसे भस्मासुरको बरदान। सुमिरन (स्मरण) = नवधाभक्तिमें एक प्रकारकी भक्ति, जिसमें उपासक अपने उपास्यदेवको बराबर याद किया करता है, उसका नाम लिया करता है। पूजिबो=पूजन। पात=पत्ते। आखत (अक्षत) = बिना टूटा हुआ चावल जो देवताओंकी पूजामें चढ़ाया जाता है। दीबो = देना। लगि = तक। घोरें=घोड़े। गांव=पुर,

---

१ दरि–ज०, ह०, डु०, बै०। दूर—प्रायः औरोंमें। २ पात आखत–१५, ह०, डु०, भ०, ७४, दी०, बि०। पातअक्षत–५१, वै०। पाताषत–भा०, बे०, प्र०, ज०। दल अक्षत—मु०। ३ दीबोजहं–बे०, ज०। दइ जगजहं–भा०, भ०। दई जग जहं–ह०। दियो जगत जहं–आ० (भ०), ७४। देव जगत जहं—प्र०। ४ संपदा—भा०, बे०, ह०, भ०, प्र०, ज०। सबै—डु०, ५१, बै०, मु०, दी, वि०। सबहि–७४। ५ गांउ—प्र०। ६ बामदेव मैं–ह०, ज०, ७४, वै०, डु०, दी०, बि०, मु०, प्र०। मैं बामदेव–भा०, बे०, भ०। ७ दल—मु०, ७४, प्र०, ५१, डु०, बि०। दलि–औरोंमें। ८ चहै–भा०, बे०, प्र०, ज०, मु०, ७४। चहैं-भ०, डु०, वै०, दी०, वि०। ९ साखि–५१, भ०, दी०, बे० ('पि' पर हरताल देकर हाशियेपर 'क' बनाया है), बि०, मु०। साख–डु०, ७४, बै० (शाख)। साक–भा०, बे०, प्र०, १५, ह०, ज०।

(काशी) निहोरना=बिनती करना। यथा–'मैं अपनी दिसि कीन्ह निहोरा। तिन्ह निज ओर न लाउब भोरा। (बा०), 'सोई कृपालु केवटहि निहोरा। जेहि जग किय तिहु पगहुं ते थोरा' (अ०)। याचना करना (डु०, वै०)। अधिभौतिक=जीव वा शरीरधारियोंद्वारा प्राप्त। जो भूतोंके अधिकृत हो। बाधा=पीड़ा, कष्ट। किंकर (किं + कर, अर्थात् 'क्या करूं' यह कहनेवाला) =सेवक। तोरे=तेरे, तुम्हारे। बेगि=शीघ्र, जल्दीसे। बोलि=बुलाकर। यथा 'अपराध छमिबो बोलि पठए बहुत हौं ढीठयो दई। (बा०), 'सकल मरम रघुनायक जाना। लिये बोलि अंगद हनुमाना'॥ (लं०), 'पुनि कृपाल लिय बोलि निषादा। (उ०)। बलि=बलिहारी जाता हूं, बलैयां लेता हूं। प्रेम, भक्ति, श्रद्धा आदिके कारण अपनेको निछावर करना, सदके जाना, कुर्बान होना, 'बलि, जाना' कहलाता है। बरजन (सं० वर्जन) =मना करना, डाँटना। करतूति=करनी, यथा, 'ऊंच निवास नीच करतूती।' (अ०) कठोरे=निर्दय, दयारहित, क्रूर। करतूति कठोरे=कठोर करनीवाले। दलना=कुचलना, चूर्ण-करना। 'जिमि हिमउपल कृषि दलि गरहीं।' (बा०)। रूंधना=वृक्षकी रक्षाकेलिये चारों तरफ बेर, बबूल, सेहुँड आदि काँटेदार पेड़ोंकी डालियोंकी बारी (घेरा) लगाना। सठ (शठ) =धूर्त्त, मूर्ख। साखि=वृक्ष। सिहोर (सं० सिंहुड़)=थूहड़, सेंहुड़, स्नुही। एक छोटा पेड़ जिसमें लचीली टहनियां नहीं होती, गाँठोंपरसे गुल्ली या डंडेके आकारके डंठल निकलते हैं। किसी जातिके सेंहुड़में बहुत मोटे, दलके लंबे पत्ते होते हैं और किसी जातिमें पत्ते बिल्कुल नहीं होते, किसीमें काँटे होते हैं, किसीमें नहीं।

पदार्थ—हे शंकरजी ! आप बड़े देवता (अर्थात् महादेव, देवोंके देव) हैं, बड़े दानी हैं और बड़े भोलेभाले हैं। जिनजिन लोगोंने (आपके सामने) हाथ जोड़े, उन सबोंके दुःख आपने दूर कर दिये। १। सुमिरन (अर्थात् शिव-शिव, हर-हर दो चार बार कह लेना यही) आपकी सेवा है और बेलपत्र और अक्षत, वहभी थोड़ेसे, (बस यही आपकी

पूजा है* (अर्थात् सेवा-पूजा तो इतनी मात्र और बदलेमें) देना (क्या है कि) हाथी, रथ, घोड़े (आदि) जहाँतक संसारमें सुख संपत्ति है वह सब । २ । हे वामदेव ! आपके ग्राममें बसते हुए मैंने कभीभी आपसे निहोरा नहीं किया (अर्थात् किसी प्रकारकीभी प्रार्थना अपने स्वार्थकेलिये नहीं की । (पर इस समय) जिनके द्वारा मुझे अधिभौतिक बाधा हुई है वे आपके किंकर हैं (अतएव आपसे बिनती करता हूँ, नहीं तो न करता) । ३ । मैं बलिहारी जाता हूं ! आप शीघ्रही उन कठोर करनी-वालोंको बुलाकर डाँट दीजिये । वे शठ 'तुलसी' को काटकर उससे सेंहुड़के वृक्षको रूँधना चाहते हैं, अर्थात् सेंहुड़की रक्षाकेलिये तुलसीकी बारी लगाते हैं । ४ ।

टिप्पणी—१ 'गोस्वामीजी शङ्करजीके दानीपनपर अत्यन्त लट्टू हो गये हैं । ऐसा जान पड़ता है कि उनके दातृत्वको देख केवल उन्हींपर अपनेको निर्भर कर दिया है । उनको छोड़ वे माँगनेकेलिये दूसरी जगह जानाही नहीं चाहते । यथा, '**को जाचिए संभु तजि आन,**' '**दानि कहूं संकर से नाहीं**' और '**माँगिये गिरिजापति कासीं । जासु भवन अनिमादिक दासी ॥**' क्योंकि '**औढरदानि द्रवत पुनि थोरें। सकत न देखि दीन कर जोरें ॥**' '**सुखसंपति मति सुगति सुहाई । सकल सुलभ संकर सेवकाई ॥**' क्यों न हो ? ऐसा होना स्वाभाविकही है, क्योंकि-'**देव बड़े दाता बड़े संकर बड़े भोरे। किये दूर दुख सबनि के जिन्ह जिन्ह कर जोरे ॥**'

इसलिये सबको उपदेश करते हैं कि केवल इन्हींकी सेवा पूजा कर जो माँगना हो माँग लो परन्तु आप शिवजीका इतना सम्मान करकेभी उनसे श्रीरामभक्तिही माँगते हैं और कुछ नहीं, यह अनन्योपासना है ।

२ (क) 'देव बड़े दाता बड़े० इति ।' बड़े' का भाव कि समस्त देवता दुःखमें आपकी शरण तकते हैं, आप सबसे बड़े हैं,

*दूसरा अर्थ-'सेवा, सुमिरन और पूजन तीनों थोड़े हैं, बेलपत्र और अक्षत मात्र ।' (पं० रा० कु०) ।

महाकल्पान्तमेंभी आप बने रहते हैं। यथा, 'देव देव त्रिपुरारी' (९) 'दाता बड़े' यह पूर्वके पदोंमें दिखा आये। (पद ४, ५, ६ देखिये।) (ख) 'संकर' पद देकर 'बड़े देव, बड़े दाता०' होनेका कारण बताया कि वे सदा कल्याण करनेमें तत्पर रहते हैं। (ग) 'भोरे' में वही भाव है जो 'बावरो रावरो नाहु भवानी' के 'बावरो' में है। (पद ५ टि० १ का 'नोट' देखिये)। (घ) 'जिन्ह जिन्ह कर जोरे' से जनाया कि हाथ जोड़नेमात्रसे दुःख दूर कर देते हैं, हाथ जोड़ने-भरकी देर है, उनकी कृपामें देरी नहीं है। इससे यहभी जनाया कि किसीको हाथ जोड़े खड़े आप नहीं देख या सह सकते। यथा 'सकत न देखि दीन कर जोरें' 'निरखि निहाल निमिष महं कीन्हें।' (पद ६ देखिये।) पुनः, 'जिन्ह जिन्ह' से जनाया कि दो चार हों तो गिनावें, वे तो नित्यही अगणित जनोंको निहाल करते हैं।

३ 'सेवा सुमिरन पूजिबो पात आखत थोरे।' इति। पहले अंतरेमें शिवजीको 'बड़े भोरे' कहा, अब दूसरे अंतरेमें 'भोरेपन' का लक्षण कहते हैं कि 'सेवा....थोरे' अर्थात् लेना तो अक्षत और पत्ते (तुच्छ वस्तुएँ) और देना त्रैलोक्यका ऐश्वर्य; यह भोलापन है। जैसे, बच्चोंको खिलौना देकर लोग अमूल्य वस्तु ले लेते हैं। यहाँ 'परिवृत्त' अलंकार है।

पाठान्तरपर विचार—पूर्वार्द्धमें 'पूजिबो' है। उसकी जोड़में 'दीबो' बहुत सुंदर है। पूजिबो, दीबोका जोड़ अच्छा निभ जाता है। पुरानी भाषाभी है। कविने 'दिबोई' 'देबोइ' 'दीबो' का प्रयोगभी अपने काव्यमें बहुत किया है। पाठभी दो प्राचीन पोथियोंका है। 'पूजिबो' के साथ 'दीबो' का अर्थभी खूब संगत है। पूजा तो 'पाताक्षत' वहभी 'थोड़े' और देना 'जहँ लगि संपदा०'। 'दियो' या 'दहै' पाठका अर्थभी उतना अच्छा नहीं बैठता।

'सुख, संपदा' के अर्थ पद ५, ६ में देखिये। दीबो पद ४ 'दिबोई' में देखिये।

४ 'गांव बसत बामदेव मैं कबहूं न निहोरे' इति। इन चरणोंके भाव कवितावलीके निम्न उद्धरणोंसे स्पष्ट हो जायेंगे।

१ 'देवसरि सेवौं बामदेव गाँउ रावरे ही
नाम राम ही के माँगि उदर भरत हौं।
दीबे जोग तुलसी न लेत काहू को कछुक
लिखी न भलाई भाल पोच न करत हौं॥
ऐते पर हू जो कोऊ रावरो है जोर करे
ताको जोर देव दीन द्वारे गुदरत हौं।
पाइ कै उराहनो उराहना न दीजै मोहि
काल कला कासीनाथ कहे निबरत हौं'॥

२ 'चेरो रामराय को सुजस सुनि तेरो हर
पायँ तर आइ रह्यों सुरसरि तीर हौं।
बामदेव रामको सुभाव सील जानि जिय
नातो नेह जानियत रघुबीर भीर हौं॥
अधिभूत बेदन बिषम होत भूतनाथ
तुलसी बिकल पाहि पचत कुपीर हौं॥
मारिए तो अनायास कासीबास खास फल
ज्याइए तौ कृपाकरि निरुज सरीर हौं॥'

३ 'जीबे की न लालसा दयालु महादेव मोहि
मालूम है तोहि मरिबेई को रहतु हौं।
कामरिपु रामके गुलामनि को कामतरु
अवलंब जगदंब सहित चहतु हौं॥
रोग भयो भूत सो कुसूत भयो तुलसी को
भूतनाथ पाहि पदपंकज गहतु हौं।
ज्याइये तो जानकीरमन जन जानि जिय
मारिए तौ माँगी मीचु सूधियै कहतु हौं॥'

उपर्युक्त उद्धरणोंमेंभी 'वामदेव' संबोधन आया है। 'गाँव' में बसने और अबतक निहोरा न करनेके कारणभी बताये गये हैं, भौतिक बाधाके करनेवालोंकी चर्चा और अब निहोरा करने, उलाहना देनेकी बातभी

प्रकट कही है। बामदेवके ग्राममें बसनेका कारण बताते हैं कि "मैं राजा श्रीरामचंद्रजीका सेवक हूं। आपका रघुनाथजीसे नेहनाता जानकर और आपका सुयश सुन यहां रहने आया, आप रामगुलामोंके कामतरु (कल्पवृक्ष) हैं।" तबभी मैंने कभी कोई कामना नहीं की। श्रीरामनामही लेकर अपना पेट पालता आया हूं। न ऊधोकी लेनी न माधव की देनी। श्रीरामनामहीका भरोसा रखकर कभी कोई प्रार्थना नहीं की, न किसीका एहसान चाहा। किसीका भला नहीं किया तो बुराभी नहीं किया। तबभी जो कोई आपका किंकर होकर मुझपर अपना जोर दिखावे तो उसे मैं कैसे सह सकता हूँ। अतएव आपसे उसकी इत्तला करता हूं, उसकी सूचना देता हूँ। यह निहोरा और उलाहनेका कारण बताया।

रोग भूतसा मुझे लगा हुआ कष्ट दे रहा है, भूतकृत है, भूतोंद्वारा है, अधिभौतिक है; अतः 'भूतनाथ' से निवेदन करता हूँ।

'मैं कबहूँ न निहोरे' का भाव कि यदि आपकेही किंकरोंद्वारा मुझे यह बाधा न हुई होती, और किसीसे हुई होती तो तबभी आपसे बिनती न करता, उलाहना न देता, पर आपके आश्रित यहां रहूं और आपकेही किंकर मुझे कष्ट दें यह सहा नहीं जाता, इससे निहोरा करता हूं। रामनाम लेता हूं, सबसे मीठा बोलता हूँ, इससे किसीको दुःख हो तो इसमें मेरा अपराधही क्या?

५ 'अधिभौतिक बाधा भई ते किंकर तोरे' इति। इसके भावार्थ कहते हुए रामतत्त्वबोधिनी, डुमराँववाली टीकासे लेकर आधुनिक टीकाकारोंतकने प्रायः एक राग गाया है। 'अधिभौतिक बाधा' का प्रायः सभीने 'कामक्रोधादिकृत कष्ट' अर्थ किया है और कामादिको शंकरजीका किंकर माना है। गोस्वामी तुलसीदासजी के ग्रंथोंमें कामादिकके शिव-किंकर होनेका प्रमाण हमें देखनेमें नहीं आया।

'ते किंकर तोरे' से स्पष्ट है कि अधिभौतिक पीड़ा देनेवाले शिवजीके किंकर है। वे किंकर कौन हैं? यह कवितावलीसे स्पष्ट है और सब जानते हैं।

'भूत भव भगत पिसाच भूत प्रेत प्रिय
आपनो समाज सिव आपु नीकें जानियै।
नाना बेष बाहन बिभूषन बसन बास
खान पान बलि पूजा बिधिको बखानियै॥
रामके गुलामनि की रीति प्रीति सूधो सब
सबसों सनेह सबहीको सनमानियै।
तुलसीकी सुधरै सुधारे भूतनाथ ही के
मेरे माय बाप गुर संकर भवानियै॥'

कवितावलीके इस प्रसंगके चार कवित्तोंमेंसे यह अंतिम कवित्त है जो गोस्वामीजीने अधिभौतिक बाधा होनेपर लिखे थे। तीन कवित्त ऊपर टि० ४ पृष्ठ ९० में दिये जा चुके हैं। इनसे तथा श्रीवेणीमाधोदासकृत 'मूलगुसाईं चरित' से स्पष्ट हो जाता है कि ऊपर टि० ४ में दिये हुए उद्धारणोंमें जो कहा है कि 'जो कोऊ रावरो ह्वै जोर करै ताको जोर देव दीन द्वारे गुदरत हौं' इससेभी स्पष्ट है कि आपके खास किंकरोंद्वाराही यह कष्ट हो रहा है। वह कौन हैं? यही भैरव और उनकी सेना भूतप्रेतादि।

यह सब जानतेही हैं कि गोस्वामीजीकी प्रतिष्ठा काशीजीमें नित्यप्रति दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती देख बहुतसे विद्वानोंको डाह उत्पन्न हो गया था और जब देखो तभी इनके मारने वा काशीसे निकल जानेकेलिये अनेक उपाय वे लोग करतेही रहते थे, परन्तु उनके सभी प्रयत्न असफल होते गये। आखिरको भैरवजीका प्रयोग लोगोंने किया जिससे इनको बड़ी वेदना हुई। उसीकी ओर यहां इशारा है। भैरवभी इनसे नाराज़ही रहते थे; क्योंकि ये उनको कुछ समझतेही न थे, न उनकी वंदना करते थे। *

---

* 'ते किंकर तोरे' इति। अर्थान्तर—१. यहाँ कामक्रोधादिही भूत हैं। भूत शिवजीके किंकर हैं अर्थात् आज्ञाके अधीन हैं। (डु०, टी०) २. भूतोंद्वारा बाधा हुई। रामनामका प्रचार करनेमें कलियुगने मुझपर

'किये दूरि दुख सबनिके।' इत्यादि कहकर 'गाँव बसत' कहनेका भाव कि मैंने हाथी, घोड़ा आदि सुख संपत्ति न कभी माँगी

कोप किया है, उसकी सेना भूतगण मुझको सताती है, वे अर्थात् भूतगणसहित कलियुग सब आपहीके किंकर हैं। कलियुग शठ है। (बै०)। ३. कामक्रोधादिभूतोंने शरीरमें बाधा कर रक्खी है। (भ०)। ४. किन्तु इन दिनों शरीरधारियोंद्वारा कष्ट होता है, वे (पीड़ा करनेवाले) आपके दास हैं। (वीर)। ५. तुम्हारे शठ और अत्याचारी किंकर अर्थात् काशीके गुंडे मुझे कष्ट देते हैं। (दी०)। ६. काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य जो आपके दास हैं, मुझे सताने लगे हैं। (वि०)। ७. (शुक्लजी लिखते हैं कि) पंचमहाभूतोंके सत्वअंशसे मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार ये चारों अन्तःकरण हैं। उन्हींका धर्म इच्छा, द्वेषादि है। जीवात्माके यही अधिभौतिक क्लेश हैं और चैतन्यात्माकी सत्तासे अपना‌अपना काम करते हैं, इसलिये सेवक हैं। ८. डा० माताप्रसादगुप्तजीका मत है कि पहला और तीसरा प्रकारका विरोध काशीके शिवोपासकोंने, कदाचित् शिवमंदिरके पुजारियोंने किया। इस विरोधका उल्लेख शिवसे प्रार्थना करते हुए कवि, कवितावली पद १६५ 'देवसरि सेवौं बामदेव' और विनयपत्रिका पद ८ 'गाँव बसत बामदेव' में करता है। शिवोपासक पुजारियोंके विरोधका कारण कदाचित् आसानीसे समझा जा सकता है। यद्यपि तुलसीदासने शिवोपासनाका विरोध नहीं किया, बल्कि रामभक्तिकी प्राप्तिकेलिये उसे एक आवश्यक साधनकेरूपमें स्वीकार किया। फिरभी उनकी रचनाओंसे रामभक्तिकी लोकप्रियता जनतामें एक बार बड़े ज़ोरोंपर बढ़ी होगी, और उस बाढ़में कुछ आश्चर्य नहीं कि बहुतसे शिवभक्तभी रामभक्तिकी ओर आकृष्ट होने लगे हों और उनके उपास्यके एकाधिपत्यसे बाहर निकलने लगे हों अथवा इन पुजारियोंको भविष्यकेलियेही इस प्रकारकी आशंका होने लगी हो, इसलिये उस शिवपुरीमें यदि उन्होंने हमारे कविको पीड़ा पहुँचानेका कोई प्रयत्न किया हो तो कुछ आश्चर्य न करना चाहिये।

और न अब माँगता हूँ। केवल आपके किंकर जो कष्ट देते हैं उनसे रक्षा चाहता हूँ और वह भी खाली मुँहसे डांट देनेको कहता हूँ, और कुछ नहीं।

६ (क) 'बेगि बोलि' से जनाया कि कष्ट अत्यंत बढ़ गया है, सहा नहीं जाता, शीघ्रता न करनेसे प्राणोंपर आ बनेगी। पुनः, भाव कि उनको खबर न होने पावे कि मैंने शिकायत की है, नहीं तो वे और कष्ट देंगे। इसके पहलेही उनको डाँट दिया जाय। (ख) 'करतूति कठोरे' इति। भूतप्रेतोंकी करनी कठोर होती है। ये क्या कठोर करनी कर रहे हैं सो आगे बताते हैं।

७ 'तुलसी दलि रूंध्यो चहै सठ साखि सिहोरे' इति। यहाँ 'तुलसी' शब्द श्लिष्ट है। तुलसीदास और तुलसीवृक्ष दोनोंका बोधक है। यथा, 'आनन्दकानने ह्यस्मिन् जंगमस्तुलसीतरुः'। तुलसीदास तुलसीतरु-रूप हैं, तुलसीको दलना तुलसीदासको मार डालनेका उपाय करना या मारना है। प्रयोग करनेवाले सेहुँड़रूप हैं और शठ भूतप्रेतादि हैं जो उनको रूँधना चाहते हैं अर्थात् तुलसीदासको मारकर उन तुच्छ दुष्टोंको सुखी करना चाहते हैं। यहाँ ललित अलंकार है। यह तो भावार्थका स्पष्टीकरण हुआ। इसमें कठोर करतूत क्या है सो सुनिये। यह रीति है कि तुलसी, गुलाब, जुही, बेला, रसाल, पीपल, बट आदि अच्छे वृक्षोंकी रक्षा-केलिये उसके चारोंतरफ बबूल, सेंहुड़, नागफनी आदि काँटेदार कटीले कुत्सित वृक्षोंकी शाखाएँ काटकर उसकी बारी बनाते हैं जिससे पशु आदिसे वह सुरक्षित रह सके। ऐसा न करके जो अच्छे वृक्षोंको काटकर उनसे सेंहुड़ आदिकी रक्षाकेलिये बारी बनावे वह मूर्ख समझना चाहिये। इसीसे उन लोगोंको 'शठ' कहा कि उन दुष्टोंकी सहायता करते हैं जिनको वस्तुतः दंड देना चाहिये था और मुझको कष्ट देते हैं कि जो रामनामका प्रचार करता है, भजन करता है और जिसकी रक्षा करना उनका धर्म है। यथा, 'अस कवन सठ हठि काटि सुरतरु बारि करिहि बबूरही।' (कि०) मिलान कीजिये, 'बबुर बहेरे को बनाय बाग लाइयत रूंधिबे को सोई सुरतरु काटियतु है'॥

अर्थात् इस कलिकालमें नीच लोग बबूर बहेड़के बाग खूब सजाकर अच्छी तरह लगाते हैं और बागकी रक्षाकेलिये चारों ओर बारी लगानेकेलिये कल्पवृक्ष काट डालते हैं। ठीक यही भाव 'तुलसीदलि रूंध्यो चहै सठ साखि सिहोरें' का है। शठ लोग सिहोड़की रक्षाकेलिये तुलसीको काटकर उससे बारी बनाना चाहते हैं। *

पाठान्तरपर विचार—शाखा और शाखी शुद्ध संस्कृत शब्द है। मोटी डाल जो जड़से निकलती है उसे शाखा कहते हैं। यथा, 'वृक्षो महीरुहः शाखी बिटपी पादपस्तरुः' इत्यमरकोशे। शाक=सागभाजी, तरकारी, सब्जी। शाखा तो डालीका नाम हैं, अतः वह पाठ होही नहीं सकता। 'साक' पाठ लें तो साक और सिहोरे दो चीजें हैं। इनमेंसे काँटेदार और बारीमें लगाया जानेवाला 'सिहोरा' है, न कि शाक। अतएव 'साखि सिहोरे' ही ठीक जँचता है।

---

* भावार्थान्तर—१ ये मूर्ख तुलसीदलको सिहोरेकी डालीसे रूंधना चाहते हैं अर्थात् हरिभक्तिरूपी तुलसीके वृक्षको बाधारूपी काँटोसे अवरुद्ध करना चाहते हैं अर्थात् मुझे कष्ट पहुँचाकर रामभक्तिसे हटाना चाहते हैं। (वीर) २ ये दुष्ट तुलसीदलको कुचलकर उसके स्थानपर थूहड़की डालियाँ लगाना चाहते हैं। तुलसीदासके हृदयसे भावकी भक्ति दूरकर उसके स्थानमें कामवासनाएँ आरोपित करना चाहते हैं (वि०)। ३ 'तुलसीको उखाड़कर सिहोरेकी शाखाको रोपना चाहते है। भावकि तुलसीरूप ज्ञान, वैराग्य, क्षमा, करुणादिको दलकर स्त्रीपुत्रादिविषयक मलिन वासनारूपी सिहोरेकी डालको हृदयमें स्थित करना चाहते हैं। (डु०)। संभवतः यह भाव विनयके 'तिन्हहिं उजारि नारि अरि धन पुर राखहि राम गुसाई' के आधारपर लिखा गया है। यही भाव बाबा हरिहरप्रसादजीनेभी दिया है। ४ भक्तिका प्रचार मिटाकर पापकर्मोका प्रचार करना चाहते हैं। तुलसीसम साधुजनोंकी सिहोरेसम दुष्टोंकी रक्षा करना चाहते हैं। (वै० दी०)। ६ अतुल प्रेम, पराभक्ति सुखको उखाड़कर कटीले विषयसुखको आरोपित करते हैं। (सू० दी० शु०)

'तुलसी दल' पाठ स्पष्टही अशुद्ध है, दलकी बाडी नहीं बनती, वृक्षकी डालियोंकी बनती है।

९ [९] राग रामकरी

सिव सिव होइ प्रसन्न करि[1] दाया।
करुनामय उदार[2] कीरति बलि जाउँ हरहु निज माया ॥१॥
जलजनयन गुनअयन मयनरिपु महिमा जान न कोई।
बिनु तव कृपा रामपदपंकज सपनेहुं भगति न होई ॥२॥
रिषय[3] सिद्ध मुनि मनुज दनुज सुर अपर जीव जग माहीं।
तुअ[4] पद बिमुख पार[5] न पाव[6] कोउ कलप कोटि चलि जाहीं ॥३॥
अहिभूषन दूषनरिपुसेवक देव देव त्रिपुरारी।
मोह निहार दिवाकर संकर सरन सोक भय हारी ॥४॥
गिरिजा मन मानसमराल कासीस[7] मसाननिवासी।
तुलसिदास हरिचरनकमल हर[8] देहु भगति अबिनासी ॥५॥

शब्दार्थ.—करि=कर, करो। करुनामय=करुणायुक्त, करुणाके स्वरूप। 'मयट्' का प्रयोग बाहुल्य जनानेकेलिये किया जाता है। उदार कीरति=जिसकी कीर्ति महान् बड़ी है। 'महान् दाता हैं,' ऐसी जिनकी कीर्ति है। माया = देवताओंमेंसे किसीकी कोई लीला, शक्ति, इच्छा वा प्रेरणा। यथा, 'तेहि आश्रमहि मदन जब गयऊ। निज माया बसंत निरमयऊ॥' (बा०)। जलजनयन=कमलनेत्र, कमलके दलके समान लंबे। करुणाजल पूर्ण नेत्रवाले। गुनपद १ और १३

१ करि–६६, रा० । करु—प्रायः औरोंमें। २ उदार कीरति–६६ ह०, ज०, ५१, ७४, आ०। कीरति उदार—भा० बे०। ३ रिषै–६६ ऋषी–५१, शि० वै०, मु०। रिषय—भा० ७४, रा. ज० बे०। ४ तुअ–६६, रा० भ०। तव–मा० बे०, ७४, ज०। तुव–१५। ५ पार न–६६, रा०। पार नहिं—मु०, ७४, ज०। न पार—भा०, बे०, ह० १५, आ० (मु०)। ६ पावत—७४, मु०। पावहि–ज०। ७ काशी शमशान–ह०। ८ हर–६६. रा०, भा०, बे०, ह०, ज०। बर–५१, ७४, आ०। बरु—१५ (हाशियेपर 'हर' है।)

देखिये। अयन = घर। मयन (सं० मदन) = कामदेव। मयनरिप = पद ३, ७ 'कामरिपु' देखिये। पंकज = पंक (कीचड़) से जायमान। कमल। सपना = (सं० स्वप्न) सोनेकी अवस्था, निद्रामें अनुभव होनेवाली बात या दिखाई देनेवाला दृश्य। प्रायः पूरी नींद न आनेकी दशामें मनमें अनेक विचार उठा करते हैं जिनके कारण कुछ घटनाएँ मनके सामने उपस्थित हो जाती हैं। इसीको स्वप्न कहते हैं। यद्यपि वास्तवमें उससमय नेत्र बंद रहते हैं और इन बातोंका अनुभव केवल मनको होता है तथापि बोलचालमें इसके साथ 'देखना' क्रियाका प्रयोग होता है। अल्प कर्मोंका फलभोग स्वप्नमें होता है। रिषय सिद्ध मुनि = ऋषि – वेदमंत्रोंका प्रकाश करनेवाला, आध्यात्मिक और अधिभौतिक तत्त्वोंका साक्षात्कार करनेवाला। ये सात प्रकारके माने गये हैं। १ महर्षि (जैसे व्यास), २ परमर्षि (जैसे भेल), ३ देवर्षि (जैसे नारद), ४ ब्रह्मर्षि (जैसे वसिष्ठ), ५ श्रुतर्षि (जैसे सुश्रुत), ६ राजर्षि (जैसे ऋतुपर्ण) और ७ कांडर्षि (जैसे जैमिनि)। एक पद ऐसे सात ऋषियोंका माना गया है जो कल्पान्त प्रलयोंमें वेदोंको रक्षित रखता है। 'रिषय' (ऋषयः) बहुवचन है अर्थात् ऋषिगण। सिद्ध – जिसने योग या तपद्वारा अलौकिक लाभ या सिद्धियां प्राप्त की हो। मुनि–मननशील महात्मा; ईश्वर, धर्म, सत्यासत्यका सूक्ष्म विचार करनेवाला व्यक्ति। अपर = दूसरा। जीव = जीवधारी, प्राणी। बिमुख = जिसकी स्थिति या आचरण अनुकूल न हो; विरोधी। कलप = (कल्प) कालका एक विभाग जिसे ब्रह्माका एक दिन कहते हैं और जिसमें १४ मन्वन्तर अर्थात् ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष होते हैं। चलि जाहीं = बीत जायँ। मोह = स्वरूपकी विस्मृति। हम कौन हैं, हमारा स्वरूप क्या है, यह भूलकर अपनेको अनात्म देह मानने लगना 'मोह' है। (पद १० देखिये)। निहार = कुहरा, पाला। 'अवश्यायस्तु निहारस्तुषारस्तुहिन हिमम्।' (इत्यमरः) मानस = मानससरोवर। हिमालयपरकी एक प्रसिद्ध बड़ी झील जिसके विषयमें प्रसिद्ध है कि ब्रह्माजीने अपनी इच्छामात्रसेही इसका निर्माण किया था। हमारे प्राचीन ऋषियोंने इसके आसपासकी

भूमिको स्वर्गतुल्य कहा है। रामचरितमानस बालकांड दोहा ३५–३९ में इसका रूपक दिया हुआ है। मराल = हंस। मसान = मरघट; जहाँ मुर्दे जलाये जाते हैं। अबिनासी = अविनाशिनी; नाशरहित।

पद्यार्थ—हे शिवजी! हे शिवजी! प्रसन्न होकर मुझपर दया कीजिये। आप करुणामय और उदारकीर्ति हैं। मैं बलिहारी जाता हूँ। आप अपनी माया समेट लीजिये। १। आप कमलनयन, गुणोंके धाम और कामदेवके शत्रु हैं, आपकी महिमा कोई नहीं जानते। बिना आपकी कृपाके श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंमें भक्ति स्वप्नमेंभी नहीं हो सकती। २। ऋषि, सिद्ध, मुनि, मनुष्य, दनुज, देवता तथा औरभी जीव जो संसारमें हैं, वे आपके चरणोंसे विमुख होकर (भवसागर) पार नहीं पा सकते, (अर्थात् जन्ममरणसे छुटकारा नहीं पा सकते।) चाहे करोड़ों कल्प बीत जायँ। ३। आप सर्पोंका भूषण धारण करनेवाले, दूषणरिपु, श्रीरघुनाथजीके सेवक, देवदेव महादेव, त्रिपुरासुरके नाशक, मोहरूपी कुहरेके नाशके लिये सूर्यरूप, कल्याण करनेवाले और शरणागतके शोक और भय हरनेवाले हैं। ४। श्रीपार्वतीजीके मनरूपी मानससरोवरके हंस, काशीपति, श्मशानमें रहनेवाले, जीवोंके क्लेश हरनेवाले शङ्करजी! तुलसीदासको भगवान्‌के चरणकमलोंकी अविचल भक्ति दीजिये। ५।

टिप्पणी—१ 'सिव सिव होइ प्रसन्न करि दाया' इति। दया करनेकी तथा माया हरनेकी प्रार्थनाके सम्बन्धसे 'शिव' सम्बोधन दिया गया है। भाव कि आप अपने सेवकोंपर कभी क्रोध नहीं करते, आप सदा मंगलकार और कृपालु हैं, आप समस्त कल्याणोंके निधान हैं और भक्तोंके पाप और त्रिताप हरनेमें सदा लगे रहते हैं। ऐसे अपने 'शिव' नामको सार्थक कीजिये।

२ (क) 'सिव सिव' अर्थात् दो बार 'शिव' कहनेमें कोई आदरकी, कोई मायासे भयातुर होनेके कारण भयकी विप्सा कहते हैं और कोइ एक 'शिव' को दूसरेका विशेषण मानकर अर्थात् 'कल्याणकारी शिवजी' ऐसा अर्थ करते हैं। पं० श्रीरामकुमारजी अपने खर्रेमें लिखते हैं कि

' इस पदमें ऐश्वर्यलिये हुए विनय की गयी है, निस्त्रैगुण्यमें शिव पद दिया गया है और यहाँ महिम्नस्तोत्रका इशारा है।'

(ख) ' करुनामय उदार कीरति ' इति। प्रथम ' शिव शिव ' से अपना भयभीत होकर शरणमें आना और फिर 'करुनामय उदार कीरति' विशेषणोंद्वारा उनकी करुणा और दयाको उत्तेजित कर तब ' निजमाया ' हरनेको कहा। आगे जो ' मोह निहार दिवाकर संकर ' में कहा है वही यहाँ ' निजमाया ' से मोह अभिप्रेत है। ' करुणा ' और ' उदारकीर्ति ' की पूर्व पदोंमें काफी व्याख्या हो चुकी है।

(ग) ' निजमाया ' इति। ' निजमाया ' क्या है ? इसपर प्रथम हम टीकाकारोंके मत लिखते हैं (१) ' आत्मा जो सत्य है उसमें मिथ्याबुद्धि और देह जो मिथ्या है उसमें सत्यबुद्धि ' यही निजमायाका स्वरूप है। (हु०, टी०) आत्मा नित्य है, उसमें नाशत्वबुद्धि और देहादि अनित्यवस्तुओंमें नित्यबुद्धि ' माया ' है। (२) शब्द स्पर्श रूप रस गंध इन्द्रियविषयरूपमाया प्रसिद्ध है। इनकी प्रबलतासे कामक्रोधादि जीवको नाश करते हैं। (वै०) (३) तमोगुणरूपी अंधकार जो हृदयमें है, अथवा आपके पार्षदोंकी माया जो रोगरूपसे पीड़ित कर रही है। (च०) (४) वही अधिभौतिक कष्ट जिसका ज़िक्र पद ८ में हो चुका है। (दी०)

प्रत्येक देवता, दैत्य और राक्षसकी पृथक् पृथक् अपनी अपनी माया होती है। जिसका जैसा सामर्थ्य होता है, वैसीही बलवती उसकी माया होती है। श्रीरघुनाथजीकी माया परम बलवती है। इससे अधिक विशाल और बलवती किसीकी माया नहीं है। यथा, 'यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादि देवासुरा।', 'ऊमरितरु बिसाल तवमाया। फल ब्रह्मांड अनेक निकाया॥ जीव चराचर जंतु समाना। भीतर बसहिं न जानहिं आना॥ ते फल भच्छक कठिन कराला। तव भय डरत सदा सोउ काला॥' (आ), ' दैवी ह्येषा गुणमयी ममममाया दुरत्यया। मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥ ' (गीता ७।१४)।

श्रीमन्नारायणकी मायाका उल्लेख बालकांडमें आया है। यथा, श्रीपति निजमाया तब प्रेरी। सुनहु कठिन करनी तेहि केरी। निजमाया बल देखि बिसाला। हिय हँसि बोले दीनदयाला ॥' बल ऐसा था कि परम भागवत देवर्षि नारदभी उसके चक्करमें आ गये। यहाँभी 'निजमाया' पद आया है।

उत्तरकांडमें वेदोंने जो स्तुति की है उसमेंभी 'तवमाया' शब्द है और किष्किंधामें हनुमान्‌जीके वाक्यमेंभी है। यथा, 'तवविषम माया बस सुरासुर नाग नर अग जग हरे। भवपंथ भ्रमत अमित दिवसनिसि काल कर्म गुननि भरे ॥' (उ०) तवमाया बस फिरउं भुलाना।' (कि०) इत्यादि। इसी तरह शिवजीसे विप्रजी बिनती करते हुए कहते हैं, 'तव माया बस जीव जड़ संतत फिरहि भुलान। तेहि पर क्रोध न करिय प्रभु कृपासिंधु भगवान ॥' (उ०) यह स्तुति ब्रह्मात्मक अर्थात् शिवशरीरक ब्रह्मकी वन्दना है। इसी तरह अन्य देवताओंकीभी माया है। अयोध्याकांडमें इंद्रादिकी मायाकी चर्चा है। यथा, 'लोग सोग श्रम बस गए सोई। कछुक देवमाया मति मोई।' (अ०) 'सुरमाया सब लोग बिमोहे। रामप्रेम अतिसय न बिछोहे ॥' (अ०) इत्यादि। और राक्षसी माया तो लंकाकांडमें बराबर देखी जाती है।

'हरहु निजमाया' इति। वह 'निजमाया' क्या है जिससे रक्षाकी प्रार्थना करते हैं? मोह आदिही आपकी माया है जिससे रक्षा चाहते हैं। यह बात 'मोह निहार दिवाकर संकर' शब्दोंसे ग्रंथकारने स्वयं स्पष्ट कर दी है। 'हरहु' का भाव कि आपकी मायासे मैं अत्यन्त संकटमें पडा हूँ, बहुत घबड़ाया हूँ।

३ (क) 'जलजनयन गुनअयन मयनरिपु' इति। 'जलजनयन' से कमलदलसमान लम्बे. करुणाजलभरे, दयार्द्र, शीलवान् तथा दर्शकको आल्हादकर्ता जनाया। 'गुणअयन' से अमित अपार दिव्यगुणयुक्त जनाया। महिम्नस्तोत्रमें कहा है, 'असित गिरिसमं स्यात्कज्जलं सिंधुपात्रे सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी। लिखति यदि गृहित्वा शारदा

सर्वकालं तदपि तवगुणानामीश पारं न याति ॥' मानसमें भी कहा है, 'चरित सिंधु गिरिजा रमन बेद न पावहिं पार'।

'मयनरिपु' इति। स्मरण रहे कि श्रीरामपदप्रेम अर्थात् रामभक्तिवर माँगनेमें हमारे पूज्य भक्तशिरोमणि कविने प्रायः 'कामरिपु' या इसीका कोई समानार्थक विशेषण वा संबोधन श्री शिवजीकेलिये प्रयुक्त किया है। पूर्व पद ३ और ७ में 'देहु कामरिपु रामचरनरति' और आगे पद १० में 'देहि कामारि श्रीरामपदपंकजे भक्तिमनवर्त गत भेद माया।' कहा है। वैसेही यहाँ 'मयनरिपु' विशेषण दिया है, क्योंकि वे श्रीराम-भक्तिका वरदान माँगना चाहते हैं। यथा, 'बिनु तव कृपा रामपदपंकज सपनेहु भगति न होई ॥ तुलसिदास हरिचरनकमल हर देहु भगति अबिनासी ॥'

भक्ति माँगनेमें 'कामरिपु' 'मयनरिपु' और 'कामारि' विशेषणोंका प्रयोग साभिप्राय है। कारण कि कामके रहते भक्ति होही नहीं सकती। जो कामारि है वही 'निष्काम' और 'अविनाशी' भक्ति दे सकता है। (पद ३, ७ देखिये।)

(ख) 'महिमा जान न कोई'। भाव कि महिमा अपार है, कौन जान सकता है? पुनः, भाव कि यदि लोक महिमा जानते तो आपको छोड़कर क्यों दरदर माँगते फिरते। एकबार आपसेही माँगकर अयाचक न हो जाते?

(ग) 'महिमा जान न कोई' कहकर 'बिनु तव कृपा रामपद' कहनेका भाव कि यह आपकी भारी महिमा है। आप श्रीरघुनाथजीके इतने प्यारे हैं कि उन्होंने आपको अपनी भक्तिका ख़ज़ान्ची, कोठारी वा भण्डारीही बना दिया है। श्रीमुखवचन है कि 'जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भक्ति हमारी ॥', 'संकरभजन बिना नर भगति न पावइ मोरि।' 'सपनेहुँ भगति न होइ' का साधारण भाव तो सब जानतेही हैं। दूसरा भाव यह है कि यदि कोई सोचे कि जाग्रतावस्थामें न सही, स्वप्नमेंही हम अपनेको रामभक्त देखकर अपना जी भर लेंगे तो उसपर कहते हैं कि यहभी नहीं होनेका,

यह ख्याल 'खयाली पुलाव' के समान है। स्वप्नमेंभी कभी तुम अपनेको रामभक्त होनेका सौभाग्य नहीं प्राप्त कर सकोगे। इतनेके लियेभी तरसतेही रह जाओगे।

(घ) 'रिषय, सिद्ध, मुनि और मनुज' से भूलोक, सुरसे स्वर्गलोक और असुरसे पाताललोक, इसतरह इनसे समस्त त्रैलोक्यवासी सूचित कर दिये। 'अपर जीव' से जलचर, थलचर, नभचर, यक्ष, गंधर्व आदि सब कह दिये।

(ङ) 'तुअ पद बिमुख' इति। यथा, '**सिवद्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहु मोहि न पावा॥**' '**संकर बिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी॥ संकरप्रिय ममद्रोही सिवद्रोही ममदास। ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास॥**' लं० २॥

४ 'अहिभूषन दूषनरिपुसेवक' इति। (क) अहिभूषण— '**कुंडल कंकन पहिरे ब्याला**', '**भुजग भूति भूषन त्रिपुरारी**', '**यस्योरसि व्यालराट्**' (अ० मं०) '**कालव्याल कराल भूषणधरं**' (लं०) इत्यादि। मुकुट, कुंडल, कंकण, हार इत्यादि सभी आभूषण सर्पोंकेही हैं। सर्प इसप्रकार लपेटे हैं कि वे मुकुट, कुंडल आदि मालूम होते हैं। पुनः, भूषणका भाव कि विषधर सर्प आपको वैसेही हैं जैसे रत्नोंकी माला। 'अहिभूषण' से कराल, अमंगलरूप भासित होता है। इससे आगे 'दूषनरिपुसेवक' और 'देव देव' आदि विशेषण देते हैं।

आध्यात्मिक रहस्य—'अहिभूषन' के कुछ आध्यात्मिक रहस्य यहाँ लिखे जाते हैं। प्रथम स्थूल अभिप्राय यह है कि मंगल और अमंगल सब कुछ ईश्वर शरीरमें हैं। दूसरा अभिप्राय यहभी है कि संहारकारक शिवके पास संहारसामग्रीभी रहनीही चाहिये। समयपर उत्पादन और समयपर संहार, दोनोंही ईश्वरकेही काम हैं। सर्पसे बढ़कर संहारक तमोगुणी कोई होही नहीं सकता; क्योंकि अपने बालकोंकोभी खा जाना, यह व्यापार सर्प जातिमेंही देखा जाता है, अन्यत्र नहीं। तीसरा अभिप्राय किंचित् निगूढ़ है। चन्द्रमा, मंगल, बृहस्पति आदि

ग्रह जो सूर्यके चारों ओर घूमते हैं, वे अपने एक परिभ्रमणमें जिस मार्गपर गये थे, ठीक उन्हीं बिन्दुओंपर दूसरी बार नहीं जाते। किंचित् हटकर उसी मार्गपर चलते हैं, यों एकएक बारके भ्रमणका एक एक कुण्डलाकार वृत्त बन जाता है। कुछ नियत परिभ्रमणोंके बाद वे फिर अपने उस पूर्व वृत्तपर आ जाते हैं। यह नियम भिन्नभिन्न ग्रहोंका भिन्न भिन्न रूपसे है। मंगल ७६ वर्षमें फिरसे अपने पूर्व वृत्तपर आता है। और और ग्रहोंकाभी समय नियत है। यह भिन्नभिन्न मण्डलोंका समुदाय रस्सीकी तरह लपेटा हुआ ख्यालमें लाया जाय तो वह सर्पकुण्डलीके आकारकाही होता है। अतः वेदोंमें इनका व्यवहार नाग वा सर्प कहकरही किया गया है। आधुनिक ज्योतिषशास्त्रमें इन्हें 'कक्षावृत्त' कहते हैं। सूर्यको मध्यमें रखकर घूमनेवालोंमें आठ ग्रह मुख्य हैं। अत: आठही सर्प प्रधान माने गये हैं। औरभी बहुतसे तारे घूमनेवाले हैं, उनके लघु सर्प बनते हैं। ये सब ग्रह और उनके कक्षावृत्त (सर्प) ईश्वरके शरीर ब्रह्मांडमें अन्तर्गत हैं। इसलिये शिवके शरीरमें भूषणरूपसे सर्पोंकी स्थिति बतायी गयी है। तारामण्डलमेंभी अनेक रुद्र हैं और उनके आकार सर्प जैसे दिखायी देते हैं। उन सबके धारक मुख्य रुद्र भगवान शङ्कर हैं। यह चौथा अभिप्राय है। (महामहोपाध्याय पं० श्रीगिरिधरजी शर्मा, चतुर्वेदी)

४ (ख) 'दूषनरिपुसेवक' इति। दूषणरिपु कहकर अहिभूषण वा अमंगलवेष धारण करनेका कारणभी बताया कि इनके दर्शन, सेवा, उपासना, आज्ञापालन आदिके सुखकेलियेही ऐसा वेष किये हैं। यथा, '**जेहि सुख लागि पुरारि असिव बेष कृत सिव सुखद।**' पुन: भाव कि जैसे रघुनाथजीकी परम शोभा सौन्दर्यसे खरदूषणादि मोहित हो गये थे वैसेही भगवान्की आज्ञासे असुरोंको मोहित करनेकेलिये शिवजी यह वेश बनाये रहते हैं। यथा, '**त्वंच रुद्र महाबाहो मोहशास्त्राणि कारय** (इति पाद्मे)।' शिवजी पर हैं, देवोंके देव हैं, परम दिव्य हैं, मंगलरूप हैं और शंकर अर्थात् कल्याणकर्ता हैं। पुनः भाव कि जिनकी अलौकिक परमशोभाकी खरदूषणादि शत्रुओंनेभी मुक्तकंठसे

भूरि भूरि प्रशंसा की है उन श्रीरामजीके ये सेवक हैं। श्रीरामचन्द्रजी 'मंगलभवन अमंगलहारी' हैं तब उनके सेवक कब अमंगलरूप हो सकते हैं? सौंदर्यनिधान व्यक्तिके सेवकभी सुंदर होते हैं।

श्रद्धेय लाला श्रीभगवानदीनजी लिखते हैं कि 'दूषणरिपुके सेवक अर्थमें विचार करना चाहिये कि किसीकी प्रशंसामें यह कहना कि 'तुम अमुकके गुलाम हो' प्रशंसा होगी या निंदा? परन्तु भगवत्सेवक होना निंदा नहीं है। यथा, 'रामहिं भजहिं तात सिव धाता।', 'रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ कहि सिव नायेउ माथ।' इत्यादि। श्रीसीतापति रामचन्द्रजी चराचरमात्रके स्वामी हैं। यथा 'तुम्ह त्रैलोक्य ईस रघुनाथा'। और शिवजीके संबंधमें कविने 'सेवक स्वामि सखा सियपी के' कहाभी है। तब 'सेवक' कहनेमें क्या आपत्ति पड़ेगी? सेवक हैं तभी तो उनकी भक्ति दे सकेंगे, अपने स्वामीसे हमारीभी सिफ़ारिश कर सकेंगे। भगवान् रामका सेवक होना बड़े अभिमान और गौरवकी बात है। यथा 'अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे॥', 'नेमप्रेम संकर कर देखा। अबिचल हृदय भगति की रेखा॥ प्रगटे रामकृतज्ञ कृपाला। रूप सील निधि तेज बिसाला॥ संकर सोई मूरति उर राखी॥' श्री रामजी तो 'स्वारथ रहित सखा सबही के' हैं, अतः शंकरजीकेभी सखा हैं।

५ 'मोह निहार दिवाकर संकर' इति। शंकरजी सूर्य हैं, उनके वचन सूर्यकी किरणें हैं, मोह पाला है। सूर्यके उदयसे पाला बिना परिश्रम सहजही दूर हो जाता है। इसी तरह आपकी कृपासे मोह जो जीवोंको जड़ बनाकर भवप्रवाहमें डाल देता है सहजही नष्ट हो जाता है। यथा, 'सुनु गिरिराजकुमारि भ्रमतम रबिकर बचन मम।' भाव यह कि आप जीवोंको उस ज्ञानस्वरूपका बोध दे देते हैं जिससे वह भगवान्को सर्वात्मा जान लेता है। ऐसा बोध हो जानेसे शोक और भय दूर हो जाते हैं। इसीसे 'मोह निहार दिवाकर' कहकर 'सोक-भय हारी' कहा। 'मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। तेहि ते पुनि उपजहिं बहु सूला॥' अर्थात् मोह समस्त व्याधियोंकी जड़ है। इसीसे

मूलकाही नाश यहां कहा। मूलके नाशसे वृक्ष, शाखा, इत्यादिका नाश आपही हो जायगा।

द्वितीयाभिनिवेशसे भय होता है। अर्थात् जबतक मैं और मोर, तैं और तोर यह जीववैषम्य, भेदभाव, द्वैतबुद्धि रहती है तभीतक भय रहता है। जब 'निजप्रभुमय देखहिं जगत' तथा जब 'मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत' यह स्वभाव हो जाता है तब भय कहां संभव है? न किसीसे वैरही है न विरोध। सबमें वही एक प्रभु सर्व उरप्रेरक दिख पड़ता है। तब भय कैसा? यथा, 'बैर न विग्रह आस न त्रासा। सुखमय ताहि सदा सब आसा।'

६ (क) 'गिरिजा मन मानस मराल' इति। हंस मानससरोवरमें विहार करते हैं। यथा 'सुरसर सुभग बनज बनचारी। डाबर जोग कि हंसकुमारी।' (अ०) वैसेही शिवजी सदा पार्वतीजीके हृदयमें निवास करते हैं और पार्वतीजी उनको ऐसी प्रिय हैं कि कभी इनके मनसे वे अलग नहीं होतीं। गिरिजा परोपकारिणी हैं तब उनके मनमें बसनेवाला तो उनसेभी अधिक परोपकारी अवश्यही होगा। यहाँ सम अभेद रूपकालंकार है।

(ख) 'कासीस' इति। भाव कि काशी सहजही जीवोंको समान गति विना माँगे अपनी ओरसे देती है। यथा, 'देत सबहि समगति अविनासी', 'मुक्तिजन्ममहि जानि ज्ञानखानि अघहानिकर। जहं बस संभु भवानि सो कासी सेइय कसन॥' (कि०) यह उदारता पुरीकी है, तब भला उसके स्वामी कैसे उदार होंगे, यह इतनेसेही समझ लें।

(ग) 'मसाननिवासी' कहकर परम वैराग्यवान, त्यागी, निस्पृही, महान् उदासीन और बेपर्वा जनाया। श्मशान अत्यन्त उदासीनताका स्थान है। वहांके निवासी कहकर जनाया कि किसीसे कुछ चाहते नहीं। जो उपकार करते हैं वह निःस्वार्थभावसे, करुणावश, केवल परोपकारहेतु करते हैं। अतएव हमपरभी कृपा करें। पुनः 'कासीस मसान-

निवासी ' से आपकी ईशता दिखायी कि अत्यन्त अमंगल प्रेतस्थानभी शिवजीके ध्यानके संबंधसे जीवोंको मंगलदायकही होता है।

७ श्मशाननिवासका आध्यात्मिक रहस्य—पं० श्रीजनार्दनजी मिश्र एम० ए०, साहित्याचार्य, 'ब्रह्मका विश्वनृत्य' इस अपने लेखमें लिखते हैं कि 'शिव संहारकर्त्ता हैं और श्मशान उन्हें प्रिय है। किन्तु वे संहार किसका करते हैं ? कल्पान्तमें वे केवल 'द्यावापृथिवी' का ही संहार नहीं करते वरन् उन बंधनोकाभी संहार करते हैं जो प्रत्येक आत्माको बाँधे रहते हैं। श्मशान क्या है और कहां है ? यह वह स्थान नहीं है जहां हम लोगोंका पार्थिव शरीर जलाया जाता है। वरन् वह भक्तोंका हृदय है जो वीरान और उजाड़ हो गया है। इस स्थानसे उस स्थान वा दशाका बोध होता है जहाँ उनका अहंकार अथवा माया और कर्म जलाकर भस्म कर दिये जाते हैं। यही श्मशान है जहाँ नटराज नृत्य करते हैं। इसलिये इनका नाम श्मशानवासी नटराज है।'

८ पाठान्तरपर विचार—हरिहरप्रसादजी 'काशी शमशान' पाठ देकर भावार्थ यह कहते हैं कि काशीसे बढ़कर श्मशान नहीं जहां 'आय देवतौ जरे'। प्राचीन हस्तलिखित पोथियोंमें अक्षर अलग अलग लिखे-जानेकी रीति देखी जाती है। इसीसे 'कासीस मसान' और 'कासी समसान' दोनों पढ़ लिया जा सकता है। परन्तु 'कासी शमशान' पाठसे केवल काशीके श्मशानमें निवास होनेका अर्थ होता है। और वास्तवमें शंकरजीका निवास सर्वत्र श्मशानोंमें होना देखा सुना जाता है। तांत्रिक सभी श्मशानोंमें अभिचार प्रयोग करते देखे और सर्वत्रही सिद्धि प्राप्त करते पाये जाते हैं। श्मशानानिलय, श्मशानपति, श्मशाननिवासि, मसानि, श्मशानी ये सब शिवजीके नाम हैं। कवितावलीमें कहाभी है 'भवन मसान गथ गाठरी गरदकी।' अतएव 'कासी मसाननिवासी' ही पाठ ठीक है।

९ 'हरिचरनकमल, हर ! देहु भगति अबिनासी' इति। (क) हरि चरन' का भाव कि इनके चरण तथा ये स्वयं समस्त क्लेशोंके हरनेवाले

हैं। यथा 'पदकंजद्वंद्वमुकुंद राम रमेस नित्य भजामहे।' क्लेशं हरतीति हरिः' (ख) अविनासी अर्थात् जिसे पाकर फिर भगवद्भक्तका नाश नहीं होता। यथा 'ताते नास न होई दासकर। भेदभगति बाढ़ै विहंगबर॥' (उ०) कौन्तेय प्रतिजानीहि न मद्भक्तः प्रणश्यति।' (गीता) आप जिस भक्तिको पाकर अविनाशी हो गये हैं, वही भक्ति हमेंभी देकर हमकोभी अविनाशी बना दीजिये। यथा 'नाम प्रसाद संभु अबिनासी। साज अमंगल मंगलरासी।'

(ख) पाठपर विचार—'हर' यहां संबोधन है। अन्वयभी बिलकुल ठीक और सुन्दर है। 'हर! हरिचरनकमल अबिनासी भगति देहु।' 'बर' शब्दकी आवश्यकताही नहीं है। 'बर' का काम 'देहु' से पूरा पूरा चल जाता है। प्रायः समस्त प्राचीन हस्तलिखित पोथियोंका पाठभी यही है। पुनः, देखिये कि इस पदके प्रत्येक चरणमें या तो कोई विशेषणात्मक नाम या सर्वनामके पीछे शंकरजी यह संबोधन दिख पडता है। तब यही चरण क्यों खाली रहता? अतएव 'हर' पाठही समीचीन है। (लमगोड़ाजी)

१० [७] राग धनाश्री*

देव[1] मोह तम तरनि हर रुद्र संकर सरन
हरन मम[2] सोक लोकाभिरामं।
बालससि भाल सुबिसाल लोचन
कमल काम सतकोटि लावन्यधामं॥ १॥
देव[3] कुंदेंदु कर्पूर दर[4] गौर बिग्रह रुचिर
तरुन रबि कोटि तन तेज भ्राजै।
भस्म सर्बांग[5] मर्द्धांग सैलात्मजा ब्याल
नृकपाल माला बिराजै॥ २॥

---

* ६९ में 'दंडक' है। १ मु०, ७४, ५१, बि०, वै० में 'देव' नहीं है। २ भय ह०, भ०। ३ रा०, ६६, ६९, ज०। प्रायः औरोंमें नहीं है। देव कंबु—रा०। कंबु—भा०, बे०, ज०, प्र०, १५, ५१, आ०, ह०। ४ दर गौर—औरोंमें नहीं हैं। ५ सर्बांग अर्द्धांग—भा०, बे०, प्र०, ह०, १५, ज०, ७४, आ०। सर्ब्बांग मर्द्धांग रा०, ६६।

देव[६] मौलि संकुल जटा मुकुट विद्युच्छटा[७]
तटिनि बर बारि हरिचरन पूतं ।
श्रवन कुंडल गरल कंठ करुनाकंद
सच्चिदानंद बंदे[८] वधूतं ॥ ३ ॥

देव सूल सायक पिनाक[९] पानि
सत्रु बन दहन इव धूमध्वज बृषभजानं ।
व्याघ्र गजचर्म परिधान बिज्ञानघन
सिद्ध सुर मुनि मनुज सेव्यमानं ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—मोह = कुछका कुछ समझ लेनेवाली बुद्धि, शरीर और संसारिक पदार्थोंको अपना या सत्य मान लेनेकी बुद्धि, जो दुःखदायिनी होती है। अज्ञान। यथा, 'तुलसिदास प्रभु मोहजनित भ्रम भेद बुद्धि कब बिसरावेंगे।', 'मोहजनित मल लाग बिबिध बिधि कवनिहु जतन न जाई' (८२)। 'मोह निहार' पद ९ देखिये। तारनि (तरणि) = सूर्य, यथा 'तेजहीन पावक ससि तरनी।' (लं०) रूद्र = कूर्मपुराणमें लिखा है कि 'जब आरंभमें बहुत कुछ तपस्या करनेपरभी ब्रह्माजी सृष्टि न उत्पन्न कर सके तब उन्हें बहुत क्रोध हुआ और उनकी आँखोंसे आँसू निकलने लगे। उन्हीं आँसूओंसे भूतप्रेतादिकी सृष्टि हुई। जब सोचवशसे रोने लगे तब (रोते समय) उनके मुखसे ११ रूद्र उत्पन्न हुए। महाभारत आदिपर्व अ० १५ में कहा है कि ब्रह्माके सातवे मानसपुत्र 'स्थाणु' थे। स्थाणुके परम तेजस्वी ग्यारह पुत्र हुए। इन्हेंही ११ रूद्र कहते हैं। रूद्रकी उत्पत्तिकी कथा शतपथ ब्राह्मणमें ६।१।३ (७–१९) शांखायन ब्राह्मणमें, मार्कण्डेयपुराण और विष्णुपुराणमें प्रायः एकही ढंगपर वर्णन की गयी है।

---

६ ६६, भा०, बे०, प्र०, रा०, ज०, में है। ह०, ७४, ५१, आ० में यहाँसे अन्ततक 'देव' नहीं है। ७ विद्युत छटा—ह०, भ०, डु०, वि०, । ८ बन्देऽवधूतं—डु०, भ०, दी०, वि०। प्रायः औरोंमें 'ऽ' नहीं है। ९ पिनाकासि कर—प्रायः औरोंमें।

(टिप्पणी १ देखिये)। रुद्र उत्पन्न होतेही ज़ोर ज़ोर से रोने लगे थे, इसलिये इनका नाम रुद्र पड़ा था। रोनेका कारण यह बताया जाता है कि अविद्याग्रस्त जीवोंको उत्पन्न होते हुए देख आपको रोना आ गया। इसीलिये आप दैवी जीवोंको भागवतधर्मका उपदेश देकर उनके अविद्यारूपी अंधकारको दूर करते हैं और इसप्रकार भगवत्प्राप्तिमें उनकी सहायता करते है। परन्तु असुरोंका तो वे मोहनही करते हैं। उन्हें ऐसी प्रभुकी आज्ञा है। यथा, 'त्वंचरुदंमहाबाहो मोह शास्त्राणि कारय' इति पाद्मे। पुनः, रुद्रनाम इससे प्रसिद्ध है कि वे संसाररूपी दावानलसे परितप्त जीवरूपी पशुके रोगरूपी पाशको काटनेवाले हैं। इस-तरह संसारका दुःख दूर करनेके कारण रुद्रनाम सार्थक है। इनके तीन नेत्र बतलाये गये हैं और ये सब लोकोंका नियंत्रण करनेवाले तथा सर्पोंका ध्वंस करनेवाले कहे गये हैं। शिवजीने इसी रूपसे काम-देवको भस्म किया था। यथा, 'रुद्रहि देखि मदन भय माना। दुरा-धर्ष दुर्गम भगवाना।' रुद्रोंके नाम ये हैं। अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, पिनाकी, दहन, ईश्वर, कपाली, मृगव्याध, सर्व, निर्ऋति, स्थाणु और भय। (आदिपर्व)। गरुड़ पुराणमें 'अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, त्वष्टा, अपराजित, त्र्यंबक, विश्वरूपहर, शंभु, वृषाकपि, बहुरूप, कपर्दी और रैवत ये नाम हैं। पुराणोंमें नामोंमें भेद है। संभव है कि नामोंके अर्थ एकही हों अथवा कल्पभेदसे नामोंमें भिन्नता हो। महाभारतमें श्रीकृष्णजीने अर्जुनसे रुद्रोंकी उत्पत्तिकी कथा इस प्रकार कही है कि 'जब प्रलयकी रात्रि बीती थी, तब अमित तेजस्वी नारायणकी कृपासे एक कमल प्रकट हुआ तथा उन्हींकी कृपासे उस कमलमेंसे ब्रह्माका प्रादुर्भाव हुआ। ब्रह्माका दिन बीतनेपर क्रोधके आवेशमें आये हुए भगवान्‌के ललाटसे संहारकारी रुद्र उत्पन्न हुए। इस प्रकार ये दोनों देवता, ब्रह्मा और रुद्र, ब्रह्माके प्रसाद और क्रोधसे प्रकट हुए हैं और उन्हींके बताये हुए मार्गसे सृष्टि और संहारका कार्य पूर्ण करते हैं। समस्त प्राणियोंको वर देनेवाले ये दोनों देव सृष्टि और प्रलयके निमित्तमात्र हैं।' नारायणोपनिषद्‌मेंभी कथा कुछ इसी प्रकारकी है। पद्म पु० सृष्टीखंड

सृष्टिपरंपरा प्रकरणमें लिखा है कि मधुकैटभ वधके पश्चात् ब्रह्माने अपने शरीरके अर्द्धभागसे शुभलक्षणा भार्याको उत्पन्न किया जो इच्छानुसार रूप धारण कर सकती थी। एक बार वह सुरभिके रूपमें ब्रह्माजीकी सेवामें उपस्थित हुई। ब्रह्माजीके उससे ग्यारह पुत्र उत्पन्न हुए। पितामहसे जन्म ग्रहण करनेवाले वे सभी बालक रोदन करते हुए दौड़े। अतः रोने और दौड़नेके कारण उनकी रुद्र संज्ञा हुई। पद ११ टी० ११ देखिये।

भा० ३।१२।७-१४ में रूद्रकी उत्पत्ति और नामकरण आदिकी कथा इस प्रकार है कि जब सनकादिने ब्रह्माकी आज्ञा (सृष्टिरचनाकी) न मानी तब ब्रह्माजीको असह्य क्रोध उत्पन्न हुआ। यह क्रोध उनकी भौंहोंके बीचमेंसे तत्काल एक नील लोहित बालकके रूपमें प्रगट हो गया और रो रोकर कहने लगा 'हे जगत्पिता, विधाता! मेरा नाम और रहनेका स्थान बताइये।' ब्रह्माजीने कहा 'रो मत। मैं तुम्हारी इच्छा अभी पूरी करता हूँ। तुम जन्म लेतेही फूटफूटकर रोने लगे थे इसलिये तुम्हारा नाम रुद्र होगा। तुम्हारे रहनेकेलिये मैंने पहलेहीसे हृदय, इंद्रियों, प्राण, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा और तप ये स्थान रख दिये हैं।' तुम्हारे नाम मन्यु, मनु, महिनस, महान्, शिव, ऋतध्वज, उग्ररेता, भव, काल, वामदेव, और धृतव्रत होंगे। धी, वृत्ति, उशना, उमा, नियुत, सर्पि, इला, अंबिका, इरावती, सुधा और दीक्षा ये ग्यारह रूद्राणियाँ तुम्हारी पत्नियाँ होंगी। तुम उपर्युक्त नाम, स्थान और स्त्रियाँ स्वीकार करो और इनकेद्वारा बहुतसी प्रजा उत्पन्न करो, क्योंकि तुम प्रजापति हो। सरन – शरण हूं, शरण्य और शरणागत, ये तीनों अर्थ यहां लगते हैं। लोकाभिराम (लोक अभिराम)=लोकके आनंददाता। सुबिसाल=बहुत सुंदर बड़े बड़े। कानतक लंबे होनेसे 'विशाल' और अत्यन्त सुंदर और विशाल होनेसे 'सुबिसाल' कहा। यथा, 'जटा मुकुट सुरसरित सिर लोचन नलिन बिसाल।' (बा०) लावन्यधाम (लावण्यधाम) =अत्यन्त सुंदरताके स्थान। कुंदेंदु=कुंदपुष्प और चंद्रमा। कुंद जुहीकी

तरहका एक पौधा है जिसमें श्वेत फूल होता है। यह कुँआरसे चैततक फूलता रहता है। प्राय: कविलोग दाँतोंकी उपमा इसकी कलियोंसे देते हैं। कर्पूर=कपूर। प्राचीनोंके अनुसार यह दो प्रकारका होता है, पक्क और अपक्क। पोतास, भीमसेन, हिम इत्यादि इसके बहुत भेद माने गये हैं और उनके गुणभी अलग अलग हैं। आजकल यह कई वृक्षोंसे निकाला जाता हैं। ये सब वृक्ष प्राय: दारचीनी जातिके होते हैं। दर=शंख। यह उज्वल, पुष्ट और सचिक्कन होता है। इसके अन्दर तीन रेखाएँ होती हैं। रेखायुक्त होनेसे इसकी उपमा कंठकेलिये दी जाया करती है। विग्रह=शरीर। रुचिर=सुंदर दीप्तिमान, चमकदार। तरुन (तरुण)= युवावस्थाका, मध्याह्नकालका; दोपहरका। भ्राजना (सं० भ्राजन=दीपन) शोभायमान होना; शोभा पाना। यथा, 'उर आयत भ्राजत बिबिध बाल बिभूषन बीर।' (बा०) सैलात्मजा=शैल (हिमाचल) + आत्मजा (शरीरसे उत्पन्न) गिरिजा। ब्याल=पेटके बल चलनेवाले जीवजंतु, सर्प। नृकपाल=मनुष्यकी खोपड़ी, मुंड। बिराजै=विशेष शोभित है। मौलि=मस्तक। किसी चीज़का सबसे ऊँचा भाग, सिर। संकुल=परिपूर्ण भरा; संकीर्ण, घना, समूह। जटा=एकमें उलझे हुए सिरके बहुत बड़े बड़े बाल, जैसे प्राय: साधुओंके होते हैं। बिद्युच्छटा (बिद्युत् छटा)= बिजली-कीसी चमकवाले। तटिनी=नदी। पूत=पवित्र। कुंडल=सोने चाँदी आदिका बना हुआ एक मंडलाकार मगर वा मछलीके आकारका आभूषण जिसे लोग कानमें पहनते हैं। गरल=विष। कंद=मेघ, बादल, मूल। (करुणा पद ७ देखिये)। बंदे बधूतं=बंदे अवधूतं। अवधूत-उदासीन योगीश्वर वेष। परमहंसस्वरूप। भागवतमें दत्तात्रेयजीको अवधूत कहा है। सूल (शूल)=त्रिशूल। इस अस्त्रके सिरेपर तीन फल नोकदार होते हैं। यह शिवजीका एक खास अस्त्र है। सायक=बाण, तीर। यथा, 'धीरसिरोमनि बीर बड़े बिजई बिनई रघुनाथ सुहाए। लायक ही भृगुनायक से धनु सायक सौंपि सुभाय सिधाए। (क०) पिनाक=शिवजीका धनुष जिससे त्रिपुरासुरका वध किया गया था और जो जनक महाराजके यहां रख दिया गया था। यथा 'का बापुरो पिनाक

पुराना ।' (पद ३ टि० ३ देखिये)। पानि (सं० पाणि) =हाथ। सत्रु=शत्रु, रिपु। इव=समान, तरह। यह उपमावाचक शब्द है। धूमध्वज=अग्नि। परिधान=किसी वस्तुसे शरीरको चारों ओरसे छिपाना। पहनना, धारण करना। वस्त्र, पोशाक।

पद्यार्थ—हे देव! हे मोहरूपी अंधकारको मिटानेकेलिये सूर्य-रूप और भक्तोंके क्लेशोंके हरनेवाले हर! हे दुष्टोंकेलिये भयंकर रूप रुद्र और सज्जनोंके कल्याण करनेवाले शंकरजी! मेरे शोकके हरने और लोक (मात्र) को आनंद देनेवाले! मैं आपकी शरण हूँ। आपके ललाटपर द्वितीयाका चंद्रमा विराजमान है। आपके कमल (दल) समान सुंदर बड़े बड़े नेत्र हैं। आप सैकड़ों करोड़ों (अर्थात् अगणित, असंख्य) कामदेवोंके समान शोभासौंदर्यके स्थान हैं अर्थात् आपका रूप अत्यन्त सुंदर है। १। हे देव! कुंदके फूल, चंद्रमा, कर्पूर और शंखके समान सुंदर गौरवर्ण और दीप्तिमान् आपका शरीर है। करोड़ों दोपहरके सूर्यके समान तेज आपके शरीरमें शोभित है। सारे शरीरमें भस्म (वाम) अर्धांगमें पार्वतीजी और (कंठ तथा वक्षस्थलपर) सर्पों और मनुष्योंकी खोपड़ियों (अर्थात् मुंडों) की माला विशेष शोभायमान् हैं। २। हे देव! आपके सिरपर सघन जटाओंका मुकुट है (अर्थात् जटायें मुकुटाकार हैं, इस प्रकार सिरपर सजी हुई हैं कि मुकुटसी दिखाई पड़ती हैं,। यथा 'जटा मुकुट सुरसरित सिर') जिसमें बिजलीकीसी छटा है और (उस सघन जटामुकुटपर) भगवान्‌के पवित्र चरणके श्रेष्ठ जलवासी नदी अर्थात् गंगाजी हैं। कानोंमें कुंडल, कंठमें हलाहल विष (धारण किये हुए), करुणारूपी जलसे भरे हुए मेघ एवं करुणा-रूपी छायादार वृक्षके मूल, सत्‌चित्‌आनंदरूप, अवधूत शिवजीकी मैं वंदना करता हूँ। ३। हे देव! आप त्रिशूल, बाण और धनुष हाथोंमें धारण किये हुए शत्रुरूपी जंगलको जला डालनेकेलिये अग्निरूप हैं! नादिया (बैल नंदीश्वर) आपकी सवारी है। व्याघ्रांबर और गजचर्म आपके वस्त्र हैं। आप विज्ञानराशि हैं; सिद्धों, देवताओं, मुनियों और मनुष्योंसे सेवित हैं। ४।

नोट—१ वीरकविजी लिखते हैं कि पद १० । ११ । १२ । २५ । २६ । २७ । २९ । ३८ । ३९ । ४० । ४३ । ४४ । ४६ और ४९ से ६१ तकके जो पद आये हैं उन्हें गोसाईंजीने राग धनाश्री वा रामकलीके नामसे प्रसिद्ध किया है । छन्द शास्त्रके अनुसार ये सभी 'दण्डक झूलना' छन्द हैं । अंतर केवल यह है कि झूलनाकी रचना १० । १० । १० । ७ मात्राओंके विरामसे होती है । प्रत्येक चरण ३७ मात्राके होते हैं, अन्तमें एक यगण आता है । इन दण्डकोंमें यगण सब चरणोंके अन्तमें आया है; किन्तु विराम प्रायः २० । १७ मात्राओंका है । बहुतसी मुद्रित प्रतियोंमें संशोधकोंकी कृपासे कितनेही अनावश्यक शब्द बढ़ाये गये हैं जिससे उन पदोंके पढ़नेमें खटक आ जाती है । उन्हें बचाकर पार करना पड़ता है । पर खटक आदि निकालकर प्राचीन पाठमें काटछाँट करके श्रीमद्‌गोस्वामीजीके पाठकी बड़ी हत्याभी जहाँ तहाँ की गयी है ।

२ श्रीवैजनाथजी लिखते हैं कि 'यहाँ तक (नववे पद तक) माधुर्य, प्रसाद, गुणमय ललित रागोंमें यश, कीर्ति गायी गयी । अब प्रताप वर्णन करते हैं । इसीसे ओज गुणमय दण्डकपदमें वंदना करते हैं । २६ वर्णसे अधिक एक तुकमें होनेसे दंडक संज्ञा होती है' ।

३ भा०, ६६, वे०, रा०, ६९ इत्यादि प्राचीन हस्तलिखित पोथियोंमें 'देव' इस पदमें तथा अन्य बहुतसे पदोंमें आया है । यह गानेमें ऊपरसे मिला लिया जाता है । इस ग्रंथका नाम रामगीतावली था । अतः 'देव' पाठ अशुद्ध नहीं है । यह गोस्वामीजीकाही पाठ है, जो सं० १६६६ की प्राचीनतम पोथीमेंभी मिलता है । कवि तुलसीदासजी संगीतके पूर्ण मर्मज्ञ थे । आधुनिक टीकाकारोंमेंसे बहुतोंने संगीतका मर्म न जानकर उसको उड़ाही दिया है ।

टिप्पणी—१ (क) 'मोह तम तरनि हर रुद्र' इति । 'रुद्र'—ऋग्वेदके द्वितीय मण्डलका ३३ वाँ सूक्त जो गृत्समदसूक्त कहलाता है, रुद्रपरक है । उसके पहले मंत्रका भाव यह है कि 'हे मरुत्पिता, हमें सूर्यदर्शनसे वंचित न करो ।' इससे सूचित होता है कि रुद्र उत्तरीय ध्रुवप्रदेशकी दीर्घ रात्रिके अभिमानी देवता हैं । आगे चलकर तीसरे

मंत्रमें रुद्रसे यह प्रार्थना की गयी है कि आप अंधकारको दूरकर अपने भक्तोंकेलिये ऐसी व्यवस्था कीजिये कि वे निरोग एवं स्वस्थ रहकर अंधकारके सुदीर्घ कालको व्यतीत कर सकें। (शिवाङ्कसे)। इस उद्धरणसे स्पष्ट है कि 'मोह तम' के साथ 'रुद्र' संबोधन कितना सार्थक है। इसीतरह 'हरन मम सोक' के संबंधसे 'हर' और 'लोकाभिरामं' के संबंधसे 'संकर' शब्द सार्थक और उत्कृष्ट हैं। (ख) 'मोहतमतरनि' में सम अभेदरूपक है। हर, रुद्र और शंकरमें 'पुनरुक्तिवदाभास अलंकार' है। पृथक् पृथक् अर्थ होनेसे पुनरुक्ति नहीं है।

२ (क) 'बालससि भाल' इति। यहाँसे ध्यानका वर्णन है। सिरसे ध्यानका बर्णन उठाया है। भालमें बालशशि धारण करनेका भाव यह है कि आप टेढ़े, कुटिल, क्षीण और दीनोंकोभी शरण देते हैं तथा जगत्वन्द्य कर देते हैं। यथा 'यमाश्रितो हि वक्रोपि चंद्रः सर्वत्र वंद्यते।' अतः मेरीभी रक्षा अवश्य करेंगे।

(ख) 'काम सतकोटि लावन्यधामं' इति। भाव कि एक दो कामदेवोंकी कौन कहे, करोड़ों कामदेवभी मिलकर आपके सौंदर्यकी छटा नहीं पा सकते। अथवा यों कह सकते हैं कि असंख्यों कामदेव जब एकत्र हो जाते हैं तब सबकी मिलकर जो शोभा होती है वैसी शोभा आपकी है। ऐसा कहकर अतिशय सौंदर्य दिखाया। यथा, 'मनोभूत कोटि प्रभा श्री शरीरं' (लं०)। इसमें चतुर्थ प्रतीपालंकारकी ध्वनि है।

(ग) 'कुंदेंदु कर्पूर दर गौर' इति। यहाँ गौरवर्णकी चार भिन्नभिन्न उपमाएँ देकर उन सबके पृथक् पृथक् गुण आपमें एकत्र दिखलाए हैं। कुंदसे कोमल; इंदुसे प्रकाशमान्, तापहारक और आह्लादकारक; कर्पूरसे सुगंधयुक्त और शङ्खसे पवित्र, पावनकर्ता, सचिक्कन, पुष्ट और मांगलिक आदि गुणभी उज्ज्वलताके साथसाथ दर्शाये गये हैं। मिलान कीजिये, 'कुंद इंदु दर गौर सरीरा' 'शंखेद्वाभमतीव सुंदर तनुं' 'कुंद इंदु दर गौर सुंदर' (उ०)। पद १२ भी देखिये। यहाँ मालोपमा अलंकार है।

(घ) ‘ तरुन रबि कोटि तन तेज भ्राजै ’ इति। तीक्ष्ण तेज कि जिसके सामने कोई ताक न सके। आँखोंमें चकाचौंध उत्पन्न करनेवाला ऐसे तेजकी उपमा प्रायः तरुण सूर्यसे दी जाती है। यथा ‘ **रबि सम तेज सो बरनि न जाई** ’ (उ०) ‘ **रबि सतकोटि प्रकास** ’ (उ०) अग्नि, चंद्र और रवि ये तीन तेजोमय माने गये हैं। यथा, ‘ **तेजहीन पावक ससि तरनी** ’ (लं०)। सबसे अधिक तेज रविमें है। पद २ देखिये। इससे यहभी सूचित करते हैं कि शिवजी संपूर्ण अग्निशक्तिके स्वरूप हैं।*

(ङ) ‘ तेज भ्राजै भस्म सर्वाङ्ग ’ इति। मिलान कीजिये, ‘ **तुलसी बिसाल गोरे गात बिलसति भूति मानो हिमगिरि चारु चांदनी सरद्की।** ’ (क०) भाव कि भस्म रमाये हुए तनपर ऐसा तेज है। श्रीलालाभगवान्‌दीनजी लिखते हैं कि ‘ भस्म रमाये रहते हैं जिसमें तेजसे आँखें न चौंधे और भक्तजन दर्शन कर सकें। ’ श्रीवैजनाथजीका कथन है कि “ भस्म रमाये होनेपर यह तेज है। यदि बनावटी होता तो भस्मसे मिट जाता। यह तेज करालताके कारण भी न समझीये, क्योंकि अर्धांगमें शैलात्मजा विराजमान् हैं जिनका शीतल, मधुर रूप है। न यह तेज कुछ दिव्य आभूषणोंकेही कारण है। वे तो सर्पोंका भूषण धारण किये हैं। ”

---

* पी० एच० बडेरजी ‘ वेदोंमें शिवका स्वरूप ’ शीर्षक लेखमें लिखते हैं कि वेदोंमें रुद्र अथवा शिवके असली स्वरूपका जो वर्णन है, उसपर सूक्ष्म विचार करनेसे हम इस निर्णयपर पहूँचे बिना नहीं रह सकते कि रुद्रही महादेव हैं और अग्निही रुद्र है। अथवा महादेवजी रुद्रका पर्यायवाचक शब्द है, अग्निकाही विशेष स्वरूप है। (ऋग्वेद २।१।६, अथर्ववेद ७।८७।१, तैत्तिरीय स० ५।१,३,४ तथा ५।७।३ एवं शतपथ ब्राह्मण ६।१।३,१० तथा १।७।३।८ इत्यादि।) इन उद्धरणोंके प्रमाणसे यह कह सकते हैं कि अग्निका विशेष स्वरूप होनेसे ‘ तरुण रविकोटि तन तेज भ्राजै ’ कहा गया।

यहाँ केवल ध्यान वा स्वरूपका वर्णन है। ऐसाही मानस आदि ग्रन्थोंमेंभी वर्णन किया गया है। मिलान कीजिये 'यस्यांके च बिभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके। भाले बाल बिधुर्गले च गरलं यस्योरस व्यालराट्॥ सोऽयं भूति विभूषणः' (अ०)। इसीसे यहाँ कुछ विशेष भाव नहीं लिखे जाते।

(च) 'भस्म सर्वांगमर्धांग सैलात्मजा' इति। अर्धांगमें शैलात्मजाको कहकर यहाँ शङ्करजीके अर्धनारीश्वरका ध्यान सूचित किया है। शंकरजीके अनेक रूपोंमें यह रूप सर्वोत्तम है। ध्यानपूर्वक देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि मानो इसके अंतर्गत मानवजातिका एक महान् आदर्श छिपा हुआ है। इसका आध्यात्मिक रहस्य आगे टि० ६ में देखिये। हां! इतना कह देना यहाँ अनुपयुक्त न होगा कि स्त्रियाँ पुरुषोंकी अर्धांगिनी तो कही जाती हैं पर देखी जाती हैं प्रत्यक्ष आपहीमें। पद ११ भी देखिये। शैलात्मजाको सदा अङ्कमें धारण किये रहते हैं कि सदा परोपकारकी प्रेरणा करती रहें।

३ 'संकुल जटामुकुट बिद्युच्छटा' इति। (क) विद्युच्छटाकी उपमा देकर पीतवर्ण और चमकीली जनाया। यथा, 'सिरसि संकुलित कालकूट पिंगलजटापटल सतकोटि बिद्युच्छटाभं।' (११)। (ख) 'तटिनि बर बारि हरिचरनवा पूतं' इति। यथा, 'मकरंद जिन्हको संभु सिर सुचिता अवधिसुर बरनई॥ करि मधुप मुनि मन जोगी जन जे सेइ अभिमत गति लहैं।' (बा०), 'जे चरन सिव अज पूज्य रज सुभ परसि मुनिपतिनी तरी। नखनिर्गता मुनिबंदिता त्रैलोक्य पावनि सुरसरी॥' पद १८ भी देखिये। (ग) 'गरलकंठ' इति। 'गरलकंठ' कहकर 'करुनाकंद' कहनेका भाव कि कालकूटको कंठमें धर लेनेका कारण 'करुणा' है। शरणागतपर दया करके विष पी गये। पद ३ 'निजपन लागि' देखिये। पुनः विषको कंठमें रख लेने और नीचे न उतरने देनेका एक कारण यहभी कहा जाता है कि हृदयमें इष्टदेव श्रीरघुनाथजीका निवास है, उनको कष्ट न होने पावे। माधुर्योपासनाके ऐसे सूक्ष्म भाव शंकरजीको छोड और किसमें हो सकते हैं कि जिन्होंने

'बिनु अघ तजी सती असि नारी।' कहाभी है, 'सिव समको रघुपति व्रतधारी।' करुणाकन्दसे समस्त जीवोंपर समान दया और सहानुभूति सूचित की। समुद्रसे निकला हुआ हालाहल क्या था? वह था जलका पाप, उसका मल। उसने शंकरजीपरभी अपना प्रभाव प्रकट कर दिया, उससे उनका कंठ नीला पड गया। परन्तु वह तो प्रजाका कल्याण करनेवाले भगवान् शङ्करजीकेलिये भूषणरूप हो गया। परोपकारी सज्जन प्रायः प्रजाका दुःख टालनेकेलिये स्वयं दुःख झेलाही करते हैं। परन्तु यह दुःख नहीं है, यह तो उनके हृदयमें विराजमान् भगवान्‌की परम आराधना है। भा० ८।७।४१–४४।

४ 'सच्चिदानंद' इति। सत् चित् आनन्दरूप। सत् अविनाशी हैं, परन्तु माया और जीवभी अविनाशी हैं। अतः चित् कहकर जनाया कि माया जड है और आप चेतन हैं। वेदान्तशिरोमणि श्रीरामानुजाचार्यजी कहते हैं कि "जीवभी चेतन हैं; अतः आनंद कहकर आपको भगवदात्मक मुक्त्याधिकारी जनाया। बद्धजीव आनंदघन नहीं है। इस-तरह 'सच्चिदानन्द' कहकर आपको कारणरहित आवेश भगवत्मूर्ति-वा भगवत् स्वरूप जनाया है। यथा, 'ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति' इतिश्रुतिः। इस श्रुतिमें 'एव' पद साम्यवाची है। पुनश्च 'रसोवैसः', 'रसंह्येवयं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति', 'आनंदं ब्रह्मणो विद्वान्नबिभेति कुतश्चनेति' इति श्रुतिः। अर्थात् ब्रह्मका जाननेवाला ब्रह्मके समान हो जाता हैं। वह परमात्मा रसरूप है। उस आनन्दघन रसरूप परमात्माको जो प्राप्त कर लेता है वह जीवभी परमात्माके सदृश आनन्दघन हो जाता है। ब्रह्मके आनन्दको प्राप्त करनेवाला जीव फिर कभी कहीं भय नहीं पाता।"

'श्रीसंप्रदायके अनुसार ये भाव हुए। (श्रीमध्व) वल्लभ सम्प्रदायके अनुसार श्रीशिवजी मुक्त्याधिकारी जीव वा भगवदात्मक आवेश अवतार नहीं है। वे इश्वरकोटिमें हैं। अद्वैतवादशाङ्करसिद्धान्तानुसार उसी एक ब्रह्मकेही ये अनेक रुप हैं। इन सिद्धांतोके अनुसार शिवजीभी 'सच्चिदानन्द' हैं। स्मरण रहे कि गोस्वामीजीने ब्रह्म राम

और भगवान् शिवमें कुछ अन्तरभी दिखाया है । वह यह है कि 'तब संकर देखेउ धरि ध्याना । सती जो कीन्ह चरित सब जाना ॥" विशेष पद ११ देखिये ।

५ (क) सत्रबनदहन इव धूमध्वज' इति । ध्वजा=चिह्न, झंडा । अग्निके जलनेपर धुआँ ऊपर उठता है जैसे ध्वजा; इसी कारणसे अग्निको धूमध्वज कहा । धुआँ इस बातका चिह्न है कि अमुक स्थानपर अग्नि अवश्य है । तथा 'धूमकेतु' भगवान् शङ्करका एक नामभी है । (ख) 'व्याघ्र गजचर्म परिधान' इति । व्याघ्र एक हिंसक जीव है जिसे बाघ या शेर कहते हैं । गजचर्म जान पडता है कि यह दिग्गजोंका चर्म है जिन्हें आप महाप्रलयके समय त्रिशूलमें लटका लेते हैं । कुमारसंभवमें श्रीपार्वतीजीके विवाहमें पाणिग्रहणके समय शिवजीके ताजे गजचर्मके पहने होनेका उल्लेख है । गजचर्म आपका वस्त्र है । इस प्रकारके वस्त्र रखनेकी क्या आवश्यकता हुई ? स्कन्दपुराणमें कथा है कि महिषासुरका पुत्र गजासुर अपने बलसे मदमत्त हुआ। वह शिवजीके गणोंको पीडित करता हुआ शिवजीके समीप आया, जब वे पार्वतीजीको रत्नेश्वर माहात्म्य सुना रहे थे। शिवजीने उसे त्रिशूलमें टाँगकर आकाशमें लटका दिया । उसके बहुत स्तुति करनेपर प्रसन्न होकर आपने वर देना चाहा तब उसने प्रार्थना की कि आप कृपा करके मेरे गजचर्मको धारण करें और अपना नाम 'कृत्तिवासा' अर्थात् गजचर्म धारण करनेवाला रखिये । यह वरदान देनेके कारण गजचर्म आपका वस्त्र हो गया । प० पु० सृष्टिखंडमें दक्षका वचन श्रीसतीप्रति है कि शिव व्याघ्रचर्म पहनते और गजचर्म ओढ़ते हैं ।

६ बालशशि आदिका आध्यात्मिक रहस्य—बालशशि ललाटपर धारण करने, भस्म रमाने, गङ्गाजीको सिरपर स्थान देने और त्रिशूल अस्त्र आदि धारण करने तथा गिरिजाजीको अर्धांगमें बसानेमें आध्यात्मिक रहस्यभी अवश्य है । ईश्वरके कोईभी कार्य निष्प्रयोजन नहीं होते । उनके विचारसे सुख प्राप्त होता है ।

श्रीभवानीशंकरजी लिखते हैं कि 'शिवजीके मस्तकमें चन्द्रमाका संकेत प्रणवकी अर्धमात्रासे हैं और इसी निमित्त उनके मस्तकको

अर्धचंद्र भूषित करता है। योगिगण अपने अभ्यन्तरके चित् अग्निके-द्वारा अहंकारको दग्ध करते हैं और उसके साथ उसके कार्य पंचतन्मात्रा, पंचमहाभूत आदि सबको दग्ध कर परम शुद्ध आध्यात्मिक भावमें परिवर्तित कर देते हैं, तब वह निर्विकार, शुद्ध और शान्त हो जाता है। उसेही भस्म कहते हैं। उस शुद्ध भावरूप भस्मको धारण करनेसे शान्ति मिलती है। आध्यात्मिक गंगा एक बड़ा तेज पुंज है जो महाविष्णुके चरणसे निकलकर ब्रह्माण्डनायक श्रीमहादेवके मस्तकपर गिरता है और वहाँसे संसारके कल्याण निमित्त फैलता है। इस तेज पुंजको केवल 'महादेव' धारण कर सकते हैं। श्रीशिवजीकी कृपासे इस आध्यात्मिक गंगाका लाभ अभ्यन्तरमें अन्तरस्थ काशीक्षेत्रमें होता है। त्रिशूलका भाव है त्रितापका नाश करना अर्थात् त्रितापसे मुक्ति पाकर जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओंसेभी परे तुरीयामें पहुँचना। ऐसा साधकही यथार्थ त्रिशूलधारी है।'

अर्धनारीश्वर रूपका रहस्य—श्री एच जे० एस० तारापुरवालाजी लिखते हैं कि "सत् चित् आनंद ईश्वरके इन तीन रूपोंमें आनंदरूप (साम्यावस्था अथवा अक्षुब्धभाव) भगवान् शिवका है। एक दूसरीही दृष्टिसे विचार करनेपर यह समझमें आता है कि ईश्वरका सत्स्वरूप उनका मातृस्वरूप है और चित्स्वरूप पितृस्वरूप है। उनका तीसरा आनंदरूप वह स्वरूप है जिसमें मातृभाव और पितृभाव दोनोंका पूर्णरूपेण सामञ्जस्य हो जाता है, अथवा यों कहिये कि शिव और शक्ति मिलकर अर्द्धनारीश्वररूपमें हमारे सामने आते हैं। उसीमें हमें सत् और चित् इन दो रूपोंके साथसाथ उनके तीसरे आनंदरूपकेभी दर्शन होते हैं। ईश्वरने मनुष्यरूपमें अपनीही प्रतिकृति बनाई। (God made man after him.) उन्होंने उसकी पुरुष और स्त्रीरूपमें सृष्टि की। स्त्री और पुरुष दोनोंही ईश्वरकी प्रतिकृति हैं, स्त्री उनका सद्रूप है और पुरुष चिद्रूप, परन्तु आनन्दके दर्शन तब होते हैं जब ये दोनों पूर्णतया मिलकर एक हो जाते हैं।

" इस पूर्ण एकताका स्वरूप क्या है ? साधारणतया लोग शिवको योगीश्वर कहते हैं, पर वास्तवमें वे गृहस्थोंके ईश्वर हैं, विवाहित दंपत्तिके उपास्य देवता हैं। वे स्त्री और पुरुषकी पूर्ण एकताकी अभिव्यक्ति हैं। इसी कारण स्त्रियाँ सौभाग्यके व्रतोंमें जैसे कि विवाह, वसन्त, कजली, तीज इत्यादि अवसरोंपर उन्हें पूजती हैं। हरएकको परस्पर विरोधी द्वंद्वोंकी विषमताको दूर करनेकी चेष्टा करनी चाहिये, क्योंकि यही तो वास्तविक 'योग' है। स्थूल जगत्‌की सारी विषमताओंसे थिर रहनेपरभी अपनी चित्तवृत्तिको शान्त बनाये रखनाही योगका स्वरूप है। भगवान् शिव अपने पारिवारिक संबंधसे हमें इसी योगकी शिक्षा देते हैं। देखिये न, बाह्यदृष्टिसे आपका परिवार विषमताका जीता जागता नमूना है। आप बैलपर चढ़ते हैं तो भगवती भवानी सिंहवाहिनी है। दोनोंका कैसा जोड़ मिला है! आप भुजंगभूषण हैं, श्रीस्वामीकार्तिकको मोरकी सवारी पसन्द है और उधर लम्बोदर गणेशजीको चूहेपर चढ़नेमेंही सुभीता सूझता है। आपने गंगाजीको सिरपर चढ़ा रक्खा है जिससे पार्वतीजीको दिनरात सौतिया डाह हुआ करता होगा। इस प्रकार आपकी गृहस्थी क्या है मानों झंझटकी पिटारी है। मानसिक शान्ति और परिवारिक सुखकेलिये कैसा सुन्दर साज जुटा है ? परन्तु भगवान् शिव तो प्रेम और शान्तिके अथाह समुद्र और सच्चे योगी ठहरे। उनके मंगलमय शासनमें सभी प्राणी अपना स्वाभाविक वैरभाव भुलकर आपसमें तथा संसारके अन्य सब जीवोंके साथ पूर्ण शान्तिमय जीवन व्यतीत कर सकते हैं। स्वयं उनका तो किसीके साथ द्वेष हैही नहीं। वे तो आनन्दरूपही हैं। जो कोई उनके संपर्कमें आता है वहभी आनन्दरूप बन जाता है। उनके चारोंओर आनन्दकेही परमाणु फैले रहते हैं। यही महेशका सबसे महान गुण है। सारे विरोधियोंका सामञ्जस्य कर उस शान्तिकी उपलब्धि करनी चाहिये जो बुद्धिसे परेकी वस्तु है। यही अमूल्य शिक्षा हमें शिवजीके चरित्रसे मिलती है। यही सच्ची समता जो सत् और चित् के पूर्णसंयोगसे उत्पन्न होती है, अर्धनारीश्वरके विग्रहमें अभिव्यक्त हुई है। इसमें पुरुष और प्रकृतिके संयोगद्वारा माया (द्वन्द्वमय जगत्) के आवरणको भेदकर

मनुष्य आनन्दरूप पूर्णताको प्राप्त कर लेता है तब सारे विरोध मिट जाते हैं और मनुष्य उस स्थितिमें पहुँच जाता है जहाँ न पुरुष है न प्रकृति, न स्त्री है न पुरुष। केवल एक अद्वितीय वस्तु **'एकमेवाद्वितीयम्'** ही शेष रह जाता है। वही अनंत आनंदकी मूर्ति अर्धनारीश्वर शिव हैं।" (शिवांकसे)

७ 'वृषभ यानं' इति। श्रीवासुदेवशरणजी अग्रवाल लिखते हैं "यह वृष काम है। वर्षणशील (sprinkling, fertilising) रेतको 'वृष' कहा गया। यह वृष या काम अधोरेत करके मनुष्योंको अपने आसनसे च्युत कर देता है। इसपर पैर रखकर खड़े होना महानही धीरता है। सूत्ररूपसे यह जान लेना पर्याप्त है कि कामकीही एक संज्ञा 'वृष' है। शिवजी मदनका दहन कर चुके हैं। उन्होंने कामको परास्त कर लिया है। वे अरूपहार्य योगीश्वर हैं। अतएव 'वृष' उनका वाहन बन गया है। योगों और भोगोंमें यही भेद है। एकका वाहन काम है और एक स्वयं कामका वाहन है। इस वाहनपर चढ़नेकेलिये शिवको कुंभोदर सिंहपर पैर रखना पड़ता है। रघुवंश (२।३५) में कहा है कि कैलासके समान शुभ्र वर्णवाले वृषपर जब शिवजी चढ़ना चाहते हैं तब वे मेरी पीठपर पैर रखकर सहारा लेते हैं, ऐसा मैं कुंभोदर नामक शिवका अनुचर हूँ। यहा यह बताया गया है कि वृषपर सवारी करने अर्थात् उसको अपने अधिकारमें लानेकेलिये यह आवश्यक है कि मनुष्य पहले उदर या रसनेंद्रियपर संयम प्राप्त कर ले। स्वादको वशमें करना ब्रह्मचर्यकी सिद्धिकेलिये अनिवार्य है। जिह्वापर अंकुश रखेबिना ब्रह्मचर्यकी सफलता असंभव है। विश्वामित्रको मेनकाने मक्खन खिलाकर अपने अनुरागमें फँसा लिया। गीतामेंभी कहा है '**कामएष क्रोधएष रजोगुण समुद्भवः। महाशनो महापाप्मा विध्येनमिह वैरिणम्**।' अर्थात् काम बहुत भोग चाहता है। यह महापापके गर्तमें फँसानेवाला है। इस महापापीपर विजय पानेकेलिये कुंभोदरपर संयम प्राप्त करना चाहिये। जिस जलतत्व या रससे स्वादेंद्रियका पोषण होता है वही कामका अधिष्ठान है। इसीलिये कामविकार और रसनामें इतना घनिष्ठ

सम्बन्ध है। शिष्णदेव या कामीपुरुष उदरपरायणभी होते हैं। अतएव वृषपर आरुरुक्ष, योगीकेलिये कुंभोदरपर पैर रखना परमावश्यक है। शिवके परिवारमें सिंह और वृष विगत् वैर होकर बसते हैं। शिव समता और शान्तिकी मूर्ति हैं"। प्रयोजन न रहते हुएभी, मस्तकपर चन्द्र, अग्नि, गंगा आदि विरोधी शुद्ध और अशुद्ध संग्रह धारण करनेके कारणमें विरूपाक्ष और महोधरने रावणको 'शिवजीकी नीति निपुणता' बतलायी है। यथा,

" राजन्कार्यवशाद्विरुद्धसंग्रहेऽपि राज्ञाशुद्धेनाशुद्धसंग्रहः।
प्रयोजनहीनोऽपि कर्त्तव्यः प्रयोजनं जनयति कचित्काले।
अत्र भगवान्भवतामिष्टः प्रमाणमेणाङ्कमौलिः।
जीर्णेऽप्युत्कट कालकूटकवले प्लुष्टे हठान्मन्मथे।
नीते भासुर भालनेत्रतनुतां कल्पांत दावानलैः॥
यः शक्त्या समलंकृतोऽपि शशिनं शैलात्मजां स्वर्धुनीं।
धत्ते कौतुकराजनीतिनिपुणः पायात्स वः शङ्करः॥ अंक ९।३६
दिग्वासो यदि तत्किमस्य धनुषा शस्त्रं च किं भस्मना।
भस्माथास्य किमङ्गना यदि च सा कामं परं द्वेष्टि किम्।
इत्यन्योन्यविरोधकर्मनिरतं पश्यन्निजं स्वामिनं।
भृङ्गी सान्द्रशिरावनद्धशकलं धत्तेऽस्थिशेषं बपुः॥ ९। ३७"

अर्थात् 'हे राजन्! कार्यके वशसे राजाको शुद्धकाभी तथा विरुद्ध और प्रयोजनरहित अशुद्धकाभी संग्रह करना चाहिये। वह किसी समय प्रयोजनको सिद्धही करता है। इस विषयमें आपके इष्टदेव भगवान् शशाङ्कार्धमौलि शिवजीही प्रमाण हैं। जीर्ण महाहालाहलके पान करनेपर और हठसे कामदेवके भस्म करनेपर और कल्पान्तकी अग्नियों करके श्वेतमस्तकके नेत्रकी सूक्ष्मताको प्राप्त होनेपरभी जो अपनी शक्तिसेही शोभायमान चन्द्रमा, नगेंद्रनन्दिनी पार्वती और गंगाजीको धारण करते हैं वेही कौतुककी राजनीतिमें चतुर शंकरदेव आपकी रक्षा करें। ३६। जो ये भगवान् दिगंबर हैं तो इनको धनुषसे क्या है? यदि शस्त्रही है तो विभूतिसे क्या है? यदि विभूति है तब तो स्त्रीसे इनको क्या प्रयोजन? जो स्त्रीभी है तो कामदेवसे अत्यंत द्वेष क्यों करते हैं? इस प्रकार

आपसमें विरोधी कर्म करनेमें लगे हुए आपके स्वामीको देखते हुए भृंगी सघन नाड़ियोंसे सब ओरसे बँधे हुए शिर हस्त चरण आदिके खंडवाले देहको धारण करते हैं। ' (ब्रजरत्न भट्टाचार्यकी टीकासे)

पुनश्च देखिये, जिनसे सब घृणा करते हैं उन्हींको भगवान् शंकर अपनाते हैं, जैसे सर्प, भूत, पिशाच। वे अपमानितको मान देते हैं, जिसको कहीं ठिकाना नहीं उनको अपनी कृपाकोरसे अनेक ठिकानोंका स्वामी बना देते हैं। ये सब बातें उनके आशुतोष नामसे महादयालु होनेके प्रमाण हैं। (पं० श्रीशिवरत्नजी शुक्ल ' सिरस ' साहित्यरत्न) पद ११ ' भस्म तन भूषन ' भी देखिये।

अनुसंधान [१०]

देव तांडव[१०] नृत्य पर डमरु डिंडिमि[११]
प्रवर असुभ इव भाति[१२] कल्यानरासी।
महाकल्पांत ब्रह्मांडमंडलदवन भवन
कैलास आसीन कासी।५।
देव तज्ञ सर्वज्ञ जज्ञेसमच्युत[१३] बिभो[१४]
बिश्व भवदंस संभव पुरारी।
ब्रह्मेंद्र[१५] चंद्रार्क बरुनाग्नि बसु मरुत
जम अर्चि[१६] भवदंघ्रि सर्वेधिकारी[१७]।६।

---

१० तांडव—६६। तांडवं—प्र०। तांडवी-१५, डु०, टी०,। तांडवित-रा०, भा०, बे०, ज०, इ०, मु०, ५१, बै०, ७४, भ०, दी०, वि०। ११ डिंडिमि—६६, रा०। डिंडिम—५१, मु०, वि०, भ०। डिमडिम—डु०, बै०, इ०, दी०। डिमिडिमि—भा०, बे०, ज०, १५। १२ भांति-भा०, रा०, १५, दी०, बै०, भ०। भाति-६६, बे०, ५१, इ०, ७४, दी०, मु०, वि०, ज०, प्र०। १३ जज्ञे समच्युत—६६। जज्ञ से अच्युत—प्राय: औरोंमें। १४ बिभव-५१, मु०, ७४, बै०। १५ इन्द्र—मु०, ७४। ब्रह्मेंद्र-और सबमें। १६ जमअर्चि—प्र०, ज०, ७४, डु०, दी०, इ०, १५। जम अरचि-भा०, बे०, बि०। जम अर्च्य-मु०, बै०, भ०, रा०। जममर्च्य-६६। (यह पाठ व्याकरणसे अशुद्ध जान पडता है।) १७ सर्वेधिकारी-६६, भा०, रा०, बे०, इ०, प्र०, ज०।

देव अकल निरुपाधि निर्गुन निरंजन
* जन्म[१८] कर्म पथमेकमज निर्विकारं।
अखिल बिग्रह उग्ररूप सिव भूपसुर
सर्वगत सर्ब सर्वोपकारं। ७।
देव ज्ञान वैराग्य धर्म कैवल्य सुख
सुभग सौभाग्य सिव सानुकूलं।
तदपि नर मूढ़ आरूढ़ संसार पथि[१९]
भ्रमत भव बिमुख तव पादमूलं। ८।
देव नष्ट मति दुष्ट अति कष्टरत
खेदगत दासतुलसी संभु सरन आया।

* 'ब्रह्म कर्म पथ' पाठका अर्थ होगा कि 'ब्राह्मणों वा वेद-विहित कर्म कांडपर चलने, चलानेवालोंमें अग्रगण्य।' ब्रह्म = वेद। यथा, 'ब्रह्माम्भोधि समुद्भवं सुमधुरं श्रीजानकीजीवनं।'; पुनः, ब्रह्म = ब्राह्मण। यथा, 'ब्रह्मकुलं कलंकशमनं'। बैजनाथजी अर्थ करते हैं कि 'आप ब्रह्म हैं अर्थात् सबमें व्यापक और सबसे न्यारे अद्वैत हैं। धर्मके जो आठ अंग, इज्या, अध्ययन, दान, तप, सत्य, धृति, क्षमा और अक्षोभ हैं उनके कर्म करनेका मार्ग शुद्ध निर्विघ्न चलानेमें एक आपही है। दूसरा आपकी समताका नहीं है। भाव कि थोड़ाही सत्कर्म करनेसे बड़ा फल दे देते है, बिधि अबिधि नहीं देखते। इसीसे सबकी निष्ठा बढ़ती है।

सर्वाधिकारी—७४, ५१, आ० (भ०), १५। १८ जन्म (जनम) ६६, रा०, ज०। ब्रह्म—भा०, बे०, प्र०, ह०, ७४, ५१, आ०। १९ पथि—६६, रा०, भ०। पथ—भा, बे०, ५१, १५, प्र०, ज०, ह०, ७४, आ० (भ०)। 'पथि' पाठ शुद्ध है। सं० 'पथिन्' शब्दकी सप्तमी विभक्ति (अधिकरण कारक) के एकवचनका रूप 'पथि' होता है। पुनः, पथि=पथमें। यथा 'सीतालक्ष्मणसंयुतं पथिगतं रामाभिरामं भजे।' (आ०)

देहि[२०] कामारि श्रीरामपदपंकजे[२१]
भक्तिमनवर्त्त[२२] गतभेद माया ।९।

शब्दार्थ—तांडव=यह शिवजीका प्रिय नृत्य है । इस नृत्यका उल्लेख इतिहास, पुराण, स्मृति आदि सभीमें मिलता है । संगीतके ग्रंथोंमें नृत्यके दो भेद किये गये हैं । तांडव और लास्य । जिसमें उग्र और उद्धत चेष्टा हो उसे तांडव कहते हैं और जो सुकुमार अंगोंसे किया जाय तथा जिससे शृङ्गार आदि कोमल रसोंका सञ्चार हो उसे 'लास्य' कहते हैं । संगीतनारायणमें लिखा है कि पुरुषके नृत्यको 'तांडव' और स्त्रीके नृत्यको 'लास्य' कहते हैं । संगीतदामोदरमें इनकेभी दो दो प्रकारके भेद कहे गये हैं । तांडवनृत्य शिवजीको अत्यन्त प्रिय है । इसीसे कोई कोई तंडु अर्थात् नन्दीको इसका प्रवर्तक मानते हैं । किसी किसीके अनुसार तांडवनामक ऋषिने पहले पहल इसकी शिक्षा दी, इसीसे इसका नाम तांडव हुआ । नृत्य = नाच । पर = तत्पर अर्थात् करते हुए, निमग्न । डमरू = यह शिवजीका प्रिय बाजा है । इसका आकार बीचमें पतला और दोनों सिरोंकी ओर बराबर चौड़ा होता जाता है । दोनों सिरोंपर चमड़ा मढा होता है । इसके बीचमें दो तरफ बराबर बढी हुई डोरी बंधी होती है जिसके दोनों छोरोंपर एक एक कौड़ी या गोली बँधी होती हैं । बीचमें पकड़कर जब बाजा हिलाया जाता है तब दोनों कौड़ियाँ चमड़ेपर पड़ती हैं और शब्द होता है । यह शिवजीका बहुत प्रिय बाजा है । डिंडिमि = प्राचीनकालका एक बाजा जिसपर चमड़ा चढा रहता है । कोई कोई इसीको डुगडुगिया और तोमड़ीभी कहते हैं । श० सा०, पं० रा० कु०, वै० और वीरकविने इसको बाजाही माना है । वैजनाथजी इसे योगी वा योगिनियोंका बाजा लिखते हैं । परन्तु बाबूशिवप्रकाश, भट्टजी और दीनजीने इसे डमरूका शब्द माना है । वैजनाथजी 'डिंडिमी'

---

२० देहि—६६, भा०, बे०, रा०, ७४, आ० । देहु—ह०, १५, ज० । २१ पंकरुह—७४, । २२ भक्तिमनवर्त्त—६६, रा०, भ० । भक्तिमनवरत—भा०, बे०, ह०, ५१, मु०, दी० । भक्तिअनवरत—बि० । भक्तिभवहरनि—डु०, वै०, ७४, प्र०, १५ । भक्तिभवरहित—ज० ।

के सम्बन्धमें यहभी लिखते हैं कि "डिंडिमी गति है। यथा, 'उत्प्लुत्य चरणं द्वंद्वं वक्त्र निःपीडनोपमम्। परिभ्राम्या वनीयाति-यदि तद्दिंडिमुच्यते'॥ (सङ्गीतदर्पणे) अर्थात् पाँव बटोरे उछालते वेगसे चक्राकार घूमना इत्यादि जो दिंडिमी नृत्य गतिपर डमरुप्रवर है अर्थात् गतिकी पदप्रहार और बाजाकी ताल दोनों एकमें मिलकर लय हो जाते हैं ऐसा नृत्य करते हैं।" प्रवर = श्रेष्ठ, उत्तम, प्रधान। असुभ=अमङ्गल। इव = जैसा, का, सा। भाति = भासित होता, देख पड़ता वा मालूम होता है। रासी (राशि) = ढेर। महाकल्पांत = महाकल्पके अंतमें। महाकल्प = उतना काल जितनेमें ब्रह्माकी आयु पूरी होती है। ब्रह्मकल्प = पद ९ देखिये। ब्रह्मांड = सम्पूर्ण विश्व, जिसके भीतर अनन्त लोक हैं। मनुजी लिखते हैं कि स्वयंभू भगवान्ने प्रजासृष्टिकी इच्छासे पहले जलकी सृष्टि की और उसमें बीज फेंका। (अर्थात् अनन्त बद्ध जीवोंमेंसे जितनेको कृपा करके भगवान् करणकलेवरादि प्रदान करना चाहते हैं उतनेको समष्टिरूपसे बीजरूपसे फेंकते हैं। यथा, 'तदण्डमभवद्धैयं सहस्रांशु समप्रभम्') बीज पड़तेही सूर्यके समान प्रकाशवाला स्वर्णाभ या गोल अंड उत्पन्न हुआ। पितामह ब्रह्माका इसी अंड या ज्योतिर्गोलकमें जन्म हुआ। उसमें एक संवत्सरतक निवास करके उन्होंने उसके आधे आध दो खंड किये। ऊर्ध्वखण्डमें स्वर्गादि लोकोंकी और अधोखण्डमें पृथ्वी आदिकी रचना की। विश्वगोलक इसीसे ब्रह्मांड कहा जाता है। ब्रह्मांडमंडल = चौदहों लोक। मंडल = गोला, वृत्ताकार या अंडाकार विस्तार। दवन = नाशक, नाश करनेवाले। आसीन = बैठे हुए, विराज-मान्। तज्ञ = तत्त्वज्ञ, तत्वके जाननेवाले। तत्त्व = वास्तविक स्थिति। ब्रह्म, आत्मा और सृष्टि आदिके सम्बन्धका यथार्थ ज्ञान 'तत्त्वज्ञान' है और 'तत्त्व जानातीति तत्त्वज्ञः'। तज्ञ = सर्वशास्त्रोंका लक्ष्यभूत जो तत्त्वपदार्थ है उसका यथार्थ ज्ञाता। सर्वज्ञ = तीनों कालोंकी सब बातोंका जाननेवाला। जज्ञेस (यज्ञ + ईश) = यज्ञोंके स्वामी अर्थात् अधिष्ठाता। यज्ञ करनेवालोंको फल देनेवाला। अच्युत = च्युत न होनेवाला। च्युत = गिरा हुआ, भ्रष्ट, अपने पद वा स्थानसे हटा

हुआ । विभो = विभु, सर्वव्यापक; समर्थ, ईश्वर । भवदंस = भवत् (आपके) + अंश (अंशसे) । संभव = उत्पन्न । ब्रह्मेंद्र = ब्रह्मा + इंद्र । चन्द्रार्क = चन्द्र + अर्क (सूर्य) । बरुनाग्नि = वरुण + अग्नि । वसु = देवताओंका एक गण जिसके अन्तर्गत आठ देवता हैं । इस गणके देवताओंके नामोंमें मतभेद है । (श० सा० देखिये) मरुत = पवनदेव । अर्चि = पूजकर । भवदंघ्रि (भवत् + अंघ्रि) = आपके चरण । सर्वेधिकारी = सर्व अधिकारी, सब अधिकारी । अधिकारी = लोकोंके पालनका अधिकार पाये हुए लोकपाल, दिग्पाल । अकल = कलारहित अर्थात् पूर्ण, कमी घटने बढ़नेवाला नहीं । निरुपाधि = उपाधिरहित । रूपान्तररहित; जिसका रूप कभी न बदले । टि० १२ देखिये । निर्गुन = मायिक गुणोंसे रहित । निरंजन = कारणमायारहित, दोषरहित; निर्लेप, देही देह विभागरहित, बाहर भीतर एकरूप । (वै०) पथमेकमज (पथं एकं अज) = मार्गमें एकही अर्थात् प्रधान वा अद्वितीय और अजन्मा । निर्विकार = हर्ष, विषाद, कामक्रोधादि विकारोंसे रहित । अखिल = संपूर्ण जगत् । उग्र = रौद्र, तेजयुक्त, भयंकर । भूप = राजा । सर्वगत = जो सबमें हो । सर्वोपकारं (सर्व उपकारं) = सबके उपकारकर्ता । ज्ञान = सारासारका विवेक । ज्ञान = '**मान जहं एकउ नाहीं देख ब्रह्म समान सब माहीं ।**' (आ०) । वैराग्य = वह वृत्ति जिसमें त्रैलोक्यकी विभूतिका तिनकेके समान त्याग होता है । यथा '**कहिय तात सो परम बिरागी । तृन सम सिद्धि तीन गुन त्यागी ।**' (आ०) । कैवल्य=मोक्ष, परमपद । यथा '**सो कैवल्य परमपद लहई ॥ अति दुर्लभ कैवल्य परमपद । संत पुरान निगम आगम बद । राम भजत सोइ मुकुति गोसाई । अनइच्छित आवै बरिआई ॥**' (उ० ११८) । प्रकृति सम्बन्धरहित शुद्ध जीवात्मस्वरूपमें स्थिति । सुभग = सुंदर । सु (उत्तम) + भग (छः प्रकारकी विभूतियाँ) । अर्थात् सम्यगैश्वर्य, सम्यग्वीर्य, सम्यग्यश, सम्यक् श्री और सम्यक् ज्ञान । सौभाग्य = सुन्दर भाग्य, सुगंध, स्त्री, वस्त्र, गीत, तांबूल, भोजन, भूषण, और वाहन इन अष्ट प्रकारके भोगका सुख । (वै०) । सानुकूलं =

अनुकूलता वा प्रसन्नतासे। यथा 'तापर सानुकूल गिरिजा हर लषन राम जानकी।', 'सानुकूल सब पर रहहिं संतत कृपानिधान' (उ०)। 'स' उपसर्गका प्रयोग शब्दोंके आरंभमें कुछ विशिष्ट अर्थ उत्पन्न करनेकेलिये होता है। जैसे, १ बहुव्रीहि समासमें 'सह' के अर्थमें। जैसे, सजीव, सपरिवार। २ 'स्व' या 'एकही' के अर्थमें। जैसे, सगोत्र, सपाठी। ३ 'सु' के स्थानमें। जैसे, सपूत। तदपि=तौभी। मूढ़=अज्ञानी। आरूढ़=चढ़ा हुआ, लगा हुआ, प्रवृत्त होकर। पथि=पथमें। भ्रमत=भटकते, चक्कर खाते, चौरासी लक्ष योनियोंमें जन्मते मरते। भव=शिव, संसार। पादमूल=पैरके नीचेका भाग, तलवा। दुष्ट=दोषयुक्त, दुराचारी, पाजी। नष्ट=जो बहुत दुर्दशाको पहुँच गया हो। नष्टमति=भ्रष्ट बुद्धि, बुद्धिहीन। कष्टरत=क्लेशमें आसक्त, मुसीबतका मारा, दुखी। खेदगत=चिन्ता, दुःख वा ग्लानिको प्राप्त। देहि=दीजिये, दो। पंकजे=कमलमें। 'पंकजे' मेंका 'ए' शौरसेनी प्राकृतकी सप्तमी विभक्ति है। भक्तिमनवर्त्त=(भक्ति+अनवर्त) अविनाशिनी भक्ति। अनवर्त्त=निरंतर, अचल, अविनाशिनी।

पदार्थ—हे देव! अत्यन्त श्रेष्ठ डमरू और डिमडिमी बजाते हुए (वा डमरूका अत्यंत सुंदर डिमडिम शब्द करते हुए) तांडवनृत्यमें निमग्न आप अमंगलसे देख पड़ते हैं; पर हैं आप मंगलकी राशि। महाप्रलयमें आपही संपूर्ण विश्वमंडलके नाशक हैं। कैलास आपका घर है और काशीमें आप विराजमान रहते हैं; अर्थात् काशी आपकी बैठक वा कचहरी है। ५। हे देव! हे त्रिपुरासुरके नाशक! आप यथार्थ तत्त्वके ज्ञाता, सर्वज्ञ, यज्ञोंके अधिष्ठाता स्वामी और अच्युत हैं। हे सर्वसमर्थ! विश्व आपके अंशसे उत्पन्न हुआ है। ब्रह्मा, इंद्र, चन्द्र, सूर्य, वरुण, अग्नि, पवन और यम, ये आठो वसु† आपकेही चरणोंको पूजकर अधिकारी हुए हैं। उत्पत्ति करने, लोकों और

† महाभारत आदि पर्वमें आठ नाम ये हैं—धर, ध्रुव, सोम, अह, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास।

दिशाओंके पालन करने, इत्यादिका अधिकार इन सबोंको आपनेही दिया है । ६ । हे देव ! आप कलारहित अर्थात् पूर्ण, उपाधिरहित और निर्गुण हैं । आपका जन्म मायाविकाररहित है । कर्ममार्ग अर्थात् कर्मकांडमें आप अद्वितीय हैं । (कर्मकांडके प्रवर्तक हैं ।) अजन्मा और षट्विकाररहित हैं । संपूर्ण जगत् आपका रूप वा शरीर है । (अर्थात् आप विराटरूप ब्रह्मात्मक हैं । सब प्रकारके विग्रह धारण करनेमें सिद्धिप्राप्त समर्थ हैं ।) भयंकर रूपमेंभी आप 'शिव' अर्थात् मंगलरूप हैं‡, देवताओंके स्वामी हैं, सर्वगत† हैं, सब कुछ आपही हैं और सबका उपकार करनेवाले हैं । ७ । हे देव ! हे शिवजी ! आपकी प्रसन्नतासे ज्ञान, वैराग्य, धन, धर्म, कैवल्यपद, सुख (कैवल्यसुख) और सुंदर सौभाग्य प्राप्त हो जाते हैं; तोभी मूर्ख मनुष्य आपके चरणोंसे विमुख होकर संसारमार्गपर (आवागमन) चढ़कर संसारमें भटकते फिरते हैं । ८ । हे देव ! हे शंभो ! भ्रष्टबुद्धि, अत्यन्त दुष्ट, अत्यन्त क्लेशोंमें पड़ा हुआ, चिन्ताको प्राप्त मैं तुलसीदास शरणमें आया हूँ । हे कामारि ! श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंमें भेदमायारहित अविचल भक्ति मुझे दीजिये । ९ ।

टिप्पणी—७ शिवजीके इस ध्यानमें शूल, सायक, पिनाक इन तीन अस्त्र शस्त्रों और डमरू बाजेके नाम आये हैं जो हाथोंमें धारण किये जाते हैं । इसतरह यह चतुर्भुज मूर्तिका ध्यान कहा जा सकता है ।

८ 'देव तांडव नृत्य पर डमरू' इति । पाठपर विचार—'तांडव' नृत्यकाही नाम है, किसी गतिका नाम नहीं है । यथा 'तांडवं नटनं नाट्यं लास्यं नृत्यं च नर्त्तने' इत्यमरः । ये छओं नाम नृत्यके हैं । अतएव 'तांडवित नृत्य' अशुद्ध है । 'तांडव नृत्य' ही ठीक है और प्राचीनतम पाठभी यही है ।

---

‡ दूसरा अर्थ – 'आप उग्ररूप हैं, शिवरूप हैं ।' वा 'हे शिव ! आप उग्ररूप हैं ।'

† पं० रा० कु० दा० के मतानुसार 'सर्वगत' का अर्थ है "सब शरीरोंमें प्रवेश कर सकनेवाले ।"

९ (क) 'डमरू डिंडिमि प्रवर' इति। संस्कृतभाषाके व्याकरणके १४ मूल सूत्रोंकी रचना 'डमरू' सेही हुई है। इस संबंधकी कथाएँ कई प्रकारकी पायी जाती हैं। कहीं तो ऐसा उल्लेख मिलता है कि 'व्याकरणशास्त्र पारदर्शी होनेके उद्देश्यसे पाणिनिजी प्रयागमें अक्षयवटके नीचे घोर तपस्या कर रहे थे। शिवजी प्रकट होकर तांडव नृत्य करने लगे और नृत्यके समय आनन्दातिरेकसे उन्होंने १४ बार डमरू ध्वनि की। डमरूके १४ नादोंसेही १४ मूल सूत्रोंकी रचना हुई। इसीलिये इनको शिवसूत्र और माहेश्वरसूत्रभी कहते हैं। अतः 'प्रवर' विशेषण डमरूकेलिये सार्थक है। दूसरी कथा ऐसी है कि सत्ययुगके बीतनेपर सनकादिकजीकी प्रार्थनापर महेश्वरने डमरू ध्वनि १४ बार की जिससे ये १४ सूत्र हुए। नन्दिकेश्वर काशिकामें इसका प्रमाण यह मिलता है कि '**नृत्यावसानेनटराजराजो ननाद ढक्कां नतपंचवारम्। उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद्विमर्शेशिवसूत्रजालम्॥**' काशिकावृत्तिमें इन शिवसूत्रोंकी व्याख्या इसप्रकार की गयी है मानों इनकी रचना शैवागम और शाक्तागमके दिव्य रहस्यके उद्‍घाटन करनेके उद्देश्यसेही हुई है। इन कारणोंसे उसको एवं उसके शब्दको 'प्रवर' विशेषण दिया गया है।

(ख) 'प्रवर' में भाव ये हैं कि यह बाजा किसी औरके मनका नहीं है। दूसरेसे न ऐसा नृत्य हो सके न ऐसा बाजा बज सके। प्रवरसे बाजेकीभी श्रेष्ठता दिखायी। श्रीवैजनाथजी लिखते हैं कि 'प्रवर' में भाव यह है कि तांडव नृत्यमें गतिका पद प्रहार और बाजेकी ताल दोनों एकमें मिलकर लय हो जाती हैं। 'प्रवर' 'डमरू' और 'डिंडिमि' इन दोनोंका विशेषण है।

(ग) 'असुभ इव भाति कल्यानरासी' इति। यथा '**साज अमंगल मंगलरासी**', '**असिव बेष सिवधाम कृपाला**', '**भव अंग भूति मसानकी सुमिरत सोहावनि पावनी**'। भाव यह कि आप तो कल्याणमूर्त्ति हैं। आपमें अमङ्गल कहाँ? केवल आपका बाह्यरूप अमंङ्गलसा दिखता है। श्रीवैजनाथजी इसका भाव यह लिखते हैं कि विज्ञानघन 'अवधूतवेषमें आसन मारकर समाधि लगाना' शुभ

मानते हैं परंतु योगी, त्यागी वेषमें नृत्य, राग, संगीतादि विषयवर्धक व्यापार करना अशुभ समझते हैं। शिवजीमें दोनोंही है। इसलिये यहाँ 'विरोधाभास' अलंकार है।

(घ) 'महाकल्पांत ब्रह्मांड मंडलदवन' इति। 'तांडव नृत्य पर डमरू' के बाद 'महाकल्पांत' कहकर सूचित करते हैं कि महाप्रलय करके हाथमें डमरू आदि लेकर आप तांडव नृत्य किया करते हैं। यही बात अगले पद ११ में स्पष्ट कही है। यथा 'सकल लोकांत कल्पांत सूलाग्रकृत दिग्गजाव्यक्तगुन नृत्यकारी'। इससे यहभी जनाते हैं कि महाप्रलय करनेपर आपको अखण्डानन्द प्राप्त होता है और उसी आनन्दमें मग्न होकर आप नाचने लगते हैं।

(ङ) 'भवन कैलास आसीन कासी' इति। ब्रह्मांड मंडल दवनसे सन्देह होता है कि 'तब आप कहां रहते हैं? काशी और कैलासभी तो ब्रह्मांडके अन्तर्गत हैं?' इस शङ्काके निवारणार्थ 'भवन कैलास' कहकर जनाया कि महाकल्पांतमेंभी कैलास और काशी इन दोनोंका नाश नहीं होता। क्योंकि इन दोनोंकी स्थिति भगवान् श्रीमन्नारायणके उदरमें वैसीही रहती है जैसे रमा वैकुण्ठादिकी।

भावार्थान्तर—(१) इतने शक्तिशाली होकरभी आप एकही जगह स्थिर होकर नहीं रहते। उदासियोंकी तरह कभी यहाँ तो कभी वहाँ रहते हैं। (दीनजी)। (२) काशी सुखविलासस्थान है, इसलिये वहाँ बैठे रहते हैं। (वै०) (३) भवन कैलास है और काशीपुरीमें आप आसन लगाये बैठे रहते हैं। (वि०)

नोट—वर्तमानमें जिसको कैलास माना जाता है, अनुभवी शिवभक्तगण कहते हैं कि वह असली भूकैलासभी नहीं है। 'काशी-केदार माहात्म्य' नामक ग्रंथके चतुर्थ अध्यायमें महाकैलासका वर्णन है। वहाँ उल्लेख है कि अनन्तकोटि ब्रह्मांडके आधारभूत महोदकमें (सम्भवत: इसीको आधुनिक विज्ञानी Perfect Fluid कहते हैं) लाखयोजन विस्तीर्ण स्वर्णभूमि है। वहाँ लाख योजन ऊँचा परमेश्वरका स्थान है। उसीको वेदवित् पुरुष 'महाकैलास' कहते हैं। उसके

आठों दिशाओंमें आठ फाटक हैं। पूर्वके मालिक विघ्नेश हैं, अग्नि-कोणके महागण भृंगीरिटि, दक्षिणके पालक गणोंके सरदार महाकाल, नैर्ऋत्यके वीरभद्र, पश्चिमकी पालिका शिवदुहिता महाशास्ता, वायव्यकी दुर्गा, उत्तरके सुब्रह्मण्यनामक परशिव और ईशान्यके शैलादि गणनायक हैं। वह नगरी पचास हजार योजन विस्तारकी है। इसमें असंख्यों गुम्बद, शृङ्ग और शिखर हैं। कई परकोटे हैं, जिनमें अधिकारानुसार शिवभक्त और देवगण रहते हैं। अन्तःपुरीके पश्चात् शङ्करजीका निजधाम है जिसके ज्योतिर्मय ११ शृङ्ग हैं और ये साम्बशुद्ध सदाशिवको घेरे खड़े हैं। शिवजी अनुग्रहात्मक, शान्त और अपनीही महिमासे प्रतिष्ठित हैं। महाकैलासकी भाँति इन्होंने भूकैलासमेंभी अपने योग्य वैसीही कल्पना की है। भूकैलासभी प्रलयकालमें गणोंकेसहित ऊपर बढ़कर अंडका भेदन करता हुआ परिवारके सहित बाहर निकलकर वहीं चला जाता है और उस नित्य अलौकिक महाकैलासके अन्तर्भूत हो जाता है। निग्रह और अनुग्रहके व्याजसे सदाशिवकी मूर्तियोंमें भेद होता है। जम्बूद्वीपवाले कैलास और महाकैलासकी भूमिकाएँ उस परमेश्वरके निग्रहानुग्रहके शाश्वत स्थान हैं। (शिवाङ्क)

१० 'विश्व भवदंस संभव पुरारी' इति। इस विषयमें पृथक् पृथक् मत हैं। श्रीमान् गौड़जी लिखते हैं कि 'सृष्टिसे परे परमात्मसत्ता एकही है, जिसे परब्रह्म, परमेश्वर या परमविष्णु अथवा चाहे जिस नामसे कहें, उसका निराकारत्व एकही है। परन्तु उसकी सगुणसत्ता त्रिगुणात्मक होनेसे तीन रूपोंमें तीनों शक्तियोंके साथ व्यक्त होती है। भक्त जिस भावका उपासक होता है वही उसकेलिये उत्कृष्ट दिखता है। दूसरे दो रूप उसके अधीन भासते हैं। वस्तुतः सत्ता एकही है। एकपर दूसरेका उत्कर्ष भक्तोंके हितार्थ भक्तभावनकी लीलामात्र है। यह बात प्रसंग प्रसंगपर अच्छी तरह स्पष्ट शब्दोंमें व्यक्त कर दी गयी है कि त्रिमूर्ति एकही सत्ता है। इसमें भेद माननेवालोंकी अधोगति होती है। इस प्रकार सारे हिन्दू साहित्यमें भिन्न भिन्न नामोंसे एकही परमात्म सत्ताका प्रतिपादन है। 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' इति श्रुतिः।

रावबहादुर राजा दुर्जनसिंहजी लिखते हैं कि 'व्यासजीने एकही मूल भगवत्तत्वको अनेक रूपोंमें वर्णन किया है और ऐसी दशामें किसी विशेषरूपके नाम किसी विशेष रूपमें और किसीके किसीमें आ जायँ तो उसका मुख्य प्रयोजन यही है कि उन रूपोंमें कोई भेद नहीं है और मूलतत्व एकही है। इस मूल तत्त्वकोही श्री, भगवान्, परमात्मा, परब्रह्म इत्यादि शुभ नामोंसे प्रगट किया गया है। यही जब 'एकोऽहं बहुस्याम्' इस श्रुतिके अनुसार इच्छा करता है तो अनेक नाम, रूप धारण कर लेता है और यही सृष्टिकी उत्पत्ति है। इस दशामें ये असंख्य नाम और रूप सब इसी एकही तत्त्वके हैं और इनमें वास्तविक भेदकल्पना करना केवल भ्रान्तिमूलक है। श्रीभगवान्की यह मन और इन्द्रियगोचर चेष्टा परम रहस्यपूर्ण है। इस इच्छाके द्वारा सृष्टि रचनाकी क्रिया सामान्यतया तो माया अथवा प्रकृतिके द्वाराही होती है। किन्तु उस अपरिमेय शक्तिसंपन्न विभुकी अद्भुतताका यह चमत्कार है कि वह जिसको अमायिक कहा जाता है माया विनाभी जैसी चाहे वैसी रचना रच सकता है। इसके प्रत्यक्ष उदाहरणका दर्शन देवदुर्लभ ब्रजरजकी उस बुद्धिविमोहन लीलालीलामें होता है जिसमें ब्रह्माजीके ग्वाल बाल और बछड़े चुरानेपर श्रीभगवान्ने अमायिक ग्वालबाल तथा बछड़े प्रकटही नहीं कर दिये किन्तु उन सबको चतुर्भुज मूर्ति बना दिया। इससे सिद्ध है कि भगवान्के असंख्य नाम, रूप मायिक और अमायिक दोनों प्रकारसेही हो सकते हैं। जो अमायिक नाम, रूप हैं, वे सब गुणातीत, देशकालवस्तुपरिच्छेदरहित तथा अभिन्न हैं। किन्तु मायिक नामरूप त्रिगुणमय प्रकृतिके कार्य होनेसे भेदयुक्त हैं और देशकालवस्तुपरिच्छिन्न है। (शिवाङ्कसे)

११ (क) 'ब्रह्मेंद्रचंद्रार्क अर्चि भवदंघ्रि सर्वेधिकारी' इति। ब्रह्मानेभी आपहीसे अधिकार प्राप्त किया, इसका प्रमाण पद ५ में 'यह अधिकार सौंपिऐ औरहिं भीखि भली मैं जानी' है। इस चरण-में महान् उपलक्षणताका होना 'उदात्त अलंकार' है। विशेष पद १२ में देखिये।

(ख) पाठपर विचार 'सर्वाधिकारी' का अर्थ होता है कि ये सब

चीज़ोंके अधिकारी हुए, परन्तु ये सब बातोंके अधिकारी नहीं हैं। सबके अधिकार अलग अलग हैं। 'सर्वेधिकारी' का अर्थ है कि 'ये सब अधिकारको प्राप्त हुए।' अतएव यही पाठ समीचीन है और प्राचीनतम तो हैही।

१२ 'देव अकल निरुपाधि निर्गुन निरंजन' इति। (क) 'उपाधि' इति। उपाधि=धर्मखंडित होनेकी चिन्ता। जैसे हरिश्चंद्रपर विश्वामित्रने, शिबिपर इंद्र और अग्निने और नलपर कलिने उपाधि की थी वैसे आपपर कोई नहीं कर सकता।' (वै०)। सांख्यमें बुद्धिकी उपाधिसे ब्रह्म कर्त्ता दिख पड़ता है, वास्तवमें वह कर्त्ता नहीं है। इसी प्रकार अद्वैत वेदान्तमें सूक्ष्म और स्थूल मायाके संबंधसे ब्रह्मके दो भेद माने गये हैं। एक 'सोपाधि ब्रह्म', दूसरा 'निरुपाधि ब्रह्म'। स्थूल चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म 'सोपाधिब्रह्म' है और सूक्ष्म चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म 'निरुपाधिब्रह्म है'। (ख) निर्गुण=मायिकगुणसे (सत्व रज और तम) रहित। भाव कि न सत्वगुण आपको शान्त कर सके, न रजोगुण विषयभोगी कर सके और न तमोगुण आपको क्रोधी कर सके। (वै) (ग) 'अखिल विग्रह उग्ररूप सिव भूपसुर' का भाव दीनजी यह लिखते हैं कि 'आप विराटरूप होकर भयंकररूप हैं पर सर्वदेवशासकरूपसे सुंदर हैं।'

१३ 'सर्व सर्वगत' इति। 'ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति' इस श्रुति प्रमाणसे ब्रह्मात्मक होनेके कारण विराटरूपसे सब आपही हैं। परमात्मज्ञानरूपसे सबमें व्यापक अथवा कारणरूपसे सर्वगत अर्थात् सबसे भिन्न है। जब ब्रह्म एकसे बहुत होता है तब ब्रह्मात्मक होनेसे आप 'सर्व' हैं। यथा 'एकोऽहं बहुस्याम्'। वा, 'मुक्तात्मबुद्धिसे सब आपही हैं और बद्धजीवबुद्धि होनेसे सर्वगत हैं।' (वै० भू० रा० कु० दा०)

श्रीमद्भागवत आदिसे यही प्रमाणित होता है कि त्रिगुणात्मक सृष्टिके कार्यकेलियेही तीनों गुणोंके भेदसे विधि, हरि और हर तीन रूप देखे, कहे और सुने जाते हैं, पर वस्तुतः इनमें अभेद है। भा० ४।७।५०–५४ में स्वयं विष्णु भगवान्के वचन हैं कि 'मैंही जगत्का परमकारण ब्रह्मा

और महादेव हूँ। मैंही सबका साक्षी, स्वयंप्रकाश तथा निर्विशेष आत्मा और ईश्वर हूँ, उपाधिशून्य हूँ। अपनी त्रिगुणात्मिका मायाको स्वीकार करके मैंही जगत्की सृष्टि, पालन और संहार करता हूँ और मैंने उन कर्मोंके अनुरूप ब्रह्मा, विष्णु और शंकर ये नाम धारण किये हैं। ऐसे मेरे विशुद्ध भेदरहित अद्वितीय परब्रह्मस्वरूपमें ब्रह्मा, रुद्र, तथा सभी जीव निवास करते हैं। अज्ञानी पुरुष ब्रह्मा, रुद्रादिको विभिन्नरूपसे देखता है, उनमें भेददृष्टि रखता है। जैसे मनुष्य अपने सिर, हाथ, पाँव आदि अंगोंमें कहींभी परकीय भावना नहीं करता, अर्थात् 'ये मुझसे भिन्न हैं' यह बुद्धि नहीं करता, वैसेही मेरा भक्त प्राणीमात्रमें पृथक् बुद्धि नहीं करता। हम तीनों स्वरूपतः एकही हैं। जो हममें भेद नहीं देखता वही शान्ति प्राप्त करता है।'*

महाप्रभु कृष्णचैतन्यजीने श्रीसनातन गोस्वामीको शिक्षा देते समय यही उपदेश दिया कि 'प्रधानतः अवतार धारणकी दो रीतियाँ हैं। एक स्वांशरूपसे होते हैं, दूसरा विभिन्नांशरूपसे। भगवान जब कला या अंशरूपमें स्वयं अवतीर्ण होते हैं तब स्वांशावतार कहे जाते हैं और जब किसी अधिकारी जीवको शक्तिसञ्चारकर भेजते हैं तब वह विभिन्नांशवतार कहा जाता है। श्रीशिव स्वांशावतार है। इनकी गणना ईश्वरकोटिमें है, जीव कोटिमें नहीं है। (शिवाङ्क)

श्रीशिवजीकी इन विशेषणोंसेयुक्त स्तुतियाँ पुराणोंमें मिलती है। ब्रह्मा और विष्णुभी वंदना करते देखे जाते है। यहाँभी उसीके अनुकूल 'सर्व सर्वगत' आदि विशेषण दिये गये हैं। यह परंपराके अनुकूलही है।

१४ 'ज्ञान वैराग्य धन धर्म कैवल्यसुख' इति। (१) 'धर्म' इति। धर्मकी सूक्ष्म गति है। धर्म क्या है इसकी व्याख्या करना बड़ा कठिन है। "धृतिः क्षमा दमो स्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या

---

* यथा 'आत्ममायं समावेश्य सोऽहं गुणमयीद्विज। सृजन् रक्षन् हरन् विश्वं दध्रे संज्ञां क्रियोचिताम्॥ त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वैभिदाम्। सर्व भूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छति॥'

सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम् ॥ यह मनुद्वारा बाँधी हुई धर्मकी मर्यादा दस प्रकारकी है।

श्रीकृष्णजीने श्रीअर्जुनजीसे धर्मके सम्बन्धमें कहा है 'प्राणियोंके अभ्युदय और कल्याणकेलियेही धर्मकी व्याख्या की गयी है। जिससे इस उद्देश्यकी सिद्धि होती है, वही धर्म है। धर्मका नाम धर्म इसलिये पड़ा कि वह सबको धारण करता है, अधोगतिमें जानेसे बचाता है और जीवनकी रक्षा करता है। धर्महीसे संपूर्ण प्रजा जीवन धारण कर रही है। अत: जिस कर्मसे प्राणियोंके जीवनकी रक्षा हो वही धर्म है ऐसा निश्चय रखना चाहिये। जीवोंकी हिंसा न हो, इसके लियेही धर्मका उपदेश किया गया है। अतः जो कर्म अहिंसासे युक्त हो वह धर्म है।' (कर्ण पर्व)। प्राणियोंकी हिंसा न करनाही सबसे बड़ा धर्म है। प्राणरक्षाकेलिये झूठ बोलना पड़े तो बोल दे, परन्तु उसकी हिंसा न होने दे। वनपर्वमें धर्मव्याधने धर्मकी व्याख्या इस प्रकार की है "धर्म = न्याययुक्त कर्मोका आरम्भ। धर्म तीन प्रकारके हैं। वेदप्रतिपादित, धर्मशास्त्रवर्णित और सत्पुरुषोंके आचरण। वेद, स्मृति, और सदाचार ये तीन धर्मका ज्ञान करानेवाले हैं।" (शान्तिपर्व, भीष्मवाक्य) भीष्मपितामहजीने युधिष्ठिरजीसे कहा है कि धर्मके बहुत विधान हैं, पर उन सबोंका आधार 'दम' है। कहीं कहीं अहिंसा या दयाको धर्मका मूल कहा गया है। 'अहिंसा परमो धर्मः', 'दया धर्मका मूल है पापमूल अभिमान।'

महर्षि देवस्थानने युधिष्ठिरजीसे कहा है कि कोई शान्तिकी प्रशंसा करते हैं तो कोई उद्योगके गुण गाते हैं, कोई यज्ञको अच्छा बताते हैं तो कोई संन्यासको और कोई दानको, कोई सब कुछ छोड़कर चुपचाप भगवान्‌के ध्यानमें मग्न रहते है और कोई प्रजाका पालन करते रहनाही अच्छा समझते हैं। किन्तु इन सबपर विचार कर बुद्धिमानोंने तो यही निश्चित किया है कि किसीसे द्रोह न करना, सत्य भाषण करना, दान देना, सबपर दया रखना, इन्द्रियोंका दमन करना, अपनीही स्त्रीसे पुत्रोत्पन्न करना तथा मृदुता, लज्जा, और अचंचलता धारण करना यही प्रधान धर्म हैं और ऐसाही स्वायंभुव मनुने कहा है।' (शान्तिपर्व)

हंस भगवान्ने साध्यगणसे कहा है कि 'जो अपने उपस्थ, उदर, दोनों हाथ और वाणी इन चार द्वारोंको पापसे बचाये रहता है वही धर्मज्ञ है।'

शान्तिपर्व तुलाधार जाजलि संवादमें तुलाधारने कहा है कि 'मैं परम प्राचीन और सबका हित करनेवाला सनातन धर्म, उसके गूढ रहस्योंसहित जानता हूँ। १ किसीभी प्राणीसे द्रोह न करके जीविका चलाना श्रेष्ठ धर्म माना गया है। २ जो सब जीवोंका सुहृद होता है और मन, वाणी तथा कर्मसे सबके हितमें लगा रहता है वही वास्तवमें धर्मको जानता है। मैं दूसरेके कार्योंकी निंदा या स्तुति नहीं करता हूँ, मिट्टीके ढेले और सोनेमें भेद नहीं मानता हूँ। ३ सदाचारका आचरण करनेसे धर्मका रहस्य जाना जाता है। ४ जिससे जगत्का कोईभी प्राणी कभी किसी प्रकार किंचित् भय नहीं मानता उस पुरुषको सम्पूर्ण भूतोंसे अभय प्राप्त होता है। जिससे सब लोग डरते हैं उसकोभी दूसरोंसे डरना पड़ता है। अतः इस अभयदानरूप धर्मका प्रयत्नपूर्वक पालन करना उचित है। जो इसको आचरणमें लाता है वह सहायवान, द्रव्यवान, सौभाग्यशाली तथा परलोकमें कल्याणका भागी होता है। अहिंसासे बढ़कर दूसरा धर्म नहीं है। जो प्राणियोंको अपनाही शरीर समझता तथा सबको आत्मभावसे देखता है वह ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। अभयदानसे बढ़कर दान नहीं है। ५ परिणामका विचार करकेही किसी धर्मका स्वीकार करना चाहिये। लोगोंकी देखा देखी करना अच्छा नहीं।'

एकही क्रिया देश और कालके भेदसे धर्म या अधर्म हो जाती है। लोक और वेदमें धर्मके दो भेद हैं। प्रवृत्तिधर्म और निवृत्तिधर्म। निवृत्ति धर्मका फल मोक्षरूप अमृत्व है और प्रवृत्तिका फल जन्ममरण है। फलोंकी शुभाशुभताके कारणही कर्मोंको शुभ या अशुभ कहते हैं।

(२) 'कैवल्यसुख' इति। पद्मपु० भूमिखण्डमें कुंजलने उज्वलसे 'कैवल्य' की जो व्याख्या दी है उससे कैवल्य सुखका ठीक भावार्थ समझमें आ जायगा। अतः हम उसे यहां उद्धृत करते हैं। कुंजलने कहा कि 'मैं तुम्हें उस उत्तम ज्ञानका उपदेश देता हूं जिसे किसीने

चर्मचक्षुओंसे नहीं देखा है। उसका नाम है 'कैवल्य'। वह केवल अद्वितीय और दुःखसे रहित है। जैसे वायुशून्य प्रदेशमें रखा हुआ दीपक हवाका झोंका न लगनेके कारण स्थिर भावसे जलता है और घरके समूचे अंधकारका नाश करता है, उसी प्रकार कैवल्य स्वरूप ज्ञानमय आत्मा सब दोषोंसे रहित और स्थिर है† । वह आशातृष्णासे रहित और निश्चल है। आत्मा न किसीका मित्र है न शत्रु, उसमें न शोक है न हर्ष, न लोभ है न मात्सर्य। वह भ्रम, प्रलाप, मोह तथा दुःखसुखसे रहित है। जिस समय इन्द्रियाँ संपूर्ण विषयोंमें भोगबुद्धिका त्याग कर देती हैं उस समय सब प्रकारकी आसक्तियोंसे रहित केवल आत्मा रह जाती है। उसे कैवल्यरूपकी प्राप्ति हो जाती है। जैसे दीपक जब प्रज्वलित होकर प्रकाश फैलाता है तब बत्तीके आधारसे वह तेलको सोखता रहता है। फिर उस तेलकोभी वह काजलके रूपमें उगल देता है। दीपक स्वयंही तेलको खींचता है और अपने तेजसे निर्मल बना रहता है। इसी प्रकार देहरूपी बत्तीमें स्थित हुई आत्मा कर्मरूपी तेलका शोषण करती रहती है। वह विषयोंका काजल बनाकर प्रत्यक्ष दिखा देती है और जपसे निर्मल होकर स्वयंही प्रकाशित रहती है। उसमें क्रोधादि दोषोंका अभाव है। क्लेशनामक वायु उसका स्पर्श नहीं करती। वह निस्पृह और निश्चल होकर स्वयं अपने तेजसे प्रकाशमान् रहती है। वह स्वकीय स्थानपर स्थित रहकरही अपने तेजसे संपूर्ण त्रिलोकिको देखा करती है।'

'कैवल्यसुख' से उपर्युक्त अवस्थाका सुख यहां अभिप्रेत जान पड़ता है। दूसरा अर्थ शब्दार्थमें दिया जा चुका है।

१५ 'ज्ञान वैराग्य धन धर्म०' इति। (क) शिवजीकी सानुकूलतासे बहुतसे उत्कृष्ट गुणोंकी समताका एकत्र करना 'तृतीय तुल्ययोगिता' अलंकार है। (वीर) धर्मके आठ अंग हैं। यथा, 'इज्याध्ययन दानानितपः सत्यं धृतिःक्षमा। अक्षोभ इति

---

† 'यथा दीपो निवातस्थो निश्चलो वायुवर्जितः। प्रज्वलन्नाशयेत्सर्वमन्धकारं महामते॥ तद्वद्दोषविहीनात्मा भवत्येव निराश्रयः।' ८६।५६,६०।

मार्गोयं धर्मश्चाष्टविधःस्मृतः ॥' (ख) 'अति कष्ट रत' इति। वैजनाथजी इसका अर्थ यह करते हैं कि 'अत्यन्त दुःखदायक जो इंद्रियविषयसुख है उसमें प्रीति किये हैं'।

१६ 'गत भेद माया' इति। (१) मायाकृत भेदबुद्धिरहित। 'भेद-बुद्धि' पद ७ टि० ५ में देखिये। मिलान कीजिये। 'मुधाभेद जद्यपि कृतमाया। बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया॥' (२) भेद और मायारहित। भेदरहित यह कि जिससे जगत्मात्रमें समता भाव स्थापित हो जाता है। वह भक्ति यह सप्तम भक्ति है जो श्री रघुनाथजीने श्रीसबरीजीसे कही है। यथा 'सातँव सम मोहि मय जग देखा।' 'मायारहित' यह कि शब्दादि विषय, मोह, मद, मान, मत्सर, सुत, वित्त लोकेषणा और कामक्रोधलोभादि ये सब जो मायाका परिवार है, मिथ्या है, पर छूटता नहीं। यथा 'सो दासी रघुबीरकी समुझे मिथ्या सोपि। छूट न रामकृपा बिनु नाथ कहउँ पद रोपि॥' (उ०), तथा 'मैं अरु मोर तोर तैं' रूपी मायासेरहित जो भक्ति है वह। जिस भक्तिसे माया छूट जाती है वह भक्ति दीजिये। भक्तिसे माया डरती रहती है। यथा 'भगतिहि सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया॥ तेहि बिलोकि माया सकुचाई। करि न सकइ कछु निज प्रभुताई॥' (उ०) 'देखि भगति जो छोरै ताही।' (बा०) (३) दीनजी 'भेदमायारहित' का अर्थ 'शुद्ध निर्मल' देते हैं। (४) वैजनाथजी लिखते हैं कि 'गतभेदमाया' का अर्थ है कि 'जिसकी प्राप्तिसे मेरा तेरा, मित्र शत्रु, राग द्वेष, इत्यादि भेदबुद्धि जाती रहती है, सबमें समता बुद्धि आ जाती है तथा इन्द्रियसुखद्वारा जो शब्दादि विषयरूप माया संसारमें लिप्त करनेवाली होती है, वहभी जाती रहती है।'

[११]

देव* भीषनाकर भैरव भयंकर भूत
प्रेत प्रमथाधिपति बिपति हर्त्ता।

---

* वै०, मु०, दी०, वि०, ७४ में यह शब्द पदभरमें नहीं है। ५१ में पदके शीर्षकमें 'देव' है। हु० और भ० में यही इस अंतरामें है,

मोह मूषक मार्जार संसार भयहरन
तारन तरन करन[1] कर्ता। १।

देव अतुल बल बिपुल बिस्तार बिग्रह
गौर अमल अति धवल धरनीधराभं।
सिरसि संकुलित कलकूट[2] पिंगल जटा
पटल सतकोटि विद्युच्छटाभं। २।

देव भ्राज बिबुधापगा आपु पावन
परम मौलि मालेव सोभा बिचित्रं।
ललित ललाट पर राज रजनीस कल
कलाधर नौमि हर धनद मित्रं। ३।

देव इंदु पावक भानु नयन मर्दन
मयन ज्ञान गुन अयन विज्ञानरूपं।
रवनगिरिजा भवन भूधराधिप सदा
श्रवन कुंडल बदन छबि अनूपं। ४।

शब्दार्थ.—भीषनाकार (भीषण आकार) = भयंकर मूर्ति। भूत प्रेत प्रमथ ये सब प्रेतोंकीही भिन्न भिन्न जातियाँ हैं और सब प्रेतोंकेही भेद हैं। ये राक्षसोंसे नीच दर्जेके कहे जाते हैं। ये बड़े गन्दे और भयंकर होते हैं। इनके भयंकर रूपोंका वर्णन श्रीरामचरितमानसमें शिव बारातके प्रसंगमें आया है। ये सब शिवगण हैं और ये उंची और नीची दोनों जातियोंके होते हैं। किसी किसीका मत है कि तुच्छ योनियोंमें जो कराल होते हैं, वे भूत हैं और जो मनुष्यके मरनेपर होते हैं वे प्रेत हैं। कालिकापुराणमें लिखा है कि ३६ कोटि प्रमथगण शिवजीकी सदा सेवा किया करते हैं। उनमेंसे १३ हजार तो भोगविमुख योगी और

आगे पदभरमें नहीं है। रा०, भा०, बे०, प्र०, ज०, ह०, १५ में 'देव' पदभरमें है। १ करन—भा०, बे०, ह०, ज०, १५ ('करण' पर हरताल देकर हाशियेपर किसीने 'अभय' बनाया है)। अभय—५१, ७४, रा०, आ०। २ कूट-प्रायः सबमें है। छु० में 'जुट' है। वही वै० भ०, वि०, ने लिया है पर टी० में 'कुट' है।

ईर्ष्यादिसेरहित होते हैं। शेष कामुक तथा क्रिड़ाविषयमें शिवकी सहायता करते हैं। उनके द्वारा प्रकटमें किसीका कुछ अनिष्ट न होनेपरभी उनकी निकटतासे लोग भयान्वित रहते हैं। (पद १६ देखिये)। प्रमथाधिपति (प्रमथ + अधिपति) = स्वामी। बिपति = कष्ट, दुःख, शोक, भारी संकटकी प्राप्ति, स्थिति वा अवस्था। हर्त्ता=हरनेवाले। मूषक=मूसा, चूहा। यथा 'खल बिनु स्वारथ पर अपकारी। अहि मूसक इव सुनु उरगारी ॥' (उ०) मार्जार = बिलार, बिलाव, बिल्ली। तारन= दूसरेको तारनेवाले। तरन (तरण) = तरे हुए अर्थात् मुक्तरुप, अपने स्वरुपसे पार रुप। यथा, 'बारक कहत नाम जग जेऊ। होत तरन तारन नर तेऊ ॥' (अ०) 'तारन तरन हरन सब दूषन' (उ०) बेड़ा (श० सा०), नाव। पं० रामकुमारजी और बाबा-हरिहरप्रसादजीने 'तरण' का अर्थ 'जहाज' और 'नाव' किया है। इस तरह 'तारनतरन' के अर्थ होंगे, 'तारनेके लिये जहाजरुप', 'तारनेवाले जहाज', 'तारनेवाले और जहाज'। चरखारी टीकामें 'तारन तरनि' पाठ देकर अर्थ 'खेवैया', 'तारनेवाला', और 'नाव' किया है। श० सा० में 'तरन तारन' का अर्थ 'भवसागरसे पार करनेवाला' दिया है। बै०, दी० ने 'तरन' का अर्थ 'मुक्तरूप' किया है। करन (करण). = इस शब्दके दो अर्थ यहां लग सकते हैं। १ क्रिया, कार्य यथा। 'कारण करण दयालु दयानिधि निज भय दीन डरे' (सूर)। २ इंद्रिय। यथा 'विषय करन सुर जीव समेता। सकल एक तें एक सचेता ॥ (बा०) करन कर्त्ता = कार्य कारण दोनोंही हैं, इन्द्रियोंके प्रेरक स्वामी हैं। इन्द्रियाँ आहंकारिक हैं और शिवजी अहंकाररूप हैं। यथा, 'अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान।' (लं) अतुल = जो तोला न जा सके, अपार, अमित, यथा 'आवत देखि अतुलबल सींवा' (कि०) बिपुल = बहुत अधिक, बड़ा। बिस्तार = लम्बे चौड़े या बड़े होनेका भाव। अमल = स्वच्छ, निर्मल। धवल = श्वेत, उज्वल। धरनीधराभं = धरणी (पृथ्वीको) + धर (धारण करनेवाले) + आभं (कान्तिवाले)। धरणीधर = भूधर, पर्वत। यथा

'नाथ भूधराकार सरीरा। कुंभकरन आवत रनधीरा।' (लं) दिग्गज, वाराह, कच्छप, शेषजी और लक्ष्मणजीभी पृथ्वीके धारण करनेवाले माने गये हैं। यथा 'दिसिकुंजरहु कमठ अहि कोला। धरहु धरनि धरि धीर न डोला।' (बा०); परन्तु यहाँ 'अतिधवल' के सम्बन्धसे 'हिमांचल वा कैलास पर्वत' अर्थ ठीक होगा, यद्यपि शेषनागभी श्वेतवर्ण हैं। सिरसि = सिरपर। संकुलित = परिपूर्ण, सघन, समूह प्राप्त, व्याप्त। कूट = पर्वतशिखर, समूह, (पं० रा० कु०) श्रेष्ठ। पिंगल = भूरापनलिये लाल वा पीला। पटल = समूह। विद्युच्छटाभं = (विद्युत्+छटा+आभं) बिजलीकी दीप्ति वा चमकके समान कान्तिवाली, बिजलीकीसी चमक और शोभा। छटा = प्रकाश, शोभा, छबि। भ्राज = भ्राजमान, शोभायमान। (पद १० देखिये)। बिबुधापगा = बिबुध (देवता) + आपगा (नदी) सुरसरि, गंगा। आप (सं० आपः) = जल। मालेव (माला + इव)= मालाकार, मालाकीतरह। लल्लाट (ललाट) = भाल, मस्तक, माथा। राजना = विराजमान वा शोभित होना, सोहना। यथा 'पुरी बिराजति राजत रजनी' (बा०)। रजनीस (रजनी) + ईश) = रात्रिके-स्वामी चन्द्रमा। कला = चन्द्रमाका सोलहवाँ भाग। इन सोलहोंके नाम ये हैं। १ अमृता, २ मानदा, ३ पूषा, ४ पुष्टि, ५ तुष्टि, ६ रति, ७ धृति, ८ शशनी, ९ चंद्रिका, १० कान्ति, ११ ज्योत्स्ना, १२ श्री, १३ प्रीति, १४ अंगदा, १५ पूर्णा और १६ पूर्णामृता। कला = तेज, शोभा। धनद् = धनके देनेवाले, धनके अधिष्ठाता देवता, कुबेर। मित्र = दोस्त, स्नेही। कलाधर = कलाको धारण करनेवाला, चंद्रमा। यह शिवजीकाभी नाम है। पावक = अग्नि। भानु = सूर्य। मर्दन = मसल वा मल डालनेवाले। साधारण अर्थ यही है। कामदेवके प्रसंगानुसार अर्थ होगा 'भस्म करनेवाले'। मयन = कामदेव। यथा, 'जाहि दीनपर नेह करउ कृपा मर्दनमयन।' (बा०) रवन (रमण) = विहार वा क्रीड़ा करनेवाले, पति। भूधराधिप = भूधर (पर्वत) + अधिप (अधिपति, राजा, स्वामी), पर्वतराज हिमालय

वा कैलास। 'अधि' यह उपसर्ग शब्दोंके पहले लगाया जाता है। इसके ये अर्थ होते हैं। १ ऊपर, ऊँचा, पर। २ प्रधान, मुख्य। ३ अधिक। ४ सम्बन्धमें। यथा, आध्यात्मिक, आधिभौतिक।

पद्यार्थ—हे देव! हे परम उग्रमूर्ति, भयके देनेवाले भैरव! आप (भयंकर) भूत, प्रेत, प्रमथादिके स्वामी, भक्तोंकी विपत्तिके हरनेवाले, मोहरूपी चूहेकेलिये बिलाररूप, भवभय (आवागमन, जन्ममरण) के हरनेवाले, तारन तरण और इंद्रियोंके प्रेरक एवं कार्यकारण दोनोंही हैं। १। हे देव! आपके बलकी तुलना नहीं है। आपका बल अपार है। आपका बहुत बड़ा लम्बा चौड़ा विस्तृत शरीर है। आपका अत्यन्त स्वच्छ सफ़ेद कैलासपर्वतकी कांतिके समान निर्मल गौरवर्ण है। सिरपर सघन, सुंदर शिखराकार पिंगल जटाओंका समूह है जिसमें असंख्यों बिजलीकी छटाके समान कांति है। २। हे देव! आपके सिरपर परम पावन जलवाली देवनदी गंगाजी मालाकार शोभायमान हैं, जिसकी शोभा बड़ी विलक्षण है। सुन्दर माथेपर सुंदर कलाका धारण करनेवाला चंद्रमा विराजमान् है*। (ऐसे) क्लेशके हरनेवाले, कुबेरके मित्र हरको (आपको) मैं नमस्कार करता हूँ। ३। हे देव! चन्द्रमा, अग्नि और सूर्य आपके नेत्र हैं। आप कामके नाशक, ज्ञान और गुणोंके घर और विज्ञानमूर्ति हैं। आप पार्वतीजीके पति हैं, पर्वतराजही सदा आपका निवासस्थान है। (भाव कि आप पर्वतके समान सदा परोपकारमें रत रहते हैं)। आपके कानोंमें कुंडल हैं और मुखकी छविकी तो उपमाही नहीं है। ४।

---

* टीकाकारोंमेंसे कईने 'कलाधर' का अर्थही छोड़ दिया है, टीकामेंसे शब्दही उड़ा दिया है। दो एकने अर्थ किया है। वीरकविजीने इसे शिवजीका संबोधन माना है और 'कल' का अर्थ 'कला' किया है। वैजनाथजी अर्थ करते हैं कि 'सुन्दर ललाटपर द्वितीयाकी चन्द्रमाकी कला शोभित है। ६४ कला वा उत्पत्तिपालनादि कलाके धारण करनेवाले कुबेरके मित्रको नमस्कार करता हूँ।' दीपदेहलीन्यायसे 'कलाधर' दोनोंमें लग सकता है।

टिप्पणी—१ (क) ‘ भीषनाकार भैरव भयंकर ’ इति। इन तीन शब्दोंसे तीन बातें कहीं है। आकार भयंकर है, शब्द भयंकर है और यातनासमयमें प्राणीको भय करने (देने) वाले हैं। काशीमें मरे हुए दुष्कृती जीवोंको उनके कर्मानुसार यंत्रमें डालकर दंड देकर प्राणीके पापोंका क्षय करके उसको मोक्षका अधिकारी बनाते हैं। इसीसे इनको ‘ भयंकर ’ कहा। यथा ‘ दंडपानि भैरव बिषान मलरुचि खलगन भयदासी। ’ (ख) ‘ भूतप्रेतप्रमथाधिपति बिपतिहर्त्ता ’ इति। भूतप्रेतादिगण बड़े भयंकर और दुःखदायी होते हैं। उनके स्वामी होनेसे संदेह होता कि आप भी दुःखदायी होंगे। इस शंकाके निवारणार्थ ‘ बिपतिहर्त्ता ’ कहा। तामसी सृष्टिके कर्त्ता महादेवजी हैं। इसीसे भूत, प्रेत, मृत्यु, यम आदि इन्हींके मंत्र तंत्रोंको मानते हैं, इन्हींकी शपथको मान्य समझते हैं। इसी कारण मृत्युंजय आदि मंत्र अमोघ फलके दाता हैं। वे भूतनाथ कहलाते हैं। (ग) ‘ मोहमूषक मार्जार ’ इति। मोहको मूषक कहनेका भाव कि जैसे मूसा अकारणही अपकार करता है, काग़ज कपड़े आदि खुथर डालता है और खाताभी नहीं, अर्थात् ये कोईभी वस्तुएँ उसके कामकी न होते हुएभी वह उन्हें बेकामका कर देता है। इसी तरह मोहभी बिना कारणही जीवको उसका स्वरूप भुलवाकर उसको ज्ञानभ्रष्ट करता है, भगवद्विमुख बनाता है और संसारचक्रमें डालता है। ‘ मोह मूषक ’ केलिये ‘ मार्जार ’ कहनेका भाव कि चूहे और बिल्लीमें स्वाभाविक बैर होता है। चूहेको देखा नहीं कि बिल्लीने धर दबोचा, लपक झपककर उसका शिकार कर लिया, इतनाही नहीं किंतु अँधेरे उजेलेमें खोज खोजकर वह चूहेका शिकार करती है। वैसेही आप अपने आश्रितोंके मोहको स्वाभाविकही खोज खोजकर नाश कर देते हैं। श्रीवैजनाथजी लिखते हैं कि ‘ मोहरूपी मूसा मुमुक्षुओंकी शम, दम, ज्ञान, विज्ञान, विवेक, वैराग्यादि सामग्रीको खुथर डालता है और भक्तोंकी नवधाभक्तिरूपी खेतीको खा लेता है। आप उसे सहजही ग्रास कर लेते हैं। ’

२ ‘ तारन तरन ’ इति। ‘ मोह, मूषक, मार्जार ’ और ‘ संसारभय

हरन ' कहकर ' तारन तरन ' कहनेका भाव कि आप दोषयुक्त प्राणियोंके दोषोंको प्रथम हरकर उसके अज्ञानको दूर कर आचार्य, केवट और जहाज़रूप होकर उसके जन्ममरणरूपी भवभयको हर लेते हैं। यहाँ ' तारन तरन ' का अर्थ ' तारनेवाला, पार उतारनेवाला, नाविक, केवट, आचार्य, जहाज़ या नाव ' लिया गया है। विना नावके केवट पार नहीं कर सकता और न नाव विना केवटके पार लगा सकती है। अतएव नाव और केवट दोनों कहे। अर्थात् भव पार होने या करनेके साधनभी आपही हैं और साधनको पार लगानेवालेभी आपही हैं। दूसरे अर्थके (तारनेवाले और तरे हुए) अनुसार भाव यह है कि यहाँ आपके भगवत् और भागवत दोनों स्वरूप दिखाये। आप भगवत्—(गुरु) रूपसे दूसरोंको तारनेवाले हैं। यथा ' गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुगुरुर्देवो महेश्वरः। ' ' वंदे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकर रूपिणं। ', ' तुम त्रिभुवन गुरु बेद बखाना। ' और भक्तरूपसे आप भव प्रवाहसे सदा तरे हुए हैं।

३ (क) ' देव भ्राज बिबुधापगा आपु पावन परम ' इति। गंगाजी भगवान्‌के चरणोंसे निकली हैं, अतः आपका जल स्वयं परम पावन है और त्रैलोक्यकोभी पावन करनेवाला है। पद १० ' तटिनि बर बारि हरिचरन पूतं ' देखिये। इसीसे शिवजी इन्हें शीशपर धारण किये हैं। (पद २० देखिये)

(ख) ' मौलि मालेव सोभा विचित्रं ' इति। स्वच्छ उज्वल धारा जटाओंपर इस तरह विराजमान् है मानों श्वेतपुष्पोंकी माला जटाओंमें पहनायी गयी हो। यथा ' अच्युत चरण तरंगिणि शशिशेखर मौलि मालती माले। ' (रहिमन) यहाँ पूर्णोपमा अलंकार है। योऽयं सद्बिमल चारु विलोल तोयां गंगा महोर्मि विषमां गगनात् पतन्तीम्। मूर्धानाऽऽददे स्रजमिव प्रतिलोल पुष्पां तं शंकरं शरणदं शरणं व्रजामि॥ आकाशसे गिरती हुई गंगा जो स्वच्छ, सुन्दर एवं चंचल जलराशिसे युक्त तथा ऊँची ऊँची लहरोंसे उल्लसित होनेके कारण भयंकर जान पड़ती थीं, उसको जिन्होंने हिलते हुए फूलोंसे सुशोभित मालाकी भाँति

सहसा अपने मस्तकपर धारण कर लिया उन शरणदाता शंकरकी मैं शरण हूँ। प० पु० सृष्टि खंडके इस श्लोकसे अनुमान होता है कि यह छटा गंगावतरण समयकी है।

२ पं० श्रीहनुमान् शर्माजी लिखते हैं कि 'आकाशके अन्वेषकोंका अनुमान है कि विष्णुपादाब्जसंभूत, सप्तर्षि मण्डलसे गिरी हुई गंगा गौरीशंकर (शिखरों) पर पड़ती है और उसके पार्श्ववर्ती अपर पर्वत-शृङ्गोंके विस्तृत और गहनतम गर्तोंमें घूमती हुई गंगोत्रीमें पहुँचती है और वहाँसे निर्गत होकर भारतके भूभागोंको तृप्त और पवित्र करती हुई सागरमें सम्मिलित हो जाती है। अनुमानतः गौरीशंकर और उनके जटाजूट तथा गंगा आदिका अमिट स्वरूप इसीप्रकारका प्रतीत होता है।

'सिरसि कलकूट पिंगल जटा', 'भ्राज बिबुधापगा आप पावन परम' और 'ललित लल्लाटपर राज रजनीस कल कलाधर नौमि हर' के आध्यात्मिक वा वैज्ञानिक भाव–सारा ब्रह्माण्ड ईश्वरका शरीर माना गया है। 'अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः। वायुःप्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथ्वी ह्येष सर्व-भूतान्तरात्मा॥' (मण्डूक्योपनिषद् २।१।४) अर्थात् जिसका अग्नि मस्तक है, चंद्रमा और सूर्य नेत्र हैं, दिशाएँ श्रोत्र हैं, वेद वाणी है, विश्व-व्यापी वायु प्राणरूपसे हृदयमें है, पृथ्वी पादरूप है वह सब भूतोंका अन्तरात्मा है।

इसी प्रकारका संक्षिप्त वा विस्तृत वर्णन श्रीमद्भागवत आदि पुराणोंमें भी है। इसी वर्णनके अनुसार उपासनामें शिवमूर्तिके ध्यान हैं।

अग्निकी व्याप्ति सूर्यमण्डलतक है। इसीको यहाँ मस्तक बताया गया है और उसी मस्तकके अंतर्गत सूर्य और चन्द्रमाको नेत्र माना है। यों तो पृथ्वीसे प्रारम्भ कर सूर्यमण्डलसे परे स्वयं भूमण्डलतक ईश्वरकी व्याप्ति बतायी जाती है। आराध्य शिवमूर्तिमें भी तृतीय नेत्ररूपसे अग्नि ललाटमें विराजमान् है जो कि अन्य दोनों नेत्रोंसे किंचित् ऊँचेतक है। सूर्य और चन्द्रमा दोनों नेत्र हैं। 'वन्दे सूर्य शशाङ्कवह्निनयनम्', 'इंदुपावक भानु नयन' (पद ११)

यहाँतक अग्निकी व्याप्ति हुई। इससे आगे सोममण्डल है और सोमकी तीन अवस्थाएँ हैं। आप, वायु और सोम। इनमेंसे सोम (द्विज) चन्द्रमारूपसे, आप गंगारूपसे और वायु जटारूपसे शङ्करके मस्तकमें (अग्नि आदिसे ऊपर) विराजमान है। सूर्यमंडलसे ऊपर परमेष्ठि मंडलका सोम मण्डल रूपमें नहीं है; इसलिये शिवजीके मस्तकपरभी चन्द्रमाका मण्डल नहीं है, किन्तु कला मात्र है। सोमकेही तीन भाग हैं, जो कि तीन कला (अंश, अवयव) कही जा सकती हैं। केवल सोम पूर्णरूपमें नहीं रहता, किन्तु भागोंमें विभक्त होकर रहता है। इसलियेभी चन्द्रकी कलाका मस्तकपर विराजित होना युक्त है। मंडलरूप पृथ्वीका चन्द्रमा पहले नेत्रोंमें आ चुका है यह स्मरण रहे। यह परमेष्ठि मंडलका 'आप' गंगाकेरूपमें परिणत होता है। वह गंगा जटामें अर्थात् वायुमंडलमें व्याप्त है। शिवका नाम 'व्योमकेश' है, अर्थात् आकाशको उनकी जटा माना गया है और आकाश वायुसे व्याप्तही व्याप्त मिलता है। 'यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्र गो महान्।'

इससेभी जटाओंका वायुरूप होना सिद्ध है। एक एक केशके समूहको जटा कहते हैं और वायुकाभी एक एक डोरा पृथक् पृथक् है, जिनकी समष्टि 'वायु' कहलाता है। यह जटा और वायुका सादृश्य है।

पृथ्वीका अधिकतर सम्बन्ध सूर्यसेही है। आगेके सोममंडलका पृथ्वीसे साक्षात् सम्बन्ध नहीं होता। सूर्यचन्द्रद्वारा होता है। इससे हमारा असली ब्रह्मांड सूर्यतकही है। यही शिवमूर्तिमेंभी सूचित किया है। क्योंकि मस्तकतकही शरीरकी व्याप्ति है। केश मुख्यतः शरीरके अंश नहीं कहे जाते। शरीरका भागही अवस्थान्तरित होकर केशरूपमें परिणत होता है। इसीप्रकार अग्निही अवस्थान्तरित होकर सोमरूपमें परिणत होता है। यह परमेष्ठि मंडलका वायु जटारूपसे है और जिसे श्रुतिमें प्राणरूपसे हृदयमें विराजमान् कहा है। वह हमारे अन्तरिक्षका वायु है। पद्मपुराणमें पृथ्वीका पद्मरूपसे निरूपण किया है और शङ्करका ध्यान पद्मासनस्थितरूपमें है। 'पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैः' इससे पृथ्वीकी पादरूपताभी ध्यानमें आ जाती है।

४ 'धनद मित्रं' इति। शिवजी कुबेरके मित्र हैं, इसीसे उनके यहां वे आया जाया करते हैं। यथा 'जात रहेउँ कुबेर गृह रहिहु उमा कैलास।' (उ०), 'जाइ गहे पाँय धाय धनद उठाय भेंट्यो समाचार पाय पोच सोचत सुमिरैं। तहँई मिले महेस दियो हित उपदेस राम की सरन जाहि सुदिन ने हेरैं।' (गी० २४७) दीनजी 'धनद मित्र' का भाव यह कहते हैं कि 'आपको धन संपत्तिकी कमी नहीं'। कुबेरजी विभीषणजीके सौतेले भाई हैं। ये यक्षोंके स्वामी और समस्त धनके अधिष्ठाता देवता, कोषाध्यक्ष वा कोठारी माने जाते हैं। 'धनद मित्र' का दूसरा अर्थ यहभी किया जा सकता है कि '(याचकोंको) धन संपत्ति देनेवाले हैं क्योंकि आप (सर्वेषां मित्रम्) सबके मित्र हैं'। गुणनिधि द्विज कुबेर हुआ जो भगवान् शंकरका परम भक्त था। यह पूर्व लिखा जा चुका है।

५ 'इंदु पावक भानु नयन' इति। शिवजीके तीन नेत्र हैं। सूर्य दक्षिण नेत्र है, चन्द्रमा बाँया नेत्र है और अग्नि नेत्र ललाटपर है जिससे कामको जलाया था। सूर्यनेत्रसे उत्पत्ति, चंद्रमासे पालन और अग्निसे संहारकर्ता जनाया। वैजनाथजी लिखते हैं कि 'दक्षिण नेत्र सूर्यसे मोह तम हरते हैं, वामनेत्र चन्द्रसे जनोंको आह्लादित करते हैं और अग्निनेत्रसे मदनमर्दन करते हैं।'

श्रीसकलनारायण शर्माजी लिखते हैं कि 'वह (ईश्वर शिव) भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालोंकी बातोंको जानता है, इसीसे 'त्रिनयन' कहलाता है। जो लोग समझते हैं कि उसके तीन आँखें हैं, वे भूलते हैं।

अनुसंधान [११]

देव चर्म असि सूल धर डमरू सायक[३]
चाप जान बृषभेस करुनानिधानं।
जरत सुर असुर नर लोक सोकाकुलं
मृदुल चित अजित कृत गरलपानं॥ ५॥

---

३ रा०, भा०, बे०, प्र०, ज०, १५, ह०; ७४ सभी प्राचीन पोथियोंमें 'सायक चाप' है। ५१, आ० में 'सरचापकर' है।

देव भस्म तन भूषनं ब्याघ्रचर्मांबरं
उरग नर मौलि उर माल धारी।
डाकिनी साकिनी खेचरं[४] भूचरं
जंत्र[५] मंत्र भंजन प्रबल कल्मशारी ॥ ६ ॥
देवकाल अतिकाल कलि काल[६] ब्यालाद[७]
खग त्रिपुरमर्द्दन भीम कर्म भारी।
सकल लोकांत कल्पांत सूलाग्रकृत
दिग्गजाव्यक्त[८] गुन नृत्य कारी ॥ ७ ॥
देव पाप संताप घन घोर संसृति दीन
भ्रमत जग जोनि नहिं कोपि त्राता।
पाहि भैरव रूप राम रूपी रुद्र
बन्धु गुर जनक जननी बिधाता ॥ ८ ॥
देव यस्य गुनगन गनति बिमल मति
सारदा निगम नारद प्रमुख ब्रह्मचारी।
सेष[९] सर्वेस आसीन आनंदबन
प्रनत[१०] तुलसीदास त्रासहारी ॥ ९ ॥

शब्दार्थ:—चर्म = ढाल। तलवार, भाले आदिके वार रोकनेका अस्त्र जो कछुयेकी खोपड़ी, गैंडेकी पीठ, चमड़े, धातु आदिका बना हुआ थालीके आकारका गोल और आगेकी ओर उभरा हुआ होता है। ' सूल, डमरू, सायक, जान, वृषभ, गरल, भस्म ' पद १० में

---

४ खेचरं भूचरं–रा०, ५१, १५, आ०, प्र०। खेचर भूचर–भा०, वै०। खेचरी भूचरी–ह०, ७४। ५ जंत्र मंत्र–रा०, भा०, वै०, ५१, १५ डु०, वै०, भ०, वि०। यंत्र–ह०, मु०, ७४, दी०। मंत्र–प्र०। ६ काल–रा०, प्र०, ज० ह०, ५१, आ०। ब्याल–भा०; वै०, ७४। ७ ब्यालादि–डु०, ज०, १५, वै०, मु०, ५१। ८ दिग्गज व्यक्त–७४। ९ सेष–रा०, प्र०, ७४। सेस–ज०, १५, भ० वि०। शेष–ह० मु०, वै०, ५१, दी०। सैष–भा० बे०। १० प्रनत तुलसीदास–भा०, वै०, रा०, प्र०, ज०, १५, डु०, बै०, ७४। दासतुलसी प्रनत–ह० ५१, मु०, भ०, दी०, वि०। प्रनत तुलसीदास त्रासमें यमक अलंकार है।

देखिये। असि = असिके जन्मकी कथा बृहन्नन्दिकेश्वर पुराणकी दुर्गोत्सव-पद्धतिके प्रकरणमें यह दी हुई है कि ब्रह्माकी यज्ञाग्निसे इसका जन्म हुआ। उस समय ब्रह्माने इसके आठ नाम रक्खे। '**असिर्विसनसः खड्गस्तीक्ष्णधारो दुरासदः। श्रीगर्भो विजयश्चैव धर्मपालो नमोऽस्तु ते॥ इत्यष्टौ तव नामानि स्वयमुक्तानि वेधसा॥**' ब्रह्माजीने इसे महादेवजीको दिया। उन्होंने विष्णुको, विष्णुने मरीचिको, मरीचिने महर्षियोंको, महर्षियोंने इन्द्रको और इन्द्रकेद्वारा पृथ्वीपर इसका प्रचार हुआ। वृषभेस (वृषभ + ईस) = नन्दीश्वर। सोकाकुल = शोकको प्राप्त, शोकसे व्याकुल। अजित = किसीसे न जीता जा सकनेवाला। यह विशेषण 'शिव' और 'गरल' दोनोंका हो सकता है। विषकी झार और उसके वेगको कोई न सह सका, इसीसे उसे 'अजित' कहा। कृत = कर लिया। नर मौलि = मनुष्यकी खोपड़ी; मुंड। माल धारी = माला धारण किये है। उरग नरमौलि माल = '**ब्याल नृकपाल माला बिराजै**' पद १० देखिये। माल = मालायें प्रायः फूलों, मोतियों, काठ या पत्थरके मनकोंकी, कुछ वृक्षोंके काष्ठों, बीजोंकी अथवा सोने चाँदी आदि धातुओंसे बने हुए दानेसे बनायी जाती हैं। फूल या मनके धागेमें पिरोये जाते हैं और धागेके दोनों छोर एक साथ किसी बड़े फूल या उसके गुच्छे या दानेमें पिरोकर बाँध दिये जाते हैं। यह प्रायः शोभाकेलिये धारण की जाती है। भिन्न भिन्न देवताओं और सांप्रदायोंकी मालाएँ भिन्न भिन्न प्रकारकी होती हैं। डाकिनी=पिशाची या देवी जो कालीके गणोंमें समझी जाती है। डाइन, चुड़ैल, पूतना आदि बालग्रह जो १६ वर्षतकके बालकोंको खाते या सताते हैं। यथा '**जो सब पातक पोतक डाकिनि**' (अ०)। शाकिनी = यह दुर्गाके गणोंमें गिनी जाती है। योगिनी, पिशाचिनी। खेचर=आकाशमें बिचरने वा रहनेवाले दुष्ट और तुच्छ देवी देवादि जीव। भूचर=पृथ्वीपर रहनेवाले श्मशानी भूतादि दुष्ट जीव। जंत्र (यंत्र) मंत्र=जादू टोना या टोटका आदि। यह मुहावरा है। यंत्र तांत्रिकोंके अनुसार कुछ विशिष्ट प्रकारसे बने हुए आकार या कोष्टक जिनमें कुछ अंक या अक्षर लिखे रहते

हैं और जिनके अनेक प्रकारके फल माने जाते हैं। तांत्रिक लोग इनमें देवताका अधिष्ठान मानते हैं। लोग इन्हें हाथ या गलेमें पहनतेभी हैं। जंत्र = बीजाक्षरसे अंकित अनिष्ठकारी चक्र। मंत्र = तंत्रके अनुसार वे शब्द या वाक्य जिनका जप भिन्न भिन्न देवताओंकी प्रसन्नता वा भिन्न भिन्न कामनाओंकी सिद्धिकेलिये करनेका विधान है। ऐसा शब्द या वाक्य जिसके उच्चारणमें कोई दैवी प्रभाव या शक्ति मानी जाती है। भिन्न भिन्न देवताओंकी पूजनपद्धतिमें भिन्न भिन्न प्रकारके यंत्रोंका विधान तंत्रशास्त्रोंमें कहा गया है। वैजनाथजी 'यंत्र' से 'बीज अंकादि अंकित-पत्र' और 'मंत्र' से 'मरणउच्चाटनादिके मंत्र' का भाव लिखते हैं। स्मरण रहे कि ये मंत्र वैदिक नहीं हैं, वरंच मारणउच्चाटन आदि-केही प्रयोग हैं। कल्मशारी=(कल्मष (पापके)+अरि) पापनाशन। प्रबल कल्मष=महापाप। प्रबल दीपदेहरी है। काल=मृत्यु। यथा 'कालरूप तिन्ह कहँ मैं भ्राता' (उ०), 'मोहि बिलोकु तोर मैं काला' (लं०)। अतिकाल=महाकाल। सृष्टि और प्राणियोंका अंत करनेवाला। व्यालाद=सर्पोंका खानेवाला। खग=पक्षी। अद=भक्षक। भीमकर्मभारी=भीषण, भयानक, भयङ्कर एवं बहुत भारी कर्म करनेवाले। सकल लोकांत=चौदहो भुवन, तीनों लोक। निरुक्तमें तीन लोकोंका उल्लेख मिलता है। पृथ्वी, अंतरिक्ष और द्युलोक। इनका दूसरा नाम भूः, भुवः, स्वः है जो महाव्याहृति कहलाते हैं। इसके साथ महः, जनः, तपः और सत्यम् मिलकर सप्तव्याहृति कहलाते हैं। इनके नामसे सात लोकों भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक और सत्यलोककी कल्पना हुई। पीछे इनके साथ सात पाताल अतल, वितल, सुतल, तलातल, (अग्निपु०, विष्णुपु० में गभस्तिमान्) महातल, रसातल (विष्णुपु० में नितल) और पाताल मिलकर १४ लोक या भुवन माने गये हैं। सुश्रुतमें लोक दो प्रकारका माना गया है। स्थावर और जंगम। प्रायः लोकके साथ 'त्रै' शब्द आता है और भुवनके साथ 'चौदह'। अर्थात् लोक तीन माने जाते हैं और भुवन चौदह। कल्पांत = इससे महाप्रलयकालका अंत सूचित किया है। शूलाग्र=त्रिशूलका अग्रभाग जिसे फल, नोक या

मुन्नी कहते हैं। दिग्गज=दिशाओंके हाथी। पुराणानुसार आठों दिशाओंमें पृथ्वीको दबाये रखने और उन दिशाओंकी रक्षा करनेकेलिये आठ गज स्थापित हैं। १ पूर्वमें ऐरावत, २ पूर्वदक्षिणके कोनेमें पुंडरीक, ३ दक्षिणमें वामन, ४ दक्षिण पश्चिममें कुमुद, ५ पश्चिममें अंजन, ६ पश्चिम उत्तरके कोनेमें पुष्पदंत, ७ उत्तरमें सार्वभौम और ८ उत्तरपूर्वके कोनेमें सुप्रतीक हैं। अव्यक्त गुन = टि० ९ में दिया जायगा। पाप=वह कर्म या आचरण जिसका फल इस लोकमें तथा परलोकमें अशुभ माना जाता है। अकर्तव्य वा निषिद्ध कर्मोंका करना एवं वेद विहित अवश्य कर्तव्यका न करना दोनोंही पाप हैं जिनका फल पतन और दुःख है। पाप मन, वचन और कर्म तीन प्रकारके होते हैं। यथा '**जे पातक उपपातक अहहीं। करम बचन मन भव कवि कहहीं।**' (अ०)। संताप=अत्यंन्त ताप। ये तीन प्रकारके हैं। अधिदैविक, अधिभौतिक, अधिदैहिक। यथा '**दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज नहिं काहुहि ब्यापा॥**' यह पापका फल है। ताप=जलन, दाह, मानसिक व्यथा या दुःख वा कष्ट। घनघोर=भीषण; भयावना; जिसे देख सुनकरही जी दहल जाता है। घन=अत्यन्त; भारी। घोर = भयानक। संसृति=संसार, भवप्रवाह। लगातार एक अवस्थासे दूसरी अवस्थामें जाते रहना अर्थात् बारबार जन्म लेनेकी परंपराका नाम 'संसार' है। भ्रमत (सं० भ्रमणसे) = भटकते, चक्कर लगाते फिरना। मारेमारे फिरना। जोनि (योनि) = आकर; खानि; उत्पत्तिका स्थान, प्राणियोंके विभाग, जाति या वर्ग। दीन = दुःखख वा भयसे अत्यन्त दुखी, संतप्त, कायर और पुरुषार्थहीन, जो किसी साधन या पुरुषार्थ करनेके योग्य न हो, बेचारा। कोपि = (कः + अपि) कोईभी। पाहि = रक्षा कीजिये। जनक = उत्पन्न करनेवाला, पिता। रुद्र = शास्त्रोंमें शिवजीके अनेक नाम लिखे हैं। वे सब गुणकर्मादिके अनुसार निर्दिष्ट किये गये हैं। अत्यन्त प्राचीन कालमें शिवका 'रुद्र' नाम था। प्रलयकारी, भयकरी, महाक्रोधी अथवा संहारक आदि गुणोंको देख-

करही इस नामकी कल्पना की गयी होगी। वैदिककालके देव, दानव, महर्षि या मनुष्य मानते थे कि 'प्रलयकालके अवसरमें जो अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अग्निदाह, प्रज्वलन, तड़ितप्रवाह अथवा वज्रपातादि होते हैं वे सब रुद्रकेही प्रतिरूप या प्रभाव हैं। स्वयं रुद्रही वायु, वन्हि या इंद्रादिके द्वारा प्रलय करते हैं।' (हनुमान्‌शर्माजी) कोई सज्जन ऐसा कहते हैं कि 'ईश्वरका एक नाम रुद्र है क्योंकि वह दीन दुखियोंके दुःखपर आँसू बहाता है। जीवोंको भवपाशमें बांधे देख उसे रोना आता है तथा वह पापियोंको रुलाता है। उक्त शब्दमें 'रुद्' धातु है जिसका अर्थ रोना है। वह मुक्तिका स्वामी है।' वेदोंमें रुद्रसूक्तमें उनकी विभूतियाँ वैसेही गिनायी गयी हैं जैसी गीतामें श्रीकृष्णभगवान्‌ने अपनी। जननी = माता। विधाता = विधानकर्ता, प्रबन्धकर्ता। यस्य = जिसके। गन (गण) समूह। गनति = वर्णन करती है। नारद = ब्रह्माजीके मानस पुत्रोंमेंसे एक पुत्र। इतिहास और पुराणोंमें ये देवर्षि कहे गये हैं जो नाना लोकोंमें विचरते रहते हैं और इस लोकका संवाद उस लोकमें दिया करते हैं। ब्रह्माजीने सृष्टिकी अभिलाषासे पहले मरीचि, अत्रि आदिको उत्पन्न किया। फिर सनकादिक, स्कंद, नारद और रुद्र उत्पन्न हुए। (हरिवंश पु०) विष्णुपुराणमें लिखा है कि ब्रह्माने सब पुत्रोंको प्रजासृष्टि करनेमें लगाया। पर नारदने कुछ बाधा की। इसपर ब्रह्माने इनको शाप दे दिया कि तुम सदा सब लोकोंमें घूमा करोगे, एक स्थानपर स्थिर होकर न रहोगे। श्रीमद्भागवत आदिमें इनकी बड़ी कथाएँ हैं। ये बड़े भारी भक्त प्रसिद्ध हैं। सदा हरियशगान वीणा बजाकर किया करते हैं। ये कलहप्रिय कहे गये हैं। सारदा = सरस्वति। ब्राह्मण ग्रंथोंमें यह वाग्देवी मानी गयी हैं। सबकी जिह्वापर बैठकर यही वचन कहलाती हैं। वाणी और मंगलकी कर्त्री मानकर मानसके प्रारंभमें इनका मंगलाचरण किया गया है। पुराणोंमें ये ब्रह्माकी कन्या और स्त्री दोनोंही कही गयी हैं। इनका वाहन हंस है। महाभारतमें एक स्थानपर इन्हें दक्षकी कन्या लिखा है। वाल्मिकि

युद्धकांड सर्ग ११७ में भगवान्‌के विराटरूपका वर्णन करते हुए ब्रह्माजीने ३२ वे श्लोकमें सरस्वतीको श्रीरामजीकी जिह्वारूप कहा है। यथा 'अहं ते हृदयं राम जिह्वादेवी सरस्वती।' प्रमुख=श्रेष्ठ, प्रधान। ब्रह्मचारी = ब्रह्मचर्य व्रत धारण करनेवाले; स्त्री संसर्गादिसे दूर रहनेवाले, ब्रह्महीमें दिनरात लगे रहनेवाले, ब्रह्मवेत्ता। महाभारत आश्वमेधिक पर्वमें ब्राह्मण ब्राह्मणीके उपाख्यानमें ब्राह्मणने कहा है कि "इन्द्रिय संयममें प्रवृत्त रहनेवाला पुरुष ब्रह्मचारी कहलाता है। जो व्रत और कर्मोंका त्याग करके ब्रह्ममें स्थित है और ब्रह्मस्वरूप होकर संसारमें विचरता रहता है, वही मुख्य ब्रह्मचारी है। ब्रह्मही उसकी समिधा है, ब्रह्महीं अग्नि है, ब्रह्मसेही वह उत्पन्न हुआ है, ब्रह्मही उसका जल और ब्रह्मही उसका गुरु है। उसकी चित्तवृत्तियाँ सदा ब्रह्ममेंही लीन रहती हैं। विद्वानोंने इसीको सूक्ष्म ब्रह्मचर्य बतलाया है। आत्मज्ञानी पुरुष इस ब्रह्मचर्यके स्वरूपको जानकर सदा उसका पालन करते हैं।" सेष = इसके कई अर्थ हो सकते हैं। १ शेषनाग। २ अंतमें जो तत्व बच रहता है वह। स + एष = वह ही। सर्वेश = सबके स्वामी। आनंदबन = काशी। इसी तरह और पुरियोंके नामभी 'बन' पर हैं। प्रनत = प्रणाम करता हुआ, प्रणाम करनेवाला, शरणागत।

पद्यार्थः—देव! आप ढाल, तलवार, त्रिशूल, डमरू, बाण और धनुष धारण किये हैं। नंदीश्वर आपका वाहन है। आप करुणासागर है। सुरलोक, असुरलोक (पाताल) और नरलोक अजय हालाहलसे जलते हुए शोकातुर थे। उसे कोमलचित्तसे आपने पी लिया। ५। देव! भस्म आपके तनका भूषण है, (अर्थात् सारे शरीरमें आप भस्म रमाये रहते हैं) व्याघ्रचर्म वस्त्र है, हृदय वा वक्षस्थलपर आप सर्पों और नरमुंडोंकी मालाएँ धारण किये हैं। डाकिनी, शाकिनी, खेचर, और भूचरोंके (इन उपद्रवकारी दुष्ट जीवों और ग्रहों) जादू टोनेके तोड़नेमें आप प्रबल हैं। आप पापके नाशक हैं। ६।

देव ! आप महाकालकेभी काल* और कलिकालरूपी सर्पोंके भक्षण करनेको गरूड़रूप, त्रिपुरासुरके नाशक और बड़े भयंकर कर्म करनेवाले हैं। कल्पके अंतमें समस्त लोकोंका अंत (नाश) कर त्रिशूलके अग्रभागपर दिग्गजोंके शरीरोंको डोरेकी तरह पोहकर आप तांडवनृत्य करते हैं।७। देव ! पाप संतापसे पूर्ण, अत्यन्त भयावह भवप्रवाहसे दीन होकर जगत्में (८४ लक्ष योनियोंमें) भटकते हुए मेरा कोईभी रक्षक नहीं है। हे भैरवरूप ! रामरूपीरुद्र ! मेरी रक्षा कीजिये। आपही मेरे बंधु, (भाई, सहायक) पिता, माता और विधाता (सभी कुछ) हैं। ८। देव ! निर्मल बुद्धिवाली ‡ सरस्वती, वेद और नारद मुख्य (ब्रह्मवेत्ता) ब्रह्मचारी जिनके गुणगान करते हैं वही आप † सबके स्वामी आनंदवनमें (काशीमें) बिराजमान (मुझ) शरणागत तुलसीदासके त्रासके हरनेवाले हैं। ९।

नोटः—यहाँ छः आयुध (चर्म, असि, शूल, डमरू, सायक और चाप) धारण किये हुए कहकर षट्भुजमूर्तिका ध्यान सूचित किया है।

---

* यह अर्थ हमने 'करालं महाकाल कालं कृपालं' (उ०) के प्रमाणसे किया है। अर्थांतर ये हैं। १ 'कालकेभी महाकाल' (डु०)। २ कालमें अति कराल काल जो कलिकाल है वही सर्प है (वै०)।

‡ 'बिमल मति' नारदकाभी विशेषण है। यथा '**सुमिरत हरिहि आप गति बाधी। सहज बिमल मन लागि समाधी।**' (बा०) इसे सबका विशेषण मानना चाहिये।

† 'शेष' पाठ शुद्ध मानें तो दो प्रकारसे अर्थ कर सकते हैं। (१) ब्रह्मचारी और शेषजी जिनका गुण गाते हैं। यदि इसमें यह आपत्ति मानें कि 'प्रमुख' पदसे पूर्वही गान करनेवालोंकी इति हो गयी तब दूसरा अर्थ यों कर लें कि (२) आपहीं शेष और सर्वेश हैं। महाकल्पांतके अंतमें जो तत्त्व बच रहता है वह आपही हैं और सबके आदिकरण हैं। ३ तीसरा अर्थ ऊपर दिया गयाही है।

टिप्पणीः—६ (क) 'चर्म असि शूल सायक चाप' से सदा भक्तोंके कष्ट दूर करनेको अर्थात् शरणागतरक्षकत्वकेलिये सदा तैयार और तत्पर दिखाया। 'करुणानिधान' कहकर भक्त आरतिहरणका कारण बताया और 'जरत सुर असुर नरलोक सोकाकुलं कृत गरल पानं' यह करुणानिधान, आर्तिहरण आदिका उदाहरण दिया। (ख) श्रीवैजनाथजीका मत है कि 'चर्म असि' आदि धारण करनेसे कठोर जान पड़ते, अतः कहा कि करुणानिधान हैं। (ग) 'मृदुलचित' इति। शोकातुरपर दया करना यह मृदुल चित्तका लक्षण है। यथा, 'नारद देखा बिकल जयंता। लागि दया कोमलचित संता।' (आ०) अतः शोकाकुल कहकर मृदुलचित्त कहा। बादमें कहा विषपान। यथा, 'पान कियो विष भूषन भो करुनाबरुनालय साँइ हियो है'। (घ) 'सुर असुर नर लोक सोकाकुलं' इति। श्रीमद्भागवतमें जो 'सदेवासुरमानुषं' है उसीका भाव यहाँ 'सुर असुर नर लोक' में है। श्रीरामचरितमानसमें 'जरत सकल सुरबृंद' स्पष्ट न कहा। वहाँके 'सकल' पदमें इन सबका ग्रहण है।

७ 'भस्म तन भूषनं' इति। 'शिवजीका स्वरूप त्यागकी मूर्ति हैं। वे चिताभस्म रमाते हैं। संसारमोहकी भस्म, द्वैतकी भस्मही यह चिताभस्म हैं। वे मुंडमाल धारण करते हैं। वास्तवमें यह संसारसे मोह त्यागनेका सूचक है। वे सर्पोंकी कोपीन लगाते हैं। यह उनके विश्वप्रेरत्वका सूचक है। यह सब त्यागकी झाँकी है। वस्तुतः वे सब सांसारिक कर्मोंसे दूर हैं। इस स्वरूपसे यह शिक्षा मिलती है कि मनुष्य जब अपने शरीरमें अनासक्तिकी भस्म रमा लें और संसारका वास्तवमें त्याग कर दे तभी उसे भगवान्का साक्षात्कार हो सकता है।'

इस वेषके धारण करनेका दूसरा कारण श्रीकाकभुशुंडजीने मानसमें कहा है। 'जेहि सुख लागि पुरारि असुभ वेष कृत सिव सुखद।' असुरविमोहनार्थ भगवदाज्ञासे ऐसा रूप बनाये रहते हैं। इसीलिये भगवान् आपके इस वेषको देखकर प्रसन्न होते हैं कि इन्होंने हमारी आज्ञाको पूर्णरूपसे पालन किया है। इससे आप सदा इसी

वेषमें रहते हैं। श्रीरामावतार और श्रीकृष्णावतारमें आप इसी वेषमें जाकर बालक राम और बालक कृष्णके दर्शनकर कृतकृत्य होते देखे सुने जाते हैं।

तीसरा कारण हमें भा० ४।६।३६,३७ में मिलता है। वह यह है कि भस्म, दण्ड, जटा और अजिन धारण करना तपस्वियोंके अभीष्ट चिन्ह हैं। शिवजी ज्ञानी, तपस्वी और योगीश्वर हैं।

यहाँ 'भस्म तन भूषनं' से दिखाया है कि सर्वशक्तिमान्, करुणा-निधान और मृदुलचित्त होते हुएभी आप परम विरक्त, निर्लेप और उदासीन रहते हैं। यह वेष अमंगल सूचक है; अतः इसके निवारणार्थ कहते हैं कि आप दुष्ट अमांगलिक जीवोंके भयसे रक्षा करनेवाले हैं। आपके स्मरणमात्रसे ये बाधाएँ दूर हो जाती हैं।

शरीरमें विभूति रमाये होनेके वैज्ञानिक, यौगिक आदि अभिप्राय-महामहोपाध्याय पं० श्रीगिरिधरजी शर्मा चतुर्वेदीजी लिखते हैं कि, 'सात लोकोंमें स्वयम्भूसे पृथ्वीतक पाँच मंडल बताये गये हैं। उनमेंसे सूर्यमंड-लमें सब वर्ण हैं। आगे परमेष्ठिमंडल कृष्ण है। इसके आगे स्वयंभूमंडल प्रकाशमय श्वेतवर्ण है और आग्नेय मण्डल होनेके कारण वह (विश्वमण्डल) वा 'रुद्रमण्डल' भी कहलाता है। वही मण्डल सर्वव्यापक होनेके-कारण ईश्वरका रूप कहा जा सकता है। उसके प्रकाशमय श्वेतवर्ण होनेके कारण शिवमूर्तिका श्वेतवर्ण युक्तियुक्त है। 'शङ्कर भगवान् सर्वांगमें विभूतिसे अनुलिप्त रहते हैं। इसकाभी यही कारण है। उक्त पाँचों मण्डलोंके प्राण सारे पार्थिव पदार्थोंमें व्याप्त हैं। उनमेंसे सौर जगत्‌में सूर्यप्राण उद्भूत (सबसे ऊपर, प्रकाशित) रहते हैं और आगेके अमृतमंडलोंके (परमेष्ठी और स्वयम्भू) प्राण आच्छन्न (ढके हुए, गुप्त) रहते हैं। सूर्यकिरणोंके कारणही भिन्न भिन्न पदार्थोंमें भिन्न भिन्न रूप दीख पड़ते हैं यह वैज्ञानिकोंका सुप्रसिद्ध सिद्धान्त है। सूर्यकी किरणोंमें सब रूप हैं। हर एक पदार्थ अपनी विशेष शक्तिसे अन्य रूपोंको निगल जाता है और एक रूपको उगल देता है। जिसे उगलता है वही हमें उसका रूप प्रतीत होता है।

यह आधुनिक वैज्ञानिकोंका कथन है। जब इन पदार्थोंमें अग्नि लगायी जाती है तो अग्निका स्वभाव है कि घनीभूत पदार्थोंका विश्कलन करे, उन्हें तोड़े। यों अग्निद्वारा पृथक् किया जाकर सौरप्राणोंका ऊपरी स्तर जब निकल जाता है, तब भीतरका छिपा हुआ परमेष्ठिमण्डलके प्राणका समनुगत कृष्णरूप काले कोयलेके रूपमें निकल आता है। किसीभी पदार्थको जलानेपर वह कालाही होगा यह प्रत्यक्ष है। यह पदार्थोंमें दूसरा स्तर है। जब इसपरभी फिर अग्निका प्रयोग किया जाय और अग्निद्वारा विश्कलित होकर दूसरा स्तरभी निकल जाय तब तीसरा अन्तर्निगूढ़ स्वयम्भू प्राणोंका स्तर प्रगट होता है और वह स्वयंम्भू प्राणके समनुगत श्वेतरूपका देखा जाता है। किसीभी रंगके पदार्थको जलाइये, अंतमें प्रकाशमान् श्वेत भस्मही शेष रहता है। यह मौलिक तत्त्व है। इसे अग्नि नहीं उड़ा सकता। भगवान् शंकर इसी मौलिक तत्त्व भस्मसे सदा उद्धूलित रहते हैं। इसी मौलिक तत्त्वसे वे सृष्टिकी रचना करते हैं। यह शिवपुराणकी सृष्टिप्रक्रियामें स्पष्ट है। स्वयं भूमण्डलके अधिष्ठाता श्वेतमूर्ति शिवका जगद्व्याप्त स्वयम्भू प्राणरूप भस्मसे उद्धूलित रहना सर्वथा स्वारसिक है इसमें सन्देह नहीं।'

यौगिक अभिप्राय:—श्रीवासुदेवशरणजी अग्रवाल एम० ए०, एल्०एल्० बी० अपने 'शिवका स्वरूप' शीर्षक लेखमें लिखते हैं कि शिवको भृगुपतिभी कहा जाता है। जलतत्त्व या रेतको षट्चक्रोंकी अग्निमें खूब भूनकर भस्म कर देनेके कारण शिवजी 'भृगु' कहलाते हैं। जलोंको भस्म करनेकेलिये इस शरीरको यदि भाड़ मान लें तो योगी उसका भड़भूँजा है। वह जलोंकी भस्म बनाकर उसको अपने शरीरपर लगाता है। यही उसके ब्रह्मचर्यका तेज है। ब्रह्मचारीके शरीरपर जो स्वाभाविक तेज या कांति रहती है वह वीर्यकी भस्मही है। उसके शरीरमें तपकेद्वारा रेतका परिपाक होता है और वह भस्मरूपमें परिणत हो जाता है। मेघभी जलकी भस्म है। 'अपभ्रं वा अपां भस्म' (शतपथ ७।५।२।४८) अग्निके संयोगसे तप्त होकर जल आकाशगामी होता है। इसीलिये तपके द्वारा मनुष्य उर्ध्वरेत बनता है। बाहर ब्रह्मांडमें

सूर्यके तापसे जैसे मेघ बनते हैं वैसेही शरीरके भीतर तपकी अग्निकेद्वारा रसोंके परिपाकसे रेतकी भस्म बनती है। वही शरीरकी त्वचाके ऊपर तेज और कांतिके रूपमें प्रकट होती है। ब्रह्मचारीकेलिये इस प्रकारकी भस्म परम विभूति है। यह भस्मही उसके मंडनकेलिये शेष अंगराग है। इस भस्मसे भूषित होनेके कारणही बटरूपधारी शिवको कालिदासने 'ज्वलन्निव ब्रह्ममयेन तेजसा' लिखा है।

प्रो० पं० श्रीसकलनारायण शर्माजी लिखते हैं कि 'प्रलयकालमें रूद्रके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं रहता। ब्रह्मांड स्मशान हो जाता है। उसकी भस्म और रुण्डमुंडमें वही व्यापक होता है। अतएव 'चिताभस्मालेपी' और 'रुण्डमुण्डधारी' कहलाता है, न कि वह अघोरियोंके समान चितानिवासी कहा जाता है। यथा, कल्पान्तकाले प्रलुठत्कपाले समग्रलोके विपुलश्मशाने। त्वमेकदेवोसि तदावशिष्टश्चित्ताश्रयो भूतिधरः कपाली॥' (शं० सि० सा०)

८ (क) 'खेचरं भूचरं भंजन प्रबल' इति। इससे लोकरक्षणत्व गुण दिखाया। 'प्रबल' कहकर जनाया कि आप सब बाधाएँ सहजहींमें नाश कर देते हैं। (ख) 'कलिकाल व्यालाद खग' इति। कलिको सर्प कहनेका भाव कि सर्प जीवोंको डसता है। कलिकाल काम, क्रोध, लोभ, मोह, दंभ और कपट आदिका निवासस्थानही है। यथा, 'कलि केवल मलमूल मलीना। पाप पयोनिधि जन मन मीना॥', 'यहु कलिकाल मलायतन।' संसार सर्पसंदष्ट जीवको बारंबार जन्मना मरना पड़ता हैं। यही कलिरूपी सर्पका डसना है। (ग) 'भीम कर्म भारी' कहकर अगले चरणमें भयंकर भारी कर्म दिखाया है कि 'सकल लोकांत कल्पांत सूलाग्रकृत दिग्गज'। त्रिपुरमर्दनभी भारी कर्म था। (घ) 'काल अतिकाल कलिकाल व्यालाद खग' में 'व्याल' दीप देहलीन्यायसे दोनों ओर अन्वयमें लिया जायगा। यहाँ परंपरितके ढंगका 'सम अभेदरूपक' अलंकार है।

९ 'दिग्गजाव्यक्तगुन नृत्यकारी' इति। इसका अर्थ जो बाबू शिवप्रकाशजीने किया है वही सभी टीकाकारोंने लिखा है। 'अव्यक्तगुन'=

जिसका प्रगट गुण नहीं है। (डु०, टी०)। ‘ अगुणरूपसे ’ (वै०, दी०) ‘ निर्गुणरूप धारण कर ’ (भ०) निर्गुणरूपसे’ (वीर) ‘ अव्यक्त अर्थात् अप्रकट अगोचर रूपसे ’ (वि०) ये सब अर्थ आधुनिक टीकाकारोंके हुए। हिंदी शब्दसागरमें ‘ अव्यक्त ’ शब्दके ये अर्थ मिलते हैं:—१ जो स्पष्ट न हो, अप्रत्यक्ष, अगोचर। यथा ‘ कोउ ब्रह्म निर्गुण धाव। अव्यक्त जेहि श्रुति गाव। ’ इसके अनुसार ‘ निर्गुण ’ अर्थ होगा। २ अज्ञात, अनिर्वचनीय। ये तो विशेषणके अर्थ हुए। पुल्लिंग संज्ञा होनेपर ‘अव्यक्त’ के ये अर्थ होते हैं:— १ शिव, २ प्रधान, ३ प्रकृति। ३ वेदान्त-शास्त्रानुसार ‘ अज्ञान ’। ४ सूक्ष्मशरीर और सुषुप्ति अवस्था। पं० रामकुमारजीके खर्रेमें अव्यक्तका अर्थ और गुणका अर्थ डोरा, धागा, वा तागा लिखा है। अव्यक्तगुण अर्थात् डोरेकी नाईं शरीरको पोह या पिरोकर। ‘ निर्गुण रूपमें ’ नृत्य करना कैसा ? यह तो स्पष्ट विरोध जान पड़ता है।

१० ‘ भ्रमत जग जोनि नहिं कोपि त्राता ’ इति। पुराणानुसार योनियोंकी संख्या चौरासी लाख है। इनकी चार खानि हैं। अंडज, स्वेदज, उद्भिज और जरायुज। जीवको अपने कर्मोंका फल भोगनेकेलिये इन सब योनियोंमें भ्रमण करना पड़ता है। इनके नाम और संख्या इस प्रकार है। ‘ स्थावरं विंशतेर्लक्षं जलजं नव लक्षकं। कृमिश्च रुद्रलक्षञ्च दशलक्षञ्च पक्षिणः। त्रिंशलक्षं पशूनांच चतुर्लक्षंच वानराः। ततो मनुष्यतांप्राप्य ततः कर्माणि साधयेत्। ’ स्थावर २०, जलतंतु ९, कृमि ११, पक्षी १०, पशु ३० और वानर ४ लक्ष, इसप्रकार कुल ८४ लक्ष योनियोंका विभाग है। मनुष्ययोनि ८४ के बाहर है। कर्मानुसार इन योनियोंके संपूर्ण अथवा कुछ भोगनेपर मनुष्ययोनि प्रभुकी करुणासे प्राप्त होती है। मनुष्य शरीरसे जीव साधन करके भवपार हो जाय, तब ८४ में न भ्रमना पड़े यथा, ‘ आकर चारि लाख चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अविनासी॥ फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल करम सुभाउ गुन घेरा॥ कबहूँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥ ’

नरतन भव बारिधि कहँ बेरो। सनमुख मरुत अनुग्रह मेरो ॥ साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जो परलोक सँवारा ॥ सो परत्र दुख पावई सिर धुनि धुनि पछिताइ।' (उ०)। श० सा० में वानरकी जगह मनुष्यकी ४ लक्ष योनियाँ गिनायी हैं। पर यह ठीक नहीं है। मनुष्य चार आकारमें हैं। पर ८४ लक्ष योनियोंमें इनकी गिनती नहीं है।

११ 'भैरवरूप रामरूपी रुद्र' इति। भिन्न भिन्न दृष्टिकोणसे इसके भाव ये होते हैं कि (१) भैरवरूप रुद्र आप गौणरूप हैं। 'रामरूपी रुद्र' अर्थात् श्रीरामजी आपके रूपी हैं। जीव और ब्रह्ममें अनेक नाते हैं। जैसे कि अंश अंशी, शरीर शरीरी, भोग भोक्ता, शेष शेषी, सेवक स्वामी इत्यादि। वैसेही रूप रूपी एक नाता है। यही भाव वैजनाथ-जीनेभी दिया है। (२) भैरव और रुद्र (भयंकर) रूप आपका गौण रूप है। वस्तुतः आप रामही हैं जो भक्तभयहरण और दुष्ट संहारार्थ इस रूपको धारण किये हैं। दीनजीने यही अर्थ किया है।

यहां जो विशेषण दिये गये हैं वे सब श्रीरामजीके विशेषण हैं। इसे पाठक मिलान करके देख सकते हैं। वस्तुतः परब्रह्म दो नहीं हो सकते। वह तो एकही है। श्रीशिवजीको श्रीमद्भागवतमें '**वैष्णवानां यथा शंभुः**' कहा है एवं गीतामें '**रुद्राणां शंकरश्चास्मि**' कहा है। मानस और विनय आदि ग्रन्थोंमें भगवान् शंकरको रघुनाथजीका उपासक कहा गया है और इनसे श्रीरामभक्तिकीही याचना की गयी है, न कि शिवभक्तिकी। अतएव गोस्वामीजीके सिद्धान्तानुसार 'शिवजीकी वन्दना परब्रह्म मानकर की गयी है' यह कदापि नहीं कहा जा सकता। शिवजी ब्रह्मवेत्ताओंमें सबसे बड़े हैं। सबसे बढ़कर हैं और '**ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति।**' इस श्रुतिके अनुसार अथवा '**जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि**' वा '**निज प्रभुमय देखहिं जगत।**' वा '**भक्ति भक्त भगवंत गुरु चतुर नाम बपु एक**' के भावको लेकर जगत्वंद्य भगवान् शंकरकी यह विनय ब्रह्मके विशेषणोंद्वारा की गयी है यही मानना पड़ेगा। (३) एकही परमात्मा जगत्‌की सृष्टि करते हुए ब्रह्मा,

पालन करते हुए विष्णु और संहार करते हुए महारुद्र कहलाते हैं। उत्पत्ति, पालन और संहार यह सब श्रीरामजीही करते हैं। यथा, '**उत्पत्ति पालन प्रलय समीहा**' (लं०) ब्रह्मा, विष्णु, और शिव उन्हींके रूप है।

प्रमाणमें पद्मपुराण पातालखंड २८।६।८ में भगवान् शंकरजीके (श्रीरामजीके प्रति) वचन यहाँ उद्धृत किये जाते हैं। '**सकस्त्वं पुरुषः साक्षात्प्रकृतेः पर ईर्यसे। यः स्वांशकलया विश्वं सृजत्यवति हन्ति च।६। अरूपस्त्वमशेषस्य जगतः कारणं परम्। एक एव त्रिधारूपं गृह्णासि कुहकान्वितः।७। सृष्टौ विधातृरूपस्त्वं पालने स्वप्रभामयः। प्रलये जगतः साक्षादहं शर्वाख्यतां गतः।८।** आप प्रकृतिसे अतीत (परे) साक्षात् अद्वितीय पुरुष कहे जाते हैं। जो आपकी अंशकलाकेद्वारा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्ररूपसे विश्वकी उत्पत्ति, पालन एवं संहार करते हैं। आप अरूप होते हुएभी अखिल विश्वके परम कारण हैं। आप एक होते हुएभी त्रिविधरूप धारण करते हैं। संसारकी सृष्टिके समय आप ब्रह्मारूपसे प्रकट होते हैं। पालनके समय स्वप्रभामय विष्णुरूपसे व्यक्त होते हैं और प्रलयके समय मुझ शिव (रुद्र) का रूप धारण कर लेते हैं। अतएव इस भावसे 'रामरूपी रुद्र' यथार्थ और युक्तियुक्तही है। कैवल्योपनिषद्भी '**स ब्रह्माः स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट्। स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्निः स चन्द्रमाः**' इस प्रकार शिव, विष्णु आदिका अभेदही प्रतिपादन करते है। गीतामें भगवान्ने '**रुद्राणां शंकरश्चास्मि**' कहा है। अतएव 'रामरूपी रुद्र' ठीकही है। जिन विशेषणोंसे श्रीमन्नारायण और विष्णु भगवान्की वंदना की जाती है, उन्हीं विशेषणोंसे शिवस्तुतिभी हुई है। इसमें शंकाकी जगहही कहाँ है? यह तो स्मृतियोंका मत हुआ। श्रुतियोंसेभी यही सिद्धांत निश्चित होता है। राम ता० उ० भाष्यकार श्रीहरिदासाचार्यजीके भाष्यकी कुछ शंकाओंका संक्षिप्त अनुवाद यहां दिया जाता है। वे लिखते हैं कि ब्रह्मका सामान्य लक्षण श्रुतियोंमें इस प्रकार बतलाया है। 'इतो

वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवंति यत्प्रयंत्यभिसंविशंति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्म । ' (तै० ३।१।१) यह सारा संसार जिससे प्रकट होकर पालित होता है और अंतमें जिसके उदरमें समाकर लीन हो जाता है तथा बद्ध जीव ज्ञान और उपासनाकेद्वारा जिसको प्राप्त करके मुक्त हो जाता है, वही ब्रह्म है। यही लक्षण ' जन्माद्यस्ययतः । ' (ब्रह्मसूत्र १।१।२) में भगवान् व्यासने सूत्रित किया है। उपरोक्त श्रुति और सूत्रमें कहे हुए लक्षण भगवान्के समस्त विग्रहोंके महत्त्वको वर्णन करनेवाले तदुपनिषदोंमें नारायण, नृसिंह, कृष्ण, शिव और रुद्र आदि सबकेलिये कहे गये हैं। परन्तु इन सब रूपोंका प्रधान कारण (मुख्य तत्त्व, अवतारी वा रूपी) कौन है यह वहां वहां नहीं कहा गया है। इसलिये समस्त भगवद्विग्रहोंमें सर्वावतारित्वकी अतिव्याप्ति होती है। इसका निर्णय रामतापिनीयोपनिषत् निम्न श्रुतियोंसे करती है। ' रमंते योगिनोऽनन्ते सत्यानंदे चिदात्मनि। इति रामपदेनासौ परंब्रह्माभिधीयते॥ ' 'स्वभूर्ज्योतिर्मयोऽनंतरूपी स्वेनैव भासते।' ' रेफ़ारूढा मूर्त्तयः स्युः।' ' यथैव वटबीजस्थं प्राकृतश्च महद्रुमः । तथैव रामबीजस्थं जगदेतच्चराचरम् ॥ ' ' सर्व वाच्यस्य वाचकः । ' ' परंब्रह्म रामचन्द्रश्चिदात्मकः ' ' सीतारामौ तन्मयावत्र पूज्यौ जातान्याभ्यां भुवनानि द्विसप्तस्थितानि च प्रहृतान्येव तेषु ततो रामो मानवो माययाधात् । ' ' ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रस्स भगवानद्वैतपरमानन्दात्मा । यः सर्वभूतान्तरात्मा यत्परंब्रह्म भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमो नमः।' 'चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्कलस्याशरीरिणः। उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना ॥ ' इनसे यह निश्चय किया है कि जो राम शब्दसे वाच्य हैं वही चिन्मय, अद्वितीय, निष्कल, अशरीरी और उपासकोंकेलिये शक्तिसेनायुक्त, अनेक अवतारोंके अवतारी है। (विशेष जिसको देखना हो वह श्रीहरिदासाचार्यकृत भाष्य देखें।) यहाँ केवल इतना कहना काफ़ी होगा कि निर्णायक श्रुतियाँ ' सर्ववाच्यस्य वाचकः ' ' ब्रह्मणो रूपकल्पना , ' चिन्मयस्याद्वितीयस्य ' इत्यादि अन्य किसी उपनिषत्में नहीं हैं। साथही गोपाल-

तापिनीयोपनिषत्, महोपनिषत् और नारायणोपनिषत्से यह भी निश्चित है कि नारायणसे रुद्रकी उत्पत्ति हुई है। '**ॐ अथ पुरुषो हवै नारायणोऽकामयत प्रजा सृजेयेति नारायणात् प्राणो जायते नारायणादेकादशरुद्रादयः समुत्पद्यन्ते नारायणे प्रलीयन्ते।**' (नारायणोपनिषत्) श्वेताश्वतरमें जो शिवका सर्वोत्कृष्टत्व कहा गया है उसमें 'हवै' निपात न होनेसे नारायणात्मक शिवको भगवान् कहा जा सकता है। दूसरे, यजुः ३२। ३ में कहा है कि '**स कारणं करणाधिपाधियो न चास्य कश्चिज्जनिता नचाधिपः। न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते न तस्य प्रतिमास्ति यस्य नाम महद्यशः॥**' 'वही (नारायण) सबके कारण हैं। इन्द्रियोंके स्वामियोंकेभी स्वामी है। उनका न तो कोई उत्पन्न करनेवाला (कारण) है और न तो कोई स्वामीही है। उनके समान या अधिक कोई नहीं है। जिसके नामका महान् यश है उसके समान कोई नहीं है।'

इन श्रुतियोंसे स्पष्ट है कि नारायणके उत्पन्नकर्ता और स्वामी शिवादि नहीं हैं और शिवकी उत्पत्ति श्रुतियोंने नारायणसे बतलायी है। अतः जहां कहीं शिवजीका परत्व वर्णित है वह कैलास वा काशीपति शिवपरक नहीं हो सकता। क्योंकि शिव नारायणके कारण नहीं हैं। शिवजीकेलिये कहींभी 'समाधिक' का निषेध नहीं किया गया है।

किसीभी उपनिषत्में शिव रुद्रादिसे वाच्यका जगत्कारणत्व सुना जानेपरभी उनका अवतारित्व किसी श्रुतिमें कथित नहीं है। अन्यत्र '**रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे**' (राम ता०), '**श्रीरामस्यमनुं काश्यां जजाप वृषभध्वजः। मन्वन्तर सहस्रैस्तु जपहोमार्चनादिभिः। ततः प्रसन्नो भगवान् श्रीरामः प्राह शंकरम्। वृणीष्व यदभीष्टं तद्दास्यामि परमेश्वर क्षेत्रेऽस्मिन्योऽर्चयेद्भक्त्या मंत्रेणानेन मां शिव।**' (रा० ता० ३०)। वाक्योंमें शिव, शङ्कर, रुद्र, वृषभध्वज और परमेश्वर आदि शब्दोंसे कहे जानेवाले काशीपति विश्वनाथका तो श्रीराममंत्रजापक, श्रीरामाराधक और श्रीराममंत्रोपदेशक होना पाया जाता है। अतः शिवजीका रामभक्त सिद्ध होनेसे एवं श्रुति और

स्मृतिमें श्रुतिके बलवान् होनेसे शिवजीका कारणत्व नहीं सिद्ध हो सकता। पुराणोंमें जो श्रीरामका शिवाराधक होना पाया जाता है वह वेदविरुद्ध होनेसे अयुक्त है। हां! पुराणोंकी अनुकूलताकेलिये यह मान लिया जा सकता है कि श्रीरामजी परात्पर ब्रह्म होते हुएभी इस मर्त्य-लोकमें, जब परमधार्मिक रघुकुलमें मनुष्यरूपसे अवतीर्ण हुए तब मनुष्योंको शिक्षा देनेके निमित्त शिव, विष्णु, शक्ति, सूर्य और गणेशादि पंचदेवोंकी उपासना लोकसे लुप्त न हो जाय इस अभिप्रायसे लोकशिक्षार्थ शिवाराधन किया होगा। परन्तु शिवजीकेलिये यह नहीं कहा जा सकता कि उन्होंनेभी लोकशिक्षाकेलिये रामोपासना की होगी। क्यों कि शिवका अपने कैलास वा काशीपतिरूपमें रहकर श्रीरामोपासक होना श्रुतियोंमें पाया जाता है। अतः शिवजीका मूलकारणत्व एवं सर्वावतारित्व नहीं घट सकता। इस उपर्युक्त उद्धरणके अनुसार यह वंदना रामात्मक—शिवरूपकीही वंदना मानी जायगी। (४) लाला भगवान्दीनजी लिखते हैं कि 'भैरवरूप रामरूपी रुद्र' में तात्पर्य केवल इतनाही है कि भैरवरूपसे मेरा संसारभय दूर कीजिये और रामरूपसे मुझे शरण दीजिये।

दुःख और उसके समस्त कारणोंके नाश करनेसे तथा संहारादि कार्योंमें क्रूररूप धारण करनेसेभी 'रुद्र' नाम है। इसीसे 'पाप संताप घनघोर संसृति' से रक्षा करनेमें 'रुद्र' संबोधन दिया। आपका स्वरूप ऋषियोंको प्राप्त हो सकता है। सामान्य भक्तोंको आपका तात्त्विकरूप प्राप्त नहीं हो सकता। इस विचारसे आपको 'रामरूपी रुद्र' कहा। दीन दुखियोंके दुःखपर आँसू बहानेवाले और पापीयोंको रुलानेवाले होनेसे 'पाहि' के साथ रुद्र नाम दिया जो रुद् धातुसे बना है।

किंवदन्ती है कि गोस्वामीजीने सब क्षेत्रपालोंकी वंदना की, भैरवकी नहीं की। अतः भैरवजी इनसे रुष्ट रहते थे। बाहुपीड़ा होनेपर शिवजीने कहा कि वह काशीका कोतवाल है। उसकीभी वंदना कर दो, क्या हर्ज है। पर अपने न माना। इस पदमें शिवजीहीकी वंदना भैरवरूपसे कर दी है।

कालिका पुराणानुसार शिवजीके वीर्यकी दो बूँदोंसे महाकाल और भृंगी हुए जो भवानीके शापसे वैताळ और भैरव हुए।

१२ "बंधु गुर जनक जननी विधाता" इति। सदा सब संकटोंमें शिवजी सहायक हुए। टुकड़ोंको ललाते हुए दीन दशामें, रामनामके प्रचारमें, राममंत्र दिलाने और रामचरितमानस कथा पढ़नेमें, काशीवास कराने तथा दीन दशामें सहायता करनेमें बंधु हुए। 'होहिं कुठाँय सुबंधु सहाये।' 'मूल गोसाईं चरित' से स्पष्ट है कि शिवजी बालपनमें गोस्वामिजीका माता-पितारूपसे पालन पोषण करते रहे। फिर स्वामी श्रीनरहर्यानन्दजीको स्वप्न देकर इन्हें उनके सुपूर्द कर दिया। अन्यत्रभी ऐसाही कहा है। यथा 'मेरे माय बाप गुर संकर भवानियै।' (क०) 'गुरु पितु मातु महेस भवानी। प्रनवऊं दीनबंधु दिन दानी॥' (बा) उपदेश करनेमें गुरु हैं। यथा 'सीतापति साहब सहाय हनुमान नित हित उपदेस महेस मानौं गुर कै।' (बाहुक)। मातुपितासम हितकर्ता हैं। यथा 'हित परलोक लोक पितु माता।'

'गुर' इति। गु (अज्ञान) + रु (निवारण करनेवाला) गुरुके कर्त्तव्यकी दृष्टिसे अज्ञानका निवारणही प्रथम कार्य है। श्रीशिवजी आदि गुरु हैं, जगद्‌गुरु हैं। कल्पारंभमें दक्षिणमूर्तिरूपसे वही प्रथम गुरु होते हैं। श्रीहरिभक्तशिरोमणि श्रीनारदादि ब्रह्मर्षिरत्नोंकोभी वही ज्ञानोपदेश देते हैं। श्रीमैत्रेयजीने भा० स्कंध ४ में यही कहा है। भा० १०। ८८ वृकासुरोपाख्यानमें श्रीमन्नारायणने 'देव, महादेव, ईश, विश्वेश और जगद्‌गुरु' इन पाँच शब्दोंसे शिवजीका संबोधन और वर्णन दिया है।

गोस्वामीजीकेही नहीं वरंच जगत्मात्रके आप 'गुरु माता पिता विधाता' इत्यादि हैं। यथा 'तुम्ह त्रिभुवन गुरु बेद बखाना,' 'जगतमातु पितु संभु भवानी,' 'भाविहु मेटि सकहिं त्रिपुरारी,' 'जिन्हके भाल लिखी लिपि मेरी सुखकी नहीं निशानी। तिन्ह रोकन्ह कहुँ नाक सँवरत हौं आयो नकबानी।' इस तरह शिवजी विधाता

अर्थात् विधान एवं प्रबंधकर्त्ता हुए। 'देखि न सकहीं दीन कर जोरे' इत्यादि दीनबंधुता है। यहां तृतीय तुल्ययोगिता अलंकार है।

नोटः-१ 'जगद्गुरू'-पं. भवानीशंकरजी लिखते हैं कि "मनुष्य आध्यात्मिक जीवनमें ऊँचीसे ऊँची जितनी उन्नति कर सकता है, श्रीमहादेवजी उसके आदर्शस्वरूप हैं। उन्हींको लक्ष्यमें रखकर साधकको उन्नतिके पथमें अग्रसर होना चाहिये। इसी कारण श्रीशिवजी जगद्गुरु हैं। तात्पर्य यह है कि उनमें यज्ञ, तपस्या, योग, भक्ति और ज्ञान आदिकी पराकाष्ठा पायी जाती है। वह इनके आदर्श और उपदेष्टा हैं। शिवका तीसरा नेत्र दिव्य ज्ञान चक्षु है जो विना श्रीजगद्गुरु शिवकी सहायताके खुल नहीं सकता।"

२ 'गुरु'-कुंजलोपाख्यानान्तर्गत भगवान विष्णु और बेन राजाके संवाद जो पद्मपुराण भूमिखंड ८५ में आया है, उसमें भगवान्ने बेनजीसे गुरु तीर्थकी महिमा इस प्रकार बतायी है कि 'गुरुके अनुग्रहसे शिष्यको लौकिक आचार व्यवहारका ज्ञान होता है, विज्ञानकी प्राप्ति होती है और वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है। जैसे सूर्य संपूर्ण लोकोंको प्रकाशित करते हैं, उसी प्रकार गुरु शिष्योंको उत्तम बुद्धि देकर उनके अन्तर्जगत्को प्रकाशपूर्ण बनाते हैं। 'सर्वेषामेव लोकानां यथा सूर्य प्रकाशकः।' गुरुः प्रकाशकस्तद्वच्छिष्याणां बुद्धिदानतः॥ ८५।८।' सूर्य दिनमें प्रकाश करते हैं, चन्द्रमा रात्रिमें प्रकाशित होते हैं और दीपक केवल घरके भीतर उजाला करते हैं। परन्तु गुरु अपने शिष्यके हृदयमें सदाही प्रकाश फैलाते रहते हैं। वे शिष्यके अज्ञानमय अंधकारका नाश करते हैं। अतः शिष्यकेलिये गुरुही सबसे उत्तम तीर्थ है।

१२ [८]

सदा[१] संकरं संप्रदं सज्जनानंददं सैलकन्यावरं परमरम्यं।
काम मद मोचनं तामरस लोचनं बामदेवं भजे भावगम्यं।१।

१-६९ में पदभरमें 'देव' शब्द आदिमें है। प्र० और ज० में केवल ।१। और ।४। के प्रारम्भमें 'देव' शब्द है। औरोंमें 'देव' नहीं है। मु०, ७४, वै०, वि० में 'सदा' शब्द नहीं है। भ० में 'सदा' के बदलेमें 'देव' है।

कंबु कुंदेंदु कर्पूर गौरं शिवं सुंदरं सच्चिदानंदकंदं।
सिद्ध सनकादि जोगींद्र[2] बृंदारका बिष्नुबिधिवंद्य चरणारविंदं।२।
ब्रह्मकुलवल्लभं सुलभमतिदुर्लभं बिकट बेषं बिभुं बेदपारं।
नौमि करुनाकरं गरल गंगाधरं निर्गुणं[3] निर्मलं निर्विकारं।३।

शब्दार्थ—सदा = निरन्तर, सर्वदा, अर्थात् जभी याचक आ जाय तभी। संकरं = (शं + करं) कल्याणके देनेवाले। संप्रदं = (सं + प्रदं) सम्यक् प्रकार, भली भाँति एवं सब कुछ दे देनेवाले उदार दाता। शं = कल्याण, मंगल, सुख, शान्ति। 'सं' = इस अव्ययका व्यवहार शोभा, समानता, संगति, उत्कृष्टता, निरंतरता, औचित्य आदि सूचित करनेकेलिये शब्दके आरम्भमें होता है। जैसे संभोग, संयोग, संताप, संतुष्ट आदि। कभी कभी इसे जोड़नेपरभी शब्दका अर्थ ज्योंका त्यों बना रहता है। सज्जनानंददं = सज्जन (संतजन, सत्पुरुष, भले, सदाचारी लोग) + आनन्द + दं (देनेवाले, दाताको)। इस अर्थमें 'द' का व्यवहार स्वतंत्ररूपसे नहीं होता, वरंच किसी शब्दके अन्तमें जोड़नेसे होता है। जैसे सुखद, जलद, आनंद। सैलकन्यावरं = हिमालय पर्वतराजकी कन्याके पति। रम्य = मनोहर। तामरस = कमल। यथा 'सियरे बचन सूखि गये कैसे। परसत तुहिन तामरस जैसे॥' (अ०)। श० सा० के मतसे यह शब्द आर्यभाषाका नहीं है; परन्तु अमरकोशमें 'पंकरुहं तामरसं सारसं सरसीरुहं' ऐसा लिखा है। अर्थात् तामरसभी कमलका एक नाम लिखा है। बामदेव = शिवजीका एक नाम। (टि० २ देखिये) भजे = मैं भजता हूं। भावगम्य = भावसे प्राप्त होनेवाले। यथा, 'भजेहं भवानीपति भावगम्यं'। कुंदेंदु कर्पूर गौरं = पद १० में देखिये। सच्चिदानंदकंदं = सत् चित् आनन्दका मूल, मेघ या समूह। सिद्ध = अणिमादि सिद्धियोंको प्राप्त पुरुष। सनकादि = सनक

२ योगींद्र–रा०, भा०, बे०, ह०, आ०। योगेंद्र–प्र०, ज०। जोगेंद्र–६९। ३ निर्मलं निर्गुणं–रा०, भा०, बे०, ह०, ७४, ५१, ज०, प्र०, १५, ६९, आ०।

आदि। आदि से 'सनातन', 'सनन्दन' और सनत्कुमार' का ग्रहण है। ये चारों ब्रह्माजीके मानसपुत्र हैं। परम वैराग्यवान् और विज्ञानविशारद हैं। सृष्टिके आरंभमें उत्पन्न होनेसे बहुत कालीन हैं, पर सदा पाँच वर्षके बालकके रूपमें रहते हैं जिससे मायाका विकार न उत्पन्न हो सके। ये सदा मनसे ब्रह्ममें लीन रहते हैं और जीवन्मुक्त हैं। इनको उत्पन्न करके ब्रह्माजीने जब यह आज्ञा दी कि जाकर प्रजासृष्टिकी रचना करो तब इन्होंने प्रश्नपर प्रश्न करके ब्रह्माजीको निरुत्तर कर वनकी राह ली। वैराग्यके जहाँ बीजमंत्र दिये हैं वहाँ इनके नाम प्रथम हैं जिससे सूचित होता है कि ये आदि वैराग्य-वान् हैं। सनन्दनजी कपिलदेवजीके पूर्वहीसे सांख्यमतके प्रवर्त्तक कहे गये हैं। सनत्कुमारजी सबसे पहले प्रजापति माने जाते हैं। छान्दोग्योपनिषत् अध्याय ७ से स्पष्ट पता चलता है कि देवर्षि नारदजीको इन्हींसे विद्याकी प्राप्ति हुई। जोगींद्र = (योगी + इन्द्र) योगियोंमें श्रेष्ठ। इहलौकिक एवं पारलौकिक त्रलोक्यक सुखोंसे परम वैराग्यवान् और जो हृदयकी अविद्या ग्रंथिका भेदन कर चुके हैं। आत्मज्ञानी, परम वैराग्यवान्, सदा ब्रह्ममें लीन, दुःख सुख आदि द्वंद्वोंसे रहित पुरुष यथार्थ 'योगी' हैं। जगत्की सारी विषम-ताओंसे घिरे रहनेपरभी अपनी चित्तवृत्तिको शांत एवं स्थिर बनाये रखनाही योगका स्वरूप है। 'समत्वं योग उच्यते' योग-दर्शनमें अवस्थाके भेदसे योगी चार प्रकारके कहे गये हैं। (१) प्रथम कल्पिक जिन्होंने अभी योगाभ्यासका आरंभमात्र किया है। (२) मधूभूमिक जो भूतों और इंद्रियोंपर विजय प्राप्त करना चाहते हैं। (३) प्रज्ञाज्योति जिन्होंने इन्द्रियोंको पूर्णतया वश कर लिया हैं। (३) अतिक्रांतभावनीय जिनको सब सिद्धियाँ प्राप्त हैं, केवल चित्तलय बाकी रह गया है। बृन्दारका (बृन्दारक) = देवता। दीनजीने 'बृन्दारकाविष्णु' को समस्त पद मान कर 'बृन्दारक + आविष्णु' ऐसा पदच्छेद करके अर्थ किया है। वंद्य = वंदित, वंदनीय, अभिवादन किये जाने योग्य। (वीर) ब्रह्मकुल = ब्राह्मणोंके गोत्रमात्र, ब्राह्मणवंशभर,

ब्रह्मनिष्ठ लोग। वल्लभ = प्रिय। यथा, 'ताते सुरसीसन्ह चढ़त जग-वल्लभ श्रीखंड। (उ०)। सुलभमतिदुर्लभं = (सुलभं + अति + दुर्लभं) अति सुलभ और अति दुर्लभभी। वेदपारं = वेदोंसे परे, वेदभी जिनका गुणगान करके अंत नहीं पा सकते। यथा, 'चरित सिन्धु गिरिजारमन वेद न पावहिं पार'। (बा०)। 'पार' इस अव्यय-का अर्थ 'परे, दूर, लगावसे अलग' है। यथा, 'निज इच्छा निरमित तनु माया गुन गो पार'। (बा०) वेदोंकी पहुँचसे बाहर। चरखारी टीकाकारने 'वेदोंकी मर्यादा' अर्थ किया है। नौमि = नमस्कार करता हूँ, मस्तक नवाता या प्रणाम करता हूँ। करुनाकर = पद ७ देखिये। निर्विकार = काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद और मत्सर इन षट् विकारोंसे रहित। मायाके विकारोंसे रहित।

पदार्थ:—सदा कल्याणकर्त्ता, सदा सम्यक् प्रकारके पदार्थों एवं कल्याणोंके दाता, सज्जनोंको सदा आनंद देनेवाले गिरिजा-पति, परम लावण्यमय, कामदेवके मदको छुड़ानेवाले, कमल (समान दीर्घ, आर्द्र, करुणापूर्ण और विशाल) नयनवाले और भावसे प्राप्त होनेवाले वामदेवजीको मैं भजता हूँ। १। शंख, कुंद, पुष्प, चंद्रमा और कर्पूरके समान गौरवर्ण, सुन्दर, समस्त देवताओंसे वंदित चरण कमलवाले, ब्राह्मण कुलके प्रिय एवं जिसको ब्राह्मण कुल प्रिय है, (भलों को) अत्यंत सुलभ और (दुष्टोंको योगादि साधनों द्वाराभी) अत्यंत दुर्लभ, भयंकर वेशवाले, व्यापक और समर्थ, वेदोंसे परे, करुणाकी खानि, (कंठमें) कालकूट और (मस्तकपर) गंगाजीको धारण करनेवाले, मायिक गुणोंसे रहित, निर्मल, विकाररहित (कल्याणस्वरूप) श्रीशिवजीको मैं नमस्कार करता हूँ। २, ३।

नोट:—(१) इस पदमें जितने नाम और विशेषण आये हैं उन्हें द्वितीयामें (कर्मकारक) समझना चाहिये। (२) पूर्व रुद्र, संहारकर्त्ता एवं भैरवरूपोंकी वन्दना करके अब आपके शांत ऐश्वर्य-माधुर्यमिश्रित स्वरूपकी वन्दना करते हैं। जबतक कामादिका

नाश नहीं होता तबतक नरकद्वार खुलाही रहता है। काम क्रोधादि नरकके पंथ कहे गये हैं। यथा 'काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरकके पंथ। सब परिहरि रघुवीरही भजहु भजहिं जेहि संत॥ (सुं.) त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः। काम क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्।२१। एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः। आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परांगतिम्।२२।' (गीता १९) इनसे छुटकारा पानेपरही जीव कल्याणका अधिकारी होता है। इसीसे 'सदा संकरं संप्रदं जिव' से वन्दना करते हैं। (३) योंभी कह सकते हैं कि भगवान् शंकरमें दो भाव हैं। एक 'प्रलयकारी सद्भाव' जिसकी वन्दना पूर्व कर चुके। दूसरा 'शान्तिमय शिवभाव' जिसकी वन्दना अब इस पदमें करते हैं। महाभारत अनुशासन पर्वमें भगवान् श्रीकृष्णजी शंकर-जीका माहात्म्य वर्णन करते हुए कहते हैं कि 'वेदोंमें शंकरजीके दो रूप कहे गये है। उनका एक स्वरूप तो 'घोर' है और दूसरा 'शिव' है। इन दोनोंकेभी अनेकों भेद हैं। इनकी जो 'घोर' मूर्ति है वह भय उपजानेवाली है। उसके अग्नि, विद्युत् और सूर्य आदि अनेको रूप हैं। इससे भिन्न जो 'शिव' नामवाली मूर्ति है वह परम शान्त एवं मंगलमयी है। उसके धर्म, जल और चंद्रमा आदि कई रूप हैं। महादेवजीके आधे शरीरको अग्नि और आधेको सोम कहते हैं। उनकी 'शिव' मूर्ति है। वह जगत्का संहार करती है। उनमें महत्त्व और ईश्वरत्व होनेके कारण वे महेश्वर कहलाते हैं। वे सबको दग्ध करनेवाले, अत्यन्त तीक्ष्ण, और प्रतापी हैं। इसीसे उन्हें 'रुद्र' कहते हैं। वे देवताओंमें महान् हैं और इस महान् विश्वकी रक्षा करते हैं। इसीलिये 'महादेव' कहे जाते हैं। सब प्रकारके कर्मोंद्वारा सदा सब लोगोंकी उन्नति करते और कल्याण चाहते हैं। इस कारण उनका नाम 'शिव' है। वे ऊर्ध्व भागमें स्थित होकर देहधारियोंके प्राणोंका नाश करते हैं और सदा स्थिर रहते हैं। इसीसे उन्हें 'स्थाणु' कहा गया है। भूत, भविष्य, वर्तमान कालोंमें स्थावर-जंगमोंके आकारमें उनके अनेकों रूप प्रकट होते हैं। इसलिये ये

'बहुरूप' कहलाते हैं। उनमें संपूर्ण देवताओंका निवास है। इससे उनको 'विश्वरूप' कहते हैं। उनके नेत्रोंसे तेज प्रकट होता है और उनके नेत्रोंका अन्त नहीं है। इसलिये वे 'सहस्राक्ष, अजिताक्ष और सर्वतोऽक्षमय' कहलाते हैं। यह महान् विश्व उन्हींका रूप बतलाया गया है। वे नाना प्रकारकी ग्रहबाधाओंसे ग्रस्त प्राणियोंको दुःखसे छुटकारा दिलाते हैं। वे पुण्यात्मा और शरणागतवत्सल तो इतने हैं कि शरणमें आये हुए किसीभी प्राणीका त्याग वे नहीं करते। वेही मनुष्योंको आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य और धन आदि संपूर्ण कामनाएँ प्रदान करते हैं और वेही पुनः छीन लेते हैं। इन्द्रादि देवताओंकेपास उन्हींका दिया हुआ ऐश्वर्य है। समस्त कामनाओंके अधीश्वर होनेके कारण उन्हें 'ईश्वर' कहते हैं। महान् लोकोंके ईश्वर इसलिये 'महेश्वर' नाम है।

स्वामी श्रीरामदासानन्दजी सरस्वती लिखते हैं कि 'कुछ पुराणोंमें ऐसा वर्णन मिलता है कि ज्ञानी पुरुषही शिव या शंकर हैं। कुछ स्थानोंमें आत्मा और परमात्माको 'शिव' कहा है। जीव या अन्तरात्मामें अनेक वासनाएँ और कल्पनाएँ होती हैं। वह अपने स्वरूपको भूला रहता है। बीजमें वृक्षके समान वासनाएँ अबोधरूप अज्ञानमें रहकर पुनः पुनः स्वर्ग नरकके रूपसे अंकुरित होती हैं और जीवको जन्म मरणके चक्करमें डालती रहती हैं। परन्तु जीव अथवा अन्तरात्मा अपने आकाशस्वरूपकी स्थितिको धारण कर स्वस्वरूपका चिन्तन करे तो उससे वासनाओं या कल्पनाओंका कारण जो अबोधरूप अमंगल अज्ञान है वह नष्ट होकर उसे मंगल या शुद्धस्वरूपकी प्रतीति होती है। इसी मंगल शुद्धस्वरूपको 'शिव' (मंगल) कहना चाहिये। यही 'शिव' का लक्षण है। (शिवाङ्कसे)। (४) गोस्वामीजी महाराजने भगवान् शिवकी वंदना करते हुए अपनी विद्वत्ता, भावुकता और अन्वीक्षण शक्तिकी सारी सम्पदा इसी पदमें धरोहरके रूपमें रख दी है। (५) प्रारम्भमेंही 'सदा शंकर' से पदकी ध्वनिसे रागका बोध कराया है। शंकर एक रागका नाम है जो गौरवर्णका माना जाता है। वह प्रातः ब्राह्ममुहूर्त्तमें गाया जाता है। उसमें शांतरस प्रधान होता है।

शंकरराग भगवान् शंकरसे सामंजस्य रखता हुआ सत्वोद्रेक प्रवाहित करता है। गोस्वामीजीका उपर्युक्त शिव वन्दनास्वरूपपद शंकर रागसे भलीभाँति गेय है। शङ्करकी स्तुति 'शंकर राग' से गाने योग्य बनाना तुलसी जैसे महाकविकी 'परिचयचारूता' का एकही नमूना है। (शर्माजी)।

टिप्पणीः—(१) 'सदा संकरं संप्रदं सैलकन्यावरं' इति। (क) 'सदा' इति। सृष्टि बसाने, बढ़ाने और विनाश करनेका काम क्रमसे ब्रह्मा, विष्णु और महेशका कहा गया है। ऐसा कई बार हुआ है आर होगाभी। विशेषता यह है कि ब्रह्मा कई बार प्रकट होते, सृष्टि रचते और शास्त्र बनाते हैं। विष्णु भगवान् यथावकाश सोतेभी हैं। किन्तु शिव और शक्ति सोतेही नहीं। सदा उपस्थित रहते हैं। उनको कब आराम मिलता है यह उनके प्रणेताकी (परमेश्वर) इच्छापर है। उनका विश्राम तो एक 'रामनाम' मेंही है। '**श्रीमच्छम्भुमुखेंदु सुंदर वरे सशोभितं सर्वदा**' (कि०)। इससेभी 'सदा संकरं संप्रदं' कह सकते हैं। दिनरात कर्णमें राम नाम देकर जीवोंको मुक्ति प्रदान करते हैं; अतः 'सदा संकरं' कहा। (ख) 'सदा संकरं' एकही पद है जो सदाशिवका परिचायक पर्यायी है। 'सदा संकरं' का भाव है कि 'सर्वदा मंगलयुक्त रहनेवाले'। यह विशेषण शिवके आत्मस्वरूपका लक्ष्य कराता है। (ग) 'संप्रदं' इति। सं (शं) + प्रदं = कल्याण करनेवाले। यह विशेषण परोपकारिताका सूचक है। गोस्वामीजीने 'सदा संकरं' और 'संप्रदं' की पद योजना करके कमालही कर दिया है। पूर्व पदसे (सदा संकरं) उनके सदा मंगल होनेका बोध कराया और उत्तर पदसे (संप्रद) दूसरोंको मंगल प्रदान करनेवाला बतलाया वस्तुतः जो स्वयं मंगलमय होगा वही दूसरोंको मंगल प्रदान करनेमें समर्थ होगा। यदि 'संप्रद' को 'सम्प्रद' (सम् + पद) मान लें तो सम् शब्द अव्यय तथा चौथा उपसर्गके रूपमें प्राप्त होगा। अव्यय और उपसर्गोंमें अर्थवैषम्य होना स्वाभाविक है। किंन्तु यह क्लिष्ट कल्पना जँचती है। भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे 'सम्प्रद' के स्थान पर 'संप्रद' होनाही यथार्थ उद्देश्यसिद्धिसूचक प्रतीत होता है। (घ)

सज्जनानंददं इति। सत् + जन + आनंद + दं। सत्=सत्यतापूर्ण धर्म। जन = परम प्रिय या भक्त, सेवक। आनंद=समन्तात् शरीरको आल्हादित करनेवाली हृदयमें उत्पन्न वृत्ति विशेषका नाम आनंद है जो प्राणीको आत्मविभोर बनाकर उसकी भेदबुद्धि विनष्ट करता है। 'दं' शब्द दान, दया और दमका भाव सूचित करता है। सारांश यह है कि भगवान् शंकर सत्यतापूर्ण धर्मसे संयुक्त प्रिय जनको ज्ञानमूलक आत्म-विभोर बनानेवाला ऐसा आनंद प्रदान करते हैं जो दान, दया और दम तीनों अभिष्ट गुणोंसे ओतप्रोत रहता है। न प्राप्त करने या ग्रहण करनेकी निःस्वार्थ बुद्धिसे किसीको जो वस्तु दी जाती है उसीका नाम ' दान ' है। भगवान् शंकर सज्जनोंको ऐसेही आनंदका दान दिया करते हैं जो दया और दमसे संरक्षित एवं शाश्वत स्थायी रहता है। (शर्माजी) (ङ) 'सैलकन्यावरं' इति। यहाँपर आध्यात्मिक समताका निदर्शन गोस्वामीजीने बड़ीही पटुतासे किया है। हिमालयका श्वेत (सतोगुण) रंग है। भगवान् शंकर गौर (सतोगुण) हैं और भगवती गौरीभी गौर (सतोगुण) हैं। इससे सतोगुणकी व्यापकता प्रगट होती है। आदिशक्ति पार्वतीजी हिमालयकी प्रिय पुत्री और स्वयं अष्टसिद्धि नवनिधियोंसे परिपूर्ण हैं। ऐसी श्रेष्ठ कन्याके वर सर्वश्रेष्ठ शंकजीही उपयुक्त हैं। यहाँपर वर और कन्याके कुल, शील, सनाथता, विद्या, वित्त, वपु और वयका सादृश्य दिखाया गया है। इसलिये वर शब्दका प्रयोग किया है। वरमें कन्यासे उपयुक्त सात गुण विशिष्ट होने चाहिये। तात्पर्य यह है कि हिमालय और उनकी कन्या सर्वगुणसंपन्न अवश्य हैं किन्तु उनसेभी श्रेष्ठ शंकरजी हैं।

२ ' परम रम्यं ' इति। (क) यहाँ ' रम्य ' और आगे ' सुंदर ' शब्द आये हैं। ये दोनों पर्यायवाची शब्द हैं, पर दोनोंका प्रयोग यहाँ होनेसे इनमें कुछ भेद अवश्य होना चाहिये। एक तो साधारण यही मालूम होता है कि ' सैलकन्यावरं ' और ' काममदमोचनं ' के संबधसे ' परम रम्यं ' विशेषण दिया गया है और ' सुंदर ' से सहज सर्वांग सुडौल सूचित किया है। अमरकोषकी टीकामें दोनोंका भेद

इसप्रकार दिया है, 'यस्यदर्शनात् दृङ्मनसोस्तृप्तेरंतो नास्ति'। जिसके बारंबार देखनेसेभी नेत्र और मनको तृप्ति न हो, जी चाहे कि देखतेही रहे, उसे 'रम्य' कहते हैं। 'सुंदर' उसे कहते हैं जो रुचिकारक हो। (रघुनाथशास्त्रीकृत टीकासे) 'परम' विशेषण लगा देनेसे रमणीयताकी पराकाष्ठा सूचित की। शिवजी इतने रम्य हैं कि उन्हें देखकर फिर दूसरी रम्य वस्तुके देखनेकी इच्छाही न हो। (ख) 'काममदमोचनं' इति। कामदेवको अपने सौंदर्य और जगत्विजयी होनेका मद है। यथा, 'काम कुसुम धनुसायक लीन्हें। सकल भुवन अपने बस कीन्हें॥', 'देखि रसाल बिटप बर साखा। तेहिपर चढ़ेउ मदनु मन माखा॥ सुमन चाप निज कर संधाने। अति रिसि लागि श्रवन लगि ताने॥ छाँड़ेउ बिषम बिसिष उर लागे। छूटि समाधि संभु तब जागे॥' 'चितवत काम भयऊ जरि छारा' मदका छूटना है। विशेष भाव पद ४ टि० ३ में देखिये।* (ग) 'बामदेवं भजे' इति। 'बामदेव' शब्द पूर्व पद ८ में आया है। 'गाँव बसत बामदेव मैं कबहूँ न निहोरे।' दूसरी बार यहाँ। 'अनादि संसार प्रवाहमें बहते हुए जीवोंके उद्धारकेलिये तथा भक्तवत्सलतावश 'ये यथामां प्रपद्यंते तांस्तथैव भजाम्यहम्।' इस गीताके वाक्यके अनुसार श्रीशिवरूपसे एकपादविभूतिमें जब लीलाअभिनय आरंभ होता है तब स्वात्माराम सदाशिव सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष एवं ईशानरूपसे क्रमशः जगत्की सृष्टि, स्थिति, प्रलय, निग्रह एवं अनुग्रहरूप

* 'ज्ञानी पुरुषोंकोभी कहीं कहीं शिव कहा गया है। यद्यपि ज्ञानी पुरुष विचारद्वारा काम विकारका शमन करता है तथापि कामविकार 'स्वप्न' की अवस्थामें वासनारूपसे उत्पन्न होकर उसके मनक्षोभका कारण हो जाता है और ज्ञानीके लिंगशरीरको स्वप्नावस्थामें पीड़ा पहुचाने लगता है। ऐसा होनेपर ज्ञानी अथवा योगीपुरुष अग्निचक्रमें अर्थात् भ्रूमध्यस्थानमें ध्यान लगाकर कामविकारका नाश करता है। शिवजीके अपने मस्तकके तीसरे नेत्रका अग्निसे मदनदहन करनेकी कथाका यही तात्पर्य है।' (श्रीरामदासानंदजी। शिवाङ्कसे).

कार्य करते हैं। इसमेंसे पहले तीन कृत्य तो समष्टि दृष्टिसे साधारणतया स्पष्टही हैं। व्यष्टिदृष्टिसे शेष दो कृत्योंके अंदर त्रिपुरदाह, अंधकविजय, गजासुरमर्दन, मखविध्वंस एवं मदनदहनादि तथा हरिहरैक्य, अर्धनारीश्वर-विग्रह, दारुवनविहार, किरातलीला, शबरलीला, शरभलीला तथा वान-प्रभृतियोंको वरदानादि असंख्यात् दिव्यचरित्र आ जाते हैं। अर्चाद्वाराभी भगवान् शिव ज्योतिर्लिंग, सतीपीठेश्वर एवं बाणलिंगादिरूपसे जीवोंपर अनुग्रह करते हैं। (गोस्वामी श्रीदामोदरजी शास्त्री) स्थितिके विचारसे यहाँ 'बामदेवं भजे' कहा गया है। विकारोंके नाशक होनेसे 'बामदेवं भजे' कहा। देवदत्तशर्माजी कहते हैं कि (१) इस एकही पदसे गोस्वामीजीने महेश्वरकी विश्वरूप मूर्तियोंका ध्यान किया है। तंत्रग्रंथमें शिवजीकी अनेक मूर्तियोंका वर्णन मिलता है। सारदातिलकतंत्रमें इसके विशद वर्णन पाये जाते हैं। शायद तुलसीदासजीने इसी तंत्रके क्रमानुसार शिवकी प्रधान अष्ट-मूर्तियोंका ध्यान किया है जिनके नाम हैं (१) सदाशिव (२) ईशान (३) तत्पुरुष (४) अघोर (५) बामदेव (६) सद्योजात (७) हरपार्वती और (८) मृत्युंजय। इन आठों मूर्तियोंके ध्यान उपर्युक्त पदमें निहित हैं। विस्तारभयसे पृथक्करण और विवेचन नहीं किया गया। *

किसीभी कवि या लेखकके लेखमें उसके जीवन और जन्मभूमिसे सम्बन्ध रखनेवाली कुछ न कुछ सांकेतिक वृत्ति अवश्य निहित रहती है। यह बात हम गोस्वामीजीके प्रत्येक ग्रंथमें यत्रतत्र प्रसंगानुकूल प्रचुर मात्रामें पाते हैं। गोस्वामीजी बाँदा प्रांतके निवासी थे। बाँदामें 'बामदेव' शिव हैं जिनकी प्रतीष्ठाका इतिहास उतनाही पुराना है जितना भगवान् रामकी स्थितिका। बामदेवका

* पंडित श्रीभवानीशंकरजी लिखते हैं कि 'शिवजीके पाँच मुख हैं। ईशान, अघोर, तत्पुरुष, बामदेव और सद्योजात। ईशानका अर्थ 'स्वामी' है। अघोरका अर्थ 'निंदित कर्म करनेवालेभी शिवकृपासे निंदित कर्मको शुद्ध बना लेते हैं' ऐसा है। तत्पुरुषका अर्थ 'अपनी आत्मामें स्थितिलाभ करना' है। बामदेवका अर्थ 'विकारोंके नाशक' है। सद्योजातका अर्थ 'बालकके समान परम स्वच्छ, शुद्ध आर निर्विकार ऐसा है।'

बिगड़ा हुआ रूप बाँदा है। तुलसीदासजी जननी और जन्मभूमिको स्वर्गसेभी श्रेष्ठ मानते थे। इनके प्रमाण रामायणके अन्तर्गत कई स्थलोंपर हैं। फिर भला वे जन्मभूमिके अधिष्ठातृदेवको ग्रंथारंभमें कैसे भूलेंगे? उन्होंने अपने कुलदेव, ग्रामदेव और वामदेवका स्मरण रोचक और रहस्यपूर्ण ढंगसे किया है। यह वन्दना विशुद्ध देववाणीमें की गयी है। इसका कारण स्पष्ट है। तुलसीदासजीकी प्रामाणिक जीवनीसे तथा उनके ग्रंथोंसे विदित है कि वे पाणिनि व्याकरणके निष्णात विद्वान थे। विशेषतः रामायणमें प्रयुक्त व्याकरण पाणिनि व्याकरण और पातंजलमहाभाष्यका आधारभूत प्रतीत होता है। यह निर्विवाद है कि पाणिनि व्याकरणके आदि उद्भावक भगवान् भूतभावनही हैं जिनके नृत्तावसानमें ढक्कानिनादसे चतुर्दश शिवसूत्र प्रकट हुये हैं। अतः कविने देवाधिदेवकी वन्दना देववाणीमेंही की है। (६) तुलसीदासजीके समयमें 'बाँदा' राजनैतिक केन्द्र नहीं था। राजापुर (तुलसीदासजीकी जन्मभूमि) इलाहाबाद इलाकेमें था। किन्तु सांस्कृतिक विभाजनके अनुसार 'राजापुर' और 'बाँदा' दोनों चित्रकूट प्रांतके अंन्तर्गत थे। आजकलभी राजनैतिक विभाजनके अनुसार चित्रकूट प्रांतका कुछ हिस्सा बघेलखण्ड और बुँदेलखण्डमें सामिल कर दिया गया है। किन्तु सांस्कृतिक दृष्टिसे ये भूभाग अबभी चित्रकूट प्रांतमें है।

३ (क) 'संकरं आनंददं शिवं' इति। शिवजी आनन्दरूपही हैं। जो कोई उनके सम्पर्कमें आ जाता है वहभी आनन्दका रूप कहा है। उनके चारों ओर आनन्दके परमाणु फैले रहते हैं। यही महेशका सबसे महान् गुण है। इसीलिये आप 'शिव' (कल्याणरूप) एवं शंकर (कल्याणकर्त्ता) और आनन्ददाता कहलाते हैं। 'शिवं' का अर्थ है 'कल्याण, आनन्द सुख'। ये सारे शब्द पर्यायवाची हैं। यथा, '**श्वः श्रेयसं शिवं भद्रं कल्याणं मंगलं शुभं**' इत्यमरे। एवं '**शिवं च मोक्षे क्षेमेच महादेवे सुखे**' इति विश्वकोशे। 'शिव' शब्द शुभावह या श्रेयस्कर वस्तुका वाचक है। शुभार्थक 'शीङ्' धातुके साथ 'वनिक्' प्रत्ययका योग होनेसे 'शिव' शब्द बनता है। पुनः 'शिव'

शब्दकी उत्पत्ति 'वश कान्तौ' धातुसे यदि मानें तो 'उसका तात्पर्य यह है कि जिसको सब चाहते हैं उसका नाम 'शिव' है। सब चाहते है अखंड आनंदको। अतएव 'शिव' शब्दका अर्थ 'आनंद' हुआ। जहाँ आनंद है वहीं शांति है और परम आनंदकोही परम मंगल और परम कल्याण कहते हैं। अतएव 'शिव' शब्दका अर्थ 'परममंगल, परमकल्याणरूप' समझना चाहिये। इस आनंददाता, परमकल्याणरूप शिवकोही शंकर कहते हैं। 'श' आनंदको कहते हैं और 'कर' से करनेवाला समझा जाता है। अतएव जो आनंद करता है वही शंकर है। इसतरह 'शिव' शब्दसे 'नित्यविज्ञानानंदघन' जनाया। (ख) 'कंबु कुंदेंदु' इति। 'कंबु' से पाताल, 'कुंद' से भूतल और 'इंदु' से स्वर्ग इस तरह तीनों लोकोंकी शोभा यहाँ एकत्र जनायी। शिव उपमेयकेलिये अनेक उपमान भिन्न भिन्न धर्मके हेतु कथन करना 'मालोपमालंकार' है। (ग) 'कंबु कुंदेंदु कर्पूर गौरं' से शरीरके गौरवर्णादि गुण कहे। 'सुंदर' से उसके सर्वांग गठे हुये सुठौर जहाँ जैसा चाहिये वैसा जनाया और 'सच्चिदानंदकंद' से देहदेहीविभागरहित कहा। 'सच्चिदानंदकंद' के औरभी भाव ये हैं कि (१) हृदयमें परब्रह्मकी स्फूर्ति करानेवाले आपही हैं। (२) सत् चित् आनंदरूपी जल बरसानेवाले मेघ अर्थात् सच्चिदानंदघन हैं। (३) सत् चित् आनंदके मूल हैं 'जिससे सत्, रज, तम ब्रह्मा, विष्णु, महेश एवं सत्, चित् और आनंद आदि उत्पन्न होते हैं। (पं.रा.कु.)

'शिवं सुंदरं' इति। बहुतसे महानुभाव 'मूल गोसाई चरित' को आधुनिक रचना कहनेका कारण यह बताते हैं कि उसमें 'सत्यं शिवं सुंदरं' का प्रयोग हुआ है जो आधुनिक है। उनसे हमारा सविनय अनुरोध है कि इस पदपर विचार करें। कारण कि कमसे कम 'शिवं सुंदरं' तो यहाँभी हैं। क्या यहभी आधुनिक रचना है? (पं० श्रीराजबहादुर लमगोंड़ाजी)

श्री लमगोड़ाजीसे मालूम हुआ कि पं० रामनरेश त्रिपाठी श्रीवेणीमाधोदासरचित 'मूल गोसाईं चरित' (सं० १६८७ वि०) को अप्रामाणिक ठहरानेकेलिये 'सत्यं शिवं सुंदरं' इन शब्दोंको लेकर

लिखते हैं कि इस सत्यं शिवं सुंदरंने तो मूल चरितके रचयिताको अँधेरेमेंसे खींचकर उजालेमें लाकर खड़ा कर दिया। 'सत्यं शिवं सुंदरं' यद्यपि संस्कृतका प्राचीन वाक्य है पर अभी थोड़े दिनोंसे हिन्दी-वालोंमें इसने प्रवेश पाया है। हिन्दीके किसी प्राचीन कविने इसका उपयोग नहीं किया था। जिसे तुलसीदासजीनेभी नहीं लिखा था तो उनके एक साधारण पढ़े लिखे चेलेकी क्या बिसात थी जो इस वाक्यतक पहुँचता।

दास इसपर कुछ लिखना नहीं चाहता। पाठकोंको कल्याणके गत तीन चार वर्ष पूर्व किसी अंकमें पंडित श्रीरामदासगौड़जीका लेख 'मूल गोसाई चरित' के संबंधका पढ़नेकी प्रार्थना करता हूँ। उससे त्रिपाठीजीके भ्रमोत्पादक लेखके विरुद्ध बहुत प्रकाश पड़ेगा। यहाँ केवल लमगोड़ाजीके विचार लिखे देता हूँ। वे लिखते हैं कि क्या खूब मंतक (Logic तर्क) है? यह मानते हैं कि पुराना संस्कृत वाक्य है तो फिर किसीको इस्तेमाल करना क्या मुश्किल है? इसका प्रयोग करनेवाला तुलसीदासजीका चेला नहीं बल्कि 'शंकरजी' हैं। वह बेचारा तो एक वाक़एका नामानिगार (Reporter) मात्र है।

श्रीदेवदत्तशर्माजी कहते हैं कि इस पदके अन्तर्गत आये हुये सभी विशेषण साभिप्राय हैं। किन्तु 'शिवं सुंदरं' में कविका वास्तविक कर्म और मर्म छिपा है। 'शिवं सुंदरं' हमारा चिरपरिचित वेदवाक्य है जो सत्यके साथ सन्निविष्ट रहता है। मूल गोसाई चरितकी आलोचना करते हुए स्वर्गीय आचार्य पं. रामचन्द्र शुक्लने 'सत्यं शिवं सुंदरं' को बँगला साहित्यसे उधार लिया गया नवीनतम शैलीका प्रयोग ठहराया है। पं० रामनरेश त्रिपाठीजीने तो गजब किया है। उनके अनर्गल प्रलापके प्रपंचमें हम पडनाही नहीं चाहते। काश वे वेदज्ञ होते तो यह भ्रांति न होती।

शिव शब्द व्यापक है। इसकी व्युत्पति है "**शिवं कल्याणं विद्य-तेऽस्य शिवः। श्यति अशुभमिति वा, शेरतेऽवतिष्ठन्ते अणिमादयो अष्टगुण अस्मिन् इतिवा शिवः**" ज्ञान चाहनेवालोंको शिवकी

शरण लेनी चाहिये। पुराणोंमें भगवान् शिवकी 'ज्ञानद' नामसे बार बार प्रार्थना की गयी है। ऋग्वेदमेंभी लिखा है "रुद्राय प्रचेतसे मीढ़ पुष्टमाय तव्य से। केचेत्र शं तत्रं हृरे" (१।४३।१) इसी भावको पुराणोंमें इसी प्रकार दिखाया है 'नमामि सततं भक्त्या ज्ञानदं वरदं शिवम्॥' भगवान् शिव संगीतके उद्भावक थे, संगीताचार्य थे। तांडवनर्त्तक और विषाणवादक थे। इसके प्रमाण पुराणोंमें तो हैंही, ऋग्वेदमेंभी हैं। "गाथा पतिं मेद्यपतिं रुद्रं जनाय भेषजं। तच्छं यो सुम्नमीमहे॥" (१।४३।४) यही कारण है कि गोस्वामीजीने अपने सुंदर गेय पदमें शिवजीकी तरसम प्रार्थना की है जो 'सत्यं, शिवं, सुंदरं' कही जाती है। भगवान् शङ्करका शिव नाम क्यों पड़ा इसका कारण वाजसनेय संहितामें इस प्रकार लिखा है। 'एकन्ते रुद्रावसंतेन परो भूजवतोऽती हि अवततधन्वा पिनाकावासः कृत्तिवासा अहि सन्नः शिवोऽतीहि।' (३।६१) रुद्र भगवान् अपने भक्तोंपर कभी क्रोध नहीं करते, हिंसा नहीं करते। उन्हें क्रोध न होनेसे प्रजाका मंगल होता है, अतएव वे 'शिव' हैं। वे अपने भक्तोंकी हर-प्रकारसे रक्षा करते हैं; अतः वे 'शिव' हैं। वे भगवान् पर्वतके निवासी हैं। कृत्तिवास और पिनाकधारी हैं। शत्रुओंके संहारकेलिये सदैव धनुष चढ़ाये रहते हैं।

४ 'सिद्ध सनकादि चरणारविंदं' इति। यथा, 'सिद्ध तपोधन जोगि जन सुर किन्नर मुनि वृंद। बसहिं तँ सुकृती सकल सेवहिं शिव सुखकंद॥' (बा० १०५) 'सब सुर विष्णु विरंचि समेता। गये जहाँ शिव कृपानिकेता॥ पृथक पृथक तिन्ह कीन्ह प्रसंसा। भये प्रसन्न चन्द्र अवतंसा॥ कह बिधि तुम्ह प्रभु अंतरजामी। तदपि भगति बस बिनवौं स्वामी॥' (बा० ८७)। भा० ४।६।३६ में मैत्रेजीयके वचन हैं कि 'सनंदनादि शांतिमय महा सिद्ध पुरुष तथा कुबेरजी अत्यंत शांत मूर्ति शंकरकी उपासना करते हैं' और भा० ६।२७ मेंभी कहा है कि

शंकरजी जगद्गुरु हैं। उनके चरणोंका ब्रह्माजी, भृगु, नारदादि महर्षिगण, सनकादि कुमारमंडली, कपिल, मनुजी आदिभी ध्यान करते हैं। यथा, '**एषामनुध्येय पदाब्जयुग्मं जगद्गुरुं मंगल मगलं स्वयम्**' (पार्वत्युवाच) पद १० टि० १०, १३ और पद ११ टि० ११ भी देखिये। यहाँ संबंधातिशयोक्ति अलंकार है। सिद्ध सनकादि वंदित कहकर शिवजीको ईश्वर सूचित किया।

शुद्धाद्वैत संप्रदाचार्य गोस्वामी श्रीगोकुलनाथजी महाराजतनुज श्रीकृष्णजीवनजी, विशारद, बम्बई, लिखते हैं कि "श्रीमद्वल्लभाचार्यचरणोंके सिद्धांतसे श्रीशिवको जीव नहीं माना जा सकता। क्योंकि श्रीशिवको अहंकाराध्यास नहीं है, किन्तु अभिमानमात्र है। भा० १०।८।३७ '**शिवः शक्तियुतः**' इत्यादि पर श्रीसुबोधिनीके '**अहंकाराभिमानेऽपीति**' इस वाक्यकी व्याख्या करते हुए लेखमें श्रीवल्लभजी महाराज लिखते हैं, '**अहं काराध्यासो जीववन्नास्ति किन्तु अभिमानमात्रमेव**।' ऐसी दशामें श्रीशिवकी जीवकोटिमें गणना करना ठीक नहीं। श्रीमद्भागवतमें उन्हें तमोगुणावतार कहकर ईश्वर बताया है। वे प्राकृत तमोगुणके अवतार नहीं हैं, वरंच भगवदीय तमोगुणके अवतार हैं। क्योंकि भा० २।५।१८ के '**सत्वं रजस्तम इति निर्गुणस्य गुणास्त्रयः। सर्गस्थिति निरोधेषु गृहीता मायया विभोः**।' इस श्लोककी व्याख्या करते हुए श्रीमद्वल्लभाचार्य चरण लिखते हैं कि मकड़ी जिसतरह जाला बनानेकेलिये तंतु निकालती है, उसीतरह भगवान्भी त्रिविध सृष्टिकेलिये आरम्भ कालमें सदंशसे सत्व, सदंश आनंदांशसेरहित कियाशक्तिप्रधान केवल चिद्रूपसे रज और आनंदांशसे तमकी सृष्टि करते हैं। ये तीनों भगवद्रूप हैं। इनका और भगवान्का तादात्म्य संबंध है न कि आधाराधेय भाव। क्यों कि आधाराधेय भाव स्वीकार करनेसे इनकी भगवदात्मकताकी व्याहति होती है। जैसे रूईमें सूत नहीं दीखता तोभी रूईकेही अवयवोंके पौर्वापर्य भावसे सूत बनता है। उसी तरह भगवान् निर्गुण रहते हुयेभी इन तीनों गुणोंकी सृष्टि करते हैं और उत्पत्ति, स्थिति और लयके लिये इनका मायासे ग्रहण करते हैं।

अग्नि जिस तरह लोहेके गोलेमें प्रवेश करती है, उसी तरह सृष्टिके आरम्भकालमें निर्गुण श्रीकृष्ण जब साकार, भगवदात्मक अप्राकृत तमोगुणमें प्रवेश करते हैं तब वह श्रीशिव कहलाते हैं। वही श्रीशिव जब प्राकृत तमोगुणके नियामक बनते हैं तब सगुण कहलाते हैं। तबभी उनका ईश्वरत्व अव्याहतही रहता है। अतएव श्रीमद्वल्लभाचार्य चरणोंने लिखा है, 'सतु भगवान् न जीवांशः'

श्रीशिवजी वैष्णवाग्रगण्य हैं। श्रीमद्भागवतमें 'वैष्णवानां यथाशंभुः' कहा है। आप प्रचेता जैसे भगवदीयोंको भागवतधर्मका उपदेश करते हैं। इसतरह विचार करनेसे यह प्रकट होता है कि श्रीशिव निर्गुण श्रीकृष्णके गुणावतार हैं। सर्व विदेश्वर हैं, वैष्णवाग्रगण्य हैं, वैष्णव धर्मोपदेष्टा हैं और सर्वदेहीश्वर हैं।

श्री संप्रदायके अनुसार 'शिवं सुंदरं सच्चिदानंदकंदं' से शिवजीको ब्रह्मवेत्ता जनाया है।

'बिष्णु बिधि बंदे' इति। विविध पुराणोंके देखनेसे प्रत्येक पक्षपातरहित मनुष्य इस सिद्धान्तपर पहुँचेगा कि विष्णु, शंकर और ब्रह्मा तीनोंहीके 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म', 'नित्यविज्ञानानंदघन निर्गुणरूप सर्वव्यापी', 'सगुण एवं निराकाररूप' और 'ब्रह्मा विष्णु रुद्ररूप' ये रूप सिद्ध होते हैं।

विष्णुपुराणमें श्रीपराशरजी भगवान् विष्णुकी स्तुति करते हुए कहते हैं कि 'निर्विकार, शुद्ध, नित्य, परमात्मा, सर्वदा एक रूप, सर्वविजयी, हरि, हिरण्यगर्भ, शंकर, वासुदेव, आदि नामोंसे प्रसिद्ध, संसारतारक, विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति तथा लयके कारण, एक और अनेक स्वरूपवाले, स्थूल, सूक्ष्म, उभयात्मक व्यक्ताव्यक्त स्वरूप एवं मुक्तिदाता भगवान् विष्णुको मेरा बारंबार नमस्कार है। इस संसारकी उत्पत्ति, पालन एवं विनाश करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु, महेशकेभी मूलकारण, जगन्मय उस सर्वव्यापी भगवान् वासुदेव परमात्माको मेरा नमस्कार है। विश्वाधार, सूक्ष्मसेभी अति सूक्ष्म, सर्वभूतोंके अंदर रहनेवाले, अच्युतपुरुषोत्तम भगवानको मेरा प्रणाम है। १।२।१५।

भा० ४।७।५१-५४ में श्रीमन्नारायण वाक्य हैं कि मैंही सृष्टि, पालन और संहार कृत्योंके अनुकूल ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र रूप धारण करता हूँ । पद १० टि० १२ देखिये ।

इसीप्रकार ब्रह्माजीके बारेमें देवीपुराण ८३।१३-१६ में कहा गया है कि 'उत्तम बुद्धिवाले, व्यक्ताव्यक्त रूप, त्रिगुणमय, सबके कारण विश्वकी उत्पत्ति, पालन एवं संहार कारक ब्रह्मा विष्णु महेशरुप तीनों भावोंसे भावित होनेवाले देवाधिदेव ब्रह्मदेवकेलिये नमस्कार है । हे महाभाग ! आप रजोगुणसे आविष्ट होकर हिरण्यगर्भरूपसे चराचर संसारको उत्पन्न करते हैं तथा सत्वगुणयुक्त होकर विष्णुरूपसे पालन करते हैं एवं तमोमूर्ति धारण करके रुद्ररूपसे संपूर्ण संसारका संहार करते हैं ।'

भा० ८।७।७-४५ में कालकूटसे जलते हुए देवदानवगण जब शंकरजीके पास गये तब प्रजापतियोंने शंकरजीकी स्तुति करते हुए ऐसाही कहा है । जैसे श्रीमद्भागवतमें भगवान्‌का वाक्य है कि '**अहं ब्रह्माच शर्वश्च जगतः कारणं परम् ॥**' यथार्थमें हम तीनों एक हैं । वैसेही शिवपुराणमें शिववाक्य है '**त्रिधा भिन्नोह्यहं विष्णो ब्रह्माविष्णुहराख्यया । एकंरूपं न भेदोऽस्ति भेदेच बंधनं भवेत् ॥**' लिंगपुराणमें कई अद्‌भुत कथाएँ ऐसी हैं जिनसे देवताओंमें श्रेष्ठ विष्णु और ब्रह्मासेभी शिवका उत्कर्ष दिखाया गया है । लिंगपुराणमें जिस प्रकार शिवजीको परब्रह्म परमात्मस्वरूप माना है, उसी प्रकार अन्य पुराणोंमें विष्णु आदिको सर्वशक्तिमान् माना है । परन्तु सर्वशक्तिमान् परमेश्वर स्वरूप है एक ही व्यक्ति, किसीभी पुराणमें परमेश्वरकी शक्तिका भागीदार नहीं मिलता । पूर्ण पुरुषकीही भिन्नभिन्न नामोंसे वंदना की गयी है । हिन्दू विचारोंका अद्‌भुत ऐक्यही हिन्दूधर्मकी महान् विशेषता है ।

शिवपुराणमें कहा गया है कि " ये तीनों (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) एक दूसरेसे उत्पन्न हुए हैं, एक दूसरेको धारण करते हैं और एक दूसरेके अनुकूल आचरण करते हैं । कहीं ब्रह्माकी प्रशंसा की जाती है,

कहीं विष्णुकी और कहीं महादेवकी । उनका उत्कर्ष एवं ऐश्वर्य इस प्रकार एक दूसरेकी अपेक्षा अधिक कहा है मानों वे अनेक हों । "

मानसमें मदन दहनपरभी कहा है कि " सब सुर विष्नु बिरंचि समेता । गये जहाँ शिव कृपानिकेता ॥ पृथक पृथक तिन्ह कीन्ह प्रसंसा । भये प्रसन्न चंद्र अवतंसा ॥ " इस संबंधसे शिवजीकी अतिशय प्रशंसा करना " संबंधातिशयोक्ति " अलंकार है ।

उपर्युक्त वाक्योंसे यह स्पष्ट है कि वस्तुतः एकही ब्रह्म सृष्टि कार्यनिमित्त तीन रूप धारण करता है । तीनोंमें गुणजन्यभेद होनेपरभी वास्तविक अभेद है । इसकी पुष्टि विष्णुपुराणके " सृष्टिस्थित्यन्तकारणीं ब्रह्माविष्णुशिवाभिधाम् । स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः॥" एकही भगवान् सृजन्, रक्षण, और हरणरूप कार्य करनेसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश नामोंको प्राप्त होते हैं । नाम रूपका भेद हैं, परन्तु वस्तुतत्त्वमें कोई भेद नहीं है ।

जब जिसके द्वारा सृष्टि रक्षा आदिका कार्य होनेको होता है तब उसके पास शेष दो रूप देवगणसहित जाते हैं और उसकी स्तुति करते हुए उसको जगत्मात्रका स्वामी, सृष्टा, उद्भवस्थितिसंहारकर्ता और अपनेको उनका सेवक कहते हैं । वास्तवमें तीनों एकही तत्त्व हैं, अभेद हैं । तब कौन किसका वंद्य कहा जाय ? वे परस्पर एक दूसरेसे वंद्य हैं ।

इसी भावको लेकर प्राचीन पुराण परम्पराका अनुसरण करते हुए यहाँ ' विष्णु बिधि बंद्य चरणारविंदं ' भी ठीकही है ।

हम व्यासदेवजीको धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते, जिन्होंने ' एकदेववाद ' के गहन विषयको अनेक पुराणोंमें किस सरलताके साथ समझानेका प्रयत्न किया है । वही एक ब्रह्म, राम, शिव, विष्णु, कृष्ण, नृसिंह, महाशम्भु, महाविष्णु, महानारायण, दुर्गा, काली, त्रिपुरा, सीता आदि अनेक नाम और रूपोंमें दीख रहा हैं । ' आकाशात् पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम् । सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रतिगच्छति ' ।

श्री संप्रदायका मत है कि श्रुतियोंके अनुसार नारायणका सर्वजगत्कारणत्व गोपालतापिनी और महोपनिषत् आदिकी ' एको ह वै

नारायणः आसीन्न ब्रह्मानेशानो स एकाकि न रमते।' (महोपनिषत्), ॐ अथ पुरुषो ह वै नारायणोऽकामयत प्रजासृजेयेति नारायणात् प्राणो जायते नारायणादेकादश रुद्रादयः संमुत्पद्यन्ते नारायणे प्रलीयन्ते।' (नारायणोपनिषत्); 'एको नारायणो न द्वितीयोऽस्ति कश्चित्' इत्यादि श्रुतियोंमें पाया जाता है।

इसीतरह 'अहमेकः प्रथमतमासं वर्तानि भविष्यामि नान्यः कश्चिन्मत्तो व्यतिरिक्त इति। यस्मिन्निदं सर्वमोतप्रोतं तस्मादन्यं न परं किंचिन्नास्ति।' (अथर्वाशिरस्), 'यदा तमस्तन्न दिवा न रात्रिर्न सन्नचासच्छिव एव केवलः॥ तस्मात्प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी सर्वतोऽक्षि शिरोमुखः॥' (अथर्वशिरस्), 'सर्वानन शिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः। सर्वव्यापी सभगवान् तस्मात्सर्वगतः शिवः॥' (श्वेताश्वतर ३।११), 'ॐ देवा ह वै स्वर्ग लोकमायस्ते रुद्रमपृच्छन्को भवानिति सोऽब्रवीदहमेकः' (रुद्रोपनिषत्)। इन श्रुतियोंसे शिवजीका जगत्कारणत्व पाया जाता है।

इसतरह नारायणपरक श्रुतियाँ आदिसृष्टिमें नारायणसे अन्यका और रुद्रपरक श्रुतियाँ रुद्रसे अन्यका निषेध करती हैं। तब इन परस्पर विरुद्ध सिद्धान्त वाक्योंका समन्वय कैसे होगा? श्री सम्प्रदायके आचार्य इनका समन्वय इस प्रकार करते हैं कि (क) नारायणको सर्वकारण कहनेवाले उपनिषद्वाक्योंमें सर्वत्र 'ह वै' निपात मिलता है। इससे अथर्वशिरस् आदि अन्य श्रुतियाँ नारायणपरक श्रुतियोंकी अनुवादक हैं। अतः अथर्वशिरस्में रुद्रसे नारायणात्मक रुद्रका ग्रहण है। 'ह वै' निपात न होनेसे नारायणात्मक शिवको भगवान् कहा जा सकता है। इसपर कहा जा सकता है कि यदि 'ह वै' पदसे सर्वकारणत्व सिद्ध होता है तो 'ॐ देवा ह वै' मेंभी तो 'ह वै' आया है? इसका उत्तर यह है कि इस श्रुतिमें 'ह वै' पद देवताओं अथवा स्वर्गके सम्बन्धमें आया है, न कि रुद्रके सम्बन्धमें। इस श्रुतिके अतिरिक्त अन्य किसीभी श्रुतिमें शिव, शम्भु और रुद्रादि किसीकेलिये 'ह वै' नहीं आया है। (ख) अथर्वशिरस्में रुद्रका जो सर्वकारणत्व आया है वह रुद्रका

अपने मुखसे कहना है। यह कथन 'शास्त्रदृष्ट्यातूपदेशो वामदेववत्' (वेदान्तदर्शन १।१।३१) इस सूत्रके अनुसार नारायणत्मकभावसे सिद्ध होता है। क्योंकि श्रुतियोंमें रुद्रका नारायणसे उत्पन्न होना कहा है। (ग) श्रीहरिदासाचार्यजी लिखते हैं कि "नारायणात् रुद्रो जायते" इन श्रुतियोंमेंभी तो 'ह वै' निपात नहीं पाया जाता। अतएव नरायणको किसका तादात्म्य माना जाय? इसका उत्तर यह है। नारायणकेलिये कहा गया है कि "स कारणं करणाधिपाधिपो न चास्यकश्चिज्जनिता न चाधिपः।" "न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते" "न तस्य प्रतिमास्ति।" "यस्य नाम महाद्यशः।" (यजु-२२।३)। वही नारायण सबके कारण हैं, इन्द्रियोंके स्वामियोंकेभी स्वामी हैं और उनका न तो कोई उत्पन्न करनेवाला (कारण) है और न कोई स्वामीही है। उनके समान या अधिक कोई नहीं है। इन श्रुतियोंसे स्पष्ट है कि नारायणके उत्पन्नकर्त्ता और स्वामी शिवादि नहीं है। शिवजीकी उत्पत्ति पूर्वोक्त श्रुतियोंने नारायणसे बतलायी है। अतः जहाँ कहीं शिवपरत्व वर्णित है वह कैलाश वा काशीपति शिवपरक नहीं हो सकता। क्योंकि शिव नारायणके कारण नहीं हैं। (घ) शिवपरक उपनिषदोंमें शिव रुद्रादिसे वाच्यका जगत्कारणत्व सुना जानेपरभी न तो उनका अवतारित्व किसी श्रुतिमें कथित है, और न उनकेलिये कहींभी "समाधिक्य" का निषेध किया गया है। वरंच अन्यत्र उनका श्रीराममंत्रजापक, श्रीरामाराधक और श्रीराममंत्रोपदेशक होना पाया जाता है, जिससे शिवजीका कारणत्व और सर्वाधिपतित्व सिद्ध नहीं हो सकता। (ङ) इसपर जो शैवोंकी यह उक्ति होती है कि "ब्रह्मभूतरुद्र और जीवभूतरुद्रमें परस्पर भेद होनेसे रामाराधकत्व और नारायणजन्यत्व आदि जीवभूतरुद्रकेलिये हैं, ईश्वरभूतरुद्रकेलिये नहीं।" उस उक्तिको उपस्थित करनेवालोंको यहभी बतलाना चाहिये कि कौन श्रुतियाँ जीवभूतरुद्रकी बोधक हैं और कौन ब्रह्मभूतरुद्रकी? सारांश यह है कि श्रुतिसिद्धांतके अनुसार यहाँ जो परत्व

वर्णन किया गया है वह रामात्मक होनेसे रामरूपी रुद्रके भावसे है।

६ ' बिकट बेषं बिभुं वेदपारं ' इति। जो पद १० और ११ में भगवान् शंकरका स्वरूप बालशशि भाल, त्रिनेत्र, हाथमें डमरू, त्रिशूल आदि, कटिमें व्याघ्र और गजचर्म धारण किये हुए वर्णन किया गया है यह स्वरूप सृष्टि, स्थिति और प्रलयभावका सूचक है और जीवके आत्यंतिक प्रलय अर्थात् मुक्तिकाभी द्योतक है। इसी मंगलमय स्वरूपसे तमोमय संहारभावको धारण करनेसे रुद्रमूर्तिभी प्रकट होती है। इससे स्पष्ट है कि भगवान्में एक शान्तमय शिव और दूसरा प्रलयकारी रुद्रभाव विराजमान् है। शंकरजीके इस विकट वेषके कुछ और आध्यात्मिक भाव यहाँभी लिखे जाते हैं। गौर—उनके प्रकृतिपर समस्त प्रकृतिका विलास प्रकाशित होता है। इसलिये उनका शरीर गौर है। शरीर गौर होनेका कारण यहभी है कि जिस केंद्रपर समस्त प्राकृतिक वर्णोंका विकास होता है, वहाँ श्वेतही वर्ण होता है। जैसे सूर्यसे सब रंगोंका विकास होता है तो सूर्य भगवान् श्वेत है। त्रिनेत्र और त्रिशूल—भगवान्के दोनों नेत्र पृथ्वी और आकाशके सूचक हैं। तृतीय नेत्र बुद्धिके अधिदैव सूर्य ज्ञानाग्निका सूचक है। इसी ज्ञानाग्निरूप तीसरे नेत्रके खुलनेसे काम भस्म हो गया था। मनका अधिदैवरूप चंद्र भगवान्के मस्तकपर विराज रहा हैं। इसप्रकार उनके ईश्वर भावके द्वारा संसार प्रकाशित हो रहा है। इसी ईश्वर भावको लिये हुए भगवान् शंकर हाथमें तीनों गुणोंके सूचक ' त्रिशूल ' को धारण किये हुए हैं। प्राकृतिक प्रलयभावके (अर्थात् सृष्टिप्रलयकर्ता भाव) सूचक रुद्रस्वरूपमें शिवजी भूत, भविष्य और वर्तमान् कालके भेदसे युक्त प्रलयकारी कालका सूचक त्रिशूल हाथमें धारण किये हैं। आत्यंतिक प्रलयकारीभाव दशामें (अर्थात् जिस दशामें जीव अपने आपको ब्रह्ममें लीन कर देता है उस भावदशामें) वही त्रिशूल आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक दुःखका सूचक है। क्योंकि त्रिविध दुःखोंसे दुःखी हुआ पुरुषही इस संसारसे मुक्त होनेकेलिये भगवानकी शरण लेता है।

'व्याल नृकपाल मालधारी डमरू' इति। प्राकृतिक प्रलयकारी सद्भावमें शिवजी मुंडमाली, भस्मावलिप्त, श्मशानवासी, भुजंगधारी, व्याघ्रगजचर्मधारी, विषपायी और डमरूधारी हैं। जिस प्रकार स्थूल, सूक्ष्म शरीर कार्य संस्कारोंकेसहित अविद्यात्मक कारण शरीरमें अवस्थान करते हैं उस कारण शरीरमें स्थूल और लिंग शरीरोंका केवल बीजरूपसे संस्करण मात्र अवशेष रहता है। यही कारण शरीर विशिष्ट चेतनकी समष्टिही रुद्र है। कारण विशिष्ट चेतन जो शरीरद्वयके नष्ट होनेपर अवशिष्ट रह जाता है, उन्हीं सब प्रलयकालीन जीवोंकी स्थितिकी सूचक भगवान् शंकरके गलेमें मुँडमाल पड़ी हुई है। स्थूलका अन्तिम परिणाम भस्म है। इस स्थूल ब्रह्मांडको भस्म रूपमें ले आनेवाले शंकर हैं। इस भावको सूचन करनेकेलिये उनके शरीरमें भस्म लगी रहती है। सुषुप्ति अवस्थारूप महाप्रलयही श्मशान भूमि है। वही रुद्रजीके निवासका स्थान है। काल भगवान्‌के अधीन है। इस भावको दरसानेकेलिये आप महाविषधर सर्पको धारण किये हैं। अति शौर्यशाली तथा बली जीवोंपर शासन करनेमें समर्थ है। इस भावको प्रकट करनेकेलिये आपने व्याघ्रचर्म और हस्तिचर्म धारण कर रक्खा है। संसारके अनिष्टसे अनिष्टकारी पदार्थोंकोभी अनुकूल बनानेमें आप समर्थ हैं। इस भावको प्रकट करनेकेलिये आप विषपान किया करते हैं। इस जगत्‌को विनाशकी ओर अग्रसर करनेवाले रात्रि दिवसरूप डमरूको आप धारण किये हुये हैं। जिससमय जीव अपनी सत्ताको शिवभावमें लीन कर देता है, उस समय जीवसे द्वन्द्वात्मक कर्मोंसे युक्त प्रकृतिके नाना प्रकारके धर्म अपने आपही निवृत्त हो जाते हैं। इस बातको प्रकट करनेकेलिये शंकरजी सर्पको अपना अलंकार बनाये है।' (स्वामी श्री गंगेश्वरानंदजी महाराज) प्रथमरूपमें ब्रह्मांडके साथ कालका संबंध है। ब्रह्मांडकी आयुके अनुसार महाकाल रुद्रभी परिच्छिन्न हैं। इसलिये रुद्रको व्याघ्राम्बरधारी कहा गया है। अपरिच्छिन्न ब्रह्मभाव शिवभाव किसी प्रकारके आचरणमें नहीं आ सकता। इसलिये भगवान् शंकर 'दिगंबर' हैं।

जिनकी श्रीपार्वतीजी गृहणी हो, कुबेर जिनके भंडारी हो

ऐसा होनेपरभी आपका श्मशान निवास, शरीरमें भस्मका धारण करना, हाथमें भिक्षापात्र लेकर भिक्षा माँगना यह सब आत्यंतिक प्रलयके साधनभूत त्याग वैराग्यादिको प्रकट करते हैं । भगवान् शंकर अपने इस प्रकारके आचरणसे जीवोंको यह बतला रहे हैं कि जो संसारकी सब प्रकारकी विभूतियोंको छोड़कर हाथमें भिक्षापात्र ग्रहण कर साधु हो जाता है और वैराग्यके उद्दीपनकेलिये श्मशानोंमें निवास करता है वही मोक्षको प्राप्त कर सकता है ।

पृथ्वीमें तमोगुणकी प्रधानता है । इसलिये शास्त्रोंमें भवानी शंकरको 'पृथ्वीके अभिमानी देव' लिखा गया है । पृथ्वीका सबसे उच्च प्रदेश हिमालयही उनका सिर है । हिमालयसे जगत्पावनी पुण्यसलिला श्रीगंगाजीका आविर्भाव होता है । इस भावको प्रकट करनेकेलिये शंकरजी गंगाजीको अपने मस्तकपर धारण करते हैं । सत्त्वगुणका पूर्ण विकास होनेपरही धर्मका विकास होता है । पशुजातिमें सबसे अधिक सत्वगुणका विकास गोजातिमें है । इसलिये धर्मका सूचक बैलही श्रीशिवजीका वाहन है ।

७ 'करुणाकरं गरल गंगाधरं' इति । करुणाकरं कहकर उसके प्रमाण स्वरूप 'गरल गंगाधरं' कहा । दोनोंका धारण करना करुणाभावसे हुआ । 'गरल कंठ', 'कृत गरल पानं' पद १० और ११ देखिये । त्रिभुवनव्यापिनी गंगाका आकाशसे अकस्मात् पृथ्वीपर प्रपात होनेसे अनेक अनिष्ट हो सकते हैं । अतः भगीरथजीकी प्रार्थनासे आपने उन्हें जटाओंमें धारण किया । इसीसे आपका नाम 'गंगाधर' हुआ।

विशेषणोंके क्रमका भाव शंकर हैं । इसीसे दाता हैं और सज्जनोंको सुख देते हैं । ब्रह्मादि देवताओंको सुख देनेकेलिये पार्वतीपति हुए । यथा '**सकल सुरन्हके हृदय अस शंकर परम उछाहु । निज नयनन्हि देखा जहहिं नाथ तुम्हार विवाहु ॥**'

पार्वतीमंगलमें कहा है कि विवाहके समय आपने षोड़श वर्षका

परम लावण्यनिधि रूप धारण किया था।* अतः ये सब विशेषण क्रमसे दिये गये। पार्वतीपति होनेसे कोई यह न समझे कि वे कामी होंगे। इसीसे 'काममदमोचनं' कहकर बताया कि ये योगीश्वर हैं। इन्होंने मदनके मदको नष्ट कर दिया। 'मदनमर्दन'से कठोरता और उदासीनता प्रकट होती है। अतः 'तामरस लोचनं' कहकर जनाया कि कठोर नहीं हैं, किन्तु करुणारसपूर्ण हैं। इसीसे तो रतिके विलापसे पिघलकर जगत्की स्थितिकेलिये उसे वर दिया है। इससे उथपे थपन और श्रेष्ठ जनाया। '**साँसति करि पुनि करहिं पसाऊ। नाथ प्रभुन्ह कर सहज सुभाऊ॥**' इस तरह शिवजीको परोपकारी, करुणामय, समर्थ, उथपे थपन, उजारिबसावन इत्यादि जनाया।

अनुसंधान (१२)

लोकनाथं सोक सूल निर्मूलिनं सूलिनं मोहतमभूरि भानुं।
काल कालं कलातीतमजरं हरं कठिन कलिकाल कानन कृसानुं॥४॥
तज्ञमज्ञान पाथोधि घटसंभवं सर्वगं सर्व सौभाग्यमूलं।
प्रचुर भव भंजनं प्रनतजनरंजनं दास तुलसी सरन सानुकूलं॥५॥

शब्दार्थ :—शोक=इष्टके नाश और अनिष्टकी प्राप्तिसे उत्पन्न मनोविकार, चित्तविकलता। सूल = काँटेके समान चुभनेवाली पीड़ा। यहाँ 'शूल' से त्रिविध शूल वा भव जानना चाहिये। त्रिविध भवशूलसे जन्म, जरा, मरण, स्थूलसूक्ष्म कारण त्रय शरीर, त्रयावस्था, त्रय गुण, सुत वित नारि, उत्पत्ति, पालन, लय और कामकर्म स्वभाव इत्यादि अर्थ किये जाते हैं। 'त्रय शूल' में दैहिक, दैविक, भौतिक तीनों प्रकारके अतिरिक्त औरभी अनेक प्रकारके सब शूल आ जाते हैं। निर्मूलिनं = जड़से उखाड़ डालनेवाले, अस्तित्व मिटा देनेवाले। सूलिनं = (शूलिनं) त्रिशूल धारण करनेवाले; शूलति लोकान् इति शूलः मृत्युः। इसके अनुसार 'मृत्यु' अर्थ होता है। भूरि =

* लखि लौकिक गति संभु जानि बड़ सोहर। भये सुंदर सतकोटि मनोज मनोहर॥ नील निचोल छाल भइ फनिमनि भूषन। रोम रोम पर उदित रूपमयपूषन॥ (पार्वतीमंगल। ६९।)

अत्यंत निबिड़, बहुत अधिक। कलातीत = (कला + अतीत) कलाओंसे परे, एकरस परिपूर्ण। कला = अंशभाग। घटना बढ़ना इत्यादि। जन्म, बाल, कुमार, पौगंड, किशोर, युवा, मध्या, वृद्धा, मरण आदि अवस्थाएँही हैं। अतीत = परे। यथा 'माया गुन ज्ञानातीत अमाना वेद पुरान भनंता' (बा०) अजर = जराअवस्थारहित, नित्य एकरस युवावस्थावाले। जरा = बुढ़ापा। कानन = बन, जंगल। तज्ञ = (तत्त्वज्ञ) तत् पदवाचक ब्रह्मको जो जाने। यथा 'तत्पदं ब्रह्म जानाति यः सा तज्ञः।' आत्मविद्। पाथोधि = पाथका (जल) अधिष्ठान, समुद्र। घटसंभव = अगस्त्यजी। यथा, 'तहाँ रहे सनकादि भवानी। जहं घटसंभव मुनिबर ज्ञानी॥' (उ०) सर्वगं = सर्वत्र गमन करनेवाले, जिसकी गति सर्वत्र हो। सर्वसौभाग्य। पद १० देखिये। प्रचुर = बहुत अधिक, उद्दंड, ढीठ, समूह। भव = संसार, कामदेव। रंजनं = आनंद देने या प्रसन्न करनेवाले।

नोट:—इस पदमें भजनके प्रथम पदमें 'बामदेव भजे' और दूसरे पदमें 'नौमि' क्रियाएँ आयी हैं। शेष पदोंमें कोई क्रिया नहीं है। इसलिये अन्तिम पदोंमें अन्वय करते समय 'अहं तुलसीदासः भजे' ऊपरसे जोड़ लेना होगा।

पद्यार्थ:—(तीनों) लोकोंके स्वामी, शोक और शूलको मूलसे उखाड़ फेंकनेवाले, त्रिशूलको धारण करनेवाले, निबिड अज्ञानांधकारको नष्ट करनेके लिये सूर्यरूप, † कालकेभी काल, (प्रेरक और नियंता) कलारहित, अजर आर कठिन कलिकालरूपी बनको (भस्म करनेकेलिये) अग्निरूप हरको मैं भजता हूँ। ४। ब्रह्मतत्वके ज्ञाता, अज्ञानरूपी समुद्रको सोखनेकेलिये अगस्त्यरूप, * सर्वत्र गमन करनेवाले समस्त सौभाग्योंके मूल (उत्पादक) अत्यन्त उद्दंड कामदेवके नाशक, प्रणतजनको (विनति भावसे शरणमें आनेवाले प्राणी)

---

† कोई कोई 'भूरि' को 'भानु' का विशेषण मानकर 'बारही कलाके सूर्य' ऐसा अर्थ करते हैं।

प्रसन्न करनेवाले और शरणागतपर सदा अनुकूल रहनेवाले आपको मैं तुलसीदास भजता हूँ । ५ ।

टिप्पणी—१ "लोकनाथं भानुं कृशानुं" इति। लोकनाथ कहकर शोक शूल निर्मूलिनं कहनेका भाव कि आप समस्त लोकोंके नाथ हैं । सब आपकी प्रजा है उस प्रजापर आपकी करूणा और वात्सल्य इतना है कि आप सदा उसके भवशूल और शोकोंके निवारणमें तत्पर रहते हैं। निर्मूलिनं कहकर शूलितं कहनेका भाव कि इसी भवशूलके हरनेकेलियेही आप त्रिशूल धारण किये रहते हैं । 'मोहतम भूरि भानु' का भाव कि आप सांसारिक शोकशूलही केवल नहीं मिटाते वरंच अज्ञान जो इनका मूलकारण है, उसकाभी नाश कर देते हैं जिसमें फिर शोकादि न होने पाये । 'मोह' को तम और शंकरजीको 'भानु' कहकर जनाया कि आप सहजही अज्ञानका नाश कर देते हैं। जीवके सन्मुख होतेही उसका मोह

---

* महाभारत वनपर्वमें समुद्रशोषणकी कथा इस प्रकार है कि वृत्तासुरवधके पश्चात् कालकेयादि समस्त दैत्योंका नाश देवताओंने प्रारम्भ किया। तब वे सब समुद्रमें जा छिपे। वे दिनमें वहाँ छिपे रहते थे और रात्रिमें निकलकर तपस्वी, धर्मात्मा ज्ञाननिष्ठ ब्राह्मणोंका संहार करते थे । यह कालकेय नामक दल बड़ा विकट था । किसीको पता न चलता था कि रात्रिमें कौन ऋषियों मुनियोंका नाश करता है । भगवान्‌की शरण जानेपर उन्होंने देवोंको सब बात बताकर दैत्योंके नाशका उपाय बताया कि समुद्रको सुखानेमें अगस्त्यजीके सिवा और कोई समर्थ नहीं हैं और उसे सुखाये बिना उन दैत्योंका पराभव नहीं हो सकता । इसलिये तुम किसी प्रकार अगस्त्यजीको इस कामकेलिये तैयार कर लो । आज्ञा पाकर देवगण अगस्त्यजीके पास गये और उनकी स्तुति करके अपना दुःख निवेदन किया और उनसे महासमुद्रका शोषण कर देवताओंके दुःख हरण करनेकी प्रार्थना की । अगस्त्यजीने समुद्रका पान कर लिया ।

ऐसाभी प्रसिद्ध है कि अगस्त्यजीने तीन आचमनोंमें 'रामाय, रामभद्राय, रामचंद्राय' कहते हुए समुद्र सुखा दिया । विशेष पद २० टि० २ में देखिये ।

विनष्ट हो जाता है। ज्ञानको सूर्य कहा है। यथा, 'उदयज्ञान भानुमत'। इस तरह यहभी भाव निकलता है कि आप दूसरेका अज्ञान सहजही नाश करते हैं और स्वयं विज्ञान सूर्यही हैं। आप सदा मोहके परे हैं। मोह कभी आपके पास जाही नहीं सकता। यथा, 'रवि सनमुख तम कबहुँकि जाही।', 'राम सच्चिदानंद दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा॥' 'रवि मंडल देखत लघु लागा। उदय तासु त्रिभुवन तम भागा॥' देवदत्तशर्माजी लिखते हैं कि (१) भगवान् शंकर शोकशूलको नष्ट करते हैं। यह बात ऋग्वेदसे प्रमाणित है। 'इमारुद्राय तवसे कपर्द्दिन क्षयद्वीराय प्रभारामहेमतीः। समसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामेऽस्मिन्ननातुरम्॥' (२) काल शिवजीका परमेश्वरवाची पर्यायी है। (३) सूर्य लोकपति, प्रजापति कहलाता है। यहाँ अज्ञानरूपी अंधकारको नष्ट करनेकेलिये सूर्यका सादृश्य दिया है। अतः लोकनाथ विशेषणसे आवश्यकता पूरी की। शिवही सूर्य हैं। 'य शुक्र इव सूर्यो हिरण्यभिवरोच्यते' (७।४३।५।)। अथर्ववेदमें शिवजीको 'सहस्रचक्षुः' कहा है। वाजसनेयसंहितामें 'अन्नौयस्ताम्रोअरुण उतवभुः सुमंगलः। ये चैन रुद्राऽभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशोवैष हेऽईमहे (१६।७)' इससे सहस्रनयन शिवका परिचय मिलता है। ऋग्वेदमें विद्युत् शक्तिको शिवका लीलाविकास कहा गया है। 'यातेविद्युदिव सृष्टा दिवस्परिः'। (७।४६।३) (४) 'कलि-कानन कृशानु' इति। यहाँ अग्नि और शिवकी एकता दिखायी है। 'त्वमग्निरुद्रअसुर' (२।१।६) निरुक्तमें लिखा है कि 'अग्निरपि रुद्र उच्यते तस्येवं भवति'। पुराणोंमें शिवही अग्नि हैं। 'इत्युक्तः शंकर क्रुद्धोवदनं घोरचक्षुषा। निर्दग्धकः प्रत्यानिशं ददर्श भगवानजः॥' (वामनपुराण २ अ०) मदनदहनके समय शिवका आग्नेयरूप विख्यात् है। ऋग्वेदकी व्याख्यामें सायणाचार्यने लिखा है कि 'रुद्रोयएषअग्निरिति श्रुतिः। रुद्रकृतमपि त्रिपुरदहनम् अग्नि कृतमेव इति अग्निः स्तूयते।' गोस्वामीजीकी

अगाध विद्वत्ता, परिचयचारुता, अन्वीक्षण शक्ति और गूढ़त्वका निर्देशक यही एक पद है। एक एक शब्द, एक एक मात्रा साभिप्राय और गूढ़ भावोंसे ओतप्रोत हैं। विशिष्ट विशेषणोंकी बहार और विशेष्योंका सामंजस्य अद्भूतपूर्व है। यहाँ परंपरित समअभेद रूपक है।

'काल कालं' का भाव कि महाप्रलय होनेपर आपही शेष रह जाते हैं। यथा '**सकल लोकांत कल्पांत शूलाग्रकृत दिग्गजाव्यक्त गुण नृत्यकारी ॥ शेष सर्वेश आसीन आनंदबन**' (पद ११) '**कालकालं कलातीतमजरं**' से आप जरामरणसे रहित हैं, सदा एकरस पूर्ण हैं, मृत्युंजय एवं महामृत्युंजय हैं और दूसरोंकीभी मृत्युको हर लेते हैं। '**कालकलयति प्रेरयति कालकालं तं**' अर्थात् जो कालका प्रेरक है उसको 'लोकनाथ' कहकर 'कालकालं' अर्थात् जो काल '**अंडकटाह अमित लयकारी**' है उसकेभी प्रेरक और नियंता बताकर आपको देश और काल दोनोंसे रहित जनाया। 'कलिकाल कानन कृशानु' मेंभी परंपरित समअभेद रूपक है।

११ 'हरं' इति। यजुर्वेदके रुद्राध्यायमें आपको '**स्तेनानांपतिः**' '**तस्कराणांपतिः**' अर्थात् चोरोंका स्वामी कहा है। जैसे श्रीमन्नारायण और श्रीकृष्णजीको पांडवगीता और गोपालसहस्रनाममें 'चौर' और 'चौरशिखामणि' कहा है। चोर कहनेका भाव पांडवगीताके निम्न श्लोकसे स्पष्ट हो जाता है। "**नारायणो नाम नरो नराणांप्रसिद्ध चौरः कथितः पृथिव्याम्। अनेक जन्मर्जित पापपुंजं हराय शेषं स्मशोन पुंसाम्॥**" स्मरणमात्रसे आप उनके जन्मार्जित पापसमूहको तुरंत हर लेते हैं वा झपट लेते हैं। यही भाव 'हर' शब्द और 'हरि' काभी हैं।

१२ (क) 'सर्वसौभाग्य मूलं' इति आप सौभाग्यकी जड़ हैं। आपके बिना सौभाग्यरूपी वृक्ष स्थिर नहीं रह सकता। वह आपकी उपासनासे शीघ्र बढ़ता है। (ख) यह क्रमका भाव हुआ। 'अज्ञान पाथोधि घटसंभवं' में समअभेद रूपक है। एकही ब्रह्मत्रिदेवरूपसे अव-

तरित है, अतः इसकोभी 'सर्वंग' कहा है। (ग) 'प्रचुरभव भंजनं' इति। 'भव' का अर्थ कामदेव किया गया। दूसरा अर्थ (संसार) लेनेसे भाव होगा कि जो गाढ़ संसारमें पड़ा है उसके संसार अज्ञानके नाशक है। पहले मोहनाश और सौभाग्य मूल कहकर 'भव भंजन' और 'जनरंजन' कहा। क्योंकि अज्ञानके नाशके विना भवसे छुटकारा नहीं होता। आप सौभाग्यके मूल हैं। इससे आप प्रणतजनको लोक परलोक दोनोंका सुख देते हैं जिसकी प्राप्तिसे उन्हें आनन्द होता है। आप शरणागतपर रूठते नहीं यही जानकर प्राणी आपकी शरणमें आते हैं। यह क्रमका भाव हुआ। 'अज्ञान पाथोधि घटसंभवं' में समअभेद रूपक है।

१३ पौराणिक कथाके अनुसार अगस्त्य एक ऋषि हैं और एक नक्षत्रकाभी नाम है, जो जलशोषणमें समर्थ है। वेदोंके अनुसार भगवान् शिवमें ये सब शक्तियाँ विद्यमान् हैं। प्रमाण ऋग्वेद ७।४६।२ तथा २।३३।७ में वर्णित है। 'तज्ञ' अर्थात् आत्मविद् शिवही हैं। इसीलिये वे अजर हैं, मृत्युंजय हैं। क्योंकि '**तमेनविदित्वा-तिमृत्युमेतिनान्यः पन्था विद्यतेऽयन्नाय**'। (यजु०)। शिवजी समस्त सौभाग्योंके मूल हैं। इसके प्रमाण ऋग्वेदमें (१।११४।१) तथा १।४३।३, ७।३५।६,७।४६।३१,८।२६।२५,१।११४।१,२।३३।६ है। 'सर्वंग' शिवका और जलकाभी नाम है। कहीं कहीं मरुतकाभी नाम प्राप्त होता है। किन्तु अन्वीक्षणशक्तिसे विचार करनेपर जल और मरुत शिवकेही रूपांतर हैं। यथा, '**सोऽर्यमास वरुणः सरुद्रःस महादेवः**'। (१३।४।४) पौराणिक शिव उपासनामेंभी '**ॐ भवाय जलमूर्त्तये नमः**' कहा जाता है। ऋग्वेदमें शिव मरुद्गणोंके पिता माने गये हैं। १३।४।४।

गोस्वामीजीने अपने गंभीर अध्ययनके आधार और अनुभवके बलपरही शब्दयोजना और पदविन्यासोंका सामंजस्य मुक्ताविद्रुमकी भांति मिलाया है। उनके ग्रंथ अगाधसिंधु हैं, जिनमें अवगाहन करनेसे सौभाग्य एवं परिश्रमके अनुरूप रत्न प्राप्त होते हैं।

१३ [६] राग वसंत

सेवहु सिवचरनसरोज रेनु। कल्यान अखिल प्रद कामधेनु ॥१॥
कर्प्पूर गौर करुना उदार। संसार सार भुजगेंद्र हार ॥२॥
सुख जन्मभूमि महिमा अपार। निर्गुन गुननायक निराकार ॥३॥
त्रयनयन मयनमर्दन महेस। अहँकार[1] निहार उदित[2] दिनेस ॥४॥
बर बालनिसाकर मौलि भ्राज। त्रैलोक सोक हर प्रमथराज ॥५॥

शब्दार्थ :— सेवहु = सेवना, आराधन करना, उपासना करना, पूजना। यथा '**सेवत सुलभ उदार कलपतरु पार्वतीपति परम सुजान**'। नियमपूर्वक खाना, पीना, लगाना, शिरोधाय करना, काममें लाना, प्रयोग करना। सरोज = कमल। रेनु (रेणु) = रज, धूलि। कल्यान (कल्याण) = मंगल, शुभ, मुक्ति। कामधेनु = एक गौ जो क्षीरसमुद्र मथतेसमय निकली थी। यहभी १४ रत्नोंमेंसे एक है। इससे जो कुछ माँगा जाय मिलता है। कर्प्पूर = पद १० में देखिये। करुना उदार = जिसकी करुणा बहुत भारी है। जो करुणावान् (दयावान्) होनेसे दया करके सुखके दाता हैं। (हु०)। सार = किसी पदार्थका मुख्य या असली भाग; तत्त्व, सत्व, निष्कर्ष या निचोड़, सत्य वा नित्य पदार्थ। भुजगेंद्र=(भुजग +इन्द्र) सर्पराज शेषजी, वासुकी आदि। हार=सोने, चांदी, मोती आदिकी माला जो गलेमें पहनी जाय। जन्मभूमि=जन्मस्थान, मूलकारण। गुननायक =सत्व, रज और तम तीनों गुणोंके स्वामी, नियंता वा प्रवर्तक। गुणोंको अपनी आज्ञानुसार चलानेवाले। निराकार = मायारहित, पंचभौतिक आकाररहित शुद्ध आत्मस्वरूप। त्रयनयन = तीन नेत्रवाले। यथा, '**इंदु पावक भानु नयन**'। पद ११ में देखिये। अहंकार = अभिमान। यह आत्मस्वरूपको भुलाकर मनुष्योंको मूढ़ या जड़ बना देता है। उदित = उदय हुए, निकले हुए। उदयकालके। दिनेस = (दिन + ईस) = सूर्य। बालनिसाकर = बालशशि, द्वितीयाका

---

१ अहंकार–रा०, इ०, प्र०, ज०, ५१, ६९, आ०। अहँकार–७४, ६६। हंकार–भा०; बे०। २ उद्दित–१९०६, शि०, ५१।

चंद्रमा। मौलि=पद १० में देखिये। (प्रमथ = शिवजीके एक प्रकारके ३६ करोड़ गण जो बड़े मायावी कहे गये हैं। इनकी ऊँची, जातियाँ शंकरजीकेही समान हैं। प्रमथों आदिका विस्तारसे वर्णन शिवपरिषदोंकी उत्पत्तिके प्रकरणमें कालिकापुराणके २९ वें अध्यायमें मिलता है। भूत, वेताल, पिशाच, नीच जातिके प्रमथ, झोटिंग सभी रणमें भाग लेनेवाले नीच प्रकारके शिवगण हैं। प्रमुख प्रमथादि सब रुद्रगण हैं, सब पार्षद हैं और ब्राह्मी आदि माताएँ हैं यथा 'प्रमथाः स्युः परिषदा ब्राह्मीत्याद्यास्तुमातरः' इत्यमरः) प्रमथराज = प्रमथ नामक रुद्रगणोंके शासक वा स्वामी। पद ११ देखिये। सोक=इष्टके नाश और अनिष्टकी प्राप्तिसे उत्पन्न मनोविकार। किसी प्रिय व्यक्तिके अभाव या पीड़ा आदिसे अथवा दुःखमयी घटनासे उत्पन्न क्षोभ। यह मृत्युका पुत्र कहा गया है।

पद्यार्थ—श्रीशिवजीके चरणकमलकी धूलिका सेवन करो, जो समस्त कल्याणोंकी देनेवाली कामधेनु है। १। (शिवजी) कर्पूरके[1] समान (उज्वल और सुगंधयुक्त) गौरवर्ण और भारी करुणावाले[2], संसारके सार, (संसार असार है, अनित्य है, इसमें यदि कुछभी सार पदार्थ नित्य तत्त्व है तो वह 'शिवतत्त्व' ही है। आपही वह तत्त्व[3] हैं।) सर्पराजोंका हार

---

१ कपूर जैसा आजकल नकली मिलता है वैसा नहीं, वरन् भीमसेनी कपूर सदृश जो बड़ाही श्वेत और बहुत सुगंधवाला होता है।

२ अर्थान्तर (क) 'करुणाके कारण उदार'। (हु०) (ख) 'करुणागुण भरे और उदार'। (वै०) (ग) 'करुणाके दाता'। (मु०, वि०) (घ) 'करुणाकी मूर्ति और परम दानी'। (ह०) (ङ) 'दयालु और दानी'। (वीर) 'करुणा उदार' का 'करुणामें श्रेष्ठ वा भारी करुणावाले' अर्थ होता है। जैसे महिमाअपारका अपार महिमा वाले। भाव यह है कि ऐसी करुणा किसीमें नहीं है। यथा, 'सकहु न देखि दीन कर जोरे'। हाथ जोड़े देखतेही द्रवित होते हैं।

३ अर्थान्तर (क) 'संसारके सार अर्थात् सबके तत्त्व।' (वै०, भ०) (ख) 'अन्तर्यामी रूपसे सबमें बास करनेवाले'। (वै०) (ग) 'जगत्के प्रधान'। (वीर)

धारण करनेवाले हैं (अर्थात् वासुकी आदि बड़े-बड़े सर्पोंको गलेमें मणिमाणिक्यादिकी मालाकीतरह लपेटे वा पहने रहते हैं।) । २ । आप सुखके उत्पत्तिस्थान, अपारमहिमावाले, मायिक गुणोंसेरहित दिव्य गुणोंके स्वामी एवं सत्वरजतम गुणोंके प्रवर्त्तक वा नियंता*, निराकार हैं। (अर्थात् मायिक पंचभौतिक शरीर वा आकृति आपकी नहीं है, वरंच आप शुद्ध चिदानंदमय आत्मस्वरूप देहीदेहविभागरहित शरीरधारी हैं) । ३ । आप तीन नेत्रवाले, कामदेवके नाशक, देवदेवमहादेव, अहंकाररूपी कुहरे वा पालेकेलिये उदय हुए सूर्य हैं

* 'गुण' इति । (१) सांख्यकार सत्व, रज, तम ये तीन गुण मानते हैं। इन्हींकी साम्यावस्थाको प्रकृति कहते हैं, जिससे सृष्टिका विकास होता है। वैशेषिकने गुणकी परिभाषा इस प्रकार की है। 'जो द्रव्यमें रहनेवाला हो, जिसमें कोई गुण न हों, जो संयोग विभागका कारण न हो, वह गुण है।' रूप, रस, गंध, स्पर्श, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह और वेग ये मूर्त्त द्रव्योंके गुण हैं। द्रव्यत्व दो प्रकारका है। सांसिद्धिक और नैमित्तिक। बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, भावना और शब्द ये अमूर्त द्रव्योंके गुण हैं। संख्या, परिमाण, पृथकत्व, संयोग और विभाग ये मूर्त और अमूर्त दोनोंके गुण हैं। ये २६ गुण दो प्रकारके माने गये हैं। विशेष और सामान्य। द्रव्य स्वयं आश्रय हो सकता है, पर गुण स्वयं आश्रय नहीं हो सकता। कर्म संयोग विभागका कारण होता है, गुण नहीं। (श० सा०) । विशेष पद ५८ में लिखा गया है। (२) गुण दो प्रकारके हैं। नैसर्गिक और अर्जित। नैसर्गिक गुणोंमें शक्ति, शौर्य, धैर्य, सौंदर्य, सौहार्द, शील, उदारता, धार्मिकता, नीतिमत्व, क्षमा, दया, कुलीनता, स्वतंत्रता, आनंदमयता इत्यादि बड़े ऊँचे दर्जेके गुण हैं। आर्जित गुणोंमें तेज, दृढ़ता, चातुर्य, नम्रता, गंभीरता, विद्या, ऐश्वर्य, ज्ञान, धन, शरणपालकता इत्यादि गुण सर्वमान्य हैं। इन उपर्युक्त गुणोंके अनुसार आचरण करनेसेही कीर्ति, यश और पुण्यकी प्राप्ति होती है। 'निर्गुण गुणनायक' में विरोधाभास अलंकार है।

। ४ । जिनके ललाटपर सुंदर द्वितीयाका चन्द्रमा सुशोभित है, आप तीनों लोकोंके शोकोंको हरनेवाले, प्रमथों (आदि रुद्रगणों) के स्वामी हैं । ५ ।

टिप्पणी—१ (क) 'सेवहु सिव चरन सरोज रेनु' इति । चरणको कमल कहकर उसके परागके सेवनका आदेश देकर जनाया कि इन चरणोंके मधुकर बन जाओ । अपने मनको मधुकर रूपसे वहाँ बसा दो । मिलान कीजिये '**मुनि मन मधुप रहत जिन्ह छाये ।**', '**मन मधुपहि पनु कै तुलसी रघुपतिपदकमल बसैहौं ।**' (वि० १०५) ये सब भाव 'सेवहु' पदसे जनाये । (ख) यह उपदेश वसंतरागद्वारा अपने मनको कर रहे हैं । (ग) 'शिव' के सम्बन्धसे 'कल्यानप्रद' शब्द सार्थक है । 'शिव' का अर्थही है 'श्रेयस्कर' । '**सुमंगलं तस्य गृहे विराजते । शिवेति वर्णोभुवियो हि भाषत ।**' जो 'शिव' ये अक्षर उच्चारण करते हैं उनके घरमें सब रहते हैं, अतः उन्हें कल्याणप्रद कहा । (घ) 'कल्यान अखिल प्रद कामधेनु' इति । यहाँ कामधेनुका रूपक देकर 'अखिल कल्याण' का अर्थ खोल दिया है कि अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष, इहलोक और परलोक, दोनों सुखोंकी दातृ हैं । यहां समअभेद रूपक हैं ।

२ 'कर्प्पूर गोरं' से परमशान्त, योगीश्वररूप जनाया । पूर्व पद १० में 'देव कुंदेंदु कर्प्पूर दर गौर विग्रह रुचिर' और पद १२ में 'कंबु कुंदेंदु कर्प्पूर गौरं शिवं सुंदरं सच्चिदानंदकंदं' कहकर स्तुति की हैं । यहाँ 'कर्प्पूर गौर' मात्र कहकर कुंद, इंदु, दर और कंबु जो पद १० और १२ में कर्प्पूर और गौर शब्दोंके पहले आये हैं उन सब विशेषणोंकाभी ग्रहण यहाँ सूचित कर दिया है । कपूर शुद्धसत्त्व-स्वरूपकाभी बोधक है ।

३ 'भुजगेंद्र हार' का भाव कि (क) शेषजी भगवान्‌के यशका कथन निरंतर करते हैं । आप वह यश सदा सुननेकेलिये उनको हृदयसे लगाये, गलेसे लपेटे रहते हैं । इससे परम भागवतका निरंतर संग दिखाया । (ख) सर्प कुटिल होता है । उसको धारण करके जनाया कि आप कुटिलोंकेभी आश्रयदाता हैं । यह एक भाव 'बर बालनिसाकर मौलि

आज ' कामी है। (ग) यहाँ कोई एक नाम न देकर 'भुजगेंद्र' कहनेसे शेष, वासुकी आदि सभी बड़े बड़े सर्पराजोंकोभी जना दिया है। (घ) इससे विषपर विजयप्राप्ति और अहिंसा-मूर्त्तिभी जनाया। अहिंसावृत्तिसे त्याग हो जाता है। यदि ज़हरपर विजय हो जाय तो फिर सर्प तो बड़ेही सुंदर काले, चितले आदि रंगोके होते हैं। गलेमें 'टाई' (Tie) कीतरह उनका प्रयोग कौन बड़ी बात है? (लमगोड़ाजी)।

४ (क) 'सुख जन्मभूमि' इति। इस विशेषणसे आपको आनंद-मूर्ति, आनंदकंद, और दूसरोंकेलिये आनंद प्राप्तिके स्थान जनाया। ध्वनित भावार्थ यहभी है कि आपसे जो विमुख हैं उनको सुख नसीबभी नहीं हो सकता। यथा 'जिमि सुख लहै न संकर द्रोही।' (ख) 'निर्गुन गुननायक' कहकर 'निराकार' कहनेका भाव यह है कि निर्गुण होते हुएभी सृष्टिकार्य लोकसंग्रहहेतु जब जैसी आवश्यकता होती है आप अपनी मायासे सत्व रज तम गुणोंको धारण कर लेते हैं और निराकार होते हुएभी आप भक्तभावन ऐसे हैं कि भक्तोंकी भावनाकेलिये आप गुणद्वारा रूपकी कल्पना कर लेते हैं। फिरभी आप परम शांत आनंदस्वरूपही बने रहते हैं। (ग) 'सुख' की जन्मभूमि कहनेमें 'द्वितीयनिदर्शना' अलंकार है।

५ (क) 'त्रयनयन'। इंदु, पावक, भानु ये तीन नेत्र हैं। इन तीनों नेत्रोंका भाव यहभी है कि शिवजी चंद्रके समान जगदानंददायक, अग्नि-समान रागादि दोषों एवं त्रयतापोंके नाशक और सूर्यसमान तमो-नाशक हैं। विशेष पद १०, ११, १२, में देखिये। (ख) 'त्रयनयन' कहकर 'मर्दन मयन' कहनेका भाव कि इसी तीसरे नेत्रसे आपने कामदेवका नाश किया। अग्नि वैराग्यका चिन्ह है। इससे परम विरक्त ब्रह्मचारी और इन्द्रियजित् जनाया। कामदेवको बलका गर्व था। उसे जीता, अतः 'महेश' कहा। महेश्वररूप संहारक है। संहार करनेके कारण 'महेश' पद दिया। (ग) भगवान् शंकर तत्पुरुष एवं ईशानरूपसे निग्रह एवं अनुग्रहरूप कार्य करते हैं। व्यष्टिदृष्टिसे

इन (निग्रह अनुग्रह) कृतियोंके अन्तर्गत मदनमर्दन, त्रिपुरमर्दन और वरदानादि दिव्य चरित्र आ जाते हैं।

६ ' अहंकार निहार उदित दिनेस ' इति। लीला अभिनयमें एकपाद विभूतिमें ' अहंकार ' आपका स्वरूप है। यथा ' अहंकार सिव ' (लं०) पर वस्तुतः आप दूसरोंके अहंकारके सहजही नाशक हैं। आपके पास तो अहंकार फटकही नहीं सकता। जैसे सुर्योदयसे कुहरा रहता नहीं और न उसकी यहाँ तक पहुँचही है। यहाँ ' समअभेदरूपक ' है। शिवजी अहंकारके नाशक हैं तब उनको तमोगुणी कहना अयोग्य है। वे तो तमोगुणके नियंता हैं, अधिष्ठाता हैं। अहंकारसे सृष्टिकी उत्पत्ति होती है। आप उसके नाशक अर्थात् संहार देवता है। अतः 'मयनमर्दन' कहकर ' अहंकार ' कहा।

श्रीलमगोड़ाजी लिखते हैं कि " देखिये न! तमोगुणके नियंता होनेहीसे तो हलाहलपर नियमन है। तमोगुण और तमोगुणके नियंताका अंतर सदा याद रखना चाहिये, नहीं तो शंकरजीकी मूर्ति और कीर्तिके समझनेमें भ्रमका भय है। "

७ (क) ' बर बाल निसाकर मौलि भ्राज ' इति। चंद्रमाकी कलाको शीशपर धारण किये जानेसे उसे ' बर ' विशेषण दिया। वह भगवान् शंकरके शीशके संबंधहीसे वंदनीय हुआ है। यथा, ' यमाश्रितोहि वक्रोऽपि चंद्रः सर्वत्र वंद्यते ' (बा० मं०), ' द्वैज न चंदा देखिये उदय कहा भरि पाख '। (दोहा०)। पूर्ण चंद्र कलंकित है। ' दिन मलीन सकलंक ' (बा०), ' ससि गुरुतिय-गामी० ' (अ०)। द्वैजचन्द्र कलंकरहित माना जाता है। शंकराश्रित होनेसे गुरुतल्पगामी होनेका कलंक लोग चित्तमें नहीं लाते। पद ११ ' ललित ललाट पर राज रजनीस कल ' में देखिये। (ख) ' त्रैलोक सोकहर ' कहकर कालकूटपान और त्रिपुरासुरवधकी कथा सूचित कर दी। दोनोंसे त्रैलोक्य पीड़ित था। ' त्रैलोक सोकहर ' के साथ ' प्रमथराज ' कहनेका भाव कि इन्हीं गुणोंद्वारा आप लोकका शोक

हर लेते हैं। आप कुटिल प्रेतगणोंके स्वामी होते हुएभी संसारका कल्याण करते हैं।

पं० देवदत्तशर्माजी कहते हैं कि 'पाँच पदोंद्वारा शिवजीकी चरणरज सेवन करनेका अभिमत प्रदान किया है। इन पाँचों पदोंके एक एक वाक्य अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखते हुए परस्पर '**सूत्रेमणिगणा इव**' केसे ओतप्रोत हैं। सभी वाक्य और पद रहस्य एवं अभिप्राययुक्त हैं। इन पाँचों पदोंकी समष्टि पंचाननशिवको इंगित कर रही है। ये पद '**ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं**' इस प्रसिद्ध स्तुतिको स्मरण कर शायद लिखे गये हों। किन्तु इनमें गोस्वामीजीकी अनोखी सूझबूझ और मौलिकताका पुट बड़ीही पटुता और बारीकीसे सन्निविष्ट है। पंचानन शिवकी सभी शक्तियाँ, उनकी सभी खूबियाँ पंचीकरणन्यायसे प्रतिपादित हैं।'

अनुसंधान (१३)

जिन्ह कहुं बिधि सुगति न लिखी भाल।
तिन्ह की[३] गति कासीपति कृपाल॥ ६॥

उपकारीको पर हर समान।
सुर असुर जरत कृत गरल पान॥ ७॥

बहु कल्प उपाया[४] करि अनेकु।
बिनु संभुकृपा नहिं भो[५] बिबेकु॥ ८॥

---

३ कहं—प्र०। ४ उपाया करि अनेकु—६६, रा०, ज०। उपाय करिय अनेक—ह०, भ०, दी०, मु०, ७४, टी०। उपाय करी अनेकु—भा०, बे०। उपायन करि अनेकु—५१, शि०, वै०, बक्सर, वि०। उपाई नर कर अनेकु—१५। उपाय करिये अनेकु—प्र०। ५ भो—६६, ज०। भे—रा०। भौ—डु०, ह०। भव—भा०, बे०, प्र०, ५१, ७४, मु०, ६९, वै०, वि०, भ०, दी०। 'भो' पाठ प्राचीनतम है। कयी पोथियोंमें यह या उसका कुछ रूपान्तर (भों, भौ) मिलताभी है

विज्ञानभवन गिरिसुतारमन[६]।
कह[७] तुलसिदास मम त्रास समन ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—जिन्ह कहुँ = जिनकेलिये, जिनके। गति = अंतिम उपाय। यथा 'तुम्हहिं छाँड़ि गति दूसरि नाहीं। बसहु राम तिन्हके मनमाहीं ॥' (अ०) तिन्हकी गति = उनको शरण देनेवाले। पर = दूसरा, पराये या दूसरेका। यहाँ दोनों अर्थ हैं। उपाया = उपाय, साधन, तदबीर। यथा 'कहहि करहु किन कोटि उपाया। यहाँ न लागी राउरि माया॥' (अ०), 'मुधा भेद जद्यपि कृत माया। बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया॥' (उ०) यह 'उपाय' का बहुवचन है। अर्थ न समझनेसे लोगोंने पाठ बदल दिया है। भो = भया, हुआ। यथा 'रघुकुलकैरव चंद भो, आनंद सुधा को' (१५२) त्रास = भय, साँसति। समन = नाश करनेवाले।

पद्यार्थः—जिनके ललाटपर ब्रह्माजीने सद्गति नहीं लिखी उनकी गति दयालु काशीपति हैं। ६। हरके समान परोपकार करनेवाला दूसरा कौन है? अर्थात् कोई नहीं। (देखिये, विषकी विषमज्वालासे) जलते हुए देवताओं और (की रक्षा) दैत्योंकेलिये वे विष पी गये। ७। अगणित कल्पोंतक अनेक उपाय करनेपरभी बिना शंभुकी कृपाके विवेक नहीं होता* और न हुआ है। ८। तुलसीदासजी कहते

और अर्थभी बैठ जाता है। ६ रमन—६६, रा०, ज०, भ०, १०, मु०, वै०, दी०। रवन—भा०, वे०, ५१, प्र०, १५। ७ कहि—६६। पद १४ मेंभी 'कहि' है। अतएव लेखकको प्रमाद कहनेमें संकोच होता है। परन्तु इसका प्रयोग मेरी समझमें नहीं आया। कहै—प्र०। कह—प्रायः औरोंमें।

* 'भव विवेकु' पाठका अर्थ होगा 'संसारका ज्ञान'। संसारका ज्ञान क्या है? यह पद १८८ में बताया है। यथा 'मैं तोहि अब जान्यो संसार। देखत ही कमनीय कछू नाहिन पुनि किये विचार। ज्यों कदली तरु मध्य निहारत कबहुं न निकरै सार।' संसार देखने-मात्रका सुन्दर है, रमणीय है। पर विचार करनेपर इसमें कुछ सार नहीं है।

हैं कि विज्ञानधाम गिरिजापति मेरे त्रासके नाशक हैं। ९।

'सेवहु' के दो अर्थ उपर दिये गये। दोनोंका भाव यहाँ है। चरणरजका पूजन करो, मस्तकपर लगाओ, शरीरमें लगाओ, नेत्रोंमें लगाओ इत्यादि सब भाव यहाँ दर्शाये हैं।

टिप्पणीः-८ 'जिन्ह कहुं बिधि सुगति न लिखी भाल' इति। इससे जनाया कि विधाताके अंक अर्थात् उनके लिखे एवं किये हुएकोभी मेट देनेको शिवजी समर्थ हैं। यथा 'भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी।' (बा०), 'जिन्ह के भाल लिखी लिपि मेरी सुखकी नहीं निसानी। तिन्ह राँकन्ह को नाक सवाँरत हौं आयो नकबानी। पद ५ के सब भाव इसमें कह दिये गये। शिवजी ब्रह्माके अधिकारमें क्यों खलेल डालते हैं इसका कारण दूसरे चरणमें बताते हैं कि वे काशीके पति हैं जहाँ मुक्तिका दान निरंतर होताही रहता है और कृपाल हैं। 'देख न सकत दीन कर जोरें।' अतएव वे उन अभागोंकोभी सुख, संपत्ति, सद्गति दे डालते हैं।

९ (क) 'उपकारी को पर हर समान' इति। कोई कोई को पर' का 'कोऽपर' इस प्रकार पदच्छेद करते हैं। परंतु ऐसा करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। 'उपकारीको पर' कहकर उसका प्रमाण आगे देते हैं कि उससमय ब्रह्मा, विष्णु सभी वहाँ उपस्थित थे। पर त्रैलोक्यका शोक किसीने हरण नहीं किया। साधारण बात कहकर विशेषसे समर्थन करना 'अर्थान्तरन्यास अलंकार' है।

(ख) 'सुर असुर जरत कृत गरल पान' इति। पद ३ मेंभी काल कुटजर जरत सुरासुर निज पन लागि कियो बिषपान' कहा है। परंतु पद ११ में 'जरत सुर असुर नर लोक शोकाकुलं मृदुलचित कृत गरल पानं' कहकर नरलोकभी जलना जनाया है। पयसिंधुमंथनमें देवता और दैत्योंने भाग लिया। इसलिये उन दोनोंका जलना कहा। पद ११ में विषकी विषमता कही कि सुरलोक, असुरलोक और नरलोकमें उसकी झार फैल गयी थी जिससे लोग जल

रहे थे। मनुष्योंको न कहा क्योंकि जब सुरासुरही जल रहे थे तब मनुष्य किस गिनतीमें हैं !

१० (क) ' बहु कल्प उपाया करि अनेकु ' इति । ' **यह गुन साधन ते नहिं होई। तुम्हरि कृपा पाव कोई कोई।** ' विवेकका होना यह गुण कृपासाध्य है, पुरुषार्थसाध्य नहीं है। अनेक उपाय अर्थात् योग, तप, यज्ञ, जप आदि साधन जो शास्त्रोंमें कहे गये हैं शिवजीकी कृपासे साध्य होते हैं। (ख) ' संभु कृपा ' का भाव कि ' शं ' (कल्याण) की ' भु ' (जन्मभूमि), कल्याणके उत्पत्तिस्थान आपही हैं और कल्याण विवेकसे होता है। अतः सिद्ध हुआ कि शंभुही विवेकके देनेवाले हैं। (ग) मानसमें कहा है कि ' **बिनु सत्संग बिबेक न होई। रामकृपा बिनु सुलभ न सोई॥** ' यहाँ कहते हैं कि ' **बिनु संभुकृपा नहिं भो बिबेकु।** ' यह दोनों बातें कैसे एकसाथ घटित हो सकती हैं ? इसका उत्तर यह है कि इसमें शंकाकी कोई बात नहीं है। शिवजी भागवत शिरोमणि हैं। **वैष्णवानां यथा शंभुः।** ' कहाही है। भक्त और भगवान्‌में अभेद है। यथा, ' **संत भगवंत अंतर निरंतर नहिं किमपि कह बिमल मति दास तुलसी।** ' ' **भक्ति भक्त भगवंत गुरु चतुर नाम बपु एक।** ' (भक्तमाल श्रीनाभाजीकृत) दूसरे शिवरूप रामजीकाही एक रूपान्तर हैं। पद ११ में ' रामरूपी रुद्र ' कहाही है। श्रीरामजीका नाम ' शिव ' भी है।

११ विज्ञानभवन अर्थात् विज्ञानका निवासस्थान वा घर आपही हैं। अतः यह अन्यत्र नहीं प्राप्त हो सकता। आपसेही मिल सकता है। गिरिसुतारमण होनेसे परोपकार परायण रहते हैं। इसीसे स्वयं कृपा करके विज्ञान देकर भवत्रासका नाश करेंगेही।

प्रारंभमें ' सेवहु सिवचरन रेनु ' कहकर फिर सेवाका कारण बताया कि वह चरणरेणु ' अखिल कल्याणप्रद ' हैं। कैसे जानें कि वह रज अखिल कल्याणका दाता है ? इसकेलिये शिवजीकी करुणा, उदारता, दया, सामर्थ्य और वात्सल्य आदि दिव्य गुणोंको कहते हुए अन्तमें

कविने यहभी कह दिया कि 'मम त्रास समन' अर्थात् हमारे दुःखोका उन्होंने नाश किया है। यह सब शिवचरणरजसेवनसे हुआ। जो ऐसे महान् देव हैं, उनके चरणरजमें समस्त कल्याणके दातृत्वकी शक्ति होनेमें आश्चर्यही क्या है? अतएव '**सेवहु सिव चरन सरोज रेनु**।' कहा है। इसी एक साधनसे विवेक, विज्ञान आदि सब कुछ प्राप्त हो जायगा।

१२ शिवजीके विशेषणोंके विशेष आध्यात्मिक भाव—(क) 'शिव' इति जगत्स्रष्टा परमात्माका नाम 'शिव' है। इसका अर्थ 'कल्याण करनेवाला' है। जब कल्याण करनेवाला पदार्थोंका विचार करते हैं तब वही शिवतर हो जाता है। सारे ब्रह्मांडमें वही सबसे अधिक सुख और शांति देनेवाला है। इस कारणसे ऋषि उसे शिवतम कहते हैं। इन विशेषणोंसे शिवतर और शिवतमकी व्याख्या यहाँ सूचित की।

(ख) 'कर्प्पूर गौरं' इति'। वे कर्प्पूर गौर हैं अर्थात् सभी सत्त्वगुण उसी 'शिवतत्व' से प्रकट होते हैं। सत्त्वगुण स्वच्छ प्रकाशमय है। शिवमें जो दोषरहित तत्व हैं वही गौरवर्णता है। कुछ लोग कहते हैं कि दयालु परमात्माके रूप रंग हिन्दूधर्म ग्रन्थोंमें क्यों लिखे हुये हैं? विद्वान् उनका यह तात्पर्य बतलाते हैं।

(ग) 'भुजगेंद्रहार' इति। 'साँपके दो जीभें होती हैं। चुगलखोरभी द्विजिह्व होते हैं। उन्हेंभी वे गर्दनका हार बना लेते हैं। पिता अपने बुरे लड़केकोभी अपनेमें लिपटाये रखता है। सर्पमालाका यही भाव शास्त्रसम्मत है। पाप और विषमें भेद नहीं। वह सबके दोषोंको, विषको पी जाता है, क्षमा कर देता है। इसीसे गरल पान करनेवाला समझा जाता है।

(घ) 'करुणा उदार' 'त्रैलोक शोकहर' इति। कर्मफल देनेके-लिये सृष्टि होती है। उसमें जीव नाना प्रकारके दुःख भोगते हैं। उससे सबका छुटकारा केवल प्रलयमें होता है। वह माता पिताके समान सबको सुला देता है। यह परमात्माकी बड़ी कृपा है। कोई कोई इस भावसेभी उसे शिव 'सुलानेवाला' कहते हैं। उससमय

किसीको तनिक कष्ट नहीं होता। वह सबके दुःखोंको हर लेता है। अतएव 'हर' है। दुःखोंका हरण करनेवाला है। जिनको इस करुणाका ज्ञान नहीं है वे इस दुःखमोचन कार्यको तमोगुण कहते हैं। (प्रो० पं० श्री सकलनारायण शर्मा)

(ङ) 'त्रयनयन' इति। 'वह भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालोंकी बातोंको जानता है। इसीसे त्रिनयन कहलाता है। 'विद्युत्' (बिजली) शिवका प्रहरण (प्रहार करनेका साधन) है। शिवजीने त्रिपुर और मदनका दहन इसीसे किया था। शिवके तीसरे नेत्रसे विद्युत्प्रवाह निर्गत होता है। जब अजेय शत्रुओंका संहार करना होता है तब आप उस नेत्रको खोलते हैं; मानों वर्तमान समयके विज्ञानकी विद्युत् बॅटरी तीसरा नेत्र है। संहारकारी अवसरोंमें उक्त बिजलीको शूलाग्रमें नियुक्त करके भी आपने कई बार प्रहार किया है।' (पं० श्रीहनूमानशर्माजी)

'वामदेव', 'सुखजन्मभूमि', 'काशीपति' के विशेष जीवनी-सम्बन्धी भाव पद १४ 'शिवस्तुति' शीर्षक (टिप्पणी १०) में देखिये।

१४ [५] रागु बसंत

देखो देखो[1] बनु[2] बन्यो आजु उमाकंत।
मनो[3] देखन तुम्हहिं[4] आई रितु बसंत ॥१॥
मानो[5] तनु दुति चंपक कुसुम माल।
बर बसन नील नूतन तमाल ॥२॥
कल कदलि जंघ पद कमल लाल।
सूचति* कटि केहरि[6] गति मराल ॥३॥

---

१ 'देखो' ७४ में एक बार है। २ बनु बन्यो—६६, रा०; ५१, ७४, आ०। बन्यो बन—भा०, बे०, प्र०। ३ मनो—६६, छु०, भ०, दी०। मानो—रा०, भा०, बे०, ह०, प्र०, १५, वै०, मु०, वि। मानहुं—५१। जनु—७४। ४ तिनहिं—दी०। यह पाठ हमें किसी पोथीमें देखनेमें नहीं आया। ७४ में नहीं है। ५ मानो—६६, रा०, ज०, ५१, वै०। मनु—७४, छु०। मनों—भ०, दी०। जनु—भा०, बे०, प्र० ह०, १५, वि०, मु। * ६६ में 'सोचति' पाठ है। यदि इसे ठीक मानें तो अर्थ होगा कि सोचमें पड़ जाती है।

भूषन प्रसून बहु बिबिध रंग।
नूपुर किंकिनि कलरव बिहंग ॥४॥

शब्दार्थ:—बन्यो=बनाठना है; शोभित है। रितु (ऋतु) = प्राकृतिक अवस्थाओंके अनुसार वर्षके दो दो महीनेके छः विभाग। १ बसन्त (चैत वैशाख), २ ग्रीष्म (ज्येष्ठ आषाढ़), ३ वर्षा (श्रावण भादों), ४ शरद् (आश्विन कार्त्तिक), ५ हेमंत (अगहन पौष) और ६ शिशिर (माघ फाल्गुन)। प्राचीन वैदिक कालमें बसन्त चैत और वैशाखहीमें पड़ता था। पर क्रमश: अयनके खिसकनेसे आजकल प्रकृतिमें कुछ अन्तर दिखाई पड़ता है, इसीसे पीछेके कुछ ग्रंथोंमें फाल्गुन और चैतके महीने बसन्त ऋतुमें कहे गये हैं। काव्य आदिमें परंपरा अनुसार अबतक चैत और वैशाखही इसके महीने माने जाते हैं। बसन्तके लक्षण ये कहे गये हैं कि पेड़ोंमें फूल लगना, नयी पत्तियां आना, त्रिविध वायु चलना, सायंकाल अत्यन्त मनोरम होना और स्त्री पुरुषोंका उमंगसे भरना। इस ऋतुमें प्राचीन कालमें बसन्तोत्सव और मदनपूजा होती थी। आजकल होलीका उत्सव उसकी परंपरा है। पुराणोंमें इस ऋतुका अधिष्ठाता देवता कामदेवका सहचर कहा गया है। (श० सा०) वैद्यकमें ऋतुका संचार एक मास पूर्वसेही माना जाता है। इसीसे उसमें बसंतऋतु फाल्गुन और चैत मासमें कहा गया। यह प्रधान और प्रथम ऋतु है। 'मनो, मानो' = जैसे, गोया, ऐसा जान पड़ता है कि। चंपक=एक मँझोले कदका पेड़ जिसमें हलके पीले रंगके फूल लगते हैं। इन फूलोंमें बड़ी तीव्र सुगंध होती है। माल=माला। यथा **'खसी माल मूरति मुसकानी'**। (बा.) पंक्ति, समूह। यथा, **'पावन गंग तरंग मालसे'** (बा०) **'बालधी बिसाल बिकराल ज्वालमाल लंक लीलबेको काल रसना पसारी है।'** (क०) 'कुसुम=फूल। बसन नील=नीले रंगका वस्त्र, नीलांबर, नीले रंगकी साड़ी। नूतन=नया। तमाल = यहाँ श्याम

(मेरी कटि ऐसी सुन्दर और पतली नहीं है।) सूचति-ह०, दी०। सूचत-रा०, भा०, बे०, प्र०, ज०, भ०, वि०। सूचक-शि०, मु०, ७४, डु०, वै०, ५१। ७ केसरि—रा०, डु०, मु०। केसरी-वि०।

तमालवृक्ष अभिप्रेत है जिसकी लकड़ी आबनूसकीसी काली होती है। इसमें गहरे हरे पत्ते (शरीफेकेसे) और सफेद बड़े फूल होते हैं। जंघ=जंघा, जांघ, रान, घुटने और कमरके बीचका अंग। सूचत=सूचना देती, बतलाती वा जनाती है। यथा 'हृदय अनुग्रह इंदु प्रकासा। सूचत किरन मनोहर हासा।' (बा०) कटि=कमर। केहरि=सिंह। गति=चाल। मराल=हंस। प्रसून=फूल। नूपुर=घूँघरू, पाज़ेब। कींकिनि=कटिसूत्र, करघनी। कलरव=सुन्दर शब्द, चहचहाहट।

पद्यार्थः—हे उमाके कंत (पति)! देखिये, देखिये, आज बन (कैसा) बना ठना है? शोभित है? *ऐसा जान पड़ता है कि मानो तुम्हें देखनेको बसंतऋतु आयी है।१। (अब बसंतऋतुका वर्णन स्त्रीके रूपकसे कहते हैं।) चंपाके फूलोंका समूहही मानो उसके तनकी द्युति है। नवीन तमाल वृक्ष (मानो उसके गोरे शरीरपरका) उत्तम सुंदर नीला वस्त्र अर्थात् साड़ी है।२। सुंदर केले जंघाएँ हैं। लाल कमल (लाल तलवेवाले)

---

*बाबू शिवप्रकाशजी, श्री बैजनाथजी और भट्टजीने भिन्न भिन्न अर्थ किये हैं। उनके बादके टीकाकारोंने प्रायः उन्हीं तीनोंमेंसे एक न एकका अनुकरण किया है। अर्थ ये हैं कि १ 'आज उमाकंत बनको रूप बन्यो है ताको देखो'। यहां अपने मनको दिखाते हैं। 'कैसो बन बने हो आप हे शिवजी कि।' (डु०, टी०) आज उमाकंत बनका रूप बने हैं। २ 'हे शिवजी! देखिये, देखिये। आज बन उमाकंत बना है। भाव कि जैसे आप पार्वतीजीको अर्धांगमें मिलाये हैं वैसेही बन बसन्तऋतुको अर्धांगमें मिलाये हैं।' (बै०) ३ 'हे शिवजी! देखो देखो, आज तुम बन बने हो। तुम्हारे अर्धांगमें पार्वती क्या हैं मानों बसन्तऋतु तुम्हें देखनेको आयी है।' (भ०, वि०) इस प्रकार बै०, भ०, वि० 'शिवजीसे देखने'को कहना मानते हैं, और डु, वीर, दीनजी मन या नेत्रोंसे देखनेको कहना मानते हैं। इनमेंसे वीरजीका पाठ है कि 'देखो बन बने आज उमाकंत। जनु पेखन आयी रितु बसंत।' इन्होंने 'तुम्हहि' शब्द उड़ा दिया जो अपने अभिप्रेत अर्थमें अड़चन डालता था। दीनजीने 'तुम्हहिं' की जगह 'तिनहिं' पाठ रक्खा है।

चरण हैं। कटि सिंहकी और चाल हंसकी सूचना दे रही है। केहरि-कटि कटि है और हंसकी गति उसकी गति है।३। भाँति भाँतिके रंगोंके बहुतसे फूलही उसके आभूषण हैं। (मधुर सुरीले) सुन्दर शब्दवाले पक्षी पाजेब और क्षुद्र घंटिका (करधनी) हैं।४।

प्रायः समस्त टीकाकारोंने यहां बाबू शिवप्रकाशजी और बैजनाथजीके मतका अनुसरण किया है। बाबू शिवप्रकाशजी लिखते हैं कि इस पदमें गोस्वामीजी शिवजीके अंगको बनरूपसे कहते हैं। कैसा बन है और कैसा शिवशरीर है यह आगे कहते हैं। श्रीपार्वतीजी अर्धांगमें बैठी हैं।

श्रीबैजनाथजी लिखते हैं कि यहांतक शिवजीका यश, कीर्ति और प्रताप आदि गुण गाकर अपनी याचकता जनायी। मनको चरण-सेवनका उपदेश कर अपनी चरणसेवकता दरशायी। अब पार्वतीयुतं जो अर्धांग है उसकी शोभा कहना चाहते हैं। शिवजीकी शोभा पूर्व कहही चुके। अब केवल पार्वतीजीके सर्वांगकी शोभा कहना चाहते हैं। पर जगत्मातुकी शोभा कैसे कह सके? इस हेतु 'अतिशयोक्तिरूपक' अलंकारमें कहते हैं। उपमानकी शोभा वर्णन कर उपमेयका बोध करते हैं। बनको उपमान कहकर शिवजीको उपमेय सूचित करते हैं फिर उसी बनके अर्धांगमें वसन्तकी सर्वांग शोभा उपमान कहकर पार्वतीजीके सर्वांगकी शोभा सूचित करते हैं। बन उमाकंत बना है। वसन्तऋतुको अर्धांगमें मिलाये और दिगंबर, उदासीन, तपसी, परोपकार, उदारतादि गुण धारण किये हुए बन आपका रूप बना है। वहाँ वसन्त ऋतु आपको देखने आयी है। देखिये मेरी शोभा बनके अर्धांगमें वैसीही सर्वांग परिपूर्ण है जैसी गिरजाकी शोभा शिवजीके अर्धांगमें है।

लाला श्रीभगवान्‌दीनजी लिखते हैं कि गत ११ पदोंमें शिव-जीके कीर्त्ति, यश, और प्रताप गुणोंका वर्णन करके अब इस अंतिम पदमें गोसाईंजी युक्तिसे शिवजीके माधुर्यगुणका वर्णन करनेकेलिये उनके अर्द्धनारीनटेश्वररूपका आश्रय लेते हैं। जगदाधार शिवके

साथ प्रकृतिरूपा जगदंबा पार्वतीका वर्णनभी ज़रूरी है। रूपक और उत्प्रेक्ष अलंकारोंकी ऐसी सुंदर संसृष्टि करनाभी गोसाईंजीकाही कार्य है। इस पदमें शिवजीको वन और पार्वतीजीको वसन्तऋतुका रूपक दिया है। जैसे वन आधार और वसन्तऋतु आधेय होते हैं, वैसेही शिव आधार और पार्वतीजी आधेय हैं। जैसे वसन्तऋतु वनसे भिन्न अस्तित्व नहीं रखती, केवल अपने प्रभावसे वनमेंही प्रगट दिखायी पड़ती है, वैसेही अर्धांगरूपमें पार्वतीका अस्तित्व शिवमें तल्लीन रहता है। गोसाईंजीने कवितामेंभी 'पार्वती' शब्दको प्रगट न कर उसका सन्निवेश 'उमाकंत' शब्दमें रखा है और उपमानोंद्वारा लक्षित किया है। रूपक अलंकारमें ऐसी बारीकी रखनाभी इन्हीं गोसाईंजीका कार्य है। इस पदकी साहित्यिक खूबियोंको मनन करनेमेंही आनन्द आता है, लिख नहीं सकते। गोस्वामीजी कल्पनाजगत्‌में प्रवेश करके, शिवजीकी अर्द्धनारीनटेश्वररूपकी झाँकी देख चकित होकर अपने दोनों नेत्रोंसे कहते हैं कि यह सुन्दर रूप देखकर कृतार्थ हो जाओ। ऐसा न हो कि यह झाँकी कल्पनासे निकल जाय।

वीरकविजी लिखते हैं कि शिवजी और वन, पार्वतीजी और वसन्तऋतु परस्पर उपमेय और उपमान हैं। वनमें वसन्तकी बहार दृष्टिगोचर होती है। वियोगीजीकाभी यही मत है। वे लिखते हैं कि इसपदमें अर्धनारीनटेश्वरका वर्णन वन और वसन्तके रूपकमें किया गया है। शिवजीका वर्णन तो पहलेही गोसाईंजी कर चुके हैं, पार्वतीजीका नहीं किया था। जगज्जननि पार्वतीजीका नखशिखवर्णन स्पष्टरूपमें अनुचित प्रतीत होनेपर गोसाईंजीको यह अनूठा रूपक सूझा होगा। कुमारसंभव प्रणेता कालिदासने मर्यादाका उल्लंघन कर दिया है पर भक्तश्रेष्ठ गोसाईंजीने मर्यादाभावका भलीभाँति निर्वाह किया है।

पं० सूर्यदीन शुक्लजी लिखते हैं कि जगन्मायाकी जगद्रचना वसन्तऋतुमें अतिशय, हरीभरी, प्रफुल्लित होती है। इस ऋतुका साज-समाजसे दर्शनही मानों प्रकृति माताकी सौंदर्यछटाका ध्यान करना है। सर्व प्रेरक उदासीन जगत्प्रभु (जंगल अमृत) वनरूप है। जैसे शिव

स्वाधीन व स्वयं एकरस रहते है, वैसेही वन है। वसन्तऋतुका वनमें विशेषरूपसे संघट्ट होनाही प्रकृतिमाताका जगत्प्रभुके साथ मिलाप है। यह अर्द्धनारीश्वर शिवपार्वतीका ध्यान है।

उपर्युक्त उद्धरणोंसे स्पष्ट है कि इन सभी पूज्य श्रद्धेय टीकाकारोंने इस पदमें शिवजीके अर्द्धनारीनटेश्वर गौरीशंकररूपकी वंदना होना माना है और इसीसे उन्होंने श्रीपार्वतीजीका वसन्तसे रूपक बाँधा है। इसमें संदेह नहीं कि सर्वमत उत्तम होता है और फिर धुरंधर साहित्यिकोंका मत ! वह तो अकाट्य है।

परन्तु इस मतके ग्रहण करनेमें बड़ी भारी अड़चन यह है कि ऐसा करना कविको अभिप्रेत कैसे हो सकता है ? ऐसा विचार तो उनके भावके सर्वथा प्रतिकूल होगा। उन्होंने जगज्जननियोंका नखशिख अपने मुखसे कहीं नहीं वर्णन किया। माताके अंगोंका वर्णन पुत्र कैसे करेगा ? यथा,
'जगतमातु पितु संभु भवानी। तेहि सिंगार न कहउँ बखानी ॥'
'सिय सोभा नहि जाइ बखानी। जगदंबिकारूप गुनखानी ॥'

जगजननी भवानीके नखशिखका वर्णन जगत्पिता शंकरजीही कर सकते हैं, दूसरेको अधिकार कहां ? अतएव दासकी क्षुद्रबुद्धिमें तो यही आता है कि यहां वसंतको एक नायिकाके रूपमें वर्णन करके उसके मित्र नायक कामदेवसे रक्षा करनेकी प्रार्थना कामारि शिवजींसे की जा रही है। यहाँ वसंतनायिका 'देखने' आयी है। बसंत कामका उद्दीपक, सहायक है। यथा, 'देखि सहाय मदन हरषाना। कीन्हेसी पुनि प्रपंच बिधि नाना ॥' (बा०) शिवजी कामरिपु हैं। अतः वसंतका ललकारना अंतमें कहते हुए 'उरबसि प्रपंच रचे पंचबान।' कहा है। कामदेवसे रक्षा किये जानेकी प्रार्थना करना युक्तियुक्त है। जगजननीका नखशिखवर्णन करके उससे अपनेमें कामोद्दीपन कहना घोर अनुचित, अन्याय और पाप है। यहाँ केवल शिववंदना है। श्रीपार्वतीजीकी बंदना इसके बाद चौथे द्वारपर जहां वे स्थित हैं, की गयी है। 'देखो देखो बनु बन्यो आजु उमाकंत। मनो देखन तुम्हहिं आई रितु बसंत।' यहाँ 'उमाकंत' सम्बोधन है। उत्तरा-

र्थका 'तुम्हहिं' भी यही सिद्ध करता है। उपक्रममें यहाँ 'उमाकंत' संबोधन है। इसकी पुष्टि आगे 'सुनि सिव सुजान' सेभी होती है। सिव उपसंहार है। उपक्रम उपसंहार एकही हैं। वसंतऋतु देखने आयी है यह कहकर आगे उसीकी शोभा वर्णन करते हैं।

गीतावलीमेंभी एकपद है जिसका प्रारंभ लगभग इसी प्रकारका है। अंतमें वहाँभी कामके प्रपंचके विषयमें कहा है कि जिसकी रक्षा श्रीरामजीने की उसीको कामदेवने छोड़ा। वैसेही यहाँ अंतमें कामरिपुसे प्रार्थना है कि आपही इसके प्रपंचसे बचा सकते हैं। मिलानकेलिये उस पदके प्रारंभ और अंतके तुक हम यहाँ उद्धृत करते हैं। 'आज बनो है बिपिन देखो रामधीर। मानों खेलतफागु मुद मदन बीर॥ १॥ क्रीड़त जीते सुर नर असुर नाग। हठि सिद्ध मुनिन्हके पंथ लाग॥ ८॥ कह तुलसिदास तेहि छांडि मयन। जेहि राखि राम राजीवनयन॥ ९॥ पुनश्च 'रितुपति आयो भलो बन्यो बन समाजु। मानो भये हैं मदन महाराज आजु॥ १॥ तिनकी न काम सकै चापि छाँह। तुलसी जे बसहिं रघुबीर बांह॥ ११॥

अर्द्धनारीश्वर रूपकी वंदना पद १० में है। 'भस्मसर्व्वांगर्द्धांग-सैलात्मज'। यह अर्द्धनारीश्वर स्वरूपकाही ध्यान है।

श्रीअवधके रामायणी संतोकाभी यही मत है। श्रीयुत राजारामशरणजी (पं० राजबहादुर लमगोड़ा, ऐडवोकेट, फतेहपुर) ने 'मानसमणि' में विनयके इस पदकी यह टिप्पणी देखकर लिखा है, 'मैंने उपर्युक्त व्याख्यापर विचार किया और व्याख्याकारसे बातचीतभी की। मैं उनसे पूरे तौरसे सहमत हूँ। वसन्तको नायिकारूपमें तुलसीदासजीने मानसमेंभी लिखा है। यथा, 'भूप बाग बर देखेउ जाई। जहं बसंत रितु रही लोभाई॥' वे पुनः लिखते हैं कि तुलसीदासजीने मर्यादाका बहुत पालन किया है। अगर नायिका बसंत न होती तो वे इतना विस्तारसे शृङ्गार न बाँधते और उसीप्रकार केवल संकेतात्मक रखते जैसे सीताहरणपर रामविलापमें है।' स्मरण रहे वह वर्णनभी जगत्पिता श्रीरामके मुखका है, न कि तुलसीदासका।

पं० श्रीदेवदत्त शर्माजीनेभी दासके टिप्पणीको देखकर अपना सम्मत इस प्रकार लिखा है कि निस्सन्देह आपने बसन्तके नायिकाके रूपकको प्रगट करके टीकाकारोंकी आँखें खोल दी हैं। भविष्यकी पीढियोंको अज्ञान गर्तमें गिरनेसे बचाया। मैं आपके इस अभिनव अभिप्रायका समर्थक हूँ। यदि समय और स्थान होता तो सप्रमाण सिद्ध कर देता। विनयकी दृष्टिसे उसमें तुलसीदासजीकी युवा प्रवृत्तियाँ झलकती हैं। कवि विनय करनेसे पूर्व अपने भूतकालका चित्र खींचकर सिहर उठता है और चटसे कामारिका स्मरण करता है। यह पद गोस्वामीजीकी विवाहितावस्थाके विलासमय जीवनका परिचायक हैं।

वसन्तरागद्वारा शिवकी स्तुति करना अभिप्रायसे रिक्त नहीं है। यह राग पंचानन शिवके द्वितीयमुख वामदेवसे निकला है और बाँदा-प्रान्तीय वामदेव शंकर गोस्वामीजीके इष्टदेव थे।'

टिप्पणीः—१ (क) 'देखो-देखो' इति। गोस्वामीजी कामसे भयभीत हुए परम आतुर हैं, बारंबार कामसे रक्षाकी प्रार्थना करते जाते हैं, सुनवाई नहीं होती, अतः घबड़ाकर कह रहें हैं कि 'देखो-देखो'। परम आतुर देखकर अब शिवजी कृपा करके उनका मनोरथ पूर्ण करते हैं। इसीसे वे इसी पदपर उनकी स्तुति समाप्त कर देते हैं और चौथे फाटकपर पहुँचते हैं। (ख) 'देखन आयी' इति। इसका साधारण अर्थ 'दर्शन करने आयी' ऐसा है। पर ध्वनित अर्थ यह है कि 'वसंतऋतुनायिका आपको ललकारने आयी है'। 'अच्छा तुमको देख लेंगे' इस बानीमें 'देखन आयी' का यहाँ प्रयोग हुआ है। 'बसंत' को कविने प्रायः स्त्रीलिङ्गही मानकर जहाँ तहाँ 'रितु' शब्दके साथ प्रयोग किया है। यथा, भूप बागु बर देखेउ जाई। जहँ बसंतरितु रही लोभाई।' (बा०)

२ (क) 'तनु दुति चंपक' इति। चंपाके पुष्पसमूह और शरीरकी प्रभामें गौरवर्ण और विकास गुणकी समता है। (ख) तमाल और साड़ीमें श्यामरंग और प्रकाशकी समानता है। 'नूतन' तमालका रूपक दिया, क्योंकि नवीन वृक्षमें नवीन हरे हरे पत्ते होते हैं। 'तनुदुति' को चंपाका पुष्पसमूह कहा। इसीसे उसपर नीली साड़ी दिखायी। गोरे तनपर नील वस्त्रकी

विशेष शोभा होती है। यथा, ‘सोह नवल तन सुंदर सारी’। (ग) ‘कदलि जंघ’। केलेके स्तंभ और जंघामें ‘चिक्कन, सुढर, चढ़ाव उतारकी समता है। (घ) ‘कटि केहरि गति मराल’ इति। सिंहके कटिकी प्रशंसा सूक्ष्मताकी है। इसीतरह मनुष्यके कमरकी पतली या सूक्ष्म होनेकी प्रशंसा की जाती है, और मंद चालकी उपमा प्राय हंसकी चालसे की जाती है। यथा, ‘केहरि कटि पट पीत धर सुखमा सीलनिधान’ (बा०), ‘हंसगवनि तुम्ह नहिं बन जोगू। सुनि अपजस मोहि देइहि लोगू’ (अ०), ‘संग सखी सुंदर चतुर गावाहिं मंगलचार। गवनी बालमराल गति सुखमा अंग अपार’। (बा०)

बनमें कमलका होना दिखाकर वहाँ जलाशयका होनाभी सूचित कर दिया है। कमल जलमेंही होता है और जहाँ जलाशयया वर्णन करते हैं वहीं कवि हंसका उल्लेख किया करते हैं। हंस कमलके आश्रित हैं। जैसे कि पंपासरोवर, मानवसरोवर इत्यादिके प्रसंगोंमें मानसमें दिखाया गया है। यथा, बिकसे सरसिज नाना रंगा। मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा॥ बोलत जलकुक्कट कल हंसा।’ (आ०), ‘सोइ बहुरंग कमलकुल सोहा’॥ ‘सुकृत पुंज मंजुल अलिमाला। ज्ञान बिराग बिचार मराला’ (बा०)। अतएव ‘कमल’ कहकर ‘मराल’ कोभी कहा।

‘मानो तन दुति’ से ‘गति मराल’ तक अंगोंका वर्णन हुआ। आगे आभूषणोंका वर्णन है। क्योंकि स्त्रीके अंगोंकी शोभा भूषणोंसे अधिक बढ़ जाती है।

३ (क) ‘भूषन प्रसून बहु’ इति। फूल बहुत और भाँति भाँतिके, वैसेही भूषण अनेक अंगअंगप्रतिके और अनेक रंगोंकी मणियोंसे जटित। जैसे कि चूड़ामणि, शीशफूल, बेंदी, झालर, ताटंक, बेसर नथ, नासानणि, चंद्रहार, मणिमाल, बाजूबंद, कड़ें, कंकण, पहुँची इत्यादि।

(ख) ‘नूपुर किंकिनि कलरव बिहंग’ इति। इससे जनाया की नायिका वनमें विहार कर रही है, विचर रही हैं। क्योंकि नूपुरादिका शब्द चलनेमेंही होता है। पद और कटि उपर कहे। यहां नूपुर और किंकिणी उनके जेवर कहे। ‘कलरव’ विशेषण देकर मधुर सुरीले शब्द वाले पक्षी, कोकिल,

हंस, जलकुक्कुट (मुर्गाबी) इत्यादि सूचित किये। यथा–'नीलकंठ कलकंठ सुक चातक चक्क चकोर। भाँति भाँति बोलहिं बिहँगश्रवन सुखद चितचोर'।

अनुसंधान [१४]

कर नवल बकुल पल्लव रसाल।
श्रीफल कुच कंचुकि लता जाल॥ ५॥
आनन सरोज कच मधुप पुंज[८]।
लोचन बिसाल नव नील कंज॥ ६॥
पिकबचन चरित बर बरहि कीर।
सित सुमन हास लीला समीर॥ ७॥
कह[९] तुलसिदास[१०] सुनि सिव सुजान।
उर बसि प्रपंच रचै[११] पंचबान॥ ८॥
करि कृपा हरिअ भ्रमकंदु[१२] कामु।
जेहि हृदय बसहिं सुखरासि रामु॥ ९॥

---

८ गुंज—रा०, ह० (टीकामें 'पुंज' है) अ०। पुंज–और सबमें। नोट–ह० के पाठमें छपा है, 'आनन सरोज कच मधुप गुंज'। यह प्रेस महात्माका काम है कि 'पुंज' का 'गुंज' छपा। वस्तुतः उनकी पोथीका पाठ पुंज है जो उनकी टीकासेही स्पष्ट प्रमाणित होता है। टीका इस प्रकार है, 'कच अलक मधुपपुंज भ्रमरावली'। ना० प्र० सभा या वियोगीजीने मूलपाठ देखकरही संभवतः यह पाठ रख लिया होगा। गीताप्रेसने वियोजीका पाठ रक्खा है। इसीप्रकार डु. ०, बै०, आदिकी टीकाओंमेंभी कहीं कहीं मूलपाठ कुछका कुछ है और अर्थमें पाठ दूसरा है। अतएव छपी पुस्तकोंसे पाठ उतारनेमें महानुभावोंको बहुत सावधानीसे काम लेना चाहिये। 'गुंज' का अर्थ वियोगीजीने 'गुंजारते हुए' किया है। यह अर्थ कैसे हुआ, समझनेमें नहीं आता। गुंज=गुंजार। 'पुंज' पाठही प्राचीन एवं शुद्ध है। ९ कहि–६६, भ०। ६६ में पद १३ (६) मेंभी 'कहि' है। अतः लेखप्रमाद नहीं जान पड़ता। कहै–१५। कह–और सबमें। १० सुनि–६६, रा०। सुनु–औरोंमें। ११ रचै—भ०, दी०। रच—७४, १५, वि०। रचे–और सबोंमें। १२ कंदु–६६। कंद—रा०, भा९, बे०, प्र०, ह०, १५, शि०, ६९। फंद–ज०, ५१, ७४, आ०। कंदु–६६।

शब्दार्थः—नवल=नवीन, नया, सुंदर। बकुल=मौलसिरी। यह एक प्रकारका बड़ा सहाबदार वृक्ष है जिसकी लकड़ी अंदरसे लाल और चिकनी होती है। पल्लव = पत्ता। रसाल = आमका वृक्ष। श्रीफल = बेल, नारियल। कुच = स्तन। कंचुकि = (कंचुक, कंचुकी) अंगिया, चोली, छाती ढकनेका एक वस्त्र। लता = बेलि। कच=बाल। पिक = कोकिल। काले रंगकी एक प्रकारकी चिड़िया जो आकारमें कौवेसे कुछ छोटी होती है और मैदानोंमें वसन्त ऋतुसे वर्षातक रहती है। आँखें लाल, चोंच झुकी हुई और दुम चौडी और गोल होती है। इसका स्वर मधुर और प्रिय होता है। चरित=इसका अर्थ प्रायः 'आचरण, रहनसहन' और 'काम, कृत्य' होता है। यहां नायिकाका नृत्य गानही उसका चरित है। बरहि (सं० बर्हि) = मोर। यथा '**भूषित उडुगन तड़ित घनु जनु बर बरहि नचाव।**' (बा०) यह बादलोंको देखकर कूकता है, नाचता है। सब पक्षियोंमें यह सुन्दर है। अनेक चटकीले रंगोंका सुन्दर मेल जैसा इसमें होता है वैसा किसी औरमें नहीं होता। कीर = तोता, सुग्गा। यह आदमियोंकी बोलीकी बहुत अच्छी तरह नक़ल करता है। इसकी छोटी मोटी सैकड़ों जातियाँ होती हैं। कुछ जातियोंके तोतोंका स्वर तो बहुत मधुर और प्रिय होता है और कुछका बहुत कटु तथा अप्रिय। यह बड़ा बेमुरव्वत कहा जाता है। सित = श्वेत, सफ़ेद। हास = हास्य, मंद मुस्कान। यथा '**हास विलास लेत मन मोला**'। लीला = हाव भाव, शृङ्गारकी उमंगभरी चेष्टा, प्रेमविनोद, क्रीड़ा। समीर = वायु। सुनि = सुनिये, सुनो। प्रपंच = मायाजाल। रूप, रस, गंध, शब्द, स्पर्श विषयोंमें लिप्त करना 'प्रपंच रचना' है। रचे = रचा वा रच रहा है। पंचबान = कामदेव पंच-बाण धारण किये है, उसीसे उसका यह एक नाम हो गया है। इसका धनुषभी फूलोंका है और बाणभी। ‡ भ्रमकंदु = भ्रमका मूल कारण वा

---

‡ '**उन्मादस्तापतश्चैव शोषणस्तंभनस्तथा। संमोहनश्च कामस्य बाणः पंच प्रकीर्तितः॥**', '**वशीकरण मोहन कहत आकर्षण कबि लोग। उच्चाटण मारण समुझु पंचबाण ये योग॥**' (रा०

जड़। भ्रम = सत्यमें असत्य और असत्यमें सत्यकी भावना।

प्र०, पां०)। यह दोहा श्लोकका अनुवादही समझिये। इस मतके अनुसार 'उन्माद, तापन, शोषण, स्तंभन और संमोहन' वा 'वशीकरण, मोहन, आकर्षण, उच्चाटन और मारण' ये पंचबाण हैं। श्रीकरुणासिंधुजीके मतानुसार 'आकर्षण, उच्चाटन, मारण और वशीकरण ये चारों कामदेवके धनुष हैं, कंपन पनच है, मोहन, स्तंभन, सोषण, दहन, बंदन ये पांच बाण हैं, पर सुमनरूप हैं। पंचबाणोंके नाम मालूम हुए। अब पाँच पुष्प कौन हैं जिनके ये बाण बने हैं ? इसमें भिन्न भिन्न मत हैं।

१ 'अरविंदमशोकञ्चचूतं चम्पक मल्लिका' अर्थात् कमल, अशोक, आम्र (वा आमकी मंजरी), चम्पा और मल्लिका (मोतिया)। भावप्रकाशमें 'अरविंदमशोकञ्च चूतञ्च नवमल्लिका। नीलोत्पल सुपञ्चैते पंचबाणस्य सायकाः।' इस प्रकार है। अर्थात् चंपाके स्थानपर 'नीलोत्पल' है। इन्होंने 'मल्लिका' का अर्थ चमेली किया है। पर यह एक प्रकारका बेला है। इसे मोतिया कहते हैं। इसका फूल श्वेत और गोल तथा गंध मनोरम होती है, इसे भ्रमवश लोग चमेली कहते हैं। यह चमेली नहीं है।

२ केशवदासजीके मतसे 'करना केतकि केवड़ा कदम आमके बौर। ये पाँचों सर कामके केशवदास न और॥' करना, केतकि, केवड़ा, कदम और आमके बौर पंचबाण हैं। (ह., पां.)

३ वैजनाथजी लिखते हैं कि केवड़ा उच्चाटन, केतकी आकर्षण, कमल मोहन, गुलाब वशीकरण और करवीर (कनेर) मारण, ये पंचबाण है।

४ कुछका मत है कि शब्दादि विषयही पंचबाण है पर इसका प्रमाण कहीं नहीं मिलता। बाण फूलोंकेही हैं यही मत गोस्वामीजीका है। यथा 'सूल कुलिस असि अंगवनि हारे। ते रतिनाथ सुमनसर मारे॥' (अ०) वशीकरण आदिको जो पंचबाण कहा उसका तात्पर्य यह है कि वशीकरणादिसे ये पुष्पबाण अभिमंत्रित हैं, उन बाणोंसे ये सारे प्रयोग होते हैं। पंचबाण धारण करनेका भाव यह कहा जाता है

पद्यार्थ—मौलसिरी और आमके नवीन (कोमल चिकने) पत्ते (दोनों कोमल कोमल) हाथ हैं*। श्रीफल स्तन हैं और लताओंका 'जाल' चोली है। ५। कमल मुख है, भ्रमरोंका समूह केश हैं†। नवीन नीलकमल बड़े बड़े नेत्र हैं। ६। कोयल बचन है||, सुंदर मोर और तोते श्रेष्ठ चरित हैं, श्वेत फूल हास हैं, पवन लीला है। ७। (ऐसी जो वसंतऋतुरूपी नायिका है वह आपको देखने आयी है।) तुलसीदासजी कहते हैं कि हे सुजान शिवजी! सुनिये। कामदेवने मेरे हृदयमें बसकर प्रपंच रचा है। ८। कृपा करके कामको हर लीजिये कि जो भ्रमका मूल कारण है, जिससे सुखकी राशि श्रीरामचंद्रजी मेरे हृदयमें बसे। ९।

कि 'क्षिति जल पावक गगन समीरा'। इन पाँचों तत्त्वोंमेंसे एक एक तत्वको एक एक बाणसे वेधन करता है।

* 'पल्लव' का अन्वय कर, बकुल और रसाल तीनोंके साथ है। अन्वय होगा, 'नवल बकुल पल्लव, नवल रसाल पल्लव, कर पल्लव हैं'।

अर्थान्तर–१ 'मौलसिरी और आमादिकी नवीन शाखाएँ और नवीन पल्लव वसंतऋतुकी भुजा और हथेली हैं। (वै०) २ 'हाथ मौलसिरी हैं और आमकी कोंपलें कोमल हथेलियाँ'। (वि०) ३ 'कोमल करपल्लवही मौलसिरी और आमके नवीन पल्लव हैं'। (दी०)

† अर्थान्तर–'भवँर समूह जो फूलोंपर बैठे हैं वेही ऋतुके माँग-मोती सिंदूरयुत गुहे बाल है।' (वै०)

|| अर्थान्तर–१ 'बचनकी रचना श्रेष्ठ कोयल, मोर और सुग्गोंके शब्दके समान है'। (डु०, टी०) २ 'बचन कोयलके शब्दके तुल्य है, श्रेष्ठ चरित मोरके शब्द और नृत्यके तुल्य है और नासिका सुग्गा तुल्य है। यहां उपमेय लुप्त है परन्तु उपमानसे सूचित होता है।' (डु०, टी०) ३ 'नृत्य, गान, वाकुविलास और हास्यादि अनेक लीलाचरित करती हैं। यहाँ कोकिला ऋतुका मधुर बचन है, मयूर जो नृत्य कर रहे हैं और कीर जो अनेक भाँति बोल रहे हैं इत्यादि सब ऋतुके चरित हैं।' (वै०)।

टिप्पणी—४ (क) 'श्रीफल' और 'कुच' में गोलाई और (ऊपरकी) कठोरताकी समता है, लता बेलपर छायी रहती है, वैसेही कंचुकी स्तनोंको ढके हुए रखती है। (ख) 'आनन सरोज' इति। इस प्रसंगमें तीनबार कमलका नाम आया है। एक तो 'पद कमल लाल', दूसरे 'आनन सरोज' और तीसरे 'लोचन बिसाल नवनील कंज,'। आगे कहीं कहीं 'पीत कमल' काभी। पर प्राय: तीन प्रकारके कमलोंका वर्णन अधिक पाया जाता है, श्वेत, लाल और श्याम। इनमेंसे लाल कमल पूर्व और श्याम आगे कहे गये हैं। अत: यहाँ श्वेत कमल अभिप्रेत है। (बाबू शिवप्रकाश और वैजनाथजी यहाँ पीत कमलके पक्षमें हैं।) विकसित, प्रफुल्लित, आल्हादकारक होनेमें समता है। (ग) 'कच मधुपपुंज' इति। कमलोंपर भ्रमरोंका समूह, वैसेही यहां मुखसरोजपर छूटे हुए सचिक्कनकाले बालोंका लहरानाही भ्रमरोंका मड़राना हैं। (घ) 'लोचन विसाल नवनील कंज' इति। काजल, सुरमा या अंजन लगे हुए कजरारे नेत्रोंकी उपमा श्याम कमलसे दी जाती है। 'नील कंज' से वही यहां समझना चाहिये। यथा 'तुलसी मनरंजन रंजित अंजन नयन सुखंजन जातक से। (क०), 'नील कंज लोचन भवमोचन'। (उ०)

५ 'पिक बचन चरित बर बरहि कीर' इति। मधुर, प्रिय और सुरीले होनेमें बचन और पिक (कोकिल) की समता है। नृत्य, गान, नायकको देखकर आनंद और विचित्र रंग विरंगके होनेमें मयूरसे, और बेमुरव्वती एवं अनेक भाँतिकी बोलीमें 'कीर' से समता दी गयी। रा० त० व० और डु० का मत है कि, "चरित्र मोर है और नासिका 'कीर' है। उपमेय नासिका लुप्त है पर उपमानसे सूचित होती है।"

६ 'सित सुमन हास लीला समीर' इति। हमारे यहां रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, आश्चर्य और निर्वेद इन स्थायी भावोंके अनुसार नौ रस माने गये हैं।

साहित्यमें इनके रंग और देवता भिन्न भिन्न कहे गये हैं। रस-कुसुमाकरमें इनका वर्णन निम्नप्रकार है।

रस	रंग	देवता
१ शृङ्गार	श्याम	विष्णु
२ हास्य	श्वेत	प्रमथ
३ करुण	कपोत, चितकबरा	वरुण
४ रौद्र	रक्त	रुद्र
५ वीर	गौर	इन्द्र
६ भयानक	श्याम	यम
७ वीभत्स	नील	महाकाल
८ अद्‌भुत	पीत	ब्रह्मा
९ शान्त	शुक्ल	नारायण

उपर्युक्त नौ स्थायी भावों और रसोंमें एक 'हास्य' भी है। इसका रंग श्वेत है। अतः 'सित सुमन हास' में श्वेतरंगकी समता है।

(ख) 'लीला समीर' इति। नायिकामें अनेक हावभाव, अनेक रंगोंकी चेष्टा एवं क्रीड़ा होती है और वायुमें शीतल, मंद, सुगंध त्रिविध प्रकारके गुण होते हैं। इन दोनोंमे समता है। पुनः, वायु कामकी बसीठी वा दूती कही गयी है। यथा, '**त्रिबिध बयारि बसीठी आई**'। (आ०) वैसेही नायिकाके हावभाव कामोद्दीपन करते हैं, यह समता है। 'समीर', 'वायु' और 'बयारि' पर्यायवाची शब्द हैं। 'लीला' स्त्रीलिंग है। अतः उसके अनुसार 'वायु' और 'बयारि' अर्थ यहाँ किया गया है। पुल्लिंग अर्थमें यह कामका सखा है, दूत है। यथा '**सीतल सुगंध सुमंद मारुत मदन अनल सखा सही।**' (बा०)

७ (क) 'सुनि लिव सुजान' इति। 'सुजान' का भाव यह है कि आप इसके कर्तव्य स्वयम् देख चुके हैं; अतः भली भाँति इसके चरितको जानते हैं कि यह मनको क्षुब्ध कर देता है। आप तो समाधिस्थ थे तबभी इसने मनमें क्षोभ उत्पन्न कर दिया था। यथा, '**छाँड़ेउ बिषम बिसिष उर लागे। छूटि समाधि संभु तब जागे॥ भएउ ईस मन छोभ बिसेषी॥**' 'सुनि' का प्रयोग बता रहा है कि ऊपर इतनी वंदना-

तक श्रीशिवजीने आपकी विनयको सुनी अनसुनीसी कर दी। इसीसे 'सुननेको' कहते हैं। मानसमें ऐसा प्रयोग बहुत है।

(ख) 'उर बसि प्रपंच रचे पंचबान' इति। वसन्त कामका सहायक, संगी वा मित्र है। काम स्त्रीके संग रहता है। स्त्रीही उसका परम-बल है। यथा, 'लोभके इच्छादंभ बल कामके केवल नारि', 'यहिके एक परमबल नारी।' (आ०) इसी कारण यहाँ कामभी वसन्तके साथ है। कामका जोर सबपर चलता है। यथा 'सकल भुवन अपने बस कीन्हें'। पर आपसे उसका जोर नहीं चलता। अतएव प्रार्थना करते हैं कि 'करि कृपा हरिअ भ्रमफंदु काम'। अर्थात् आपही इसको मारिये। यह मेरे बसका नहीं है। यह कविका प्रयोजन है। (ग) वसंतको देखकर कामोद्दीपन होताही है। यही कामका प्रपंच रचता है।* (घ) 'उरबसि' का भाव कि यह सदा आड़से छिपकरही प्रपंच रचता है, बाण चलाता है। यथा, 'नयन उघारि सकल दिसि देखा ॥ सौरभ पल्लव मदन बिलोका'। (बा०) कामका निवास मनमेंही होता है। कामनाएं मनसेही उत्पन्न होती हैं। इसीसे कामके नाम 'मनसिज' और 'मनोज' हैं। अतः 'उरबसि' कहा। 'उरबसि' से स्पष्ट है कि कविने अपनेही हृदयकी व्यवस्था इस पदमें कही है। 'रचे' भूतकालिक क्रिया देकर जनाया कि यह जो हमने

---

*वसंत निर्माण करना, त्रिविध समीरका चलना इत्यादि ऊपर अंतरा १, २, ३ में कह आये। यह सब कामका प्रपंच है। मानसमें शिवसमाधि छुड़ानेके प्रसंगमें इसका विस्तृत वर्णन है। वाचक वहाँ देख सकते हैं। 'मरन ठानि मन रचेसि उपाई ॥ प्रगटेसि तुरत रुचिर रितुराजा। कुसुमित नव तरुराज बिराजा ॥ जहँ तहँ जनु उमगत अनुरागा। देखि मुयेहु मनु मनसिज जागा॥ सकल कला करि कोटि बिधि' (बा० ८५) कामके प्रपञ्चसे ज्ञानका नाश होता है। यथा 'ब्रह्मचरज व्रत संजम नाना। धीरज धरम ज्ञान विज्ञाना॥ सदाचार जम जोग बिरागा। सभय बिबेकु कटकु सब भागा ॥ देखहिं चराचर नारिमय जे ब्रह्ममय देखत रहे ॥' अतएव इसे भ्रमका मूल कहा।

सब कहा है यह सब कामकाही रचा हुआ है। हमारे हृदयमें बसकर उसने यह कहलवाया है।

८ (क) 'करि कृपा' इति। भाव कि मेरा कुछभी पुरुषार्थ यहाँ नहीं चल सकता। आपकी कृपासेही इसका हरण हो सकता है, अन्यथा नहीं। (ख) 'भ्रमकुंद कामु' इति। कामही भ्रमका मूल है। वनके वृक्षोंको देखकर स्त्रीके अंगोंका स्मरण हो जाता है, कामकी जागृति होती है।

श्रीवैजनाथजीकी टीकामें 'कंदु' पाठ है, पर मूलमें प्रेसने 'फंद' छापा है। इसीसे किसी-किसीने 'फंद' पाठ रक्खा है। पर टीकामेंके भाव वही उतार दिये हैं। वैजनाथजी लिखते हैं कि आप 'सुजान' हैं। विचारपूर्वक मेरी कही वार्ता सुनिये। बसंतऋतुमें वनकी शोभा कामोद्दिपक होनेसे मुमुक्षुओंको बाधक है। अतः मैं प्रार्थना करता हूँ कि पंचबाण कामदेव बरबस हृदयमें आबसा है और प्रपंच रचे है। परमार्थ-पथपर जानेकी इच्छा रखनेवाले जीवको विषयोंका प्रलोभन देकर इंद्रियोंके-द्वारा असत्यको सत्यसा दिखाकर परमार्थपथसे हटाकर भवसागरकी ओर ले जाना चाहते है। सच्चेको झूठा और झूठे असार संसार सुखको सच्चा दिखाना, इत्यादि भ्रमरूपी वृक्षकी जड़ 'काम' है। उसका नाश हमारे-लिये कीजिये जिससे हमारा हृदय निर्मल हो जाय।"

(ग) प० पु० सृष्टि खंड अ० ५० में भगवान्ने नरोत्तम ब्राह्मणसे एक निर्लोभी शूद्रके वाक्योंका कथन जो किया है वह 'भ्रमकंदु काम' के भावार्थको स्पष्ट कर देता है। वह यह हैं, "उन्माद कामजनित विकार है। उससे बुद्धिमें भ्रम हो जाता है। भ्रमसे मोह और अहंकारकी उत्पत्ति होती है। उनसे क्रोध और लोभका प्रादुर्भाव होता है। इन सबोंकी अधिकता होनेपर तपस्याका नाश हो जाता है। तपस्याका क्षय हो जानेपर चित्तको मोहमें डालनेवाला मालिन्य पैदा होता है। उस मलिनतारूप साँकलमें बँध जानेपर मनुष्य फिर ऊपर उठ नहीं सकता।"

९ 'जेहि हृदय बससि सुखरासि रामु।' इति। पद ७ 'देहु कामरिपु रामचरन रति' एवं पद १० 'देहि कामारि

श्रीरामपदपंकजे भक्तिमनवर्त्त गतभेदमाया ।' देखिये। काम हृदयको मलिन करनेवाला है। मैली जगहमें चक्रवर्त्तीमहाराज श्रीरघुनाथजी भला कैसे रह सकते हैं? यथा, 'हरि निर्मल मलग्रसित हृदय असमंजस मोहि जनावत। जेहि सर काक कंक बक सूकर क्यों मराल तहँ आवत॥' (दो०)। निष्काम स्वच्छ हृदयमेंही प्रभुका निवास होता है। यथा 'काम आदि मद दंभ न जाके। तात निरंतर बस मैं ताके॥', 'बचन करम मन मोरिगति भजन करहिं निःकाम। तिन्हके हृदय कमल महुँ करउँ सदा बिश्राम॥' (आ०)

१० शिवस्तुति शिवबन्दना पद ३ से लेकर यहाँ तक बारह पदोंमें हुई। इनमेंसे (१) एक पद देववाणीमें (संस्कृतमें) है, शेष नरभाषामें (हिंदीमें) हैं। (२) एक स्तुति ब्रह्माजीद्वारा उलाहनेके रूपमें व्याज स्तुति अलंकारसे पार्वतीजीको संबोधन करते हुए की गयी है। शेष सीधे शिवजीकी वंदनाएँ हैं। (३) एकमें अर्द्धनारीश्वररूपकी स्पष्ट वंदना है। 'भस्म सर्वांग अर्धांग सैलात्मजा'। (पद १०) शेषमें इस रूपका उल्लेख नहीं किया गया है। यदि हम इनमेंसे किसी एक कारणको लेकर उस पदको अलग कर दें तो केवल ग्यारह स्तुतियां रह जाती हैं। रुद्रभी ग्यारह हैं। अतः ग्यारह स्तुतियां लिखी गयीं।

यदि सबकोही लें, किसीको किसी कारणसेभी अलग करना ठीक न समझें, तो यह कह सकते हैं कि ज्योतिर्लिङ्गभी बारह हैं। अतः बारह पदोंमें वंदना की गयी। पद्म० पु० सृ० में लिखा है कि संसारके सृष्टिकार्यसे सनकादिकके उदासीन हो जानेपर ब्रह्माजीको महान् क्रोध हुआ। उनका ललाट क्रोधसे उद्दीप्त हो उठा। उसीसमय उनकी ललाटसे मध्यान्हकालीन सूर्यके समान तेजस्वी रुद्र प्रकट हुए। इनका आधा शरीर स्त्रीका था और आधा पुरुषका। ब्रह्माजीने उन्हें आदेश दिया कि तुम शरीरके दो भाग करो। अर्धनारीश्वर रुद्रने अपने दोनों भागोंको पृथक् पृथक् कर दिया और फिर पुरुषभागको ग्यारह रूपोंमें विभक्त किया। इससे स्पष्ट है कि अर्धनारीश्वररूप महारुद्र हैं और ग्यारह रुद्र उनके अन्य रूप हैं। इस तरह कुल बारह रुद्र हैं। उसीके अनुसार यहां एक

पदमें अर्धनारीश्वरकी वंदना है। शेष ग्यारहको ग्यारह रुद्रकी वंदना समझ लें।

वस्तुतः कविका अभिप्राय क्या था यह तो वेही जानें या जो सर्वज्ञ हों, अन्तर्यामी हों, वह जानें। जहांतक अनुमान हो सकता है किया जाता है।

देवदत्तशास्त्रीजी लिखते है कि, 'भगवान् शिवकी स्तुति बारह पदोंमें की गयी है। ये बारहों पद विभिन्न विद्वानोंके उर्वर मस्तिष्ककी विभिन्न कल्पनाओंसे ओतप्रोत हैं। इसमें सदेह नहीं कि कविने एकएक शब्दकी योजनामें कमाल किया है। हम कविके गूढ भावोंको नहीं समझ सकते। यह असम्भव बात है। यदि यही मान लें कि यह तो कविही जानें तो सारा परिश्रम और चिंतन व्यर्थ हो जाता है। इतनाही नहीं, हम अपने पूर्वजोंके वृत्त वृत्तिको न समझकर कलंकितभी हो सकते हैं। यह बात ज़रूरी है कि समय और स्वभाव परिवर्तित हो जानेसे हम पूर्ण परिचय न प्राप्त कर कुछ न कुछ तत्त्व अवश्यही निकालेंगे। हमारा तो स्थूल हिसाब यही है कि प्रथम कविकी रचना और उसके उद्देश्योंको समझें कि गोस्वामीजीने विनयपत्रिका क्यों और किस समय लिखी? विनय क्या और किससे की गयी?' इस दृष्टिकोणसे मीमांसा करनेपर हमें आत्मानुभव होने लगता है कि हम किसी इष्टसिद्धिकी इच्छासे जब किसी उच्चपदाधिकारी या सम्राटसे प्रार्थना करना चाहते हैं तो हमें क्या क्या करना पड़ता है। सर्वप्रथम मनही मन अपने कुलदेव वामदेवका स्मरण करते हैं। फिर उच्चपदस्थ पदाधिकारीके मातहतोंकी प्रशंसा या सेवा करते हैं। इसी प्रकार गोस्वामीजीभी अपनी आध्यात्मिक इष्टसिद्धिकेलिये सार्वभौम सम्राट् राजा रामसे विनय करनेकी जब तैयारी करते हैं तो स्मार्त संप्रदायकी पद्धतिसे देवीदेवताओंकी स्तुतियाँ करते हैं इसलिए कि विनय करनेमें करकृत मनस्कृत कोई त्रुटि न हो।

विनय करनेमें अपनी सारी परिस्थितिका दिग्दर्शन सूत्ररूपसे करना पड़ता है। जबतक अपनी त्रुटियोंका, अपनी अच्छाइयोंका विवेचन न किया जायगा तबतक विनय अधूराही रहेगा। विनय करनेमें आत्मपरिचय सर्वप्रथम देना पड़ता है। गोस्वामीजी निर्भराभक्तिपूर्ण थे। उन्होंने अपनेको

अपने इष्टदेवकोही सौंप दिया था। वे अपने अस्तित्वको भूल चुके थे। किन्तु विनय करनेमें तो आगे पीछे या बीच अथवा जब प्रसंग चर्चा आवे तब तो परिचय देनाही पड़ता है। ऐसी अवस्थामें सच्चे संत तुलसीदासजी अपना परिचय जब कभी देते हैं तब अपने इष्टदेवकी आड़सेही। भगवान् शंकरकी १२ स्तुतियोंसे उन्होंने अपने प्रारंभिक जीवनसे लेकर मुक्तिप्राप्ति-पर्यन्तकी चर्चा की है, जो अस्पष्ट है, धुंधली है और व्यंजनापूर्ण है। पद १३ में बामदेवको प्रणाम करते हुए अपनेको बाँदा प्रान्तीय बतलाया। 'सुखजन्मभूमि' कहकर आपने बड़ी सफाई और चतुरायी दिखायी। काशीपति विश्वनाथकी वन्दना करके आपने अपने जीवनके अन्तिम क्षण काशीमें बिताने तथा वहीं मुक्तिलाभ प्राप्त करनेका इशारा किया है। प्रकारान्तरसे पूर्वजन्ममें वाल्मीकि होना, अधम कृत्य करना और इस जन्ममेंभी पढ़ लिखकर सुसंगति प्राप्त कर कामिनी कंचनके फेरमें पड़े रहनेका मार्मिक इशारा किया है। निस्सन्देह आदिसे लेकर इस पदतक उन्होंने अपनीही दशा गायी है, जो सच्ची विनय है, प्रार्थना है।'

१५ [२१] राग मारु

दुसह दोष दुख दलनि करु देवि दाया।
विश्वमूलासि जन सानुकूलासि सर[1]
सूलधारिणि महामूल माया ॥१॥
तड़ित गर्भांगि[2] सर्वांग सुंदर
लसत दिव्य पट भव्य भूषन बिराजै।
बालमृग मंजु खंजनबिलोचन[3]
चंद[4] बदन[5] लखि कोटि रति मार[6] लाजै ॥२॥

---

१ सर—६६, रा०, इ०, मु०, डु०, वै०, ५१, दी०, ७४। कर—भा०, बे०, प्र०, ज०, ६९, भ०, वि०। २ गर्भांगि—६६, रा०, भ०। गर्भांग—भा०, बे०, इ०, ज०, ५१,७४। गर्भाभ—प्र०। ३ बिलोचन—६६, ज०, इ० (टीकामें), ७४। बिलोचनि—रा०, भा०, बे०, ५१, १५, आ०, इ० (मूलमें)। ४ चंद—६६, रा०, ७४ डु०,। चंद्र—भा०, बे०, प्र०, इ०, ५१। ५ बदन—६६, रा०, भा०, बे०, प्र०, ज०, इ०, ७४,। बदनि—आ०। ६ प्राचीन और आधुनिक समस्त पोथियोंमें यही पाठ है।

शब्दार्थः-दोष = वेदाज्ञानुसार वर्णाश्रमधर्मका उलटा अधर्म है। इस अधर्ममें प्रवृत्तिको दोष कहते हैं और अधर्मके फलभोगसे जो पीड़ा उत्पन्न हो उसे दुःख कहते हैं। (पं० रा० कु०) दलनि=दल डालनेवाली; जैसे चक्कीमें दाल, चना, गेहूँ आदि दला जाता है। नाश करनेवाली। विश्वमूलासि=(विश्व+मूल+असि), जगत्‌की मूल हो। सानुकूलासि (स+अनुकूला+असि), विशेष अनुकूल (प्रसन्न) हो। धारिणि=धारण करनेवाली; लिये रखनेवाली। महामूलमाया=मूलप्रकृत महामाया अर्थात् आद्याशक्ति जो सब सृष्टिकी आदिकर्ता है। सत्व, रज, तम तीनों गुण जिसके वशमें हैं। जिससे वह सारे ब्रह्मांडको क्षणमात्रमें रच डालती है। संसारकी बीजशक्ति या वह आदिम सत्ता संसार जिसका परिणाम या विकास है। मायाको उत्पत्ति करनेवाली, अपरा प्रकृतिकी अधिष्ठात्रि देवता। सृष्टिकी उत्पत्ति करनेवाली मूल अव्याकृत प्रकृति। गर्भांगि=(गर्भ+अंगि) गर्भ=सार, सारांश। अंगि=अंग वा शरीरवाली। तड़ित गर्भांगि=बिजलीके सारके समान (कांतिमान्) शरीरवाली। सर्वांग=सारा शरीर। शरीरके सब अंग वा अवयव। लसना=शोभित होना, फबना। दिव्य=अप्राकृत, अलौकिक, जो नित्य नवीन बने रहें, कभी जीर्ण-शीर्ण वा मैले न होनेवाले। यथा, 'दिव्य बसन भूषन पहिनाये। जे नित नूतन अमल सुहाये।' (आ०) भव्य=जो देखनेमें भारी और सुन्दर जान पड़े। मंगलसूचक और प्रकाशमान। अत्यंत रमणीय जो देखतेमात्र देखनेवालेके हृदयपर अपना अतंक जमा ले। (दी०)। बालमृग=हिरनका बच्चा। खंजन=यह एक छोटा सुन्दर पक्षी है। कवि नेत्रोंकी उपमा इससे देते हैं। इसमें चंचलता बहुत होती है। लंबे और श्यामता लिये हुए कजरारे नेत्रोंकी चंचलता और सुन्दरतामें इसकी उपमा दी जाती है। यह पक्षी कइ रंग और आकारका पाया जाता है। हिमालयकी तराई, आसाम और बरमामें

कु० मेंभी यही है पर टीकामें अर्थ 'अभिमान' किया है। दीनजीने 'मान' पाठ दिया है और लिखा है कि स्त्रीसौंदर्यकी समतामें 'मार' के सौंदर्यको लज्जित करना गोस्वामीजीके समान आचार्य तो नहीं कह सकते।' 'रति मार लाजै' पाठका भाव टिप्पणी २ में देखिये।

अधिकतासे होता है। इसका रंग बीचबीचमें कहीं सफ़ेद तो कहीं काला होता है। यह एक बालिश्तसे छोटा होता है।'

बालमृगके नेत्र उभड़े हुए, सजल, बड़े सडर और चंचल होते हैं। यथा, 'खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहिं सिय सयननि।' (अ०), 'जहँ बिलोक मृगसावकनयनी। जनु तहँ बरिस कमल सितश्रेनी।' (बा०) बिलोचन=दोनों नेत्र। चंद=चंद्रमा। चंदबदन = चन्द्रमाके समान प्रकाशमान् और आल्हादकारक मुख। यह भाव 'चदि' धातुसे लिया गया। लखि = देखकर। रति = कामदेवकी स्त्री। यह दक्ष प्रजापतिकी कन्या मानी जाती है। यह दक्षके पसीनेसे उत्पन्न हुई थी। यह संसारकी सबसे अधिक रूपवती और सौंदर्यकी साक्षात् मूर्ति मानी जाती है। इसे देखकर सभी देवताओंके मनमें अनुराग उत्पन्न हुआ था। इसीसे इसका नाम 'रति' हुआ। यह सदा कामदेवके साथ रहती है। मार = कामदेव। स्त्रीपुरुषसंयोगकी प्रेरणा करनेवाला एक पौराणिक देवता जिसकी स्त्री रति, सखा बसन्त, बाहन कोकिल, अस्त्र पुष्पधनुषबाण और बारिचर (मछली) केतुपरका चिह्न है। शिवजीके बरदानसे यह बिना अङ्गकेही सबको व्यापता है। यह देवताओंमें सबसे सुंदर है।

यह विनय 'मारू' रागमें की गयी है। यह राग युद्धके समय गाया जाता है। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। यह 'श्री' रागका पुत्र माना जाता है। यह सुभटोंको परम सुखदायी है। यथा '**भेरि नफ़ीर बाज सहनाई। मारू राग सुभट सुखदाई।**'

पदार्थः—कठिन दोष और दुःखोंको नाश करनेवाली, हे देवि! मुझपर दया करो। (अर्थात् मैंभी इनसे पीड़ित हूं। मेरे दोष और दुःख नाश कीजिये)। आप संसारकी मूल (उत्पत्ति करनेवाली), अपने भक्तोंपर विशेष अनुकूल (प्रसन्न रहनेवाली अर्थात् दया करनेवाली), (धनुष) बाण † और त्रिशूल धारण करनेवाली, महामूलप्रकृति हैं। १।

† 'कर' पाठका अर्थ होगा 'हाथमें त्रिशूल'। 'सर' पाठमें धनुषकाभी अर्थ साथसाथ कर लेना चाहिये, क्योंकि बिना धनुषके केवल

आप बिजलीके सारके समान (प्रकाशमान्) अंगवाली हैं । ‡ आपके सब अंग (जैसे जहां चाहिये वैसे गठे हुए सुठौर) सुंदर हैं; जिनपर दिव्य वस्त्र शोभित हैं और प्रकाशमान भूषण विशेष शोभायमान् हैं । सुंदर हिरनके बच्चे और खंजन पक्षीके समान (कजरारे लंबे, उभरे हुए, करुणरस भरे, सुंदर, चंचल) नेत्र हैं । चन्द्रमाके समान मुख है जिसे

बाण हो नहीं सकता । देवी धनुषबाणभी धारण किये हुए हैं । यह बात पद १६ से प्रमाणित होती है । वहाँ देवीको 'बर्मचर्म कर कृपान सूल सेल धनुषबाण धरनि ।' कहा है । पद १६ के उद्धरणमें अंतिम शस्त्र बाण है । यहां बाण ('सर') को पहले और 'सूल' शब्दको पीछे देकर पद १९ के उन सब अस्त्रशस्त्रोंको सूचित कर दिया है जो 'सुल' से लेकर 'बान' तक वहां आये हैं । इसतरह सूल, सेल, धनुष और बाण चार अस्त्र शस्त्रोंका धारण करना कहकर 'चतुर्भुज' रूपका ध्यान यहाँ सूचित किया गया है ।

‡ 'गर्भांग' पाठके अर्थ–१ अंगोंका जो गर्भ अर्थात् भीतरका भाग है, वह बिजलीकी नाईं है । (पं० रा० कु०) । २ गर्भांग = मध्य अंग । (च) । सार भाग, 'सारांशके समान गौर' (वै०) । ३ तड़ित गर्भांग = बिजलीके अंदर (भीतरकी) चमकसी जो अलख हैं जिसपर किसीकी नज़र न ठहरे ।' (ह०) । ४ सब अंग बिजलीके समान चमकीले शोभित हैं । (वीर) ५ सर्वांग शरीर बिजलीगर्भित है; अर्थात् ऐसा दिव्यकान्तिमय है मानों अंगअंगमें बिजलीही भरी है । अतः महासुंदर है । (दी०) । ६ तुम्हारे शरीरके प्रत्येक अंगोंमें बिजलीसी कौंध रही है । (वि०)

भ० जीने 'गर्भांगि' पाठका यह अर्थ किया है कि ''जिनके प्रत्येक भागमें बिजली भरी है ऐसे तुम्हारे सब सुंदर अंग शोभायमान हैं।'

किसीने 'गर्भ' का तड़ितके साथ अन्वय किया है और किसीने 'अंग' के साथ । हमने दीपदेहरीन्यायसे दोनोंके साथ, पर विशेषतः 'तड़ित' के साथ लेकर अर्थ किया है ।

(जिनकी छविको) देखकर अगणित रति, (अपने पति) कामदेव लज्जित होते हैं । २ ।

टिप्पणी:–१ 'दुसह दोष दुख दलनि करि देवि दाया।' इति । (क) 'दोष' दूष्यते इति दोषः । (दुष वैकृत्ये णिच् भावे घञ) = बुराई । चाणक्यने लिखा है, 'अदाता वंशदोषेण कर्मदोषाद्दरिद्रता । उन्मादी मातृदोषेण पितृदोषेण मूर्खता ॥' वस्तुतः कृपणता, दरिद्रता, प्रमत्तता और मूर्खताही बुराइयाँ हैं, दोष हैं, जो मनुष्यको दूषित बनाते हैं। दुष् करणे धातुसे दुष्यते अनेन इति, घञ् प्रत्यय करनेपर दोष शब्द निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है पाप । प्राचीन न्यायशास्त्रके मतानुसार 'वह मानसिक भाव जो मिथ्या-ज्ञानसे उत्पन्न होता है, और जिसकी प्रेरणासे मनुष्य दुष्कर्मोंमें प्रवृत्त होता है उसीका नाम दोष है।'

(ख) गोस्वामीजीने इस पदसे भवानीकी स्तुति की है, जो जग-जननी हैं और गोस्वामीजीकी संरक्षिका, पोषिका हैं। दोषकी उपर्युक्त दोनों व्याख्याएँ कविको ग्राह्य हैं। उन्हें अपनी अथसे इतितककी परिस्थिति ज्ञात है, स्मरण है, जिसे विनय करनेसे पूर्व प्रगट करना उचित समझते हैं और विनय करनेके योग्य पात्र बननेकेलिये माताके सामने सारी बुराइयाँ और कमज़ोरियाँ निःसंकोच प्रगट करते हैं।

दरिद्रता दोषोंकी खान है। यह गोस्वामीजीके जन्मकालसे पीछे पड़ी है। दरिद्रता कर्मदोषसे होती है। गोस्वामीजी उसे मुक्तकंठसे स्वीकार करते हैं। उन्होंने अपने प्रत्येक ग्रंथमें कर्मको बरियार माना है। दरिद्रताभी स्वीकार करते हुये 'बारे ते ललात बिललात द्वार द्वार द्वार' इत्यादि करुणोत्पादक वाक्य यत्र तत्र लिखे हैं। यह गरीबी 'टूकर कूकर सो लाग लगाई' दरिद्रतादोषकी पराकाष्ठा सिद्ध करती है। दोषकी दूसरी व्याख्याके अनुसार मिथ्याज्ञानसे उत्पन्न भाव जो युवावस्थामें तरुणीरक्त बना था जिसका गोस्वामीजीने बड़ी ग्लानि और लज्जाके साथ वर्णन किया है, दुसह दोषही तो है। इनसे बढ़कर दुसह दोष अब क्या होंगे? इसीलिये तो इनके दलन करनेकेलिये कवि

माँसे विनय करते हैं। उन्हें विश्वास है कि ‘कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति’। यह दोष शब्द कवि तुलसीदासजीके बालपन और युवावस्थाकी जीवनीके निदर्शनमें प्रयुक्त है।

(ग) दुःख अनेक प्रकारके होते हैं। (१) तर्कशास्त्रके अनुसार प्रतिकूल वेदनाका नाम दुःख है। (२) सांख्यशास्त्रके अनुसार प्रतिकूल वेदनीय रजोकार्य धर्मभेद दुःख है। (३) न्याय और वैशेषिक चित्तके कार्यको दोष मानते हैं। शास्त्र तो दुःखको आत्माका धर्म मानते हैं। (४) वेदान्तदर्शन दुःखको बुद्धिधर्म या चित्तधर्म मानता है।

कर्मका चरमफल सुख या दुःखका भोगही है। दुःखका अत्यन्ताभाव होनेसे मुक्ति होती है। मुख्यतया दुःख तीन प्रकारका है। आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक।

सांख्यभाष्यमें लिखा है ‘आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखं। तथा सञ्छिद्य कान्ताशां सुखं सुष्वाप पिंगला॥’ वस्तुतः आशाही परम दुःख है। जिस दिन आशा नष्ट होगी उसी दिन दुःखका अवसान है।

गोस्वामीजी निर्भराभक्तिपूर्ण भक्त थे। वे आशावादी नहीं थे। वे तो यहाँतक कहते थे कि ‘कोकरि सोच मरै तुलसी हम जानकिनाथके हाथ बिकाने।’ यहाँ ‘दुख’ से तात्पर्य आशाकाही प्रतीत होता है।

(घ) ‘देवि’ इति। ‘दी व्यतीति देवी अथवा देवयति प्रवृत्ति निवृत्ति उपदेशेन यथाधिकारं व्यवहारयति सर्वान् देव णिच्’। डी० प.। देवी=माँ दुर्गा। देवीभागवत्में लिखा है कि जो मां दुर्गाका अनन्यभावसे उपासना करते हैं, उन्हें अपराध करनेपरभी दुःख नहीं भोगना पड़ता। क्योंकि उनके संरक्षक स्वयं शिवजी हैं। यही कारण है कि गोस्वामीजी अपनेको बचपनसे दोषी समझते हुए भवानीकी वन्दना करते हैं। वे दुःखसे निवृत्त होना चाहते हैं। उन्हें देवीकी कृपाका भरोसा है, विश्वास है और पूर्ण स्मरण है। संभवतः इस पदको लिखतेसमय तुलसीदासजीने दुर्गासप्तशतीके “दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः स्वस्थैः स्मृता-

मतिमतीव शुभां ददासि। दारिद्र्यदुःखभयहारिणिकात्वदन्या सर्वोपकार करणाय सदार्द्रचिता ॥ ' इस श्लोकका स्मरण किया हो।

(ङ) ' दाया ' इति। 'दयमिदा घङ् ततष्टाप' दया। मनका वह दुःखपूर्ण वेग जो दूसरेके कष्टको देखकर प्रस्फुटित हो जाता है और उसके कष्टको दूर करनेकी यथाशक्ति चेष्टा करता है। तुलसीदासजी दारिद्र्य और मिथ्याज्ञानजन्य दुष्प्रवृत्तिसे दुखित हैं। इसलिये माँसे दयाकी भीख माँगते हैं।

यह पद गोस्वामीजीकी प्रारंभिक जीवनकी एक झाँकी है। (दे० द० शास्त्रीजी)।

२ (क) ' विश्वमूलासि ' इति। ' **भव भव विभव पराभव कारिनि। विश्वविमोहिनी स्ववस बिहारिनि।** ' (बा०) 'जगसंभव पालन लयकारिनि'। (बा०) (ख) 'महामूल माया' इति। '**तुम्ह माया भगवान सिव सकल जगतपितुमातु**।' (बा०)। (ग) 'विश्वमूला' कहकर 'जन सानुकूला' कहनेका भाव कि जगज्जननी होनेसे यद्यपि आपकी अनुकूलता संसारके सभी जीवोंपर एकरस एकसमान है तथापि अपने जनपर आप विशेष कृपा करती हैं, यह अन्याय नहीं है। श्रीरघुनाथजीके श्रीमुख वचन हैं कि '**सेवक प्रिय सबके यह नीती। मोरे अधिक दास पर प्रीती**।' जनपर सानुकूल हैं इससे उनकी रक्षाकेलिये सदा 'सर शूल' धारण किये रहती हैं। 'सर सूल धारिणि' से दुष्टों अर्थात् भक्तोंको सतानेवालोंको दंड देना कहा। लोकसंग्रहार्थ ऐसा करना आवश्यक है। ऐसा करना मानों शरीरके किसी एक अंगमें हुए रोगको दूर करके उसे अच्छा करना है।

३ ' रति मार लाजे ' इति। त्रैलोक्यकी स्त्रियोंमें कहीं यह सुन्दरता है और न पुरुषोंमेंही। स्त्रियोंमें सबसे सुन्दर रति और पुरुषोंमें सबसे सुन्दर कामदेव है। 'मार' भी लज्जित होता है कि मैं त्रैलोक्यविजयी हूं तोभी मेरा किंचित् बस इनपर नहीं चलता। स्मरण रहे कि रूपगर्विता नायिका अपने रूपके सामने किसी पुरुष या स्त्रीको कुछ नहीं समझती। कामदेवको जो अपनी स्त्रीकी सुन्दरताका गर्व था वह चूर हो गया।

श्रीरामचरितमानसमें भी श्रीपार्वतीजीको 'सुन्दरता मर्याद भवानी' और 'दामिनि द्युति गाता' कहा है। 'रति मार लाजै' में 'सुन्दरता मर्यादा' का और 'दामिनि द्युति गाता' में 'तड़ित गर्भांगि' का भाव जना दिया है।

अनुसंधान [१५]

रूप सुख सील सीमासि भीमासि
रामासि बामासि बर बुद्धि बानी।
छमुख हेरंब अंबासि जगदंबिके
संभुजायासि जय जय भवानी ॥३॥
चंड भुजदंड खंडनि[7] बिहंडनि मुंड[8]
महिष मद भंग करि अंग तोरे।
सुंभ निसुंभ कुंभीस रणकेसरिनि[9]
क्रोध बारिधि बरिबृंद[10] बोरे ॥४॥
निगम आगम अगम गुर्बि तव गुन कथन
उर्बिधर करत[11] जेहि सहस जीहा।
देहि मा मोहि पनु[12] पेमु[13] यहु[14] नेमु
निज राम[15] घनस्याम तुलसी पपीहा ॥५॥

शब्दार्थः—सील (शील)=उत्तम आचरण; सद्वृत्ति; कोमल हृदय, अच्छा स्वभाव जिसमें कभी दूसरेका जी न दुखे और ऊंच नीच कोईभी क्यों न हो उसका आदर, उससे प्रिय बोलना, इत्यादि सब भाव इसमें आ जाते हैं। शिष्टाचार। 'सुनत सीतापति सीलसुभाउ।' पद १०० 'शील' की व्याख्या वा भावार्थही है, उसे देखिये।

७ खंडनि–६६, रा०, ह०, ७४, आ० (मु०)। खंडन–भा०, बे०, ज०, ५१, मु०। ८ महिषमुंड–भ०, ७४, वि०। मुंडमहिष–औरोंमें। ९ केसरिन–मु०, ७४। के सरन–५१। १० अरबृंद–५१, वि०। ११ कहत–ह०, मु०, वै०, ७४। १२ पनु–६६, रा०, भ०। पन–भा०, बे०, डु०, प्र०, ज०, ७४, बि०। प्रन–ह०। प्रण–१५, ५१, दी०। १३ पेमु–६६, रा०। प्रेम– औरोंमें। १४ यह–रा०, भा०, बे०, ह०, ७४, आ०। १५ नाम–डु०। ७४ में 'निज नेम यह राम' पाठ है।

'प्रभु तरु तर कपिडारपर ते किय आपु समान। तुलसी कहूं न रामसे साहिब सीलनिधान।' (बा०)। यह भी शील है। सीमासि = सीमा + असि। सीमा = हद, मर्यादा। भीमासि = भीमा (भयंकरा, भयंकररूपा) + असि (है)। बाबा हरिहरप्रसादजी ने 'भयंकर है तलवार जिसकी' यह अर्थ किया है, पर यह अर्थ संगत नहीं है। छमुख = षटवदन, कुमार कार्तिकेय, स्वामिकार्तिक, इत्यादि सब आपके नाम हैं। तारकासुरके बधकेलिये इनका अवतार हुआ जिसका उल्लेख रामचरितमानसमें है। दक्षयज्ञमें सती तनके भस्म होनेके बाद पार्वतीजीके साथ शिवजीका पाणिग्रहण हुआ। तब कार्तिकेयजीका जन्म हुआ। पुराणोंमें इनके जन्मकी कथाएँ अनेक प्रकारकी हैं। सारांश यह है कि पार्वतीजीके साथ बहुत कालविहार करनेपर शिवजीके तेजसे ये उत्पन्न हुए। वीर्यको जिसजिसने धारण किया उस उसके ये पुत्र कहलाये। पृथ्वी, अग्नि और गंगा कुछ कुछ तेज धारण कर सकीं। गंगामें जब अग्निने तेजको उगला तब वह वहाँ छः भागोंमें पड़ा, जो मिलकर एक शरीर बन गया। जिसमें छःमुख हुए। छः कृत्तिकाओंने इन्हें लाकर दूध पिलाया। ये एकएक मुखसे एकएक कृत्तिकाका दूध पीने लगे। इसीसे षड़ानन, षट्‌वदन और कार्तिकेय नाम हुए। ये बहुत सुंदर हैं, मोर इनका बाहन है, शक्ति इनका अस्त्र है और तप्तस्वर्णसमान शरीरकी कांति है। ये देवताओंके सेनापति हुए। किसी पुराणोंका मत है कि ऋद्धि सिद्धिका विवाह गणेशजीके साथ हो जानेसे इन्होंने कुमार रहनेकी प्रतिज्ञा कर ली थी, इससे 'कुमार' भी नाम पड़ा। परंतु पद्मपुराणमें इनका बिवाह कहा गया है। सृष्टिखंडमें देवादि उत्पत्ति वर्णन प्रकरणमें स्पष्ट लिखा हुआ है कि "अग्निपुत्र कुमारका जन्म सरकंडोंमें हुआ। उनके शाख, उपशाख और नैगमेय तीन पुत्र हुये। कृत्तिकाकी संतान होनेके कारण कुमारको कार्तिकेयभी कहते हैं।" विशेष टिप्पणी ४ में लिखा गया है। हेरंब = गणेशजी। अंबा, अंबिका = माता। जाया = विवाहिता स्त्री, पत्नी। विशेषतः वह स्त्री जो किसी बालकको जन्म दे चुकी हो।

भवानी = भव (शिव) पत्नी। संसारकी अधिष्ठात्री देवी। (दी०)। भुजदंड = बाहुदंड। कंधेसे निकलकर डंडेके रूपमें गया हुआ अंग जिसके छोरपर हथेली या पंजा लगा होता है। बिहंडन = (बिहंडना) खंड खंड कर डालना, मार डालना, काटना। मुंड = यह दैत्य शुंभकी सेनाका एक सेनापति था जो उसकी आज्ञासे भगवतीके साथ लड़ रहा था और उन्हींके हाथ मारा गया। चंड और मुंडके बधसेही उनका नाम चामुंडा पड़ा। महिष = महिषासुर। यह रंभ नामक दैत्यका पुत्र था। इसकी आकृति भैंसेकीसी थी। मार्कण्डेय पुराणमें इसकी कथा विस्तारसे है। शुंभ निशुंभ = ये असुर प्रह्लादके पौत्र और गवेष्ठीके पुत्र थे। दुर्गासप्तशती, देवीभागवत और कालिका पुराणमें इनकी कथाएँ हैं। पं० श्रीनारायणशास्त्रीजी लिखते हैं, 'श्रीविद्याके लीलाविग्रह तो अनंत हैं। त्रिपुरारहस्यमाहात्म्यखण्ड तथा ब्रह्माण्डपुराणोत्तरखण्ड आदि पुराणेतिहासोंमें मुख्य विग्रहोंका परिगणन है। कुमारि, विरूपा, गौरी, रमा, भारती, काली, चंडिका, कात्यायनी, दुर्गा, ललिता आदि दैत्य मधु और कैटभके कुलोंमें उत्पन्न, शुंभ निशुम्भ नामके दो दैत्योंने उग्र तपस्या कर ब्रह्माजीसे पुरुषमात्रसे अजेय होनेका वर प्राप्त किया। तीनों लोकोंपर उन्होंने आक्रमण किया। सारे देवता निर्वासित किये गये। ब्रह्मा विष्णु शिवसहित इंद्रादि देवोंने जान्हवी तीरपर 'नमो देव्यै' इस स्तोत्रसे त्रिपुराम्बा श्रीविद्याकी स्तुति की। त्रिपुराम्बाने प्रसन्न होकर गौरीको भेजा। गौरीने देवोंका वृत्तान्त सुनकर कालीरूप धारण किया और शुंभनिशुंभद्वारा षित चंडमुंडनामक दैत्योंका बध किया। महिषासुरको मारनेकेलिये महालक्ष्मी दुर्गारूपमें श्रीविद्या त्रिपुराम्बाने अवतार ग्रहण किया। यह कथा सप्तशतीके मध्यम चरित्रमें प्रसिद्ध है। (शक्ति अंकसे) जिससमय निशुंभको देवीने मारा था और उसके भाई शुंभने देवीके बहुतसे रूप देखकर कहा था कि तुम्हारे साथ अनेक सहायक हैं इसलिये तुम जीत रही हो। तब देवीने उत्तर दिया था कि '**एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा। पश्यैतां दुष्ट मय्येव विशंत्यो मद्विभूतयः॥**' इस जगत्में मैंही अकेली हूं और

अद्वितीय हूं। अन्य क्या है ? अर्थात् अन्य कुछभी नहीं है। रे दुष्ट! जो कुछ तुम्हें अन्य भासता है सो मेरी विभूतियाँ हैं। यह देख सब मेरेमें विलीन होती हैं। ' पद १६ ' कालिका ' देखिये। कुंभीस = कुंभ (हाथी) + ईश = गजराज, बड़ामतवाला हाथी। केसरिनि = सिंहिनी। (बोरना) बोरे = जलमें डुबाना। 'गुर्वि' (गुर्वी) = बड़ी वा श्रेष्ठ स्त्री। (च०, श० सा०) भारी, गरू (पं० रा० कु०, दी०)। उर्विधर उर्वी + धर = पृथ्वीको धारण करनेवाले शेषजी। †जीहा = जिह्वा, जीभ। पनु = पन, प्रण, प्रतिज्ञा। निज=इस शब्दके अनेक अर्थ होते हैं। १ अपना, खास, मुख्य; सच्चा, यथार्थ। यथा ' कवनि भगति कीन्ही गुननिधि द्विज। होइ प्रसन्न दीन्हेहु सिव पद निज।' (पद २)। २ निश्चय, दृढ़, सही सही। यथा ' मन मेरे मानहि सिख मेरी। जो निज भगति चहै हरि केरी।' (पद १२६)। ३ विशेष करके, खासकर, यथा ' देखु बिचारी सारका साँचो कहा निगम निजु गायो।' सिद्धांत। ४ अखंड (च०)। नेम=बंधेज; बँधी हुई बात जो टल नहीं, बराबर होती रहे। घनश्याम=काले मेघ। पपीहा=चातक। कीड़े खानेवाला एक पक्षी जो बसंत और वर्षामें प्रायः अनेक पेड़ोंपर बैठकर सुरीली ध्वनिसे बोलता है। देशभेदसे वह कई रंग, रूप और आकारका होता है। उत्तर भारतमें इसका डील प्रायः श्यामा पक्षीके बराबर और रंग हलका काला या मटमैला होता है। यह पेड़से प्रायः बहुत कम नीचे उतरता है और बहुतही छिपकर बैठता है। बोली बहुतही रसमय होती है और उसमें कई स्वरोंका समावेश होता है। हिन्दी कवियोंने मान रक्खा है कि बोलीमें 'पी कहाँ, पी कहाँ' अर्थात् 'प्रियतम

---

†'उर्वी' इति। परशुरामजीने जब यह पृथ्वी कश्यपजीको दान कर दी उस समय बलवान रक्षक न होनेके कारण ब्राह्मणोंमेंसे किसीकीभी प्रभुता कायम न रही। पापियोंके अत्याचारसे पीड़ित हो यह वसुधा रसातलमें धसने लगी। यह देख कश्यपजीने अपने उरुओंसे सहारा देकर इसे रोका। इसलिये यह 'उर्वी' कहलाने लगी। (महाभारत श्रीकृष्ण युधिष्ठिर संवाद। परशुरामचरित्र प्रसंग)

कहाँ है ?' बोलता है। यहभी प्रवाद है कि यह केवल वर्षाका स्वातिबुंदही पीता है। प्याससे मर जानेपरभी नदी तालाब आदिके जलमें चोंच नहीं डुबाता। जब आकाशमें मेघ छा रहे हों उस समय यह माना जाता है कि यह इस आशासे कि कदाचित् कोई बूँद मेरे मुँहमें पड़ जाय बराबर चोंच खोले उनकी ओर टक लगाये रहता है। यह केवल स्वातीका बूंद पीता है। यदि वह न बरसे तो सालभर प्यासाही रह जाता है। इसकी बोली कामोद्दीपक मानी गयी है। इसके अटल नियम, मेघपर अनन्य प्रेम आर इसकी बोलीकी कामोद्दीपकताको लेकर कवियोंने अच्छी अच्छी उक्तियां की हैं। विशेष भाव, 'राम नाम नव नेह मेह को मन हठि होहि पपीहा।' पद ६५ में देखिये।

पद्यार्थः—रूप, सुख और शीलकी सीमा हो (अर्थात् आपसे बढ़कर सौंदर्य, सुखभोग और शील कहीं नहीं है), (दुष्टोंकेलिये) भयंकरा हो, तुम्ही रामा हो, तुम्ही वामा हो और तुम्हीं श्रेष्ठ बुद्धिवाली वाणी हो। षड़ानन और गणेशजीकी माता हो, (इन्हींकी नहीं वरंच) जगत्मात्रकी माता और शिवजीकी पत्नी हो। हे भवानी ! हे जगदंबिके ! आपकी जय हो, जय हो। ३। तुम चंड दैत्यकी भुजाओंको टुकड़े टुकड़े कर डालनेवाली और मुंडदैत्यको नाश करनेवाली हो! महिषासुरका (बलका) घमंड चूर्ण कर आपने उसके अंग प्रत्यंग तोड़ डाले। शुंभ और निःशुंभ-रूपी गजराजों (को विदीर्ण करने) के लिये रणमें सिंहिनीरूप, आपने क्रोधरूपी समुद्रमें शत्रुओंके झुंडके झुंड डुबा दिये। ४। हे गुर्वि ! वेदों, नारदपाञ्चरात्रादि तंत्रशास्त्रोंको आपके भारी गुणोंका वर्णन करना बहुत अगम है। पृथ्वीके धारण करनेवाले शेषजी जिनके (दो) हज़ार जिह्वाएँ हैं (वेभी) आपके गुण गान करतेही रहते हैं*। (अर्थात् सहस्त्र जिह्वासे गुणगान कहते हुएभी पार नहीं पाते)। हे मां ! मैं तुलसीदास श्रीराम-

*किसीने 'गुर्वि' को 'अगम' का और किसीने 'गुण' का विशेषण माना है। हमने इसे संबोधनभी माना है और गुणका विशेषणभी। वीर-कविजीने 'उर्बिधर कहत जेहि०' पाठ देकर अर्थ किया है कि 'जिसके हज़ार जीभ हैं वेभी यही कहते हैं।'

चन्द्ररूपी श्याम घनका चातक बनूँ यही प्रण, यही प्रेम और यही दृढ़ नेम मुझे दें।

८ 'रामासि बामासि बर बुद्धि बानी।' इति। 'रामा' 'बामा' आदिके अनेक अर्थ कोशोंमें मिलते हैं। टीकाकारोंने भिन्नभिन्न अर्थ किये हैं। रामा = सुन्दर स्त्री। गानकलामें प्रवीण स्त्री। लक्ष्मी, सीता, रुक्मिणी, राधा, इत्यादि। (श० सा०)। बामा = स्त्री, दुर्गा, सुंदरी। स्त्रीरूपा (रा० त० ब०) अत्यंत सुंदर स्त्रीरूपा। (वै०)। टेढ़ी (पं० रा० क०)। 'बाम' का एक अर्थ 'वामदेव शिव' भी है। इस तरह 'वामा' शिवपत्नी, पार्वतीजी है। 'वामा' षोडशवर्षकी अवस्थावाली स्त्रीकोभी कहते हैं। बानी (वाणी) = सरस्वती वाणीके दो रूप हैं। एक वाचाशक्ति, दूसरे सरस्वती। टीकाकारोंमेंसे अधिक 'रामा' का अर्थ 'लक्ष्मी', पं. राजकुमारजी 'सुंदरी' और पं. रामवल्लभाशरणजी 'सबको रमानेवाली' ऐसा अर्थ करते हैं। वियोगीहरिजीने शब्दार्थ तो 'सुंदरी, रमणीया' दिया है, पर भावार्थमें 'लक्ष्मी' अर्थ दिया है। 'रामासि बामासि बरबुद्धि बानी' के अर्थ इस प्रकार भिन्न भिन्न किये गये हैं।

(१) '(दासोंकेलिये) लक्ष्मी, (परोपकारार्थ) पार्वती और बुद्धिमती सरस्वती तुम्हीं हो।' (दी०, वीर०, वि०)। यह अर्थ बहुत अच्छा है पर एक कठिनाई आ पड़ती है कि आगे, 'संभुजाया' फिर कहाही है। यह कह सकते हैं कि लक्ष्मी, ब्रह्माणी और पार्वती तीन रूपसे हो, पर हो तीनों आपही, यह ऐश्वर्य है। यथा देवी भागवते, '**नूनं सर्वेषु देवेषु नाना नामधरो ह्यहम्। भवामि शक्तिरूपेण करोमि च पराक्रमम्॥ गौरी ब्राह्मी तथा रौद्री बाराही वैष्णवी शिवा। वारुणी चाथ कौबेरी नारसिंही च वैष्णवी॥ उत्पन्नेषु समस्तेषु कार्येषु प्रविशामि च॥**' अर्थात् ईश्वरकी जब सृष्टि करनेकी इच्छा होती है तब उनकी सगुण शक्ति विष्णु आदि भिन्नभिन्न देवताओंमें और घटपटादि पदार्थोंमें प्रविष्ट हो जाती है। जैसे महाकाश एक होनेपरभी घटाकाश, मठाकाशादिभेदसे

---

† भट्टजीकृत अर्थ—'अपने मेघसमान श्यामस्वरूप रामजीमें ऐसा प्रेम०'।

भिन्नभिन्न आकाशका व्यवहार होता है, वैसेही शक्ति एक होनेपरभी शक्तिमत् वस्तुके भेद होनेसे शक्तिभी बहुत प्रकारकी प्रतीत होती है। ऋग्वेदके दशम मण्डलके १२५ वें सूक्तमें आदिशक्ति जगदंबा कहती है कि ' मैं एक होते हुएभी अपनी शक्तिसे नाना रूप भासती हूँ। ' अर्थात् मैंही गौरी हूँ, मैंही ब्राह्मी हूँ, मैंही रौद्री, वैष्णवी, शिवा इत्यादि हूँ और माधुर्यमें आप भवानी हैं, शिवपत्नी हैं।

(२) सुंदरी हो, (शत्रुओं वा दुष्टोंकेलिये) टेढ़ी हो और आपकी बुद्धि और वाणी श्रेष्ठ है। (पं. रा. कु.)। इस अर्थमें यह शंका उठतीही नहीं।

पं. देवदत्तशास्त्रीजी कहते हैं कि " कविने माता पार्वतीकी वन्दना की है, जिसके द्वारा यह भाव प्रदर्शन किया है कि माँ तू सर्वशक्तिशालिनी शक्ति है। तुझमें सृजन्, पालन और संहारकी शक्ति है। सुतरां अवसरके अनुसार तूही सुख शीलकी सीमा है, और तूही शीलरहित भयंकरभी है। तूही परम सुन्दरी है और तूही टेढ़ी है। श्रेष्ठ बुद्धि और वाणी तूही है। कवि अपनी सीधी सच्ची तोतली भाषामें पुत्र बनकर कह रहा है कि मां समयानुसार तू सब कुछ बन सकती है। यदि उमा, माहेश्वरी, पार्वती, त्रिपुरसुन्दरी तेरे रूप हैं, तो काली, कपाली, कराली, कंकाली, भीमा, छिन्नमस्ताभी तो तेरेही रूप हैं।

कवि युगका प्रतिनिधि होता है। राष्ट्रधर्म और समाजका ज़िम्मेदार संरक्षक होता है। तुलसीदास ऐसेही कवि थे। कहना न होगा कि इस्लामी अत्याचारोंसे वे बिलबिला उठे थे। फिरभी तटस्थ रहना चाहते थे किन्तु धर्मका पतन चुपचाप देखनाभी अन्याय समझकर उन्होंने माँ शक्तिसे प्रार्थना की जिसमें दोनों भाव निहित हैं कि मुझे तो अपने राम घनश्यामका पपीहा बनाइये और चंड मुंड महिषके समान आचरण करनेवालोंका मद रूपी भङ्ग कर अंग चूरचूर कर दीजिये। कविको विश्वास है कि यह कार्य शक्तिही कर सकती है। विना शक्तिके कोई समर्थ नहीं हो सकता। ' **कलौ चण्डी विनायकौ** ' कलियुगमें चण्डी और विनायकही सद्यः फल देते हैं।

छमुख, हेरम्बकी माता कहनेका मुख्य तात्पर्य उस इतिवृत्त और अतीतका स्मरण दिलाना है जिस समय पार्वतीजीने इन दोनों पुत्रोंको विशेष कार्यके लिये असुरोंके संहारकेलिये उत्पन्न किया था ।

कविने यहांपर पार्वतीके युग्मरूपोंका वर्णन किया है। एक तो सुशील, दूसरे शीलरहित। परमसुंदर तथा अत्यन्त कराल और माता (जगत्‌की) तथा पत्नी (शिवजीकी)। शक्तिकी मुख्यतया दोही शक्तियां हैं, परा और अपरा। यहाँ दोनों प्रकारकी शक्तियोंका ध्यान है, सामंजस्य है ।

'छमुख' इति। ऊपर शब्दार्थमें 'छमुख' के जन्म और नाम आदिकी एक कथा लिखी गयी है।

महाभारत वनपर्वमें युधिष्ठिरजीके प्रश्न करनेपर इनके जन्मादिकी जो कथा मार्कण्डेयजीने कही है वह कुछ भिन्न प्रकारकी है। वे कहते हैं कि पूर्वकालमें असुरोंकी सदा देवसेनापर विजय देख इंद्र मानस-पर्वतपर जाकर एक श्रेष्ठ सेनापति प्राप्त करनेकेलिये विचार करने लगे। इतनेमें केशीके हाथोंमें पड़ी आर्त्तस्वरसे चिल्लाती हुई प्रजापतिकी कन्या देवसेनाको देख उन्होंने केशी दैत्यको मारकर उसे छुड़ाया। फिर कन्याका परिचय पाकर और यह जानकर कि वह अपनी मौसेरी बहिन है उससे पूछा कि तू कैसा पति चाहती है। उसने कहा कि "जो देवता, दानव, यक्ष, किन्नर, नाग, राक्षस और दुष्ट दैत्योंको जीतने वाला महान् पराक्रमी और अत्यन्त बलवान् हो तथा जो तुम्हारे साथ मिलकर सबपर विजय प्राप्त करे ऐसा ब्रह्मनिष्ठ मेरा पति हो।" ऐसा कोई वर न देखकर वे ब्रह्माके पास गये। उन्होंने कहा कि अग्निके द्वारा ऐसा पराक्रमी बालक होगा। वसिष्ठादि ब्रह्मर्षि देवर्षि एक यज्ञ कर रहे थे जिसमें देवता आ आकर अपने भाग ग्रहण करते थे। आवाहन करनेपर अग्निदेवभी वहां आये। ऋषिपत्नियोंको देखकर अग्निदेवकी इंद्रियाँ चंचल हो गयी। परन्तु ऋषिपत्नियां बड़ी पतिव्रता और शुद्धहृदया थीं। वे वनको चले गये। उनकी पत्नी स्वाहाको जब यह मालूम हुआ तो उसने एकही दिन एक एककर सप्तर्षियोंमेंसे छः की पत्नियोंका रूप

धारणकर अग्निको तथा अपनी कामाग्निको शान्त किया। वह प्रत्येक बारका वीर्य हाथमें लेकर एक स्वर्णकुण्डमें रखती गयी। अरुन्धतीके तप और पातिव्रत्यके प्रभावसे वह उनका रूप धारण न कर सकी। उस कुण्डसे ऋषिपूजित एक बालक उत्पन्न हुआ। स्खलित वीर्यसे उत्पन्न होनेके कारण उसका नाम स्कन्द हुआ। उसके छः सिर, बारह कान, बारह नेत्र, बारह भुजाएँ तथा एक ग्रीवा और एक पेट था। प्रतिपदाको वीर्य स्खलित हुआ, द्वितीयाको बालक अभिव्यक्त हुआ, तृतीयाको शिशु रहा और चतुर्थीको अंगप्रत्यंगसे संपन्न हो गया। महादेवजीके त्रिपुरनाशक धनुषको स्कन्दने उठा लिया और सिंहनाद करने लगे। यह डरकर कि कहीं यह हमारा राज्य न छीन ले, इन्द्रने चढ़ायी की। स्कन्दने अपने मुखसे धधकती हुई अग्निकी ज्वालाएँ छोड़ीं। सब देवसेना छिन्न भिन्न हो उनकी शरण आनेपर बची। इंद्रने वज्र चलाया। उसके लगनेसे उनके अंगसे एक और दिव्य पुरुष उत्पन्न हुआ। यह देख इंद्र डरकर शरण गया। इंद्रके कहनेपरभी स्कंदने इंद्र बनना स्वीकार न किया। दानवोंके विनाश, देवताओंकी अर्थसिद्धि तथा गौ और ब्राह्मणोंके हितकेलिये देवसेनापतिके पदपर उनका अभिषेक किया गया। शक्ति, धर्म, बल, तेज, कान्ति, सत्य, उन्नति, ब्रह्मण्यता, असम्मोह, भक्तोंकी रक्षा, शत्रुओंका संहार और लोकोंकी रक्षा करना ये सब गुण जन्मतःही उनमें हैं। कन्या देवसेनाका विवाह उनके साथ कर दिया गया।

ऋषियोंने बालक उत्पन्न होनेका समाचार पाकर अपनी पत्नियोंको त्याग दिया, यद्यपि विश्वामित्रने कहाभी कि उनका दोष नहीं है। तब वे स्कंदकी शरणमें आयी और कहा कि हम तुम्हारी माता बनना चाहती हैं। तुम्हें अपना पुत्र बनाना चाहती हैं। तुम हमारी रक्षा करो। स्कन्दने उनकी बात स्वीकार कर ली।

तदनन्तर ब्रह्माजीने उनसे कहा, तुम अपने पिता महादेवजीके पास जाओ, क्योंकि संपूर्ण लोकोंके हितकेलिये भगवान् रुद्रने अग्निमें और उमाने स्वाहामें प्रवेश करके तुम्हें उत्पन्न किया है।

कार्तिकेयजीके वस्त्र, माल, रथके घोड़े, सभी लाल रंगके थे। शरीरपर सुवर्णका कवच था और सूर्यके समान सुनहली कान्तिवाले रथमें वे विराजमान थे। उन्होंने महिषासुरका सिर अपनी एक प्रज्वलित शक्ति छोड़कर काट डाला।

पद्मपुराण सृष्टिखण्डमें कार्तिकेयके जन्मकी कथा इस प्रकार है। श्रीशङ्करजीको पार्वतीजीके साथ निवास करते एक हज़ार वर्ष बीत गये। तत्पश्चात् श्रीपार्वतीजी शय्यासे उठकर कौतुहलवश एक सरोवरके तटपर गयी जो स्वर्णमय कमलोंसे सुशोभित था। वहां जाकर उन्होंने जलविहार किया। तदनन्तर वे सखियोंके साथ सरोवरतटपर बैठीं और उसके निर्मल पंकजोंसे सुशोभित स्वादिष्ट जलको पीनेकी इच्छा करने लगीं। इतनेमेंही उन्हें सूर्यके समान तेजस्विनी छः कृत्तिकाएँ दिखायी दीं। वे कमलके पत्तोंमें उस सरोवरका जल लेकर जब अपने घरको जाने लगीं तब पार्वतीजीने उनसे कहा 'देवियो! कमलके पत्तेमें रक्खे हुए जलको मैंभी देखना चाहती हूँ।' वे बोलीं 'सुमुखि! हम तुम्हें इस शर्तपर जल दे सकती हैं कि तुम्हारे प्रिय गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न हो वह हमाराभी पुत्र माना जाय एवं इससेंभी मातृभाव रखनेवाला तथा हमारा रक्षक हो।' गिरिजाने 'एवमस्तु' कहा। कृत्तिकाओंने कमलपत्रमें स्थित जलमेंसे थोड़ासा उनको दे दिया। जल पीनेके बाद तुरंतही रोगशोकका नाशक एक सुंदर और अद्भुत बालक भगवतीकी दाहिनी कोख फाड़कर उत्पन्न हुआ। उसका शरीर सूर्यकिरणोंके समान प्रकाशपुंजसे व्याप्त था। उसने अपने हाथोंमें तीक्ष्ण शक्ति, शूल और अंकुश धारण कर रक्खे थे। वह अग्निके समान तेजस्वी और स्वर्णके समान गोरे रंगका बालक कुत्सित दैत्योंको मारनेकेलिये प्रकट हुआ था, इसलिये उसका नाम 'कुमार' हुआ। वह कृत्तिकाके दिये हुए जलसे शाखाओंसहित पैदा हुआ था। वे कल्याणमयी शाखाएँ छहों मुखोंके रूपमें विस्तृत थीं, इन्हीं सब कारणोंसे वह तीनों लोकोंमें विशाख, षण्मुख, स्कन्द, षडानन और कार्तिकेय आदि नामोंसे विख्यात हुआ। ब्रह्मा, विष्णु, इंद्र और सूर्य आदि समस्त देवताओंने चंदन, माला, धूप, खिलौने, छत्र, चँवर,

भूषण और अङ्गराग आदिके द्वारा कुमारको सावधानीके साथ विधिपूर्वक सेनापतिके पदपर अभिषिक्त किया। भगवान् विष्णुने सब तरहके आयुध प्रदान किये। कुबेरने दसलाख यक्षोंकी सेना दी। अग्निने तेज और वायुने वाहन अर्पित किये। इसप्रकार देवताओंने स्कन्दको अनन्त पदार्थ दिये और उनकी स्तुति की और तारकसे भयभीत होनेका हाल बताया। कुमारने उनका भय दूर करनेकी प्रतिज्ञा की। इंद्रने तारकको संदेशा भेजा।

कुमारको देख तारक बोला "बालक! तू क्यों युद्ध करना चाहता है? जा, गेंद लेकर खेल। तेरे ऊपर जो यह महान् युद्धकी विभीषिका लादी गयी है, यह तेरे साथ बड़ा अन्याय किया गया है। तू अभी निरा बच्चा है, इसीलिये तेरी बुद्धि इतनी अल्प समझ रखनेवाली है।" कुमार बोले, 'तारक! सुनो, यहां शास्त्रार्थ नहीं करना है। भयंकर संग्राममें शस्त्रोंद्वाराही अर्थकी सिद्धि होती है। तुम मुझे शिशु समझकर मेरी अवहेलना न करो। साँपका नन्हासा बच्चाभी मौतका कष्ट देनेवाला होता है। बालसूर्यकी ओर देखनाभी कठिन होता है। इसीप्रकार मैं बालक होनेपरभी दुर्जय हूँ। दैत्य! क्या थोड़े अक्षरोंवाले मंत्रमें अद्भुत शक्ति नहीं देखी जाती?'

कुमारकी बातें सुनतेही दैत्यने उनपर मुद्गलका प्रहार किया। युद्ध छिड़ गया। कुमारने अंतमें अपनी शक्ति हाथमें ली और दैत्यके प्राण हर लिये। (पुलस्त्यभीष्म संवाद)

९ (क) 'छमुख हेरंब अंबासि' से संतानकी योग्यता और परोपकारता, 'जगदंबिके' से निज श्रेष्ठता और 'संभु जाया' तथा 'भवानी' से पतिकी श्रेष्ठता, इस तरह तीन प्रकारसे श्रेष्ठता दिखायी। (ख) 'संभु जाया' और 'भवानी' शब्दोंसे गोस्वामीजीने अपना निश्चित सिद्धांत प्रकट किया है कि शक्ति शक्तिमान्से पृथक् नहीं है। वह कभी शक्तके बिना नहीं रह सकती। शक्ति और शक्त अभिन्न हैं। (ग) 'जय जय' में आदरकी विप्सा है। (घ) 'भवानी' कहकर जनाया कि ये भव (शंकरजी) की शक्ति हैं। 'भवानी' से नित्य-

संबंध भवका जनाया है और छमुख हेरंबकी माता होनेसे 'शम्भुजाया' नाम सार्थक है।

१० (क) 'चंड भुजदंड खंडनि' इति। चंडके संबंधमें 'भुजदंड खंडनि', 'मुंड' की 'बिहंडनि' और महिषासुरके संबंधमें 'मद भंग करि अंग तोरे' कहकर क्रमसे एकसे दूसरेको अधिक बलवान दिखाया, और फिर शुंभ निशुम्भको मत्त गजराज तथा भवानीको 'केसरिनि' कहकर इनको सबका राजा वा अन्य सबोंसे श्रेष्ठ जनाया। (ख) 'रन केसरिनि' इति। भाव कि इनको धोखेसे, छिपकर वा शाप देकर नहीं मारा वरंच संग्राममें सम्मुख लड़कर मारा और सहजही एवं उत्साहपूर्वक मारा जैसे सिंह गजराजको बड़े चावसे मारता है। (ग) 'महिषमद भंग करि अंग तोरे' से सूचित किया कि महिषासुरका वध कठिन था। उसको अपने बलका बड़ा अभिमान था, बड़ा गर्व था। यह बात सप्तशतीके दूसरे चरितसे स्पष्ट है। इसके वधकेलिये सब देवताओंकी शक्तियाँ एकत्र हुईं थीं और उस पुञ्जीभूत शक्तिकेद्वारा महिषासुरका बध हुआ था।

११ महिषासुर बध चरितसे शिक्षा—इस चरित्रमें संघशक्तिका महत्त्व प्रत्यक्ष है। एक देवीकी शक्ति, संभव है, महिषासुरके लिये पर्याप्त न होती। इसीलिये सभी देवोंकी शक्तियां समवेत हुईं और इस प्रकार समवेत हुईं कि उनका एकही स्वरूप बन गया। इस चरितमें मधुपानकी बात आयी है। यहांपर मधुका अर्थ है 'उत्साहका साधक, बाह्य उपकरण'। अपनी शक्ति कितनीभी प्रबल हो परन्तु यदि उसके उत्साह वर्धक और उसकी सहायताकेलिये बाहरी साधन उपयोगमें न लाये जायँ तो कार्य-सिद्धिमें शिथीलता आ जाना संभव है। (श्रीबलदेवप्रसाद मिश्र एम० ए०, एल एल० बी०)

१२ 'क्रोध बारिध बैरि बृंद बोरे' इति। इससे शुंभ निशुंभके सेनापतियों और सेनाका नाश कहा। ये भगवतीका भारी क्रोध देख उसीकी आहुति हो गये, उतनेसेही उनका काम तमाम हो गया। पुनः भाव कि क्रोधमें आकर किसी वैरीको आपने जीता न छोड़ा।

वैरिबृन्दसे धूम्रलोचन और रक्तबीज आदि सेनाध्यक्षोंकाभी वध कह दिया।

१३ दार्शनिक दृष्टिसे इन कथाओंका महत्व—महिषासुरको मोह कहा गया है। यथा '**महामोह महिषेसु बिसाला। रामकथा कालिका कराला।**' (बा० ४६)। आहारविहाररूपी शरीर विकारोंपर अंकुश लगानेपरभी महिषासुररूपी मोहका दमन किये बिना मानवजीवनरूपी जगत्की स्थितिही डाँवाडोल हुआ करती है। तदनन्तर अहंकार और विषयसुखरूपी शुंभ निशुंभके सेनाध्यक्ष, आलस्यरूपी धूम्रलोचन, राग-द्वेषरूपी चण्डमुण्ड और वासनारूपी रक्तबीजके संहारके साथहीसाथ स्वयं उन शुंभ निशुंभकाभी वध करना पड़ता है। आध्यात्मिक दृष्टिसे इन्हीं वधोंमें शक्तिकी महत्ता है। जबतक अपनी शक्ति इतना सामर्थ्य नहीं रखती तबतक वह मुक्ति अथवा मुक्तिके सच्चे फल नहीं दे सकती। (श्रीबलदेवप्रसाद मिश्रजी एम० ए०, एल एल० बी०)

१४ महिषासुर और शुंभ निशुंभादिके चरितोंके आध्यात्मिक भाव—'त्रिविध कर्मसंस्कार वा वासनाबीजही मुक्तिके बाधक हैं। सूक्ष्म विचारसे ये सत्व, रज तथा तमोगुणरूपमें परिचित हैं। चण्डीके प्रधान तीन अंशोंमें इन तीनों संस्कारोंसे परित्राण पानेके पथ एकएक करके तीन चरितोंमें दिखाये गये हैं। (१) मधुकैटभवधमें, (२) महिषासुर वधमें और (३) शुम्भवधमें। पहलेमें देवीने जगत्पालक विष्णुभगवान्को योगनिद्रासे जागृत कर मधुकैटभ नामक असुरद्वयको विनष्ट करनेमें सहायता की। दूसरेमें देवीने सब देवताओंकी सम्मिलित शक्तिके रूपमें आविर्भूत होकर सिंहवाहिनीकी मूर्ति धारण कर महिषरूपी महिषासुरका निधन किया। तीसरेमें देवीने जगद्धात्रीकी मूर्तिमें शुंभ निशुंभ नामक दो भाइयोंका संहार किया।

मधुकैटभनिधन सत्यप्रतिष्ठा, महिषासुरवध चैतन्यप्रतिष्ठा और शुंभवध आनंदप्रतिष्ठा है। माँ हमारी सच्चिदानंदस्वरूपा हैं। पहले माँके अस्तित्वकी उपलब्धि होनी चाहिये। यही साधनाका प्रथम स्तर है। इस स्तरमें जीवभावका विनाश होता है, आसक्तिका मूल छिन्न हो

जाता है, भावी कर्मका बीज विनष्ट होता है, जीव आसक्तिशून्य होकर कर्म करनेको प्रवृत्त होता है, जिससे उसके संचित कर्मबीजका नाश होता है। महिषासुर वधके आख्यानमें संचित कर्मसंस्कारसमूहही असुरोंके रूपमें वर्णित हुए हैं। मन बुद्धि इन्द्रिय समूहकी जो परमात्म-मुखी गति वा परमात्मासे मिलनेका प्रयास है वही देवशक्ति है, और उनकी विषयाभिमुखी लालसाही असुर वा सुरविरोधिनी शक्ति है।

गी० अ० १६ में संपदाओंका विभाग यों किया गया है। 'अभय, सत्वशुद्धी, आत्मज्ञान प्राप्त करनेकी निष्ठा, दान, इंद्रियसंयम, यज्ञ, वेदाध्ययन, तपस्या, सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शांति, दया, अपैशुन, निर्लोभता, मृदुता, लज्जा, धीरता, तेज, क्षमा, धृत्ति, शौच, अद्रोह और निरभिमानिता' देवताओंकी संपदाएँ हैं और 'भय, अशुद्धि, दंभ, दर्प, अभिमान, क्रोध, निष्ठुरता तथा अज्ञान' असुर सम्पदाएँ हैं।

प्रथम आख्यानमें सत्त्वगुणके बहिर्विकासरूपी संस्कारद्वय मधुकैटभके नामोंसे वार्णित हुए हैं। द्वितीय आख्यानमें रजोगुणके विकाससे उत्पन्न पूर्व जन्मोंके संचित संस्कार असुरवृंदके रूपमें वर्णित हुए हैं। जितनी कामना वासना हैं और गीतोक्त दंभ, दर्प, अभिमान इत्यादि असुर सम्पदाएँ हैं ये रजोगुणकी स्थूल सम्पदाएँ हैं। दूसरी ओर रजोगुणके नाना अंतर्मुखी विकासही देवगण हैं। 'मुझे मैं नहीं जानता, अतएव अपने आपको अवश्य जानना चाहिये' इस भावसे उत्पन्न जो चेष्टा होती है वह रजोगुण प्रसूत है। इस चेष्टाके कारण धीरे धीरे अपने आपको जानना सत्त्वगुण है और अपने आपको जाननेके विषयमें निश्चेष्टता तमोगुण है। शुम्भवधके आख्यानकी सहायतासे ज्ञानमयस्तरसे मुक्त होकर जीव किस प्रकार आनंदमय स्तरको पहुँचता है, यह दिखाया गया है।

जीव पहले इन तत्त्वोंको हृदयङ्गम नहीं कर सकता। जब वह इनको जाननेकेलिये व्यस्त होता है, तब उसके हृदयमें देवासुर संग्रामका आरंभ होता है। तब उसे प्रत्यक्ष होता है कि माँ स्वयं समरक्षेत्रमें अवतीर्ण होकर सुरविरोधी भावसमूहका विलोप कर रही है। वह चाहती

है कि अपने प्रिय पुत्रको निरुपद्रव करे, अपने हृदयमें आबद्ध रक्खे। किन्तु मैं (पुत्र) चाहता हूं कि स्वतंत्रतासे खेलूं, कूदूं और जगत्‌की धूल देहपर लगाकर जन्ममृत्युके फंदेमें फँस जाऊँ। क्या माँ यह देख सकती है ? इसीलिये माँ मेरे तीनों खेल घरोंको तोड़ देनेकी चेष्टा करती है। चण्डीरूपमें माताका आविर्भाव कदाचित् यही व्यक्त करता है।' (कल्याणसे)।

१५ 'निगम आगम अगम०' इति। 'निगम आगम अगम' कहकर 'कथन उरविधर करत०' कहनेका भाव कि निगमादिकभी दुर्गम हैं। यह जानकरभी शेषजी वर्णन करतेही हैं। पर हज़ारों जिह्वाओं-सेभी कहकर अबतक पार न पा सके। तब यह निश्चय है कि वे पार पानेके-लिये गुणगान नहीं करते वरंच अपनी जिह्वाओं तथा अपनी वाणीकी सफलताके हेतु ऐसा करते हैं। अतएव मैं आपका गुण कथन करनेको कब समर्थ हो सकता हूँ। फिरभी आपकी दया और प्रसन्नता हेतु कुछ टूटा फूटा कहताही हूँ। ऐसाही रामचरितके विषयमें कहा है। यथा '**सब जानत प्रभु प्रभुता सोई। तदपि कहे बिनु रहा न कोई॥**', '**बुध बरनहिं हरिजस अस जानी। करहिं पुनीत सुफल निज बानी॥**' (बा०)। शिवजीके चरितके सम्बन्धमेंभी कहा है कि, '**चरितसिंधु गिरिजारमन बेद न पावहिं पारु। बरनै तुलसीदासु किमि अति मतिमंद गँवारु॥** बा० १०३॥' तथा '**यस्य गुनगन-गनति बिमलमति सारदा निगम नारद प्रमुख ब्रह्मचारी।**' (पद ११)। श्रीरघुनाथजीके बारेमेंभी अनेक स्थलोंपर ऐसाही कहा गया है। यथा '**निगम सेष सिव पार न पावहिं**'। इससे शंका होती है कि "तब क्या सभीके चरित निगम शेषादि गाया करते हैं और सभीके चरित अपार हैं ?"

इसके सम्बन्धमें यह जान लेना आवश्यक है कि गोस्वामीजीने भगवान् शंकर, श्रीगणेशजी, श्रीसूर्यनारायण, श्रीपार्वतीजी इत्यादिकी जब जब वंदना की है तब तब वे श्रीरामजीके अंगदेव या श्रीरामभक्त या श्रीरामरूप अर्थात् श्रीरामजीके आवेशावतार और अनादि इत्यादि

जानकरही की है। इन सभी हालतोंमें उनके चरित अपार होंगेही। भक्त और भगवान्‌में अभेद है। अग्रस्वामीजीने जब नाभाजीसे भक्तोंके चरित लिखनेको कहा, तब उन्होंने यही कहा था कि भक्तका चरित अपार है, भगवान्‌के चरित कथनसेभी अगम है। यथा "**बोल्यो करजोरि याको पावन न ओरछोर गाऊँ रामकृष्ण नहीं पावउँ भक्त दाँवको**"। गोस्वामीजीभी कहते हैं, "**बिधि हरि हर कबि कोबिद बानी। कहत साधु महिमा सकुचानी॥**" सब देवता अनादि कहे गये हैं, यह बात गोस्वामीजीने शिवपार्वतीविवाहके समय स्वयं कहा है, यथा "**मुनि अनुसासन** गनपतिहि **पूजे संभु भवानि। कोउ सुनि संसय करइ जनि सुर अनादि जिय जानि॥**" इसका प्रमाण श्रुतियोंमेंभी मिलता है। श्रुतियाँ हमें बताती हैं कि इस सृष्टिके पूर्वकी सृष्टिमें जिस प्रकार सूर्य, चन्द्रमा आदिकी सृष्टि थी उसी प्रकारकी सृष्टि इस बारभी ब्रह्माने की। इससे स्पष्ट है कि सूर्यादि सभी देवता प्रत्येक सृष्टिके पूर्व थे। अतएव वे अनादि कहे गये। यथा, '**सूर्यचन्द्रमसौधाता यथा पूर्वमकल्पयेत्।**' (यजुः)। श्रीनारदपञ्चरात्रमें कहा है कि भगवान्‌के अवतारोंके दो भेद हैं, मुख्य और गौण। अपने चिन्मय शरीरसे अवतीर्ण होनेवाले विग्रहको मुख्य और किसी कार्यविशेषकेलिये किसी जीवविशेषमें जिस समय भगवान् प्रविष्ट हो जाते हैं उसे गौण या आवेशावतार कहते हैं। यथा, '**ब्रह्मरुद्रार्जुन व्याससहस्रकरभार्गवाः। ककुत्स्थात्रेय कपिलबुद्धाद्या ये सहस्रशः॥ शक्त्यावेशावतारास्तु विष्णोस्तत्कालविग्रहाः। अनुपास्या मुमुक्षूणां यथेन्द्राग्न्यादि देवताः॥** (नारदपंचरात्र विष्वक्सेन-संहिता)। जिस आवेशावतारके द्वारा जोभी कार्य भगवान् करते हैं वह कार्य उसीके नामसे कहा जाता है कि जिसमें वे आवेशित रहते हैं। उस समय उसकी जोभी प्रशंसा की जाती है वह भगवत्‌रूपसे होती है। इसीलिये उसका कोई अन्त या पार नहीं पा सकता। यही बात शिव, ब्रह्मा, देवी आदिमें रहती है। तभी उनके लिये कहा गया है कि '**निगम आगम अगम**'।

श्रीरामतापिनीयोपनिषत् आदिके भाष्यकार बाबा श्रीहरिदासजी लिखते हैं कि " जैसे सर्व उपनिषदोंकी एकवाक्यता करनेपर शिव, शंकर, ईश्वर और महेश्वर आदि सामान्य शब्दोंसे वाच्य काशीपतिमें कारणत्व न आकर शिव शंकर रुद्रादिसे वाच्य रामही सिद्ध होकर सर्वकारण सिद्ध होते हैं, इस तरह दुर्गा, भवानी, काली आदिकेलिये यदि कहीं कारण शब्द आवे तो वहभी इनके पतिके स्वामी एवं सर्वशेषी श्रीराममेंही पर्यवसित होनेसे सर्व शास्त्रोंका समन्वय होता है। '**विश्वरूपस्य ते राम विश्वे शब्दादि वाचकाः। तथापि मूलमंत्रस्तेविश्वेषां बीजमक्षयम्॥**' (पाद्मे उ०) संपूर्ण शब्द रामजी के ही वाचक हैं। क्योंकि संपूर्ण विश्व आपका शरीर है, तोभी आपका मूलमंत्र संपूर्ण ब्रह्माण्डका अक्षय बीज है। इस वाक्यसेभी यही निश्चय होता है।

१६ ' देहि मा मोहि पनु पेमु यहु नेम० ' इति। (क) इसके अर्थ लोगोंने भिन्न-भिन्न किये हैं। (१) प्रेमपनका दृढ़ नेम अर्थात् निर्वाह। (पं० रा० कु०) (२) प्रतिज्ञासहित प्रेमका यह नेम कि आप श्रीरघुनाथजी स्वातीके श्यामघन है। (वै०) (३) प्रेमका पन और यह निश्चित नियम ग्रहण करनेकी शक्ति दो। (दी०)

सं. १६६६ वाली पोथीमें ' पनु पेमु नेमु ' तीनोंमें उकार है। इससे यह निश्चय हैं कि तीनों बातें माँगते हैं। पपीहामें ये तीनों हैंभी। प्रेम है, नेम है और उसका हठपूर्वक निर्वाहभी है। '**रामनाम नव नेह मेहको मन हठि होहि पपीहा**' मेंभी प्रण वा प्रतिज्ञाका उपदेश है। हठ करके रामनाम प्रेमरूपी स्वातीका चातक बननेको कह रहे हैं। दोहावलीके 'चातक चौंतीसा' को इस रूपकका भावार्थ समझिये।

(ख) 'पन' कहते हैं 'प्रतिज्ञा' अर्थात् दृढ़ संकल्पको। यथा '**यह तन सती भेंट मोहि नाहीं। सिव संकल्प कीन्ह मन माहीं॥**' इसपर आकाशवाणी हुई कि '**अस पनु तुम्ह बिनु करै को आना।**' तब सतीजीके मनमें शंका हुई और उन्होंने प्रश्न किया कि '**कीन्ह कवन पन कहहु कृपाला।**' (बा० ५६)। इससे सिद्ध हुआ कि 'पन' और

'संकल्प' पर्यायवाची शब्द हैं। प्रथम संकल्प होता है कि मैं यह काम करूँगा तब उसकेलिये नियम बाँधा जाता है।

(ग) 'मा' इति। ऊपर 'जगदंबिके' संबोधन किया है। आप जगत्की माता हैं और मैं जगत्में हूँ, इस प्रकार मेरीभी माता हुईं। दूसरे शंभु-जाया और भवानी होनेसेभी माता पुत्रका सम्बन्ध उनमें और अपनेमें कायम किया। यथा ' गुर पितु मातु महेस भवानी। प्रनवौं दीनबंधु दिन दानी।' विशेष पद ११ देखिये। दो पदोंमें स्तुति की गयी क्योंकि उनके दो रूप हैं, एक विद्या दूसरी अविद्या, एक परा दूसरी अपरा।

१६ [२०] रागु सारंग[1] [रामकली]

जय जय जगजननि देवि सुरनरमुनिअसुरसेवि
भगत[2] भू[3]तिदायिनि[4] भयहरनि कालिका।
मंगल मुद[5] सिद्धिसदनि[6] पर्बसर्वरीसबदनि[7]
तापतिमिरितरुनतरनि किरिनमालिका ॥१॥

---

१. ६६ और रा० में 'सारंग' है, औरोंमें 'रामकली' है। 'सारंग' संपूर्ण जातिका एक राग है जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। शास्त्रोंमें यह मेघरागका सहचर कहा गया है। पर कुछ लोग इसे संकर राग मानते हैं और नट मल्लार तथा देवगिरिके संयोगसे बना हुआ बतलाते है। इसकी स्वरलिपि इस प्रकार कही गयी है, 'सा रे ग म प ध नि सा। सा नि ध प म ग रे सा। सा रे ग म प प ध प प म ग म प म ग रे।' 'रामकली' भी संपूर्ण जातिकी है पर यह रागिनी है। यह भैरवरागकी स्त्री मानी जाती है और इसके गानेका समय प्रातःकाल १ दंडसे ५ दंडतक है। इसमें ऋषभ तथा निषाद कोमल लगते हैं। २ भगत–६६। भक्त–भा०, रा०, ५१, टी०, मु०, डु०। (टीकामें), ७४। भुक्ति–ह०। भक्ति–बे०, प्र०, ज०, आ०। ३ भूति–६७, रा०, भा०, बे०, डु०, मु०। मुक्ति–ज०, ह०, वै०, भ०, ७४, दी०, वि०। ४ दायनि–भ०, ७४। ५,६,७. ६६ में ' मुदि ' ' सदन ' और ' सर्ब्बईस ' पाठ हैं। ज० में 'सदन, बदन' है और ६६ मेंभी। अन्य सबोंमें उपरोक्त पाठ है। 'सर्ब्ब ईस' का अर्थ मेरी समझमें नहीं आता।

वर्म चर्म कर कृपान सूल सेल[8] धनुष बान
धरनि दलनि दानवदल रन करालिका ।
पूतना पिसाच प्रेत साकिनि[9] डाकिनि समेत
भूत ग्रह बेताल खग[10] मृगाल जालिका ॥२॥
जय महेसभामिनी[11] अनेकरूपनामिनी
समस्त लोकस्वामिनि[12] हिमसैलबालिका ।
रघुपतिपद परम प्रेम तुलसी चहै[13] अचल नेमु
देहि ह्वै प्रसन्न पाहि प्रनतपालिका ॥३॥

शब्दार्थः–सेवि=सेवित । 'सेवी' का यह रूप समास और संबोधनमें आता है। भूमि ऐश्वर्य, राजश्री, धनसंपत्ति। यथा 'धरम नीति उपदेसिय ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही॥' (अ०)। दायिनि (दायिनी) =देनेवाली। दाय=दान। मुदमंगलसिद्धि=पद १ देखिये। कालिका=शुंभ-निशुंभके अत्याचारोंसे पीड़ित इंद्रादिक देवताओंकी प्रार्थनापर एक मातंगी प्रगट हुईं जिसके शरीरसे इनका आविर्भाव हुआ। इनका वर्ण काला था, इसीसे इनका नाम 'कालिका' पड़ा। यह उग्र भयोंसे रक्षा करती हैं। इनका नाम 'उग्रतारा' भी है। इनके सिरपर एक जटा भी हैं। इसीसे ये 'एकजटा' भी कहलाती हैं। इनका ध्यान इस प्रकार है। कृष्णवर्णा, चतुर्भुजा, दाहिने ऊपरके हाथमें खड्ग, नीचेमें पद्म, बायें ऊपरके हाथमें कटोरी और नीचेमें खप्पर, बड़ी ऊँची एक जटा, गलेमें मुंडमाला और सर्प, लाल नेत्र, काले वस्त्र, कटिमें बाघम्बर, बायाँ पैर शिवजीकी छातीपर और दहिना सिंहकी पीठपर, भयंकर अट्टाहास

---

८ सेल्ह–भा०, बे०। सैल–प्र०। ९ डाकिनि साकिनि–प्रायःऔरोंमें। १० खग मृगालि–भा०, बे०, ५१, ह०, आ०। खग मृगाल–प्र०, ज०, १५। खग मृगाल–६६, रा०, दी०, ६९। ७४ में 'प्रमथ ग्रह खगालि हेतु' पाठ है। ११ भामिनि–रा०, मु०, डु०। १२ स्वामिनि–६६, रा०, ह०, डु०, ७४, मु०। स्वामिनी-भा०, बे०, प्र०, ज०, १५, ५१, आ० (डु०, मु०)। १३ चहै-६६, रा०, भा०, ह०, मु०। चह–बे०, १५, डु०, वै०, वि०, ७४।

करती हुई। इनके साथ महाकाली, रुद्राणी, उग्रा, भीमा, घोरा, भ्रामरी, महारात्रि और भैरवी ये आठ योगिनियांभी हैं। इनका महत्त्व कालिका-पुराणमें वर्णित है। मार्कण्डेय पुराणमेंभी इनकी सविस्तार कथा है। विशेष टि० ५ में लिखा गया है। पर्व=पुण्यकाल। धर्म पुण्यकार्य उत्सव करनेका समय। अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या, पूर्णिमा, संक्रांति ये सब पर्व हैं। पर यहां शरदपूर्णिमासे तात्पर्य है। सर्ब्बरीस (शर्बरीश)= शर्वरी (रात्रिके)+ईश (स्वामी) चन्द्रमा। तिमिर=अंधकार। तरुन तरनि (तरुण तरणि)=दोपहरका सूर्य। किरिन (किरण)=रोशनीकी लकीर, ज्योतिकी अति सूक्ष्म रेखाएँ जो प्रवाहके रुपमें सूर्य, चंद्र, दीपक आदि प्रज्वलित पदार्थोंसे निकलकर फैलती हुई दिखायी देती हैं। मालिका (सं०)=पंक्ति; माला। वर्म=कवच, ज़िराबख्त। लोहेकी कड़ियोंके जालका बना हुआ पहनावा जिसे योधा लड़ाईके समय पहनते हैं। कृपान=खड्ग, द्विधारा तलवार अर्थात् जिसके दोनों ओर धार हो। दानव=दनुजकी संतान। पद ३ देखिये। दल=सेना। करालिका=भयङ्करा, भयावनी। पूतना=यह शिवजीकी बनायी हुई बालग्रहोंमेंसे एक है। (वै०) सुश्रुतके अनुसार एक बालग्रह या बालरोग जिसमें बच्चेको दिनरातमें कभी अच्छी नींद नहीं आती, पतले और मैले रंगके दस्त होते रहते हैं; शरीरसे कौवेकीसी गंध आती है, बहुत प्यास लगती है और क़य होती है तथा रौंगटे खड़े रहते हैं। कार्त्तिकेयकी एक माताकाभी नाम है। (श० सा०)। पिशाच=ये यक्षों और राक्षसोंसे हीन कोटिके कहे गये हैं। मरुस्थल इनका स्थान है। ये बहुत अशुभ और गन्दे कहे गये हैं। युद्धक्षेत्रोंमें इनके वीभत्सकाण्डोंका वर्णन कवि लोगोंने किया है, जैसे खोपड़ीमें रक्तपीना आदि। (श० सा०) मांसाहारी भूत। (वै०, दी०)। भूत=ये एक प्रकारके पिशाच हैं जो रुद्रके अनुचर हैं। इनका मुंह नीचेकी ओर लटका हुआ या ऊपरकी ओर उठा हुआ माना जाता है। ये बालकोंको पीड़ा देनेवाले ग्रहभी कहे जाते हैं। वेताल भूतोंकी एक योनि है जो साधारण भूतोंके प्रधान माने जाते हैं और प्रायः श्मशानोंमें रहते हैं। वैद्यकके अनुसार एक भूतग्रह जिसका आक्रमण होनेसे प्राणीमें बहुतसे दोष आ जाते हैं। वह प्रायः काँपता

रहता है, सच बोलता है और फूल, माला, सुगंध आदि बहुत पसंद करता है। (ज्वालामुखी वा अगिया वेतालभी इन्हींके नाम हैं।) प्रेत = मृतजीव जो वायुरूपसे अपने सम्बन्धियोंको सताते रहते हैं। ग्रह = बालग्रह। बालकोंके प्राणघातक नौ ग्रह — स्कंद, स्कंदापस्मार, शकुनी, रेवती, पूतना, गंधपूतना, शीतपूतना, मुखमंडिका और नैगमेय। कहते हैं कि जिस घरमें देवयाग और पितृयाग आदि न हो, देवता, ब्राह्मण और अतिथिका सत्कार न हो, आचार विचार आदिका ध्यान न रहता हो, उसमें उन ग्रहोंमेंसे कोई ग्रह घुसकर गुप्तरूपसे बालककी हत्या कर डालता है। यद्यपि बालकपर भिन्नभिन्न ग्रहोंके आक्रमणका भिन्नभिन्न परिणाम होता है, तथापि कुछ लक्षण ऐसे हैं जो सभी ग्रहोंके आक्रमणके समय प्रकट होते हैं। जैसे बच्चेका बार बार रोना, उद्विग्न होना, नाखूनों या दाँतोंसे अपना या दूसरोंका बदन नोचना, दाँत पीसना, होंठ चबाना, भोजन न करना, दिल धड़कना, बेहोश होना इत्यादि। (पद ११ भी देखिये)। मृगाल = मृगकुल, मृगसमूह, हिरनों वा पशुओंका झुंड। जालिका (सं०) = पाश, फंदा, जाल। भामिनी = स्त्री। नामिनी = नामोंवाली। स्वामिनी = स्वामीका स्त्रीलिंग। हिमसैल = हिमाचल। बालिका = कन्या। पालिका = पालन करनेवाली।

पद्यार्थ.—हे जगत् माता! हे देवि! हे सुर, नर, मुनि और असुरोंसे सेवित! भक्तोंको राजश्रीकी देनेवाली और उनके भयकी हरनेवाली कालिके! आपकी जय हो, जय हो। मुद, मंगल और सिद्धियोंकी निवासस्थान, शरद्पूनोके चन्द्रमाके समान मुखवाली, (दैहिक, दैविक, भौतिक तीनों) तापरूपी अंधकारके (नाशके) लिये दोपहरके सूर्यके किरणसमूहरूप! आपकी जय हो, जय हो। १। (शरीरपर) कवच, हाथोंमें ढाल, तलवार, त्रिशूल, बरछी, धनुष और बाण धारण करनेवाली, दानवदलको (रणमें) दलन करनेवाली, संग्राममें महाविकराल, पूतना, पिशाच, प्रेत, शाकिनी, डाकिनी सहित (समस्त) भूत, ग्रह और वेतालरूपी पशु पक्षी समूहके (फाँसनेके) लिये जालरूप! आपकी जय हो। २। हे अनेक रूपों और नामोंवाली, सब लोकोंकी स्वामिनी,

हिमाचलराजकी कन्या, महेशपत्नी ! आपकी जय हो ! तुलसीदास रघुनाथजीके चरणोंमें अतिशय परिपूर्ण प्रेम और अटल नेम चाहता है। (अर्थात् इसीकी लालसा हृदयमें है ।), हे प्रणतका पालन पोषण करनेवाली ! मेरी रक्षा कीजिये (मैं शरण हूँ) और प्रसन्न होकर मुझे यह वर दीजिये । ३ ।

टिप्पणी–१ 'जगजननि', 'सुरनरमुनिअसुरसेवि', 'भूत दायिनी' इति । आप जगजननी हैं, इसीसे असुरोंसेभी सेवित हैं । पुनः दूसरा कारण 'असुर सेवि' होनेका 'भूतदायिनी' है। असुरोंको सदा विषयसुखभोगकी चाह रहती है । भक्तों और सुरमुनिसे सेव्य हैं क्योंकि उनकेलिये सदा 'भयहरनि', 'मुक्ति मुद मंगल सिद्धि' की देनेवाली और तापत्रयकी नाशिनी हैं जिससे फिर मोक्षकी प्राप्ति है। देवताओंको सदा असुरोंसे भय रहता है। उनका ऐश्वर्य जब छिन जाता है तब असुरोंको मारकर पुनः उनको आप स्थापित करती हैं । मनुष्योंको भूत प्रेतादिका भय रहता है उसको हरती हैं और उनको मुद मंगल और ऐश्वर्य देती हैं। देवी माता है, इसीसे असुरभी उसके पास जानेमें नहीं डरते । माताके प्रेमकी प्रशंसाभी यही है कि कपूत संतानभी उससे वंचित न रहे। 'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ।' मिस मेयोने कालीघाटके मंदिरपर आक्षेप तो किया पर रहस्यको नहीं समझा कि आसुरीवृत्तिवाले (अपनी आसुरी संपत्तिके अनुसार) उसी प्रकारसेही तो (बलि इत्यादिसे) पूजन करेंगे। बाइबिल और कुरानमेंभी तो बलिदानकी महिमा लिखी है। परन्तु दुर्गा सप्तशतीमेंभी द्विजधर्मियोंकेलिये धूप, दीप इत्यादि पूजनका विधान है। वे वैष्णवी कही गयी हैं । इसीसे देवीका पूजा विधान जितना विभिन्न है, उतना किसी देवताका नहीं । कारण कि वहाँ किसीकी मनाही नहीं है। सभी पहुँचते हैं। (लमगोड़ाजी) प्रकृति सब प्रकारका रूप धारण कर सकती है, प्रकृति देवता प्रसव करती है, प्रकृति मनुष्यकी सृष्टि करती है। प्रकृतिसे धार्मिक सौम्य, विविध गुण विशिष्ट प्रजाकी उत्पत्ति होती है, प्रकृतिसे घोर, अधार्मिक,

असौम्य, सर्वदोषागार और सब मनुष्योंमें क्षोभ पैदा करनेवाली कुसंतानभी पैदा होती है। अतएव मूलप्रकृति वा शक्तिको जगज्जननी कहते हैं। हमारे धर्मग्रंथोंमें अखण्ड, अपरिच्छिन्न, सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी और सर्वस्वरूपी ईश्वरके संबंधमें जगत्पिता और जगत्माताका भाव सर्वत्र मिलता है। 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव' 'माता धाता पितामहः।' वे हमारी माताभी है और पिताभी। इसीसे हमारे यहां पूर्णब्रह्म दो रूपमें विभक्त देखा जाता है। शक्तिसहित-ब्रह्म ब्रह्म है। श्रीब्रह्मस्वरूपिणी परम वा आद्याशक्ति श्रीसीतादेवीको 'सर्ववेदमयी, सर्वदेवमयी, सर्वशास्त्रमयी और सर्वलोकमयी' इत्यादि कहा गया है। वे श्रीरामसे अभिन्न हैं। वे 'श्रीरामसान्निध्यवशाज्जगदानन्दकारिणी। उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी सर्वदेहिनाम्॥' हैं। ब्रह्मसे अभिन्न अपृथक् होनेसे सच्चिदानंदत्व, जगन्नियात्मकत्व, जगदुद्भव स्थिति भङ्गकर्त्तृत्व, सर्वकर्मफलप्रदत्व आदि ब्रह्मके धर्म परमशक्तिमेंभी पूर्णतया घटित होते हैं। उसी पराशक्तिके कलांशसे जगत्की सृष्टि, स्थिति और संहारकेलिये अगणित उमा, रमा और ब्रह्माणी उत्पन्न होती हैं। 'जासु अंसु उपजहिं गुनखानी। अगनित उमा रमा ब्रह्मानी।' महाशंभुसंहितामेंभी यही कहा है। यथा 'सीताद्यलांशाद्ब्रह्मयश्च शक्तयः सम्भवन्ति हि।' और सदाशिवसंहितामें श्रीसाकेतधामवर्णनमें 'तन्मध्ये जानकी देवी सर्वशक्तिनमस्कृता' शब्दभी इसी सिद्धांतके प्रतिपादक हैं। महारामायणमें शिवजीभी यही कह रहे हैं। यथा 'जानक्यंशाद्विसंभूताऽनेक ब्रह्माण्डकारिणी। सामूलप्रकृतिर्ज्ञेया महामायास्वरूपिणी॥' वही ब्रह्मशक्ति तीन कार्योंकेलिये 'महासरस्वती, महालक्ष्मी और महाकाली' त्रिमूर्ति रूप प्रकट करती है जो ब्रह्मा, विष्णु और महेश त्रिदेवकी शक्तियाँ हैं। अतएव ये सब जगज्जननी हैं। इनके सौंदर्यपर मुग्ध होकर इनको अपनी बनानेकी इच्छा करना अपनी माँको अपनी स्त्री बनाना है। इस अधर्मका फल सर्वनाश है। चण्डमुंडने 'कौशिकी' का सुंदर रूप देख शुंभनिशुंभको यही सम्मति दी कि उन्हें अपनी भार्या बनाइये। उसका फल उनको मिला।

२ (क) 'भयहरनि' कहकर 'कालिका' कहनेका भाव कि

आपने भयहरणार्थही महाविकराल स्वरूप धारण किया है। नहीं तो आप तो 'मंगल सिद्धि सदनि पर्बशर्बरीसबदनि' हैं।

(ख) 'पर्ब्ब सर्ब्बरीस बदनि' इति। शिवा वा कौशिकीकी सुन्दरताके विषयमें चंडमुंडने शुंभनिशुंभसे कहा है, "हे दानवपति! हिमालयपर एक अति लावण्यमयी परममनोहर रमणी बैठी है। वैसा मनोज्ञरूप आजतक किसीने नहीं देखा। आपके पास ऐरावत हाथी, पारिजात तरु, उच्चैश्रवा अश्व, ब्रह्माका विमान, कुबेरका ख़ज़ाना, वरुणका सुवर्णवर्षी छत्र तथा अन्य विविधरत्न विद्यमान् हैं, पर ऐसा स्त्रीरत्न नहीं हैं। अतः आप उसे ग्रहण कीजिये।" इसीसे 'शरद्-चन्द्रवदनी' कथन ठीकही है।

शरद्चन्द्र आह्लादकारी, शीतल और तापहारक है। यथा 'सरदातप निसि ससि अपहरई'। वैसेही आपके दर्शनसे भक्तोंको आनंद प्राप्त होता है, उनके त्रैताप नाश होते हैं।

बाबा हरिहरप्रसादजी 'सर्बरीसबदन' से 'समाधिनिशाकी प्रकाशिनी, आह्लादक और तापहर' का भाव कहते हैं और 'तरुन तरनि' से 'प्रचंडवृषादित्य (जेठके सूर्य) अथवा चित्रातरनि (आश्विनके सूर्य)' का अर्थ करते हैं।

(ग) 'ताप तिमिरि तरुन तरनि' इति। तापको अंधकार कहा। इसीसे भगवतीको तरुण सूर्यकी किरणमालिका कहा। ताप बहुत प्रकारके होते हैं। इसीसे 'किरणमालिका' की उपमा दी। 'पर्ब्बसर्ब्बरीसबदनि' में वाचकधर्मलुप्ता और 'तापतिमिर' में परंपरितरूपक अलंकार है।

(घ) 'बर्म चर्म कर कृपान०' इति। (क) कवच तो शरीरमें पहिना जाता है और चर्म, कृपाण, त्रिशूल, सेल्ह, धनुष और बाण हाथोंमें धारण किये जाते हैं। यहाँ छः अस्त्र शस्त्र धारण करना कहकर षट्भुजा मूर्तिकी स्तुति सूचित की। यहाँ अष्टभुजाका ध्यान है क्योंकि बरछी और त्रिशूल दो दो हाथोंसे मारनेकेलिये पकड़े हैं।

(ङ) 'रन करालिका' इति। खड्गसे अंग काटकर खप्परमें शत्रुका रक्त लेना तथा उसे पीना इत्यादिसे 'करालिका' कहा।

(च) 'पूतना पिसाच प्रेत साकिनि डाकिनि खग मृगाल जालिका' इति। भाव कि आपके स्मरण मात्रसे ये सब दुष्ट ग्रह ऐसे बेबस हो जाते हैं जैसे जालमें फँसे हुए पशु पक्षी। यहां परंपरित रूपक है। पूतना पिशाचादिको खग मृग कहा इससे देवीको 'जालिका' कहा। आगेका 'जय' शब्द दीपदेहरी है। उसका अन्वय इस अंतरेमेंभी है।

३ (क) 'महेश भामिनी अनेक रूप नामिनी' इति। संहार वा तमोगुणके अभिमानी देवता महादेवजी हैं। उनकी संहारिणी शक्तिही दुर्गा, काली, चण्डी आदि हैं। महेशभामिनी और हिमशैलबालिका कहकर कालिकाको पार्वतीजीका रूप और शक्तिमन् शिवजीसे अभिन्न बताया। पद १५ देखिये।

(ख) 'हिमशैलबालिका' कहकर यहभी जना रहे हैं कि शुंभ निशुंभद्वारा अपने अधिकारोंके छिन जानेपर देवताओंने जब हिमालयपर जाकर दयार्द्रहृदया देवीकी दिव्य ज्ञानमयी वंदना की तब पार्वतीजीही उस पर्वतपर गंगातटपर प्रगट हुई थीं और उन्हींके शरीरसे अंबिका, शिवा जो कौशिकी नामसे प्रसिद्ध हैं निकली थीं और वही पार्वती तब कृष्णवर्णा कालिका हो गयी थीं। इस तरह इस पदमेंभी शिवशक्तिकीही वंदना है।

(ग) 'अनेक रूप नामिनी' इति। दश विद्याएँ एवं षोडश महाविद्याएँ आपही हैं। मातंगी, बगलामुखी, धूमावती, छिन्नमस्ता, श्रीभैरवी, भुवनेश्वरी, दुर्गा, त्रिपुरसुंदरी, तारा, काली, षोड़शी, महागौरी, कुशमांडा, चंद्रघंटा, पार्वती, उग्रतारा, एकजटा, सती, गिरिजा, भवानी, शिवा, कमला, चण्डी इत्यादि अनेक नामसे आप प्रसिद्ध हैं। औरभी नाम महाभारत भीष्मपर्व दुर्गास्तवनमें मिलते हैं। उमा, शाकंभरी, श्वेता, कृष्णा, कैटभनाशिनी, हिरण्याक्षी, विरूपाक्षी, सुधूम्राक्षी, कपिला, कृष्णपिंगला, कुमारी, भद्रकाली, जया, विजया, स्वाहा, स्वधा, कला, काष्ठा, सरस्वती, सावित्री (वेदमाता), वेदान्त, जंभिनी, मोहिनी, माया, ह्री, श्री, संध्या, प्रभावती, तुष्टि, पुष्टि, धृति आदि आपके नाम हैं। (भीष्मपर्व दुर्गास्तवन)

(घ) 'लोकस्वामिनी' इति। जगज्जननी, महेशभामिनी इत्यादिके संबंधसे आप 'लोकस्वामिनी' कही गयी है। अन्य सब शब्दोंके विशेष भाव पूर्व आ चुके हैं।

(ङ) 'कालिका' इति। पं० श्रीहरिवक्षजी जोशी काव्यसांख्यस्मृति-तीर्थ लिखते हैं कि 'इंद्रादि देवताओंके अधिकार छिन जानेपर वे सब हिमालयपर जाकर देवीकी स्तुति करने लगे। उस समय भगवती पार्वती आयी और उनके शरीरसे शिवा प्रकट हुई। सरस्वतीदेवी पार्वतीके कोष शरीरसे निकली थीं, इसलिये उनका कौशिकी नाम प्रसिद्ध हुआ। कौशिकीके निकल जानेके बाद पार्वतीका शरीर काला पड़ गया, इसलिये कालिका कहते हैं। तदनंतर भगवती कौशिकी परम सुंदररूप धारण कर बैठी हुई थीं। उन्हें चण्ड मुण्ड नामक शुंभ निशुंभके दूतोंने देखा और जाकर अपने स्वामीको सूचना देकर कहा कि ऐसा स्त्रीरत्न आपके यहाँ नहीं है। अतः आप उसे ग्रहण कीजिये। शुंभ निशुंभने अपने सुग्रीव-दूतको देवीको प्रसन्न करके ले आनेको भेजा। देवीने कहा कि मैंने यह प्रतिज्ञा कर ली है कि जो मुझे संग्राममें जीतकर मेरे दर्पको चूर्ण करेगा वही मेरा पति होगा। यह संदेशा सुनकर कुपित हो उन्होंने अपने सेनापति धूम्रलोचनको युद्ध करनेकेलिये भेजा। देवीने उसे सेनासहित मार डाला। इसी प्रकार चण्ड मुण्डकोभी मारा। तब शुंभ निशुंभने समस्त सेना लेकर देवीको चारों ओरसे घेर लिया। इसीसमय ब्रह्मा, विष्णु, महेश, कार्तिकेय और इंद्रादिके शरीरोंसे शक्तियाँ निकलकर चंडिकाके पास आयीं। वे देवियाँ जिसकी शक्ति थीं, तत्तत्शक्तिके अनुरूप स्वरूप, भूषण और वाहनसे युक्त थीं। उस समय देवीके शरीरसे अति भीषण चंडिका शक्ति प्रगट हुई और शिवजीसे बोली कि 'आप हमारे दूत बनकर उनसे जाकर कह दें कि यदि जीना चाहें तो त्रैलोक्यका राज्य इंद्रको देकर पाताललोकको चले जायँ।' शंकरजीने आज्ञा सुना दी। पर पर वे बलगर्वित दैत्य कब माननेवाले थे? युद्ध छिड़ा। शक्तियोंद्वारा आहत होकर दानव सेना गिरने लगी। तब क्रुध होकर रक्तबीज युद्धमें आया। इस दानवके रक्तसे उत्पन्न दानवसमूहसे संपूर्ण युद्धस्थल भर

गया जिससे देवगण काँप उठे। तब चंडिकाने कालीसे कहा कि तुम अपना मुख फैलाकर इसके शरीरसे निकले हुए रक्तका पान करो। जब क्षीणरक्त होगा तब यह मारा जायगा। फिर देवीने रक्तबीजपर शूल प्रहार किया। उससे जो रक्त निकला उसे काली पीती गयीं। क्षीणरक्त होतेही वह धराशायी हो गया। तत्पश्चात् शुंभनिशुंभभी मारे गये। इस प्रकार महासरस्वतीने यह रूप धारण किया।' 'इसी तरह जब महिषासुर इंद्र बन बैठा तब देवताओंकी आर्त्तवाणी सुनकर भगवान् विष्णु तथा शंकरजी कुपित हुए और उनकी भृकुटी चढ़ गयी। उनके शरीरसे एक महान् तेजपुंज निकला और वह एकत्रित होकर पार्वतीकीतरह संपूर्ण दिशाओंको देदीप्यमान् करता हुआ नारी शरीर बन गया। उस देवीने अट्टहास किया। महिषासुर इस भयंकर गर्जनाको सुनकर आया और तेजःपुंज महालक्ष्मीको उसने देखा। युद्ध हुआ। सब मारे गये।' (शक्ति अंकसे)

४ 'जय जय जगजननि देवि देहि है प्रसन्न पाहि प्रनतपालिका' इति। देव्यस्तुतिका प्रसंग अभी समाप्त नहीं हुआ। तारतम्य लगाही है। पूर्वपदसेभी अधिक उत्कृष्टता महिमा इस पदमें गायी है। अथवा यों कहिये कि देव्यस्तुतिका यह चरम उपसंहार है। इस स्तुतिसे शक्तिकोही अखिल ब्रह्माण्डकी अधिनायिका माना है। इस पदके अंतिम चरणमें आये हुए वाक्य 'देहि' और 'पाहि' बड़े मार्केके हैं। ये आत्मकल्याण और लोककल्याणकी भावनासे ओतप्रोत हैं। इन्हीं दोनों वाक्योंसे दोनोंकी संगति बैठती है और प्रार्थिव भावोंका उपसंहार होता है। तुलसीदासजी दृढ़ नियमोंसे जकड़े हुए रामप्रेमकी माँग करते हैं कि 'माँ! मैं रघुपतिपद परमप्रेम चाहता हूँ। 'है प्रसन्न अचल नेम देहि' और 'हे प्रणतपालिका पाहि रक्षा कर' इन दो पदोंसे उन्होंने अपने जीवनकालके युगका सजीव चित्र खींचा है। समझनेवाले समझें। गोस्वामीजी प्रारंभसेही अपनी जीवनी कहते, विनंती करते, आ रहे हैं। कविकी आत्माही तो काव्य है। (दे० द० शास्त्री)

६ भगवती और असुर युद्धका आध्यात्मिक रहस्य-(पं० श्रीकला-

धरजी त्रिपाठी) गीतामें इसका रहस्य इस प्रकार है । ' जो अहंकार, बल, दर्प, काम एवं क्रोधका अवलंबन करते हैं, वे अपने और दूसरेके शरीरमें स्थित मुझसे द्वेष करते हैं । मेरी आज्ञाका उल्लंघन करते हैं और सन्मार्गमें स्थित पुरुषोंके गुणोंको सहन न करके उनकी निंदा करते हैं । ' श्रीदुर्गासप्तशतीके उत्तम चरित्रमें वर्णित सात प्रधान असुरोंकी इन सातोंके साथ इस प्रकार तुलना होती है ।

गीताके असुर	सप्तशतीके असुर	
१ अहंकार–	शुंभ । शुम्भ हिंसायां, भावे घञ् । आत्मन्यद्वैतभावसंपन्नः अहंकारः ' (बृहदा० ४।५)	
२ ममत्व –	निशुंभ । (नि+शुम्भ) हिंसायां । भावे घञ् ।	
३ काम –	रक्तबीज । रक्तमनुरागः बीजं कारणमस्य (रज्यते अनेनेतिरागः, कामः) ।	
४ क्रोध –	धूम्रलोचन । धूम्रवर्णं रक्तकृष्णवर्णं लोचनं यस्य सः ।	
५ बल –	चण्ड । चंडि कोपे ।	चंड मुंडनेही शुंभसे आसक्तिपूर्ण शब्दोंमें भगवतीके सौंदर्यका वर्णन किया था और बल दर्पपूर्वक पकड़ लानेको येही दोनों भेजे गये थे ।
६ दर्प –	मुण्ड । मुंडि खण्डने	
७ परिग्रह –	सुग्रीव । इसे परिग्रह कहा क्योंकि इसने देवीसे परिग्रहकी बात कही ।	

रक्तबीजको काम कहा । क्योंकि पूर्वजन्ममें यह ' रम्भ ' था और इसीका पुत्र महिषासुर था । महिषा काम अथवा इच्छाको कहते हैं । संगसे कामकी उत्पत्ति होती है । अतएव जब रक्तबीजका रक्तबिंदु पृथ्वीपर गिरता था तो अनेक रक्तबीज उत्पन्न हो जाते थे । इसका यही आध्यात्मिक रहस्य है ।

शुंभ निशुंभ अहंकार और ममत्व हैं। ये 'अहं' और 'मम' दोनों एकही 'असमत्' शब्दसे होनेके कारण शुंभ निशुंभकी तरह भाई भाई हैं । इन्हीं अहंकार और ममत्वके वशमें समस्त त्रैलोक्य प्राणी हुए।

सप्तशती अ० ५ श्लो० १०८–११४ में शुंभकेलिये 'मम' और 'अहं' शब्दोंका प्रयोग अनेक बार हुआ है।

इस समस्त विवेचनासे यह सिद्ध होता है कि जिस प्रकार श्रीगीतामें अहंकारादिका त्याग करके ब्रह्मभूत होनेका उपदेश है, उसी प्रकार श्रीदुर्गासप्तशतीमें श्रीआद्याशक्तिद्वारा उपर्युक्त सात असुरोंके पराजयोपरान्त देवताओंके परमभावके ज्ञानसे शान्ति प्राप्त होनेका वर्णन है। इसी परमभावको जगदम्बिकाने शुंभके प्रति कहा है, 'इस संसारमें मैं एकही हूँ। मुझसे अतिरिक्त दूसरा कौन है?' इससेभी एकेश्वरवादही प्रतिपादित होता है।

महिषा काम वा इच्छाको कहते है। यह जब परमात्मामें लगी रहे तब कल्याणदायिनी है और जब भोगादिमें लगी रहे तब विघ्नस्वरूपा है। इच्छा द्वेष और उससे उत्पन्न हुए द्वन्द्वोंके वशीभूत होकर स्वर्गभोग प्राप्त प्राणी श्रीभगवदाराधनानंदको भूल जाते हैं। इसीतरह देवता स्वर्गीय भोगैश्वर्य प्रसक्त होकर परमभावकी उपासनाको विस्मृत कर बैठे थे। इसी कारण वे निजाधिकारोंसे च्युत हुए। यही महिषासुरका इंद्रासन छीन लेना है। पीछे जब वे हरिहरकी शरणमें गये और श्रीभगवतीका साक्षात्कार किया, तब उस देवीने उनकी रक्षा की और असुरोंका नाश किया। देवता मोह मुक्त हुए। यही बात गीतामें अ० ७ में कही गयी है। 'समस्त जीवधारी इच्छा तथा द्वेषसे उत्पन्न द्वन्द्वद्वारा मोहित होकर मुझे भूल जाते हैं।' तथा 'जो मुझे जानता है वह मोहरहित है। वह सब पापोंसे विमुक्त हो जाता है।' देवता सब जानने लगे कि उसमें जो शक्ति है वह सब उसी परमेश्वरीकी है और स्वर्गप्राप्त भोगैश्वर्यका कारण जो फल है उसकी देनेवालीभी वही पराशक्ति है। (शक्तिअंकसे)

१७ [२२]

जय[1] भगीरथनंदिनि[2] मुनिचय चकोर चंदिनि[3]
नरनागबिबुधबंदिनि[4] जय जन्हुबालिका।

---

१ जय–६६, रा०, भा०, बे०, ज०, मु०, डु०, टी, ७४,। जय जय–प्र०, ह०, वें०, दी०, वि०, भ०। २ नंदिनि, ३ चंदिनि, ४ बंदिनि–

बिष्णुपदसरोजजासि ईस सीस पर बिभासि
त्रिपथगासि पुण्यपासि[5] पापछालिका ॥१॥
बिमल बिपुल बहसि बारि सीतल त्रयतापहारि
भँवर बर बिभंगतर तरंगमालिका ।
पुरजन पूजोपहार सोभित ससि धवलधार
भंजनि[6] भवसार भक्तकल्पथालिका[7] ॥२॥
निज तटबासी बिहंग जल चर[8] थल पसु पतंग
कीट जटिल तापस सब सरिस पालिका ।
तुलसी तव तीर तीर सुमिरत रघुबंसबीर
बिचरत मति देहि मोह महिष कालिका ॥३॥

शब्दार्थ :—नंदिनि (नंदिनी)=आनंद देनेवाली, कन्या। नंद=हर्ष, आनंद। चय=समूह। चंदिनि (सं० चंद)=चाँदनी, चंद्रिका, चंद्रमाका प्रकाश। यथा 'चैत चतुरदसी चंदिनि अमल उदित निसिराज। उडगन अवलि लसीं दस दिसि उमगत आनंदु आज।' (गी०) चाँदनी रात (वै०, ड०)। नाग=महाभारत आदिपर्व अ० ३, ५, ८, १२ और वराहपुराणमें इनके उत्पत्तिसंबंधमें यह कथा है कि सृष्टिके आरंभमें कश्यपजी उत्पन्न हुए। अपनी पत्नियों कद्रु और विनतापर प्रसन्न होकर उनसे वर माँगनेको कहा। कद्रुने एक हजार तेजस्वी नाग पुत्र मांगे और विनताने दो पुत्र मांगे जो कद्रुके पुत्रोंसे अधिक बली और तेजस्वी हो। एवमस्तु कहकर मुनि वनको चले गये। काल पाकर कद्रूके एक सहस्त्रनाग पुत्र हुए जिनमेंसे अनंत, वासुकी, कंबल, कर्कोटक, पद्म,

---

६६, टी०, ह०, ५१। नंदनी, चंदनी, बंदनी--रा०। नंदिनी, चंदिनी, बंदिनी—बे०। नंदनी, चंदनि--भा०, बे०,। चंदनि--भ०, ज०। बंदनि-बे०, ज०। नन्दिनि, चन्दिनि, बन्दिनि-- मु०, ७४, वि०। ५ पासि--६६ रा०, भा०, बे०, प्र०, ज०, च०। रासि-ह०, ५१, ७४, आ०। ६ भंजन भू—भा०, ज०,। भंजन भुवि—७४। भंजनि भू—प्र०। भंजनि भव—औरोंमें। ७ भक्त—६६, रा०, भा०, बे०, ह०, ड०, वै०, ७४, प्र०, ज०। भक्ति—५१, मु०, भ०, दी०, वि०। ८ थलचर—प्रायः और सबोंमें।

महापद्म, शङ्ख, कुलिक और अपराजित आदिभी हैं। ये सब नाग कहलाये। इनकी गिनतीभी देवताओंमें है। इनके पुत्र पौत्र बहुतही विषधर हुए जिससे प्रजा क्रमशः क्षीण होने लगी। प्रजाने जाकर ब्रह्माजीके यहां पुकार की। ब्रह्माजीने नागोंको बुलाकर कहा कि जिस प्रकार तुम हमारी सृष्टिका नाश कर रहे हो, उसी प्रकार माताके शापसे तुम्हाराभी नाश होगा। नागोंने डरते डरते कहा 'महाराज! आपहीने तो हमें कुटिल और विषधर बनाया। हमारा क्या अपराध है? अब हम लोगोंके रहनेके लिये कोयी अलग स्थान बताइये जहां हम लोग सुखसे पड़े रहें। ब्रह्माजीने उनके रहनेके लिये पाताल, वितल और सुतल ये तीन स्थान या लोक बतला दिये। एक बार कद्रूने विनतासे कहा कि सूर्यका घोड़ा उच्चैःश्रवा श्वेत रंगका है पर पूछ काली है। उसपर विनताने कहा कि सफ़ेद है। कद्रूने कहा, यदि तुम्हारी बात ठीक हुई तो मैं तुम्हारी दासी बनूँगी और मेरी बात ठीक निकली तो तुम मेरी दासी होगी। दोनोंमें यह बाजी लगनेपर कद्रूने अपने पुत्रोंको आज्ञा दी कि तुम सब शीघ्रही काले बाल बनकर उच्चैःश्रवाकी पूंछ ढक लो। जिन सर्पोंने आज्ञा न मानी उनको कद्रूने शाप दे दिया कि तुम लोग जनमेजयके सर्पयज्ञमें अग्निसे जलकर भस्म होगे। इस तरह सर्पकुलका नाश हुआ। जो धर्मात्मा नाग थे वे बच गये। उनकी रक्षा जरत्कारु ऋषिके पुत्र आस्तीकद्वारा हुई। शेषनागने पूर्वही तपस्यासे ब्रह्माको प्रसन्न कर लिया और ब्रह्माने उनको पृथ्वीको सिरपर अचल धारण करनेकी आज्ञा दी। अष्टकुली नागदेवोंकी पूजा होती है। बंदिनि ('बंदि'का स्त्रीलिंग) = वंदनीय वंदन किये जाने योग्य। जह्नु = ये एक राजर्षि थे। जब भगीरथजी गंगाजीको लेकर आ रहे थे तब ये मार्गमें यज्ञ कर रहे थे। विघ्नके भयसे उन्होंने गंगाजीको पी लिया। फिर भगीरथजीके बहुत प्रार्थना करनेपर उन्होंने गंगाजीको अपने जानुसे निकाल दिया था। तभीसे गंगाजीका एक नाम 'जाह्नवी' अर्थात् जह्नुकी कन्या पड़ा। इनका एक आश्रम गंगोत्रीपर और दूसरा गंगासागरके पास है। सरोजजासि = (सरोज + जा + असि) सरोजसे उत्पन्न हुई हो। यह विशेषण स्त्रीलिंगवाचक है। ईस (ईश) = शिवजी।

विभा = शोभा, सुन्दरता । विभासि = शोभारूप हो, विभासना (चमकना, विशेष शोभा देना) से 'विभासि'। विशेष शोभायमान् शोभित । त्रिपथगा = तीन मार्गोंमें चलनेवाली । पुराणानुसार गंगाजीकी तीन धाराएँ हैं। एक स्वर्गमें जिसे आकाशगंगा कहते हैं, दूसरी पृथ्वीपर और तीसरी पातालमें। इसीसे त्रिपथगा नाम पड़ा। मंदाकिनी, गंगा और भोगावती (प्रभावती और पातालगंगा) ये तीन नाम हुए। ब्रह्मवैवर्तपुराणके अनुसार आकाशगंगा एक अयुत योजन लंबी है†। पासि = (पा + असि)। रक्षक, पालक । पुण्यपा = पुण्योंकी रक्षा एवं पालन करनेवाली। पवित्र जलवाली। छालिका (सं० प्रक्षालनसे) = धो डालने, साफ़ कर देनेवाली। बहसि (सं० वहन) = कंधेपर लादकर एक जगहसे दूसरी जगह ले जाना, बहती हो, धारण किये हो। भँवर = आवर्त्त, चक्कर। पानीके बहावमें वह स्थान जहाँ पानीकी लहर एक केन्द्रपर चक्राकार घूमती है। ऐसे स्थानपर यदि मनुष्य या नाव आदि आ पड़ें तो उनके डूबनेकी सम्भावना रहती है। यथा 'नाभि मनोहर लेति जनु जमुन भँवर छबि छीनी'। (बा०) विभंग = विलास, यथा 'भृकुटि भंग जो कालहि खाई'। बर विभंग तर=अत्यंत श्रेष्ठ विलास। (रा० कु०)* तरंग=लहर, हिलोर;

† मिलान कीजिये पं० पु० स्वर्ग० ३१ के 'धर्मद्रवं ह्यपाबीज वैकुण्ठ चरणच्युतम् धृतं मूर्ध्नि महेशेन यद्गाङ्गममलं जलम्। ७५। तद्ब्रह्मैव न संदेहो निर्गुणं प्रकृते परम्। तेन किं समतां गच्छदपि ब्रह्माण्डगोचरे। ७६।' जो धर्मकाही द्रवीभूतस्वरूप है, जलका आदिकारण है। जो भगवान् वैकुंठके चरणोंसे प्रकट हुआ है तथा जिसे भगवान् शंकरने अपने मस्तकपर धारण कर रक्खा है, वह गंगाजीका निर्मल जल प्रकृतिसे पर निर्गुण ब्रह्मही है इसमें तनिकभी संदेह नहीं है। अतः ब्रह्मांडके भीतर ऐसी कौनसी वस्तु है जो गंगाजलकी समता कर सके।

* शब्दसागरमें 'विभंग' के ये अर्थ दिये हुये हैं—१ रचना, २ विभाग, ३ टूटना। श्रीवैजनाथजीने—'बहुत चंचलतासे (अत्यंत श्रेष्ठ

पानीकी वह उछाल जो हवा लगनेके कारण होती है। पुरजन = पुरवासी। पुर शब्द नगर, ग्राम, पुरवार सभी अर्थोंमें कविने प्रयुक्त किया है। अतएव पुरजन=जहाँ जहाँसे गंगाजी बहकर निकली वहाँ वहाँके लोग। पूजोपहार = पूजाका उपहार। ईश्वर, देवता, देवी आदिके प्रति श्रद्धासम्मान प्रकट करनेकेलिये जो कार्य करते हैं वह 'पूजा' कहलाती है। जल, फूल, फल, अक्षत आदि चढ़ाकर पूजा की जाती है। पूजाके तीन भेद पंचोपचार, दशोपचार और षोडशोपचार माने गये हैं। गंध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्यसे जो पूजा होती है वह पंचोपचार; जिसमें पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, मधुपर्क और आचमनभी हो वह दशोपचार और जिसमें आसन, स्वागत, स्नान, बसन, आभरण और वंदनाभी हो वह षोडशोपचार कहलाती है। उपहार = भेंट वा नजर की हुई सामग्री। यथा '**धरि धरि सुंदर बेष चले हरषित हिये। चँवर चीर उपहार हार मनिगन लिये।**' सोभित = शोभासे युक्त या अच्छा लगता हुआ। धार = धारा; पानी आदिका अखंड बहाव या गिराव; ज़ोरका बहावा। भार = बोझा। भवभार = आवागवन। थालिका = थाल्हा, वह घेरा या गड्ढा जिसके भीतर पौधा लगाया जाता है; थाँवला। कीट = कीड़े मकोड़े, रेंगने वा उड़नेवाले क्षुद्र जंतु, अधिकतर विना रीढ़वाले जंतुओंकोही 'कीट' कहते हैं। ये सब उष्मज, अंडज हैं। जटिल = जटाधारी; ब्रह्मचारी। सरिस = एक समान। तापस = तप करनेवाले, शरीरको कष्ट देनेवाले, व्रत और नियम आदि जो चित्तको शुद्ध और विषयोंसे निवृत्त करनेकेलिये किये जायँ 'तप' कहलाते हैं। गीताके अनुसार तप शारीरिक, वाचिक और मानसिक तीन प्रकारके होते हैं। देवपूजन, ब्रह्मचर्य, अहिंसा आदि शारीरिक; सत्य, प्रिय भाषण, वेदादि पठन आदि वाचिक और मौनावलंबन, आत्मनिग्रह आदि मानसिक तपके अन्तर्गत हैं।

तरंगोंकी माला)' ऐसा अर्थ किया है। भट्टजी, दीनजी और वियोगी-जीने 'अत्यंत चंचल' अर्थ दिया है। वीरकविजीने 'ऊँची' अर्थ लिखा है। बाबू शिवप्रकाशजीने 'गति' अर्थ किया है। किसी-नेभी कोई प्रमाण नहीं दिया है।

पद्यार्थ—हे मुनिवृंदरूपी चकोरोंको चाँदनीरूप (सुखदायिनी) भगीरथजीकी पुत्रि ! आपकी जय हो। हे नर (भूलोकवासी), नाग (पातालवासी) और देवता (स्वर्गलोकवासी) अर्थात् त्रैलोक्यनिवासियोंसे वंदित ! हे जान्हवी ! आपकी जय हो। आप भगवान् विष्णुके चरण-कमलसे उत्पन्न हुई, शिवजीके सिरपर विराजनेवाली, (आकाश, पृथ्वी और पाताल) तीनों मार्गोंमें गमन करनेवाली (जाने वा बहने) सुकृतोंका पालन, रक्षा और वृद्धि करनेवाली और पापोंको धो डालने अर्थात् नाश करनेवाली हैं ‡। १। आप निर्मल, बहुत (अर्थात् गंभीर और अगाध) जल धारण किये हैं (अर्थात् बहती हैं) जो शीतल और त्रयतापहारी है। आपके भँवर और तरंगसमूहका विलास अत्यंत मनोहर है। पुरवासियोंकी (दूध, चंदन, पुष्पमाला, दीप, इत्यादि) पूजाकी भेंटसे आपकी चन्द्रसमान स्वच्छ उज्ज्वल धारा शोभायमान है। आप जन्ममरणरूपी भारका नाश करनेवाली हैं और भक्तरूपी कल्पवृक्षके-लिये थाल्हारूप (आधार) हैं* । २ । अपने तट (किनारेके) वासी

‡ ‘ पाप छालिका ’—यथा, ‘ सकृद्गङ्गाम्भसि स्नातः पूतो गाङ्गेयवारिणा । न नरोनर यातिके अपि पातकराशिकृत ॥ ७२ ॥ व्रतदानतपोयज्ञः पवित्राणी तराणि च । गङ्गाविन्द्वभिषिक्तस्य न समा इति नः श्रुतम् ॥ ७३ ॥ जो एक बारभी गंगाजीके जलमें स्नान करके गंगाजलसे पवित्र हो चुका है, उसने चाहे राशि राशि पाप किये हों, फिरभी वह नरकमें नहीं पड़ता। हमारे सुननेमें आया है कि व्रत, दान, तप, यज्ञ, तथा पवित्रताके अन्यान्य साधन गंगाकी एक बूँदसे अभिषिक्त हुए पुरुषकी समानता नहीं कर सकते। (प० पु० स्वर्ग० यमदूतवाक्य) पद्म पु० स्वर्गखंडमें मार्कण्डेयजीने युधिष्ठिरजीसे कहा है कि गंगाजी पृथ्वीपर मनुष्योंको, पातालमें नागोंको और स्वर्गमें देवताओंको तारती हैं। इसलिये वे ‘ त्रिपथगा ’ कहलाती हैं।

* दूसरा अर्थ—‘ भक्तोंकेलिये कल्पवृक्षकी थाल्हारूप हो ’। टीकाकारोंमें इसके अर्थमें मतभेद है। वैजनाथजी लिखते हैं कि ‘भक्तोंका स्नेह कल्पवृक्ष है; उसकेलिये थाल्हा हैं जिसके सेवनसे रामस्नेह उपजता

पक्षी, जलचर, ‡थलके पशु, पतिंगे, कीड़े मकोड़े, छोटे जीव जंतु और जटाधारी तपस्वी (इत्यादि) सबका आप एकसा पालन करनेवाली हो। हे मोहरूपी महिषासुरके (नाशके) लिये कालिकारूपिणी (गंगे)! मुझ तुलसीदासको यह बुद्धि प्रदान कर कि रघुवंशवीर श्रीरामचंद्रजीका स्मरण करता हुआ तेरे तीर-तीर विचरता रहूँ। ३।

टिप्पणी—'भगीरथनंदिनी विष्णुपदसरोजजा' इति। इक्ष्वाकुवंशमें (रघुकुल) एक 'सगर' नामके पराक्रमशील राजा हुए। इनके दो रानियाँ थीं, केशिनी और सुमति। (महाभारत वनपर्वमें इनके नाम शैब्या और वैदर्भी हैं।) दोनोंने कैलासपर जाकर कठिन तप किया। शंकरजी प्रगट हुए और दोनोंने प्रणाम कर उनसे पुत्रकेलिये प्रार्थना की। शंकरजीने कहा कि 'जिस मुहूर्त्तमें तुमने वर माँगा है उसके प्रभावसे एक रानीसे अत्यंत गर्वीले और शूर वीर साठ हज़ार पुत्र होंगे, किंतु वे सब एकसाथही नष्ट हो जायेंगे। दूसरी रानीसे वंशको चलानेवाला केवल एकही शूरवीर पुत्र होगा।' ऐसा कहकर शंकरजी

है।' बाबू शिवप्रकाशजी अर्थ करते हैं कि 'भक्तोंके वांछित अर्थ देनेकेलिये कल्पथालिका अर्थात् कल्पवृक्षके उदय होनेको थाल्हारूप है'। 'थालिका' का भाव यह है कि उनको धारण करके उनका पालन करती हो। 'भक्ति' पाठका अर्थ तो सीधा सादा है कि 'भक्तिरूपी कल्पवृक्षकेलिये थाल्हारूप हो'। पर प्राचीनतम और उत्तम पाठ 'भक्त' ही है। भक्त कल्पवृक्ष हैं, जीवोंको अर्थ, धर्म, काम और मोक्षके देनेवाले हैं। आप उस कल्पवृक्षको धारण कर उसकी रक्षा करती हो। आपके सेवनसे उनका यह गुण सदा स्थिर रहता है। देखिये न, बाबा रघुनाथदास और बाबा माधोरामजी इत्यादिको श्रीसरयूजल घृतकी जगह काम दे गया।

‡ जलचर और थलचरको विहंगका विशेष मानकरभी अर्थ किया जा सकता है। कुक्कुट, हंस, सारस आदि जलपक्षी हैं। मोर, कीर, सारिका, कोकिल आदि थलपक्षी हैं। मकर, घड़ियाल, कछुवे, मछली इत्यादि शुद्ध जलचर हैं।

अंतर्धान हो गये। † केशिनी वा शैब्याके एक दिव्य बालक हुआ और सुमति वा वैदर्भीके गर्भसे एक तूँबी उत्पन्न हुई। राजाने तूँबीको फेंकनेका विचार किया। उसी समय गंभीरस्वरसे आकाशवाणी हुई कि 'ऐसा साहस न करो। इस तरह पुत्रोंका परित्याग करना उचित नहीं है। इस तुँबीके बीज निकाल कर उन्हें कुछ कुछ घीसे भरे हुए घड़ोंमें पृथक् पृथक् रख दो। इससे तुम्हें साठ हज़ार पुत्र होंगे।' ऐसाही किया गया। उससे साठ हज़ार अतुलित तेजस्वी घोर प्रकृतिके और क्रूर कर्म करनेवाले एवं आकाशमें उड़कर चलनेवाले पुत्र उत्पन्न हुए। बहुत काल बीतनेपर राजाने अश्वमेध यज्ञकी दीक्षा ली। घोड़ा छोड़ा गया और ये साठ हज़ार पुत्र रखवालीपर नियुक्त हुए। घोडा घूमता घूमता जलहीन समुद्रके पास पहुँचा और वहाँ पहुँचनेपर वह अदृश्य हो गया। राजकुमारोंने समुद्र, द्वीप, वन, पर्वत, नदी, नद और कन्दराएँ सभी स्थान छान डाले परन्तु पता न लगा। तब लौटकर उन्होंने 'सगर' महाराजसे सब समाचार कह दिया। राजाने क्रोधमें आकर आज्ञा दी की 'उसे जाकर खोजो और खाली हाथ लौटकर न आओ।' ये लोग फिर खोजने लगे। एक जगह पृथ्वी कुछ फटी दिख पड़ी जिसमें एक छिद्रभी था। उन्होंने (ईशानकोणमें) उसे पातालतक खोद डाला। वहां घोड़ा घूमता हुआ देख वे हर्षित हुए। उसके पासही तेजोराशि महात्मा कपिलभी दिख पड़े। मुनि ध्यानमें थे। कालवश ये राजकुमार उनपर क्रोधसे भर गये और कहने लगे कि 'देखो, कैसा चोर है! घोड़ा चुराकर यहां मुनिवेष बनाकर बैठा है। इसे मारो।' मुनिकी आँख

---

†पद्मपु० उत्तरखण्डमें महादेवजीने नारदजीसे कहा है कि 'सुबाहुके पुत्र गर हुए। शत्रुओंने इनका राज्य छीन लिया तब ये परिवारसहित भृगुनन्दन और्वके आश्रमपर चले गये। और्वने उनकी रक्षा की। सगर वहीं पैदा हुए और बढ़े। और्वने अस्त्र शस्त्र तथा वेदविद्याकाभी अभ्यास करा दिया। सगरके रानियाँ थीं। वे दोनोंही तपस्याकेद्वारा अपने पाप दग्ध कर चुकी थीं। इससे प्रसन्न होकर और्वने उन्हें वरदान दिया। एकने साठ हज़ार पुत्र माँगे और दूसरेने एकही ऐसे पुत्रकेलिये प्रार्थना की जो वंश चलानेवाला हो।' (कल्याणसे)।

कोलाहलसे खुल गयी और उनके अपमानके कारण उनके तेजसे वे सब राजकुमार भस्म हो गये। वस्तुतः इन्द्रने उस यज्ञपशुको चुराकर उनके आश्रममें रख दिया था परन्तु कालवश उन राजकुमारोंको यही सूझा कि यही चोर है जो मुनिवेषमें यहां है। नारदने आकर सब समाचार राजासे कहा। देखिये, महात्माका अपमानका फल!

दूसरी रानीसे 'असमंजस' नामक पुत्र हुआ था। ||वह अपने पुरवासियोंके दुर्बल बालकोंको गला पकड़कर नदीमें डाल देता था। सब पुरवासी भय और शोकसे व्याकुल रहने लगे। एक दिन राजासे सबने आकर प्रार्थना की कि 'असमंजससे हमारी रक्षा कीजिये।' महात्मा सगरने पुरवासियोंके हितकेलिये अपने पुत्रको नगरसे निकाल दिया। राजा हो तो ऐसा हो! प्रजाकी प्राणोंसे रक्षा करना राजाका धर्म था न कि प्रजाहीका सत्यानाश करना।

असमंजसके पुत्र 'अंशुमान्' हुए। अब एकमात्र वही राज्यमें थे। राजाने उनको बुलाकर यज्ञअश्व लानेकेलिये भेजा। ये कपिलजीके आश्रमपर गये। उनको प्रणाम कर उनकी स्तुति की। मुनिने प्रसन्न होकर वर माँगनेको कहा। उन्होंने यज्ञअश्व मांगा और अपने पितरोंके उद्धारकी प्रार्थना की। उन्होंने प्रसन्नतासे घोड़ा दिया और वर दिया कि तुम्हारा पौत्र भगीरथ गंगाजीको लाकर इन सबका उद्धार करेगा। घोड़ा लाकर अंशुमानने राजाको दिया और यज्ञ पूरा किया गया। सगरके पश्चात् अंशुमान् राजा हुए। उन्होंने अंतमें अपने धर्मात्मा पुत्र दिलीपको राज्य सौंपकर गंगाजीकेलिये तप किया। दिलीपनेभी गंगाजीकेलिये बहुत प्रयत्न किया। उनके पुत्र भगीरथजी अपने पितरोंका वृत्तान्त सुनकर बहुत दुःखी हुए और मंत्रियोंको राज्य सौंपकर वे हिमालयपर तपस्या करने लगे। इन्होंने राज्याभिषेक होते हुए राज्य छोड़ दिया और एक हज़ार वर्षतक घोर तपस्या की। गंगाजीने अपने दिव्य रूपसे उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिये और कहा की जो तुम कहो

|| पद्म पु० उत्तर खण्डमें जो कथा है उसमें 'पञ्चजन' नाम लिखा है।

वही करूं। *भगीरथजीने कहा कि 'मेरे पितृगण महाराज सगरके साठ हज़ार पुत्रोंको कपिलदेवजीने भस्म कर यमलोकको भेज दिया। जबतक आप अपने जलसे उनका अभिषेक न करेंगी, तबतक उनकी सद्गति नहीं हो सकती। उनके उद्धारकेलियेही आपसे प्रार्थना है।' गंगाजीने कहा कि 'मैं तुम्हारा कथन पूरा करूंगी। परंतु जिस समय मैं आकाशसे पृथ्वीपर गिरूँगी उस समय मेरे वेगको रोकनेवाला कोई न होनेसे मैं रसातलको चली जाऊँगी। तुम उसका उपाय करो' (भा० ९।९। ३-५)। महाभारतमें गंगाजीने यह कहा है कि 'तीनों लोकोंमें भगवान् शंकरको छोड़ कोई ऐसा नहीं है जो मुझे धारण कर सके। अतएव तुम उनको प्रसन्न कर लो जिसमें जब मैं गिरूँ तो वे मुझे मस्तकपर धारण कर लें।' भगीरथजीने तब पुनः तीव्र तपस्या की और महादेवजीको प्रसन्न करके उनसे गंगाजीको धारण करनेका वर प्राप्त कर लिया। शंकरजी हिमालयपर आकर खड़े हो गये। भगीरथजी गंगाजीका ध्यान करने लगे। इन्हें देखकर गंगाजी स्वर्गसे धाराप्रवाहरूपसे चलीं और शिवजीके मस्तकपर इस प्रकार आकर गिरीं मानो कोई स्वच्छ मोतियोंकी माला हो। शंकरजी दस हज़ार वर्षोंतक उन्हें अपनी जटाओंमें धरे रह गये। भगीरथजीने पुनः तपस्या करके शंकरजीको प्रसन्न किया। तब उन्होंने गंगाजीको जटाओंसे छोड़ा। गंगाजीने राजासे कहा कि 'मैं तुम्हारे-लियेही पृथ्वीपर आयी हूँ, अतः बताओ मैं किस मार्गसे चलूँ?' यह सुनकर आगे आगे राजा रथपर और पीछे पीछे गंगाजी, इस तरह कपिलजीके आश्रमपर, जहाँ सगरपुत्रोंकी राख पड़ी थी, गंगाजीको ले गये। जलके स्पर्शसे उनका उद्धार हो गया। गंगाजी सहस्रधारा होकर कपिलजीके आश्रमपर गयी। समुद्र उनके जलसे तत्काल भर गया। राजा भगीरथने उनको पुत्री मान लिया और पितरोंको गंगाजलसे उन्होंने जलांजलि दी।

यह कथा लोमशजीने युधिष्ठिरजीसे (महाभारत वनपर्वमें) कही है

---

* पद्म पु० उत्तरखण्डमें कहा है कि दस हजार वर्ष तपस्या करने-पर विष्णु भगवान् प्रसन्न हुए। उनके आदेशसे गंगाजी आकाशसे चलीं।

और भा० नवम स्कंधमेंभी लगभग ऐसीही है। पद १८ टि० (ग) भी देखिये।

दूसरी कथा—श्रीमद्भागवत ५।१७ में श्रीशुकदेवजीने गंगाजीका विवरण इस प्रकार दिया है कि जब भगवान्‌ने त्रिलोकको नापनेकेलिये अपना पैर फैलाया तो उनके बाँये पैरके अँगूठेके नखसे ब्रह्मांड कटाहके ऊपरका भाग फट गया। उस छिद्रमें होकर जो ब्रह्मांडसे बाहरके जलकी धारा आयी, वह उस चरणकमलको धोनेसे उसमें लगे हुए केसरके मिलनेसे लाल हो गयी। उस निर्मल धाराका स्पर्श होतेही संसारके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, किंतु वह सर्वथा निर्मलही रहती है। पहले किसी और नामसे न पुकार-कर उसे 'भगवत्पदी' ही कहते थे। वह धारा हजारों युग बीतनेपर स्वर्गके शिरोभागमें स्थित हुई फिर ध्रुवलोकमें उतरी, जिसे 'विष्णुपद' भी कहते हैं। ध्रुवलोकमें आजभी ध्रुवजी नित्यप्रति बढ़ते हुए भक्तिभावसे 'यह हमारे कुलदेवताका चरणोदक है' ऐसा मानकर बड़े आदरसे सिरपर चढ़ाते हैं। और फिर सप्तर्षिगण 'यही तपस्याकी आत्यन्तिक सिद्धि है' ऐसा मानकर उसे जटाजूटपर धारण करते हैं। वहाँसे गंगाजी आकाशमें होकर चन्द्रमण्डलको आप्लावित करती हुई मेरुशिखरपर ब्रह्मपुरीमें गिरती हैं वहांसे सीता, अलकनंदा, चक्षु और भद्रा नामसे चार धाराओंमें विभक्त हो जाती हैं। उनमेंसे सीता ब्रह्मपुरीसे गिरकर केसराचलोंके सर्वोच्च शिखरोंमें होकर नीचेकी ओर बहती गंधमादनके शिखरोंपर गिरती हैं और भद्राश्ववर्षको प्लावित कर पूर्वकी ओर खारे समुद्रमें मिल जाती है। इसीप्रकार 'चक्षु' माल्यवान्‌के शिखरपर पहुँचकर वहांसे केतुमाल वर्षमें बहती पश्चिमकी ओर क्षीरसमुद्रमें जा मिलती है। 'भद्रा' मेरुपर्वतके शिखरसे उत्तरकी ओर गिरती है तथा एक पर्वतसे दूसरे पर्वतपर जाती हुई अंतमें शृङ्गवान्‌के शिखरसे गिरकर उत्तर कुरुदेशमें होकर उत्तरकी ओर बहती हुई समुद्रमें मिल जाती है। 'अलकनंदा' ब्रह्मपुरीसे दक्षिणकी ओर गिरकर अनेकों गिरिशिखरोंको लाँघती हुई हेमकूट पर्वतपर पहुँचती है। वहाँसे अत्यंत तीव्र वेगसे हिमालयके शिखरोंको चीरती हुई भारतवर्षमें आती है और फिर दक्षिणकी

ओर समुद्रमें जा मिलती है। इसमें स्नान करनेके लिये आनेवालोंको पद पदपर अश्वमेध और राजसूय आदि यज्ञोंका फलभी दुर्लभ नहीं है। (श्लोक २ से १० तक)

तीसरी कथा—पद्मपुराण सृष्टिखण्डमें भगवान् व्यासने ब्राह्मणोंके पूछनेपर की "गंगाजी कैसे इस रूपमें प्रकट हुईं? उनका स्वरूप क्या है? वे क्यों अत्यंत पावन मानी जाती हैं?" उनसे गंगाजीकी कथा बिस्तारसे कही है जिसका संक्षिप्त विवरण यह है। 'ब्रह्माजीने नारदजीके पूछनेपर कहा था कि पूर्वकालमें सृष्टि आरंभ करते समय मैंने मूर्तिमती प्रकृतिसे कहा है कि 'देवि! तुम संपूर्ण लोकोंका आदिकारण बनो। मैं तुमसेही संसारकी सृष्टि करूंगा।' यह सुनकर परा प्रकृति सात स्वरूपोंमें अभिव्यक्त हुई। वे सात स्वरूप ये हैं। (१) गायत्री (जिससे समस्त वेद, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा और दीक्षाकी उत्पत्ति मानी जाती है।) (२) वाग्देवी भारती वा सरस्वति (जो सबके मुख और हृदयमें स्थित है और समस्त शास्त्रोंमें धर्म उपदेश करती है।) (३) लक्ष्मी (जिससे वस्त्र और आभूषणकी राशि प्रकट हुई। सुख और त्रिभुवनका राज्य इन्हींकी देन है। यह विष्णुभगवान्‌की प्रियतमा हैं। (४) उमा (जिनके द्वारा शंकरजीके स्वरूपका ज्ञान होता है। यह ज्ञानकी जननी और शंकरजीकी अर्धांगिनी हैं। (५) शक्तिबीजा (जो अत्यंत उग्र संसारको मोहमें डालनेवाली, जगत्‌का पालन और संहार करनेवाली है।) (६) तपस्विनी (जो तपस्याकी अधिष्ठात्री है।) (७) धर्मद्रवा (जो सब धर्मोंमें प्रतिष्ठित है।) धर्मद्रवाको सर्वश्रेष्ठ जानकर मैंने कमंडलमें रख लिया। जब वामनावतार लेकर बलिके यज्ञमें भगवान्‌ने चरण बढाया तब एक चरण आकाश और ब्रह्माण्डको भेद कर मेरे सामने उपस्थित हुआ। मैंने कमंडलके जलसे उस चरणाका पूजन किया। उस चरणको धोकर जब उसका पूजन कर चुका तब उसका धोवन हेमकूट पर्वतपर गिरा। वहांसे शंकरजीके पास पहुँचकर वह जल गंगाके रूपमें उनकी जटाओंमें स्थित हुआ। वे बहुत काल जटाओंमें भ्रमती रहीं। वहांसे भगीरथजी उन्हें पृथ्वी पर लाये।"

इस प्रकार एक कथाके अनुसार यह जल ब्रह्माण्डकटाहके बाहरका जल है जो भगवान्‌के चरणनखकी ठोकर लगनेसे वहांसे इस ब्रह्माण्डके भीतर भगवान्‌के चरणको धोता हुआ वह निकला। दूसरी कथाके अनुसार पराप्रकृतिही जो धर्मद्रवा नामसे जलरूपमें ब्रह्माके कमंडलमें थी उसीसे भगवान्‌का चरण जब धोया गया तो वह धोवनही गंगा नामसे विख्यात हुआ। भगवान्‌के चरणका धोवन होनेसे 'विष्णुपद-सरोजजा' और 'विष्णुपदकंजमकरंद' आदि नाम हुए।

चौथी कथा—भा० ४।१।१२–१४ में लिखा है कि महर्षि मरीचिजीके कर्दमजीकी पुत्री कलासे दो पुत्र कश्यप, और पूर्णिमा हुए। यही कन्या दूसरे जन्ममें श्रीहरिचरणकी धोवनसे गंगारूपमें प्रगट हुई।

२ 'भगीरथनंदिनि मुनिचय चकोरचंदिनि जन्हुबालिका' इति। (क) भगीरथनंदिनि अर्थात् राजकुमारी कहकर जनाया कि नरलोकमें राजाओं और प्रजासे वन्दनीया हुई। क्योंकि भगीरथमहाराज चक्रवर्ती राजा थे। जन्हुबालिका अर्थात् ऋषिकन्या होनेसे ऋषियों, मुनियोंको सुखदायक हुई। विष्णुपदसरोजजा होनेसे देवताओं और नागोंसे वंद्य हुई। इसप्रकार 'सुर नर नाग बिबुध बंदिनि' हैं। इस पदमें सीधे गंगाजीका नाम न लेकर 'भगीरथनंदिनि' आदिसे परिचय करानेमें 'प्रर्यायोक्ति अलंकार' है।

(ख) गंगाजीकी यहाँ चार प्रकारसे श्रेष्ठता दिखाते हैं। कुल, संग (निवासस्थान), स्वभाव और शरीर। इन चार बातोंसे मनुष्यकी परीक्षा होती है। वही यहाँ देखिये। 'विष्णुपदसरोजजासि' से उत्पत्ति अर्थात् कुलकी श्रेष्ठता सिद्ध हुई। इसीसे ब्रह्मद्रव कहलायी और ब्रह्माजीने तुरंत उन्हें अपने कमण्डलमें ले लिया जिससे वे कमंडली कहलायी। विष्णुपदकमलसे निकलनेपर प्रथम संग पितामह ब्रह्माका हुआ। फिर राजर्षि श्रीभगीरथजीपर प्रसन्न होकर पृथ्वीपर गिरनेके पूर्वही शंकरजीका संग हुआ। उन्होंने शिरपर धारण किया। वहाँसे पृथ्वीपर उतरनेपर जन्हु ऋषिका संग हुआ जिससे 'जन्हुबालिका' कहलायी। इसप्रकार ब्रह्मा, महेश और महर्षि एवं राजर्षिका संग कहकर

संग वा निवासकी श्रेष्ठता दिखायी। शरीरसे ' मुनिचय चकोरचंदिनि ' और ' नगरनागबिबुध बंदिनि ' हैं। यह निजकी श्रेष्ठता कही। स्वभावसे परोपकारिणी हैं। यह स्वभावकी श्रेष्ठता 'पुण्यरासि' और 'पापछालिका' विशेषणोंसे स्पष्टही है।

(ग) ' मुनिचय चकोरचंदिनि ' इति। चकोर चंद्रमाका प्रेमी है। वह चंद्रचंद्रिकाकी ओर एकटक देखता रहता है और उससे सुख पाता है। पद २ ' कोक ' शब्द देखिये। वैसेही मुनिगण आपके दर्शनसे सुख पाते हैं। तरंगोंके विलास एवं धाराको देख देखकर आनंदित होते हैं। इसीसे मुनियोंके आश्रम प्रायः हरिद्वार, काशी और प्रयाग आदि गंगा-तटवाले तीर्थोंमें विशेषकर देखे सुने जाते हैं।

(घ) ' विष्णुपदसरोजजासि ' इति। पद १० टि० ३ और उपरकी टि० १ देखिये।

(ङ) ' ईससीसपर बिभासि ' इति। पद ११ के ' भ्राज बिबुधापगा आपु पावन परम मौलि मालेव सोभा बिचित्रं ' इस अंतरेके जो भाव टि० ३ में कहे गये वे सब ' बिभासि ' एकही शब्दसे सूचित कर दिये गये हैं।

(च) 'पापछालिका', इति। यथा, 'मज्जन पान पाप हर एका।' (बा०)। स्नान और जलपानसे पापका क्षय होता है। ' दरस परस अरु मज्जन पाना। हरै पाप कह बेद पुराना। ' दर्शन और मार्जनादिसेभी पापका नाश होता है। सगर पुत्रोंके पाप तो उनके शरीरके भस्ममात्रको गंगाजलका स्पर्श होनेसे धुल गये। तब भला जीवित प्राणीके पाप दर्शन, स्पर्शन आदिसे यदि नष्ट हो जाय तो आश्चर्यही क्या!* प० पु० स्वर्ग खंडमें सूतजीके वचन हैं कि " गंगाजीके जलसे अभिषिक्त

* ' गंगेति स्मरणादेव क्षयं याति च पातकम्। कीर्तनादतिपापानि दर्शनाद्गुरु कल्मषम्। ५। स्नानात् पानाच्च जान्हव्यां पितृणां तर्पणात्तथा। महापातक वृन्दानि क्षयं यान्ति दिनेदिने। ६। अग्निना दह्यते तूलं तृणं शुष्कं क्षणाद यत्। तथा गंगाजलस्पर्शात् पूंसां पापं दहेत्क्षणात्॥ । ७। प० पु० सू० ६० '

होनेपर मनुष्य अपने पापोंको दूर भगा देता है। भगवान् केशवही जलके रूपमें इस भूमंडलका पापसे उद्धार कर रहे हैं। गंगाजलका सेवन अंत:करणको शुद्ध करनेका उत्तम साधन है। गंगा विष्णुभक्ति प्रदान करनेवाली और विष्णुका स्वरूपही हैं।"

'विष्णुपदसरोजजासि' कहकर क्रमश: बताया कि गंगाजी कहांसे निकलीं, किसप्रकार और किसलिये पृथ्वीपर आयी। भगवान्‌के चरणसे निकलीं, पृथ्वीपर सगर पुत्रोंके पापोंको धो डालनेके लिये आयी और पृथ्वीपर रुक सकें इसलिये शिवजीने अपने शिरपर उन्हें प्रथम धारण किया।

३ 'बिमल बिपुल बहसि बारि सीतल त्रयतापहारि।' इति।

(क) निर्मल, शीतल और अगाध होना ये उत्तम जलके गुण हैं। 'बिमल बिपुल' से लेकर 'शोभित ससि धवल धार' तक शरीर वा स्वरूपसे सुंदर बताया। 'भंजनि भवसार' से स्वभाव और महिमा कही और 'त्रयतापहारी' भंजनि भवभार' एवं 'भक्तकल्पथालिका' से मंगल वा कल्याणकारिणी दिखायी। लाला भगवान्‌दीनजी लिखते हैं कि 'बिमल तरंगमालिका' से जनाया कि नदीरूपमेंभी आपके पास अटल संपत्ति और विकट ऐश्वर्य है।

(ख) 'त्रयतापहारी' इति। अंतसमय जब रोग असाध्य हो जाता है तबभी तुलसीदलयुक्त गंगाजल महौषधि है। '**औषधं जाह्नवी तोयं वैद्यो नारायणो हरिः**। यह बहुत प्रसिद्ध श्लोक है। गंगा तथा सरयूजलमें कीड़े नहीं पड़ते यह परीक्षा की हुई बात है पाश्चात्य वैज्ञानिक-भी अब इसके गुण देखकर इसे औषधिके काममें लानेका प्रयत्न कर रहे हैं और हमारे यहाँ तो गंगाजल और तुलसी अंतमें मुँहमें पड़नेपर समस्त पाप तापका नष्ट होना माना गया है।

(ग) 'भँवर बर' इति। भँवर जब बड़े और बहुत उठते हैं तब वे बहुत सुंदर और मनोरम होते हैं। बहुत और बड़े बड़े होनाही उनकी श्रेष्ठता है। 'भँवर बर विभंग तर तरंग मालिका।' का अन्वय पण्डित राजकुमारजीके मतानुसार यह है 'भँवर (और) तरंगमालिका

(का) बिभंग बर तर (है) । ' यदि ' बिभंग ' का अर्थ चंचल करें तो अर्थ होगा कि ' भँवर श्रेष्ठ हैं और तरंगें अति चंचल हैं । '

(घ) ' पुरजन पूजोपहार सोभित ससि धवल धार ' इति । फूलों, पुष्पमालाओं इत्यादिसे पूजा करनेसे फूल और मालाएँ जलपर बिखरे हुए रहते हैं । दूधभी चढ़ाया जाता है । चंद्रसमान स्वच्छ उज्वल धारा इन सब सामग्रियोंसे शोभायमान् है । गंगाजीकी धारा स्वतः उज्वल है । इसीसे शिवजीकी जटाओंमें वह मोतीकी मालाकेसमान शोभित कही गयी है । गंगोत्री और उसके ऊपरका जल बहुत निर्मल है । वस्तुतः शुद्ध गंगाजल तो वहीं मिलता है ।

४ ' निज तट बासी बिहंग जलचर थल पसु पतंग ' इति । (क) जीव तीन स्थानोंमें रहते हैं जल, थल और नभमें । यथा, ' जलचर थलचर नभचर नाना । जे जड़ चेतन जीव जहाना ॥ ' (बा०) यहाँ ' निज तट बासी ' विशेषण देकर जलचर और थल-चरको स्पष्ट कहा । नभचरभी तटवासी होते हैं पर वही जो रात्रिमें तटके वृक्षों आदिपर आकर विश्राम करते हैं । ' बिहंग ' शब्दसे तटवासी नभचरभी जना दिये हैं ।

(ख) जलचर बहुत बड़े बड़ेभी होते हैं, जैसे मगर, घड़ियाल इत्यादि । कीट बहुत छोटे होते हैं । इसीप्रकार थलचरोंमेंभी सिंह, हाथी, ऊँट, राजा, महाराजा, तपस्वी आदि बड़ोंकी अवधि हैं । कीट छोटोंकी अवधि है । इनको कहकर जनाया कि बड़ेसे बड़ेको लेकर छोटेसे छोटेतकको एक समान पालती हैं । सभीको स्नान पानसे मोक्ष देनेको तैयार रहती हैं । बड़े छोटेका विचार जराभी मनमें नहीं आने देती । यह समभाव और महिमा है ।

(ग) ' सब सरिस पालिका ' इति । ' सब ' में ' इत्यादि ' का भावभी आ गया । जितने गिनाये उतनेकाही पालन नहीं करतीं, वरंच इनके अतिरिक्त औरभी जो तटवासी हैं उनकाभी वैसाही पालन करती हैं । ' सरिस पालिका ' में ' चतुर्थतुल्ययोगिता ' अलंकार है ।

५ 'तुलसी तव तीर तीर सुमिरत रघुबंसबीर' इति। (क) 'तीर तीर' में

'पुनरूक्तिप्रकाश' अलंकार है। (ख) 'रघुबंसवीर' शब्दसे श्रीरघुनाथजीके वीर स्वरुपका अर्थात् बाणधारी राक्षस वधपर तत्पर तपस्वी वीर वेषका स्मरण सूचित किया। किनारे किनारे जंगल बहुत होते हैं। इसलिये वहाँ वीर-रूपका स्मरण एवं ध्यान युक्तायुक्तही। (ग) 'तीर तीर सुमिरत रघुबंसबीर' कहकर तब 'देहि मति' कहनेका भाव कि उनके तटपर बिचरनेसे और रामस्मरण करनेसे उनकोभी आनंद प्राप्त होगा। सदा शिवजीके शीशपर विराजमान रहनेसे उन्हें सदा श्रीरामनामका संग रहता है। अतएव राम-नामस्मरणका विचार सुनकर वे अवश्य प्रसन्न होकर मनोरथकी पूर्ति करेंगी। लाला भगवानदीनजीने यथार्थही कहा है कि, "पाठकलोग गोस्वामीजीकी चतुरायी देखें कि कैसी पुष्ट युक्तिसे याचना करते हैं? ऐसी युक्तिपूर्ण याचनाको पूर्ण करनेमें दयापूर्ण दानी कभी आनाकानी करही नहीं सकता। धन्य गोस्वामी!" कथनका भाव यह है कि 'मैं तुम्हें नित्य रामनाम सुनाया करूँगा जो तुमको बहुत प्रिय है यदि यह वर मुझे मिल जाय'। गूढ़ अनन्योपासनाका दर्शन इन शब्दोंमें देखिये कैसा झलक रहा है? काशीमेंभी रहेंगे, गंगातटपर रहेंगे पर रघुबीरके होकर, दुसरेके नहीं। कवितावलीमेंभी यही भाव कैसा अच्छा दर्शाया है? यथा "बारि तिहारो निहारी मुरारि भयें परसें पद पाप लहोंगो। ईस ह्वै सीस धरौं पै डरौं प्रभुकी समता बड़े दोष दहोंगो॥ बरु बारहि बार सरीर धरौं रघुबीरको ह्वै तव तीर रहोंगो। भागिरथी बिनवौं कर जोरि बहोरि न खोरि लगै सो कहोंगो॥" यह उपासना है। (घ) 'बिचरत' अर्थात् परम विरक्त होकर।

६ 'मोह-महिष कालिका' इति। आप मोहका सर्वथा नाश कर देती हैं जैसे कि कालिकाने महिषासुरका नाश किया था। पद १६ टि०५ और पद १५ टि० ९, १० देखिये। ध्यान रहे कि गोस्वामीजी वर माँगते हैं, 'सुमिरत रघुबंशवीर विचरत' रघुबीरका स्मरण करते हुए तटपर विचरते रहना। इस स्मरणका बाधक मोह है। जबतक मोह रहेगा तबतक भगवानके चरणोंमें दृढ़ अनुराग नहीं हो सकता। यथा, 'मोह गये बिनु रामपद होइ न दृढ़ अनुराग।' मोह

समस्त मानसरोगोंका मूल है। यथा 'मोह सकल व्याधिन्ह कर मूला। तिन्हते पुनि उपजहिं बहु सूला॥ काम बात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा॥' मोहहीसे कामक्रोधादि सबके सब उत्पन्न हो जाते हैं। अतएव 'मोह महिष कालिका' कहकर बर माँगा।

श्रीलमगोड़ाजी कहते है कि, "टागोरजीने ठीकही लिखा है कि हिन्दू गंगाजलकोभी ब्रह्ममय मानते हैं। इसीसे स्नान उनकेलिये केवल शरीरके धोनेका साधन नहीं है, बल्कि आत्माके शुद्ध करनेका साधनभी है। तुलसीदासजीने तो मानसमेंभी उसे 'ब्रह्ममय बारि' कहा है। भौतिकवादी चाहे जो कुछ कहें पर सिस्टर निवेदिता जैसी पाश्चात्य देवियोंनेभी स्वीकार किया है कि यदि न्यागराके झरने गंगातटपर होते तो केवल बिजलीही नहीं किन्तु आत्माकी सुधारक शक्तिभी पैदा करते। गंगाजीके जलको तो विज्ञानभी संसारमें सबसे शुद्ध बताता है। प्रत्येक जगह अबभी आपको ऐसे लोग मिलेंगे जिनके रोग गंगाजलके सेवनसे चले गये। हमारे यहाँ तो कहावत है कि, 'औषधि गंगाजल है और वैद्य नारायण हरि है'। बहुतसे वैदिक विद्वानोंका मत है कि वेदमें जो गङ्गा शब्द आया है वह गुणवाचक है। 'गति करनेवाली' इस गुणके कारण नदीका पीछेको नामकरण हुआ। मंत्रभागकेलिये यह होभी सकता है। तोभी ब्राह्मण इत्यादि भागोंमें तो नदीका वर्णन अनुचित नहीं। फिर गंगा तो तीनों लोकोंमें भिन्नभिन्न धाराओंसे बहती है। हम बेकारही झिझकते हैं। महात्मा ईसाका दीक्षासंस्कार जार्डन नदीके जलसेही तो हुआ था! हमने पत्रोंमें पढ़ा था कि जॉर्ज पंचमकी पोतीके जन्मस्नानकेलिये उसी पवित्र नदीका जल था। मुसलमान धर्मके महात्माको 'ज़मज़म' का सोताही तो मिला था जहाँ भगवान्‌की आज्ञानुसार काबा बना।

१८ [२३] रामकरी *

जयति जय सुरसरी जगदखिल पाविनी[१]।
बिष्नुपदकंज मकरंद इव अंबु बर बहसि॥

---

* ६६, रा०, ह०, ज०, ७४, आ०, में 'रामकरी' वा 'रामकली' है। भा०, बे०, में 'धनाश्री' है। १ पाविनी—६६, रा०, ५१। प्रायः

दुख दहसि अघबृंद बिद्राविनी[2] ॥ १ ॥
मिलित जलपात्र अज जुक्त हरिचरणरज
बिरजतर[3] बारि त्रिपुरारिसिरधामिनी ।
जन्हुकन्या धन्य पुन्यकृत सगरसुत
भूधरद्रोनि[4] बिद्दरनि[5] बहुनामिनी ॥ २ ॥

शब्दार्थ–सुरसरी = देवनदी; गंगा । जगदखिल = (जगत्+अखिल) सारे संसारको । मकरंद = पुष्परस जो फूलमें केसर, पराग वा ज़ीरेके नीचे रहता है, जिसे भौंरे आदि चूसते हैं । दहसि = जलाती है । बिद्राविनी = (विद्रावन) – विदीर्ण करना, फाड़ना, नाश करना । (विद्राव) – बहना, पिघलना, गलना । बहाने, गलाने वा नाश करनेवाली, भगानेवाली । (वै०) । मिलित = मिला हुआ, युक्त । जलपात्र = कमंडल । अज = ब्रह्माजी । जुक्त (युक्त) = किसीके साथ मिला हुआ । बिरज = रज (मल, विकार) रहित; निर्मल । रजतमरहित सत्वगुणयुक्त । (रा० त० बो०, डु०) यथा '**विरजस्तमसः स्युर्द्वयातिगाः** पवित्रः ' इत्यमरः । धामिनी = धाम या घर बनानेवाली, निवास करनेवाली । धन्य = कृतार्थरूप; प्रशंसाके योग्य । इसका प्रयोग साधुवाद देनेकेलिये प्रायः होता है, जैसे कि किसीको कोई अच्छा काम करते देख सुन बोल उठते हैं, ' धन्य धन्य ' । द्रोनि (द्रोणि) = कंदरा, गुफ़ा, दो पहाड़ोंके बीचकी भूमि, दर्रा, घाटी । (दी०) बिद्दरनि (सं० विदारनसे) = फाड़ने या दो टुकड़े कर देनेवाली ।

पद्यार्थ—सारे संसारको पावन करनेवाली देवसरि गंगे ! आपकी जय हो ! जय हो ! आप विष्णुपदकमलमकरंद जैसा सुंदर श्रेष्ठ जल धारण करती और बहाती हैं । उससे जीवोंके दुःखोंको भस्म करती हैं ।

औरोंमें 'पावनी' है । २ बिद्राविनी–६६, रा०,मु०, डु०, ५१, वै०, वि० । बिद्रावनी–भा०, बे०, प्र०, ज०, भ, ७४ । पाविनी, बिद्राविनी आगेके अंतराओंके तुकांत अनुरूप हैं । ३ तर–६६, भा०, बे०, ह०, ७४, ज० । बर–रा०, ५१, आ० । ४ उद्धरनि–ह० । ५ बिदारणि–५१ ।

आप पापसमूहकी नाश करनेवाली हैं। १। आपका जल ब्रह्माजीके कमंडलसे मिला हुआ, भगवान्‌के चरणरजसे युक्त और अत्यंत निर्मल है। आप त्रिपुरासुरके शत्रु महादेवजीके सिरपर निवास करनेवाली हैं। हे जन्हु ऋषिकी पुत्रि ! आप धन्य हैं। आपने सगर महाराजके पुत्रोंको कृतार्थ और पवित्र कर दिया है, उनका उद्धार किया है। आप पर्वत कंदराओंको विदारण करनेवाली और अनेक नामोंवाली है। २।

टिप्पणी—१ 'जगदखिलपाविनी बिष्नुपदकंज मकरंद इव अंबु बर' इति। गंगाजल भगवान्‌के पदकमलका मकरंदही है। यथा, '**मकरंद जिन्ह कर संभु सिरसुचिता अवधि सुर बरनई।**' (बा०) अतएव यहाँ 'इव' का अर्थ 'उसके समानताका दूसरा' यह नहीं हो सकता। 'इव' का प्रयोग यहाँ वैसाही है जैसा '**तुम्ह तें अधिक पुन्य बड़ काकें। राजन राम सरिस सुत जाकें।**' (अ०) में 'रामसरिस' का। यह मुहावरा है। 'राम जैसे' 'रामसरीखे' का तात्पर्य 'राम ऐसे' 'रामही' हैं। वैसेही '**पदकंज मकरंद इव बर बारि**' का अर्थ यहाँ 'पदकमल मकरंद, ऐसा सुंदर जल' अर्थात् 'मकरंदरूपी सुंदर जल' है।* इसीसे उस जलको 'बर' कहा। 'बर' विशेषण देकर जनाया कि उत्तम जलके जो गुण होते हैं वे सब इसमें हैं। वह 'मधुर, मनोहर (निर्मल), सुशीतल और मंगलकारी' है। यथा, '**बरषहिं राम सुजस बर बारी। मधुर मनोहर मंगलकारी।**' (बा०) यहां पूर्णोपमा अलंकार है। 'मकरंद इव बर' से सूचित किया कि जो गुण भगवान्‌के चरण-कमल मकरंदमें होने चाहिये वे सब इस जलमें हैं। मकरंद होनेके

---

*१ दीनजीने 'इव' का अर्थ 'निश्चयही' किया है। अर्थ—'तुम्हारा जल निश्चयही विष्णुपदकंजका मकरंद है'। प्रायः अन्य सब टीकाकारोंने 'समान' अर्थ किया है। २ पद्मपु० उत्तरखण्डमेंभी गंगाजीको ब्रह्मका द्रवरूप कहा है। यथा, 'द्रवीभूतं परं ब्रह्म परमानन्द-दायिनी।' परमानन्दप्रदायिनी गंगे ! आप जलरूपमें अवतीर्ण साक्षात् परब्रह्म हैं।

संबंधसेही 'जगदखिल पाविनी' हैं। 'जगदखिल' कहकर छोटे बड़े सभी जीवजंतु सूचित कर दिये। तीनों लोकोंमें आपकी धारा होनेसे 'त्रैलोक्यगामिनी' और 'जगदखिलपाविनी' कही गयी। 'पाविनी' से 'पवित्रताकी सीमा' अर्थात् स्वयं पवित्र और दूसरोंको पवित्र करनेवाली जनाया। मानसके 'सुचिता अवधि सुर बरनई' का भाव इस पदसे प्रकट किया गया है।

२ 'दुख दहसि अघबृंद बिद्राविनी' इति। आप पापनाशिनी हैं। यथा, '**दरस परस अरू मज्जन पाना। हरइ पाप कह बेद पुराना॥**' जब सब पापही भाग जाते वा नष्ट हो जाते हैं तब दुःख कहाँ रह सकता है? क्योंकि पापकाही परिणाम तो दुःख है। यथा '**करहिं पाप पावहिं दुख भय रूज सोक वियोग।**' दुःख और अघ दोनोंको कहकर कार्य और कारण दोनोंका नाश कहा। यदि कारणके नाशकी शक्ति न होती तो दुःख फिर आ जाता। दुःखके साथ 'दहसि' और अघके साथ 'विद्राविनी' अर्थात् दोनोंके साथ पृथक् पृथक् क्रियाएँ साभिप्राय हैं। 'दहसि' के संबंधसे 'दुःख'को तृण वा रुई और गंगाजलको अग्निरूप जनाया। जल होनेपरभी उसमें अग्निका दाहक गुण है। यह जलकी अद्भुतता है। 'बिद्राविनी' के संबंधसे अघको पर्वत और गंगाजीको वज्ररूप सूचित किया। यथा, '**कुलिच पाप पर्बतके फोरिबेको**' (भक्तिरसबोधिनी)

३ 'मिलित जलपात्र अज जुक्त हरिचरनरज' इति। ब्रह्माजीके कमंडलमें रहनेसे 'मिलित जलपात्र अज' कहा। स्मरण रहे कि विष्णुपद-मकरंद होनेसेही गंगाजीका नाम 'विष्णुपादोदकी' है और ब्रह्मकमंडलमें रहनेसे 'ब्रह्मकमंडली' नाम है। शिवजीके सिरपर निवास होनेसे 'शिवसिर-घामिनी' है। वीरकविजीने 'मिलित' का अर्थ 'सुशोभित' और बैजनाथजीने 'भरा है' ऐसा किया है। बैजनाथजी लिखते हैं कि "ब्रह्माके कमंडलमें आपका जल भरा (हुआ) है। जहाँ ब्रह्मद्रव समुद्रवत् भरा है उसमें सब ब्रह्मांड अंडेसरीखे उतरते है। जब वामनजीके अंगूठेकी ठोकरसे ब्रह्माण्डावरण फूट गया तब उसी मार्गसे ब्रह्मद्रव बह आया जो हरिचरणका स्पर्श पाकर रजतमरहित हो अत्यन्त पावन सतोगुणमय हो

गया । " 'मिलित' शब्दका ऐसा प्रयोग और कहीं है इसका पता अबतक इस दीनको नहीं लगा । पाठक कृपा करके विचार करें । हाँ, सं० १६६६ की प्रतिमें 'सकल हृश्य निज उर मिलिकै सोवै निद्रा तजि जोगी।' यह पाठ एक पदमें आया है ।

'अज' नाम देकर अनादिकालीन जनाया । ब्रह्मा आदि नामोंमें जन्म और आदि पाया जाता है । इससे वे नाम न दिये ।

'जुक्त हरिचरणरज' इति । आनंदरामायणमें कहा है कि भगवान्‌के चरणरजको गंगाजी इतने प्रेमसे धारण किये हुए हैं कि आजभी उनके जलके साथ बराबर रजकण बहा करता है । स्वच्छ जलमेंभी ध्यान देकर देखनेसे रजकण मालूम होता है । यह भाव 'हरिचरणरजजुक्त' पदसे जनाया है ।

४ 'बिरजतर बारि त्रिपुरारिसिरधामिनी' इति । (क) 'जुक्त हरिचरनरज' कहकर 'बिरजतर' कहनेका भाव यह है कि जो जल रजयुक्त होता है वह मलिन होता है। पर यह जल मलिन नहीं है। वरंच विशेष निर्मल है । यह रज मलका नाशक है और ऐसा निर्मल है कि त्रिपुरारि ऐसे समर्थशील शंकरजी उसे शिरोधार्य किये रहते हैं । यही जतानेकेलिये 'बिरजतर' कहकर 'त्रिपुरारिसिरधामिनी' कहा । मिलान कीजिये कवितावली और पद्मपु० के निम्न उद्धरणोंसे'

'ब्रह्म जो ब्यापक बेद कहैं गम नाहिं गिरा गुन ज्ञान गुनीको ।
जो करता भरता हरता सुरसाहिब साहिब दीन दुनीको ॥
सोइ भयो द्रवरूप सही जो है नाथ बिरंचि महेस मुनीको ।
मानि प्रतीत सदा तुलसी जल काहे न सेवत देवधुनीको ॥'

" विष्णुपादार्धसम्पूते गंगे त्रिपथगामिनि। धर्मद्रवीति विख्याते पापं मे हर जान्हवि ॥ विष्णुपादप्रसूतासि वैष्णवी विष्णुपूजिता त्राहि मामेनसस्तस्मादाजन्ममरणांतिकात् ॥ श्रद्धया धर्मसंपूर्णे श्रीमता रजसाच ते। अमृतेन महादेवि भागीरथि पुनीहि माम् ॥' (प० पु० सृ० ६०, ६०-६२) भगवान् व्यास अपने शिष्योंसे गंगाजीकी महिमा वर्णन करते हुए कहते हैं, 'भगवती गंगे ! तुम विष्णुका

पादोदक होनेसे परमपवित्र हो, तीनों लोकोंमें गमन करनेसे त्रिपथगामिनि हो। धर्मद्रवा नामसे विख्यात् हो। हे जान्हवी! मेरे पाप हर लो। विष्णुपदसे तुम्हारा जन्म हुआ। तुम विष्णुद्वारा सम्मानित तथा वैष्णवी हो। मुझे जन्मसे मरणतकके पापोंसे बचा लो। महादेवी भागीरथी! तुम श्रद्धासे, शोभायमान रजकणोंसे तथा अमृतमय जलसे मुझे पवित्र करो।"

(ख) 'त्रिपुरारि' का भाव कि महान् समर्थ शक्तिशाली भगवान् शंकर इनको शुचिताकी सीमा मानकर इनका ऐसा आदर करते हैं, तब अन्य सुर मुनि आदि जीवोंसे तो वे सेवित हुआही चाहें।

५ (क) 'जह्नु कन्या धन्य पुन्यकृत सगरसुत' इति। श्री पं० रामकुमारजी और बाबू शिवप्रकाशने 'धन्य पुन्यकृत' को सगरसुतका विशेषण मानकर 'धन्य और पवित्र किया' यह अर्थ लिखा है। मेरी समझमें यह दोनों ओर लग सकता है। "पवित्र करके सगर पुत्रोंको कृतार्थ किया और इस कार्यके करनेसे आपभी श्लाघ्य हुई। आपकी महिमा संसारमें ख्यात हुई।"

श्रीवैजनाथजी लिखते हैं कि 'जलकर मरना अकाल मृत्यु है। विप्र क्रोधाग्निसे जलनेसे वे सब घोर गतिके अधिकारी थे। ऐसोंको पवित्र गति दी, ऐसी प्रभावशालिनी हैं।'

(ख) 'भूधरद्रोनि बिद्दरनि' से धाराको प्रचंड वेगवान् जनाया और 'बहु नामिनी' से क्रियागुणयुक्त अनेक नामोंवाली सूचित किया। अनेक नाम होनेसे अनेक कर्मगुण संपन्न जनाया। 'बहु' यहाँ अगणित-वाचक है। 'भागिरथी,' 'ब्रह्मकमण्डली,' 'विष्णुपादोदकी,' 'जान्हवी,' 'गंगा,' 'सुरसरि,' इत्यादि कुछ नाम ऊपर आ चुके हैं।

(ग) 'बहु नामिनी' इति। वाल्मीकीयमें विश्वामित्रजीने श्रीरामजीसे गंगाजीके संबंधमें कहा है, '**विससजततो गङ्गांहरो बिन्दुसरः प्रति। तस्यां विसृज्यमानायांसप्तस्रोतांसि जज्ञिरे। ११। ह्लादिनी पावनी चैव नालिनी च तथैव च। तिस्रः प्राचीं दिशं जग्मुर्गङ्गाः शिवजलाः शुभाः। १२। सुचक्षुश्चैव सीताच सिन्धुश्चैव महानदी। तिस्रश्चैता दिशंजग्मुः प्रतीचीं तु दिशं शुभा। १३।**

सप्तमी चान्वगात्तासां भगीरथरथं तदा। भगीरथोऽपिराजर्षिर्दिव्यं स्यन्दनमास्थितः। १४। तब महादेवजीने गंगाजीको बिन्दुसर (जो हिमालय-परही है) में गिरा दिया। गिरते ही उनकी सात धाराएँ हो गयीं। 'ह्लादिनी' 'पावनी' और 'नलिनी' नामक गंगाजीकी तीन धाराएँ बिन्दुसरसे पूर्व दिशामें गयीं। 'सुचक्षु,' 'सीता' और 'महानदी सिंध' नामकी तीन धाराएँ बिंदुसरसे पश्चिम ओर गयीं। सातवीं राजर्षि भगीरथके रथके पीछे पीछे गयीं जो 'भागीरथी' नामसे प्रसिद्ध हुयीं। इस प्रकार सात धाराएँ और सात नाम तो पृथ्वीपरकेही हैं।

पद्मपुराण सृष्टिखंड २०।१५१-२ में भी कुछ नाम हैं। 'नंदिनीत्येव ते नाम देवेषु नलिनीति च। दक्षा पृथ्वी च सुभगा विश्वकाया शिवामृता॥ विद्याधारी महादेवी तथा लोक प्रसादिनी। क्षेमा च जान्हवी चैव शान्ता शान्ति प्रदायिनी॥

अनुसंधान [१८]

जच्छ गंधर्ब मुनि किन्नरोरग दनुज मनुज
मज्जहिं सुकृतपुंज[६] जुत कामिनी।
स्वर्गसोपान बिज्ञान ज्ञान[७] प्रदे मोह मद
मदन पाथोज बन[८] जामिनी॥ ३॥
हरित गंभीर बानीर दुहुं तीर बर मध्य
धारा बिसद बिश्व अभिरामिनी।
नीलपर्यंक कृत सयन सर्पेस जनु सहस
सीसावली श्रोत सुरस्वामिनी॥ ४॥
अमितमहिमा अमितरूप भूपावलि मुकुटमनि
बंदिते[९] लोक[१०] त्रय[११] गामिनी।

६ पुण्य–ह०, रा०, ५१। ७-प्र० में नहीं है। ८ बन–६६, रा, बे० ह०, भा०। (मूलमें 'बन' है। हाशियेपर 'हिम' बनाया गया है।) हिम–ज०, ७४, आ०। हिमि–५१। ९ बंदिते–६६, गा०, ह०, भा०, वे०, प्र०, ज०, भ०, ७४। यह शुद्ध संस्कृत संबोधन है। वंद्य–डु०, दी०, वि०। बंदि–मु, ५१, बै०। १०, ११ त्रैलोक्य (त्रैलोक–मु०, दि०, वि०) पथ–आ० (भ०) लोक त्रय–६६, रा०, भा०, बे०, प्र०, ज०, ह, भ, ७४।

देहि रघुबीरपद प्रीति निर्भर मातु दास
तुलसी त्रास हरनि भवभामिनी ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—जच्छ=यक्ष। यक्ष, किन्नर, गंधर्व और उरग, ये सब देव-योनियाँ हैं। गंधर्व और किन्नर बड़े गवैये होते हैं। किन्नरका मुख घोड़े-कासा होता है और ये पुलस्त्यजीके वंशज माने जाते हैं। गंधर्व जातिके देवगण कश्यपजीकि 'मुनि और प्राधा' नामकी स्त्रियोंसे हुए हैं। उरगसे नागदेव समझना चाहिये जो कद्रुके पुत्र हैं। मज्जहिं=नहाते हैं। सुकृतपुंज=समूह पुण्यवाले; पुण्यात्मा, सुकृती। जुत (युत) = सहित। कामिनी=स्त्री। पाथोजबन=कमलका बन। जलवाचक सब शब्दोंमें 'ज', 'जात' आदि लगानेसे कमलवाची शब्द बनते हैं। ऐसे बहुतेरे शब्दोंका प्रयोजन इस ग्रंथमें हुआ है। जैसे कि 'बारिज, सरसिज, सरोज, बनज, नीरज, कंज, पाथोज' इत्यादि। जामिनी (यामिनी) = रात। स्वर्ग-लोकोंमेंसे तीसरा। आकाशमें सूर्यलोकसे लेकर ध्रुवलोकतक स्वर्ग माना जाता है। पुण्यात्माएँ इस लोकमें निवास करती हैं। देवताओंका निवास यहीं है। जो सकाम यज्ञादिकर्म स्वर्गकी कामनासे किये जाते हैं उनसे स्वर्ग मिलता है जहाँ प्राणीको पुण्यफलका भोगसुख प्राप्त होता है। पुण्य क्षीण होने अर्थात् भोग केनेपर फिर प्राणीको इसी लोकमें आना पड़ता है। स्वर्गका वर्णन भा० ८। १५। १२। २१ में है। हरित = हरे रंगका। यथा 'हरित मनिन्ह के पत्र फल पद्मरागके फूल।' (बा०)। गंभीर=सघन, गहरा। बानीर=बेंत। बिसद=उज्वल। अभिरामिनी=आनंद देनेवाली। पर्यंक = पलंग। नील = गहरा आस्मानी रंग। भगवान्‌की श्यामताके विषयमें 'नीलसरोरुह नीलमनी नील नीरधर श्याम', 'गगन सदृश', 'अतसी कुसुम', 'दूर्वादलद्युति', 'केकिकंठाभनीलं' इत्यादि तुल्यात्मक शब्द जहाँ तहाँ आये हैं, जिससे गहरे, हरे और नीलेमें प्रायः बहुत समानता प्रतीत होती है। जनु=ऐसा जान पड़ता है, प्रतीत होता है, दीखता है। इसका प्रयोग उत्प्रेक्षालंकारमें प्रायः होता है। अवली=पंक्ति। स्रोत=जलप्रवाह, धारा। मुकुटमणि=इसका प्रयोग प्रायः श्रेष्ठ, शिरोमणि, इत्यादिके भावमें होता है। यथा 'कह तुलसीदास सुर-

मुकुटमनि जय जय जानकीरमन । ' (क०) । बंदिते = वंदना की गयी है । निर्भर = परिपूर्ण; ऐसा भरा हुआ कि आगे अब भरनेकी गुंजाइशही (समाई) नहीं है । यथा ' **सब के उर निर्भर हरष पूरित पुलक सरीर । कबहिं देखिबे नयन भरि राम लषन दोउ बीर ॥** ' (बा०), ' **तन पुलक निर्भर प्रेम पूरन नयन मुख पंकज दिये** ' (आ०), ' **निर्भर प्रेम मगन मुनि ज्ञानी** ' (आ०) । भवभामिनी = शिवपत्नी । षड़ाननके जन्मके संबंधसे गंगाजीभी शिवजीकी पत्नी कहलाती हैं । पद १५ ' छ मुख ' में देखिये ।

पद्यार्थ—यक्ष, गंधर्व, मुनि, किन्नर, नाग, दैत्य और मनुष्य (आदि) सुकृतीपुरुष स्त्रियोंसहित (आपके जलमें) स्नान करते हैं । आप स्वर्गकी सीढी हैं । (पापोंका नाश करके और पुण्यपुंज बनाकर प्राणियोंको स्वर्गमें पहुँचा देनेवाली हैं ।) ज्ञान और विज्ञानकी देनेवाली और मोहमद कामरूपी कमलबनकेलिये रात्रिरूपिणी हैं । ३ । हे सुरस्वामिनी ! आपके दोनों सुंदर तटोंपर हरे सघन बेंत और मध्यमें विश्वमात्रको सुख देनेवाली उज्वल धारा (ऐसी शोभित हो रही) है मानों नीले (नीलम वा हरित मणिजटित) पलंगपर सर्पराज शेषजी सोये हुए हैं । आपकी सहस्रधारा (मानों) उन (शेषजी) की सहस्र सिरोंकी पंक्ति है । ४ । हे भूपावलिमुकुटमणिवंदिते ! हे त्रैलोक्य-गामिनी (अर्थात् जीवोंके कल्याणार्थ तीन धारा होकर तीनों लोकोंमें जानेवाली) ! आपकी महिमाकी सीमा नहीं है । आपके असंख्यों रूप हैं । हे भवानी ! हे तुलसीदासके त्रासकी हरनेवाली ! हे माता ! मुझे श्रीरघुवीरजीके चरणोंमें निर्भर प्रेम दीजिये । ५ ।

टिप्पणीः—६ (क) ' जच्छ गंधर्व मुनि किन्नरोरग ' इति । यक्षगंधर्वादिसे स्वर्ग, उरग और दनुजसे पाताल और मनुजसे भूलोक वासी जनाये । रहे मुनि, ये तो तीनों लोकोंमें रहते हैं । (ख) ' मज्जहिं सुकृतपुंज जुत कामिनी ' इति । आधुनिक प्रायः सभी टीकाकारोंने इसका यह अर्थ किया है कि ' जो यक्ष गंधर्वादि स्त्रीसमेत स्नान करते हैं वे पुण्यपुंज हो जाते हैं । ' संभवतः यह अर्थ इस शंकाकी

निवृत्तिकेलिये किया गया है कि पुण्यात्माके स्नान करनेमें कुछ अधिक महत्त्व गंगाजीका प्रगट नहीं होता । वास्तवमें 'जुत कामिनी' का भाव यह है कि विवाहित मनुष्योंको स्त्रीसहित गाँठ जोड़कर स्नान करनेकी विधि है। 'सुकृतपुंज मज्जहिं' कहनेका भाव यह है कि सबको आपका स्नान पान होना दुर्लभ है। यथा 'जनु सिंघल-बासिन्ह भयेउ बिधिबस सुलभ प्रयागु।' (अ०)। जब बड़े पुण्य उदय होते हैं तब आपका स्नान और वहभी विधिपूर्वक हो पाता है। यह भाव 'सेवहिं सुकृती साधु सुचि पावहिं सब मन काम।' (अ०) सेभी पुष्ट होता है। साधारण अन्वयभी यही अर्थ देता है।

(ग) 'स्वर्ग सोपान बिज्ञान ज्ञान प्रदे' इति। 'स्वर्गसोपान' यह स्नानका फल है। यथा, 'देवनदी कहं जो जन जानि किये मनसा कुल कोटि उधारे। देखि चले झगरैं सुरनारि सुरेस बनाइ बिमान संवारैं॥ पूजा को साज बिरंचि रचैं तुलसी जो महातम जाननिहारे। ओक की नीव परी हरिलोक बिलोकत गंग तरंग तिहारे॥ (क०) यथा पद्मपुराणे उत्तराखण्डे, साक्षाद्धर्मद्रवौघं मुररिपुचरणाम्भोज पीयूषसारं दुःखस्याब्धेस्तरित्रं सुरदनुजनुतं स्वर्गसोपानमार्गम्। जो साक्षात् धर्मद्रवकी राशि है, भगवान् मुरारीके चरणकमलोंसे निकली हुई सुधाका सार है, दुःखरूपी समुद्रसे पार होनेकेलिये जहाज़ है, जिसे देवता और दानवभी प्रणाम करते हैं और जो स्वर्गलोकमें जानेकेलिये सीढी है। स्वर्गकी प्राप्ति बिना ज्ञानके नहीं होती। अतः कहा कि 'विज्ञान ज्ञानप्रद' हो। ज्ञान विना मोह नाश नहीं होता। अतः मोहादिकाभी नाश कहा। मोह, मद, मदन कई हैं और इनका परिवार तथा सेना बहुत बड़ी है। यथा 'काम क्रोध लोभादिमद प्रबल मोह कै धारि।' अतः इनको 'बन' कहा। कमल सरमें होता है। ये (मोहादि) प्राणियोंके हृदयमें रहते हैं। हृदयही सर है। यथा 'हर उर सर सरोजपद जोई। अहो भाग मैं देखब सोई।' पुनः इनको 'कमल' की उपमा देकर जनाया कि ये बड़े प्रबल है, सदा प्राणियोंके हृदयमें खिलेही रहते हैं। यथा, 'मुनि बिज्ञानधाम मन करहिं निमिष महँ छोभ।'

वैजनाथजी लिखते हैं कि "पापियोंके लिये स्वर्गसोपान हैं। आप पाप हरण कर उनको स्वर्गको चढ़ा देती हैं। सुकृती लोगोंको विज्ञानप्रदा है और विषयीके मोह, मद, काम विकारोंको हरकर ज्ञान देती हैं।"

७ 'पाथोज बन जामिनी' इति। पाला कमलको जला डालता है। फिर वह खिल नहीं सकता। संभवतः इसी विचारसे कई टीकाकरोंने 'बन' के बदले 'हिम' पाठ स्वीकार किया है। परन्तु मोह, मद मनका सर्वथा नाश तबतक नहीं होता जबतक जीव मुक्त नहीं हो जाता। यह वेदान्तका सिद्धान्त है। गोस्वामीजीकाभी यही मत है। यथा, 'मानसरोग कछुक मैं गाये। हहिं सबके लखि बिरलेन्ह पाये॥ जाने ते छीजहिं कछु पापी। नास न पावहिं जन परितापी॥ बिषय कुपथ्य पाइ अंकुरे। मुनिहु हृदय का नर बापुरे॥उ०॥ 'जाग्यो मनोभव मुयेहु मन बन सुभगता न परै कही।' (बा०) ये दब जाते हैं, अवसर पाकर फिर अंकुरित हो जाते हैं। 'हिम' सेभी मूलका नाश नहीं होता। अतएव हमारी समझमें 'बन' पाठही ठीक है। मोह मदादि कई हैं और इनका परिवार बहुत बड़ा है, इसी से 'बन' कहा। प्राचीनतम पाठभी यही है।

८ 'हरित गंभीर बानीर दुहुँ तीर बर' इति। 'सहससिसावली' और 'स्रोत' के संबंधसे यहां सहस्रधाराकेही दोनों तटों और मध्यका वर्णन सूचित कर दिया है। बेत गंगासागरपर दोनों तटोंपर है। अन्यत्र गंगोत्तरीसे लेकर कलकत्तातक कहीं ऐसा देखने सुननेमें नहीं आता है। गंगासागर संगमसे कपिल आश्रम दूर है। वहाँतक पहुँचनेकेहीलिये गंगाजी सहस्रधारा हुईं। सहस्रधारा नाम विख्यात है। महाभारत शांतिपर्व समुद्र नदि संवादसे गंगातटपर बेंत वृक्षोंका होना प्राचीन कालसे पाया जाता है।

९ 'नीलपर्यंक कृत सयन सर्पेस जनु' इति। यहाँ बानीरसंयुक्त दोनों तटोंके बीचमें विशद धाराकी शोभा उत्प्रेक्षाका विषय हैं। शेषजीका रंग बहुत उज्वल कहा गया है। यथा 'फणधर कुंदसमान स्वेत रंग कृत कुंडली बिराजा' 'श्रीरामचरणंकमाला' (लालाभगवानदीनजी

रचित)। अतः इसकी उत्प्रेक्षा विशद धारासे की गयी। घने हरे बेतोंकी छाया जो पानीमें दिखायी देती है वह नीलपर्यंक है। भाव यह है कि गंगाजीकी धाराके दोनों ओर घने बेतवृक्षोंकी हरी छाँह पड़ रही है और मध्यभाग उज्वल दिखायी पड़ रहा है। अतः ऐसी शोभा हो रही है मानों नीले पलंगपर शेषनाग शयन किये हुए हैं। शेषजीके सहस्र फन गंगाजीकी सहस्र धाराएँ हैं।

१० (क) 'अमित महिमा' का भाव कि जो मैंने महिमा कही है इतनीही न जानिये। वह तो अकथनीय है। 'अमितरूप' कथनका भाव कि यह धाराप्रवाह जो प्रत्यक्ष देख पड़ता है, यही एक रूप न जानिये। इनके अनेक रूप हैं। 'लोकत्रयगामिनी' कहकर सहज सौलभ्य और उदार जनाया।

महाभारत अनुशासन पर्वमें गंगाजीकी महिमा विस्तारसे वर्णन की गयी है। किसी सिद्ध महात्माने एक शिलोञ्छवृत्तिवाले ब्राह्मणके प्रश्नपर कहा है, "वेही देश, जनपद (प्रान्त), आश्रम और पर्वत पुण्यकी दृष्टिसे सर्वश्रेष्ठ हैं जिनके बीचसे होकर गंगाजी बहती हैं। गंगाजीका सेवन करके जीव जो उत्तम गति प्राप्त करता है वह तपस्या, ब्रह्मचर्य, यज्ञ और त्यागसे नहीं मिल सकती। जिनके शरीर गंगाजलसे भीगते हैं अथवा मरनेपर जिनकी हड्डियाँ गंगाजलमें डाली जाती हैं, वे कभी स्वर्गसे नहीं गिरते। जिस मनुष्यके संपूर्ण कार्य गंगाजलसे संपन्न होते हैं, वे मरनेपर स्वर्गवास करते हैं। मनुष्यकी हड्डी जितने वर्ष गंगाजलमें पड़ी रहती हैं उतने हज़ार वर्षोंतक वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। एक हज़ार चान्द्रायणव्रतका फलभी केवल गंगाजल पान करनेवालेके फलके बराबर नहीं हो सकता। गंगास्नानसे पाप नष्ट होते हैं। जिनका कहीं आधार नहीं, जिन्होंने धर्मकी शरण नहीं ली उनका आधार, शरण गंगा हैं। जो स्नान करने जाया करते हैं वे इंद्रादिके समान माने जाते हैं। मनुष्य गंगाजीकी शरण जानेपर शिवस्वरूप हो जाते हैं। गंगा तीरकी मृत्तिका मस्तकमें लगानेसे अज्ञानांधकार नाश होता है। दर्शन, स्पर्श, और मज्जनसे प्राणीकी सातपीढ़ी ऊपर नीचेके पितरोंका उद्धार

हो जाता है। प्राण निकलतेसमय मनही मन गंगाका स्मरण करनेसे परमगति मिलती है। प्रातःकाल स्नानसे धर्म, अर्थ, कामकी सिद्धि होती है। गंगाजी स्वर्गकी जननी है।" कदाचित् पूरा यज्ञ करनेसे मेरुगिरिके रत्नों और समुद्रके पानीकी भाप बतायी जा सके किंतु गंगाजलके गुणोंका वर्णन असम्भव है।

मार्कण्डेयजीने युधिष्ठिरसे कहा है कि, "वायुदेवताने देवलोक, भूलोक तथा अन्तरिक्षमें साढ़ेतीन करोड़ तीर्थ बतलाये हैं। गंगाको उन सबका स्वरूप माना गया है। 'तिस्रः कोट्यर्द्धकोटीश्च तीर्थानां वायुरब्रवीत्। दिवि भुव्यन्तरिक्षे च तत्सर्वं जाह्नवी स्मृता॥" (पाद्मे स्वर्ग० ४७।७) एक खरब तीस करोड़सेभी अधिक तीर्थ माघमासमें गंगाजीके भीतर आकर स्थित रहते हैं। यथा, 'दशकोटिसहस्राणि त्रिंशत्कोट्यस्तथापरे। माघमासे तु गंगायां गमिष्यन्ति नरर्षभ।' (पाद्मे० स्वर्ग० ४९।१६) पद्म पु० सृष्टिखण्डमें व्यासजीने ब्राह्मणोंसे गंगाजीकी महिमा इस प्रकार कही है कि, 'गंगाकी यात्रा करनेवालोंकी कई पीढ़ियाँ तर जाती हैं। भक्तिपूर्वक स्नान करनेवालोंकी लाख पीढ़ियाँ तर जाती हैं। संक्रान्ति, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, व्यतीपात और पुष्य नक्षत्रमें स्नानसे करोड़ पीढ़ियाँ तर जा सकती हैं। दर्शनसे पापराशि नष्ट होती है, जलके स्पर्शसे स्वर्गप्राप्ति और गोता लगानेसे मोक्षप्राप्ति होती है। स्नान करनेवाले मनुष्यके हृदयमें यथालाभसंतोष, समता, धर्ममें प्रवृत्ति आदि सद्गुण स्वभावतः उत्पन्न हो जाते हैं। गंगातटपर किया हुआ दान, यज्ञ, तप, जप आदि प्रतिदिन कोटि कोटिगुण अधिक फलप्रद है। अपने जन्मनक्षत्रके दिन गंगासंगममें स्नान करनेसे कुलका उद्धार होता है। हज़ारों चांद्रायणव्रत करनेवालेसे मनचाहा गंगाजीका जल पीनेवाला विशेष शुद्ध और श्रेष्ठ माना गया है। स्वर्ग, पृथ्वी और आकाशमें जो साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं वे सब गंगाजलमें विद्यमान् हैं। जल धर्ममय होनेसे गंगाजी 'धर्मद्रवी' नामसे विख्यात हुई हैं। गंगातीरकी मिट्टी मस्तकपर धारण करनेसे पाप नष्ट हो जाते हैं। पितरोंकी हड्डियाँ ले जाकर जो गंगामें छोड़ता है उसे पगपग अश्वमेघ यज्ञका फल प्राप्त होता है। तीरके ग्राम, पशु,

पक्षी आदि सब धन्य हैं। गंगायात्रीको सहायता देनेवालेकोभी वही फल प्राप्त हो जाता है। प० पु० सृष्टि० ६० में गंगाकी महिमा विस्तारसे वर्णित है। पाठक वहाँ देख सकते हैं।

(ख) 'भूपावली मुकुटमनि बंदिते' इति। बड़े बड़े राजा, महाराजा, चक्रवर्ती राजा और उनकेभी जो शिरोमणि हैं उन सबोंसे आप वंदित हैं। किसी किसीने ऐसाभी अर्थ किया है कि 'आप समूह राजाओंके मुकुटोंके मणियोंसे वंदित है। समस्त राजे लोग आपके चरणोंपर सिर रखकर प्रणाम करते हैं जिससे उनके मुकुटमणि आपके चरणोंका स्पर्श करते हैं।' चरखारी टीकाकारने 'समूह राजा-ओंमें जो मुकुटरूप हैं उनकेभी मणिरूप जो इंद्रादि हैं उनसे वंदित' ऐसा अर्थ किया है।

११ 'त्रासहरनि भवभामिनी' इति। शंकरजी भवभयहरण हैं। यथा 'भूत बैताल सखा भव नाम दलै पलमें भवके भय गाढ़े।' (क०) आप 'भवभामिनी' है। अतः आपभी 'त्रासहरणि' हुआही चाहें। सगर पुत्रोंके त्रासको हरनेकेलियेही तो पृथ्वीपर आपका आगमन हुआ था। इस तरह स्वभावसेही त्रासहरणि हैं। 'देहि रघुबीर-पद प्रीति निर्भर' कहकर 'त्रासहरनि' विशेषण देनेका भाव कि अपने इष्टदेव श्रीरघुनाथजीकी भक्तिद्वाराही मैं अपना भवहरण चाहता हूँ, अन्य प्रकारसे नहीं। यह उपासनाकी अनन्यता है *। 'रघुबीर' के भाव पद १७ टि० ५ में देखिये।

'मातु' संबोधनका भाव कि माता बालकका हठ रखती है। जो बचा माँगता है वह माँ देती हैं। यथा 'हौं माचल लै छूटिहौं जेहि लागि अर्‍यो हौं।'

प० पु० स्वर्ग० ६१ में लिखा है कि 'भगवान् केशवही जलके रूपमें इस भूमंडलका पापसे उद्धार करते हैं। यदि वैष्णव विष्णुभक्तिकी

---

* दीनजी—'रामके दरबारतक न पहुँच सकनेका जो भय मुझे लगा हुआ है उसे मिटा दो। ऐसा प्रबंध कर दो कि मैं दरबारतक पहुँचकर विनयपत्रिका पेश कर सकूं।'

अभिलाषा रखता हो तो उसे गंगाजीके निर्मल जलका अभिषेक प्राप्त करना चाहिये। क्योंकि यह अंतःकरणको शुद्ध करनेका उत्तम साधन है। गंगा विष्णुभक्ति प्रदान करनेवाली बतायी जाती हैं। वे विष्णुस्वरूपही हैं।' यथा 'विष्णुभक्तिप्रदा देवी गङ्गा भुवि च गीयते। विष्णुरूपा हि सा गङ्गा लोकनिस्तारकारिणी। ६९।'

१२ 'लोक त्रयगामिनी', 'अमित महिमा' इति। श्रीलमगोड़ाजी लिखते हैं कि "सांख्यशास्त्रको केवल भौतिकवादका विकास मानकरही लोग यह ग़लती करते हैं कि तत्त्वोंको भगवत्‌शक्तिका विकास और केवल बाहरसे जड़ न मानकर बिलकुल जड़ मान लेते हैं। बात यह है कि प्रत्येक शास्त्र अपने अपने दृष्टिकोणसे विचार करता है और छओ शास्त्र मिलकर कुछ कुछ वास्तविकताको पहुँच पाते हैं। प्रकाश (अग्नि) तत्त्वके ठंढे होनेपरही तो जलतत्त्व बना, त्रिदेव निर्णयमें उसी तेजराशिको आदित्य या विष्णु कहा है। फिर जल बनकर नीचेको बहता हुआ प्रवाह विष्णु भगवान्‌का चरणोदक और बहनेके कारण गंगारूप मानना ठीकही है। मसनवी शरीफ़में मौलाना रूमने अग्नितत्त्वकेलिये साफ़ लिखा है कि बाहरसेही वह जड़ है पर वास्तवमें वह जड़ नहीं है। इसीलिये अग्निने भगवद्भक्तको (आस्तिक मुसलमानको) नहीं जलाया।

" अब तो Science of Meta Biology कमसे कम यह मानने लगी है कि एक आत्मा और दूसरी प्रकृतिकी धाराएँ साथ साथ बहती हैं और जहाँ जहाँ ग्रंथियाँ (Vortex) पड़ती हैं वहीं वहीं चैतन्यविशेषका दिग्दर्शन होता है। यह तो ठीकही है कि जब तीन धाराएँ हैं तो आकाशकी धारामें आकाश प्रधान होगा। महिम्नस्तोत्रमें सितारोंको उसका फेन कहा है। मर्त्यलोकमें जल और पृथ्वीतत्त्वका बाहुल्य है और संभव है कि पातालमें औरभी गाढ़ापन हो। त्रिदेव निर्णयमेंभी बहुधा नदियोंका राजाओंद्वारा नहरोंके रूपमें निकाला जाना मानाही है। अंतर केवल आत्मिकशक्ति और तपके बलके मानने न माननेका पड़ता है। यह विचारका अंतर अबभी हमारे सामने रहा है। टैगोरजी

मानवी गुणदोषका प्रभाव भूचाल इत्यादिपर नहीं मानते हैं और महात्मा गांधीजी मानते हैं। बात तो साफ़ यह है कि यदि आत्मिक शक्ति है और भौतिक तत्त्व इसके आवरण हैं तो हमारे महात्माओं ऋषियोंका कथन व्यर्थ नहीं है।"

१९ राग-रामकली (बिलावल प्र०, ज०)

हरति[1] सकल[2] पाप त्रिबिध[3] ताप सुमिरत सुरसरित।
बिलसति[4] महि कल्पबेलि मुद मनोरथ फरित॥ १॥
सोहत[5] ससि धवल धार सुधा सलिल भरित।
बिमल तर तरंग लसत रघुबर के[6] से चरित॥ २॥
तो बिनु जगदंब गंग कलिजुग का करित।
घोर भव अपार सिंधु तुलसी कैसे[7] तरित॥ ३॥

शब्दार्थ—बिलसना = विशेष रूपसे शोभा देना, बहुत भला जान पड़ना। यथा 'बिलसत बेतस बनज बिकासे।' यह अकर्मक क्रिया है। इसका प्रयोग प्रांतिक है और केवल पद्यमें होता है। कल्पबेलि= कल्पलता यह कल्पवृक्षका पर्याय है। गंगाजीके संबंधसे स्त्रीलिंग शब्द प्रयुक्त किया गया है। फरित=फली हुई। सलिल=जल। भरित=भरी हुई 'करित', 'तरित' ठेठ हिंदी बोली है। वह उत्तम पुरुष 'हम' के साथ प्रायः बोली जाती है।

पद्यार्थ-देवनदी गंगाजी स्मरण करतेही सब पापों और तीनों तापोंको हर लेती हैं। (इस) पृथ्वीपर मानसी आनंद और मनोरथ (रूपी फल) फली हुई कल्पलता (सी) सुशोभित है। (जैसे

१ हरति—भा०, बे०, इ०, मु०, ७४, दी०। हरत-ज०। हरण-रा०। हरणि-डु०, वै०। हरनि-भ०, वि०। २-सकल ५१, ७४, आ०, में नहीं है। ३ त्रिबिध-रा०। ४ बिलसती—रा०, इ०, आ०। बिलसत-प्रायः औरोंमें। ५ सोहति—डु०, बै०। ६ के से—रा०, भा०, इ०, आ०। ७४ में 'के' नहीं है। बे०, प्र० में 'से' नहीं है। ७ कैसे—रा०, भा०, बे०, डु०, वै०, । किमि—भ०, ७४, दी०, वि०। किम-५१, मु०,

स्वर्गमें कल्पवृक्ष अर्थ, धर्म और काम मनमें स्मरण करतेही देता है वैसेही इस पृथ्वीपर गंगाजी समस्त वांछित पदार्थोंको देती हैं। विशेषता यह है कि वह (कल्पवृक्ष) मानसी आनंद नहीं दे सकता और गंगारूपी कल्पलता उसेभी देती है और बुरे मनोरथों, बुरे संकल्पोंको तो वह पहलेही हर लेती है जैसा कि प्रथम चरणमें कह आये हैं)। १। अमृत (सदृश गुणकारी मधुर) जलसे भरी हुई, चन्द्रमासमान स्वच्छ उज्वल धारा शोभा दे रही है। अत्यंत निर्मल तरंगें श्रीरघुनाथजीके चरितके समान सोह रही हैं। २। हे जगज्जननी गंगे! तेरे बिना इस कलियुगमें हम क्या करते? (हमारा कुछ बस न चलता। सदा पापपरायण रहते। हम भवतरणका कोई साधन तो करही नहीं सकते। आपही एकमात्र अवलंब हुई हैं।)* तुलसीदास अपार घोर भवसागर पार कैसे होता?

टिप्पणी–१ (क) 'हरति सकल पाप त्रिविध ताप' इति। पापोंकी गिनती नहीं कि कितने हैं? यथा, **'हिंसा पर अति प्रीति तिन्ह के पापहिं कवनि मिति।'** अतः 'सकल' कहकर मन, वचन, कर्म जनित समस्त पापोंको जना दिया।† (ख) 'सोहत ससि धवल धार सुधा सलिल भरित' इति। धारा चन्द्रसमान उज्वल हो पर यदि जल गुणद न हो तो वह किस कामका? अतः 'सुधा' विशेषण देकर मधुर, मनोहर और मंगलकारीभी जनाया। 'सुधा सलिल'का भाव कि देवता अमृत पाकर अमर होते हैं और

---

*कुछ लोगोंने इस प्रकारभी अर्थ किया है कि 'तेरे बिना कलियुग (न जाने) क्या कर डालता'?। पर 'करित' शब्दका प्रयोग इस अर्थका पोषक नहीं है। कलियुगमें कुछ बस नहीं चलता। कारण कि 'धरम सबै कलिकाल ग्रसे जप जोग बिराग लै जीव पराने।', 'कलि न बिराग जोग जाग तप त्याग रे।' भुशुण्डीजीका वाक्य है कि 'सुन खगेस कलि कपट हठ दंभ द्वेष पाषंड। मान मोह मारादि मद व्यापि रहे ब्रह्मण्ड।' (उ०) जन मन पापग्रस्त रहताही है। यथा 'कलि केवल मलमूल मलीना। पाप पयोनिधि जन मन मीना।' तब कैसे तरते?

† 'हरति सुमिरत' में 'द्वितीय विशेष अलंकार' है।

यह जीतेजीही प्राणियोंको देवतुल्य बना देती है। (ग) 'बिलसति' और 'सोऽहमसि' में वाचकलुप्तोपमा है। 'सुधा सलिल' में 'निरंगरूपक' है।

२ 'बिमलतर तरंग लसत' इति। 'रघुबर के से चरित' कहकर यहाँ अतिशय पावन, सुखद, प्रबल, कल्मषहारक और कामादिदोषनिवारक इत्यादि सूचित किया। यथा 'बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा। सुनत नसाहिं काम मद दंभा॥', 'कुपथ कुतर्क कुचालि कलि कपट दंभ पाखंड। दहन रामगुनग्राम जिमि इंधन अनल प्रचंड॥' 'बिमलतर' में पूर्णोपमा है।

३ 'तो बिनु कलियुग का करित' इति। मिलान कीजिये, 'भागिरथी जल पान करौं अरू नाम द्वै राम के लेत नितैहौं। मोको न लेनो न देनो कछू कलि भूलि न रावरी ओर चितैहौं। जानि कै जोर करौ परिनाम तुम्हइ पछितैहौ पै मैं न भितैहौं। ब्राह्मन ज्यों उगल्यो उरगारि हौं त्योंही तिहारे हिये न हितैहौं। गंगाजीके और रामनामके बलपर यह कलियुगको ललकार है।

प० पु० स्वर्गखंडमें नारदजीने युधिष्ठिरजीसे वसिष्ठदीलीपसम्वाद वर्णन करते हुए गंगाजीकी जो महिमा कही है, उसमें यह कहा है कि 'सत्ययुगमें सभी तीर्थ, त्रेतामें पुष्कर, द्वापरमें कुरुक्षेत्र तथा कलियुगमें गंगाही सबसे पवित्र तीर्थ मानी गयी हैं। गंगाजी नाम लेनेमात्रसे पापोंको धो देती हैं। दर्शन करनेपर कल्याण करती हैं और जल पीनेपर सात पीढ़ियोंतकको पवित्र करती हैं। यथा, 'पुनाति कीर्तिता पापं दृष्ट्वा भद्रं प्रयच्छति। अवगाढ़ा च पीता च पुनात्या सप्तमंकुलम्॥ यावदस्थि मनुष्यस्य गंगायाः स्पृशते जलम्। तावत्सपुरुषो राजन् स्वर्गलोके महीयते॥ न गंगासदृशं तीर्थं न देवः केशवात्परः। ब्राह्मण्येभ्यः परं नास्ति एवमाह पितामहः॥ यत्र गंगा महाराज स देशस्तत्तपोवनम्। सिद्धिक्षेत्रंच विज्ञेयं गंगातीर समाश्रितम्॥' (३९।८६, ८७, ८९, ९०) पु. पु. सृष्टिखण्ड ६०।७८, ११६, १२३। यथा "गंगा गङ्गेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि। मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥ पाठ्ययज्ञपरैः सर्वैर्मंत्रहोमसुरार्चनैः।

सा गतिर्न भवेज्जनतोर्गङ्गासंसेवया च या ॥ विशेषात्कलिकालेच गङ्गा मोक्षप्रदा नृणाम् । कृच्छाच्च क्षीणसत्त्वानामनन्तः पुण्यसंभवः ॥"
'जो सैकड़ों कोस दूरसेभी 'गंगा गंगा' कहता है वह सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुलोकको प्राप्त होता है ।' व्यासजी कहते हैं कि ' पाठ, यज्ञ, मंत्र, होम और देवार्चनादिसे वह गति नहीं प्राप्त हो सकती जो गंगा-सेवनसे प्राप्त होती है । ११६ ।' विशेषतः इस कलिकालमें सत्वगुणसे रहित मनुष्योंको कष्टसे छुड़ाने और मोक्ष प्रदान करनेवाली गंगाजीही है । गंगासेवनसे अनन्त पुण्यका उदय होता है । १२३ । ' तो बिनु ' में ' तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यंग्य ' है ।

४ ' तुलसी कैसे तरित ' इति । इसमें यहभी भाव है कि जो ज्ञानादि पुरुषार्थ कर सके सो भलेही करे पर मैं तो सर्वथा पुरुषार्थहीन हूँ । मेरे-लिये तो ' हरिपदकमलमकरंद ' आपही अवलम्ब हैं ।

२० राग-रामकली

ईस सीस बससि त्रिपथ लससि नभ पाताल धरनि ।
मुनि सुर नर नाग सिद्ध सुजन मंगल करनि ॥ १ ॥
देखत दुख दोष दुरित दाह दारिद दरनि ।
सगरसुवन[1] साँसति समनि[2] जलनिधि जल भरनि ॥ २ ॥
महिमा की अवधि करसि[3] बहु बिधि हरि हरनि ।
तुलसी करु बानि बिमल बिमल बारि बरनि ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—दाह=संताप, जियकी जरनि । दरनि=दलनि । साँसति= क्लेश; दंड । यथा ' साँसति करि पुनि करहिं पसाऊ ' (बा०) वस्तुतः यह शब्द ' साँस ' + ' त ' (प्रत्यय) से बना है । साँसत=दम घुटनेकासा कष्ट अर्थात् बहुत अधिक कष्ट । यथा ' तब तात न मातु न स्वामी सखा सुत बंधु बिसाल बिपत्ति बटैया । साँसति घोर पुकारत आरत कौन सुनै बहु और डटैया ॥ ' (क) । साँसति=शापसे वा मुक्तिके क्रोधभरे तेजसे भस्म होनेके कारण यमयातनाका कष्ट जो

१ सुअन–रा०, ज०, ह०, डु०, । सुवन–प्रायः औरोंमें । २ समन–७४ । ३ करनि–ज० ।

सगरपुत्र सह रहे थे। नरकका दुःख। (हु, वै०)। बरनि=वर्णके समान; (के) रंगकी। हरनि = हरोंको (महादेवोंको)। वर्ण=रंग, रूप, प्रकार।

पद्यार्थ—(हे गंगे !) तुम शिवजीके सिरपर बसती हो। (तात्पर्य कि आपकी अनंत अपार महिमा है। इसीसे आपको शिवजी सिरपर सदा धारण किये रहते हैं।) तुम आकाश, पाताल और पृथ्वी तीनों मार्गोंमें सुशोभित हो रही हो। तुम मुनि, सुर, नर, नाग, सिद्ध और सज्जनोंका मंगल करनेवाली हो। १। दर्शन करतेही दुःख, दोष, पाप, संताप और दरिद्रताको दल डालनेवाली, सगरपुत्रोंकी साँसतिको मिटा देनेवाली (कपिलदेव-जीके क्रोधाग्निके तेजसे भस्म हुए सगरपुत्रोंको अकाल मृत्यु प्राप्तिके घोर परिणामसे वा यमसाँसतिसे बचाकर उनको सद्गति देनेवाली) और समुद्रको जलसे (परिपूर्ण) भर देनेवाली तुम हो। २। तुम अगणित ब्रह्मा, विष्णु और महेशोंकी महिमाकी अवधि बनाती हो। मुझ तुलसीदासजीकी वाणी अपने निर्मल जलके समान निर्मल कर दीजिये। ३।

टिप्पणी—१ इस पदमें गंगाजीका नाम न देकर केवल उनके गुण-मात्रसे उनका परिचय कराया है। यह 'प्रथम पर्यायोक्ति अलंकार' है। 'ईससीस', 'त्रिपथ लससि', 'मंगलकरनि' और 'सगरसुवन साँसति' के भाव पूर्व पद १७, १८ में आ चुके हैं।

२ 'जलनिधि जल भरनि' इति। 'समुद्रको जलसे भर देनेवाली' इस कथनसे सूचित हुआ कि समुद्र सूख गया था, उसको भरा। समुद्र कब सूखा ? इसकी कथा महाभारत वनपर्वमें वृत्रासुरके वध और काल-केयनामक दैत्यदलके अत्याचारके प्रसंगमें आयी है जो पद १७ टि० १ पृष्ठ ८१ में आ चुकी है। महर्षि अगस्त्यजीने यह कहते हुए कि मैं संसारके हितकेलिये समुद्रका पान करता हूँ। बातकी बातमें समुद्रको जलहीन कर दिया। इंद्रादिने तब सब दैत्योंका वध करके पुनः प्रार्थना की कि अब इसको पिये हुए जलसे पुनः भर दीजिये। अगस्त्यजी बोले 'वह जल तो पच गया, तुम कोई और उपाय सोचो।' देवगण उदास होकर ब्रह्माजीके पास गये। ब्रह्माने कहा 'देवगण ! तुम अपने अपने स्थानोंको

जाओ। आजसे बहुत समय बाद राजा भगीरथ अपने पुरखाओंके उद्धारका प्रयत्न करेगा, उससे समुद्र फिर जलसे भर जायगा। विशेष पद १२ और पद १७ में देखिये। ' सगर साँसति समनि ' कहकर तब ' जलनिधि जलभरनि ' कहनेसे सूचित हुआ कि गंगाजी सगर पुत्रोंके उद्धारकेलियेही लायी गयी थीं और यही काम उन्होंने प्रथम किया। दूसरा देवकार्य यहभी साथही साथ हो गया कि अगस्त्यद्वारा जो समुद्र सुखा दिया गया था वहभी पुनः भर गया।

३ ' महिमा की अवधि करसि बहु बिधि ' इति। इसका अर्थ भिन्न भिन्न प्रकारसे लोगोंने किया है। पं० रामवल्लभाशरणजी ' बहु ' का अर्थ ' बहु प्रकारसे (महिमाकी अवधि) ' करते हैं। कुछ लोग ' बिधि हरिहरको बहुत महिमाकी अवधि बनाती हो ' ऐसा अर्थ करते हैं पर दासकी समझमें ' हरनि ' बहुवचनवाचक है। अनेक ब्रह्मांड हैं, प्रत्येकमें त्रिदेव और गंगा हैं, इस भावसे ' बहु ' ' बिधि हरि हरनि ' का विशेषण है।

पं० रामकुमारजी अर्थ करते हैं कि ' महिमाकी अवधि हो और बिधि हरि हरको करती हो। ' जिसका आशय यह जान पड़ता है कि "स्वयं महिमाकी अवधि हो और त्रिदेवकोभी महिमाकी अवधि बनाती हो"। अथवा यह कि "अनेक ब्रह्मा; विष्णु और महेश बनाती हो। ऐसी आप महिमाकी अवधि है। ऐसी महिमा दूसरेकी नहीं है।" यह अर्थ चरखारीवाली टीकामेंभी है। कवितावलीके "बारि तिहारो निहारि मुरारि भयें परसें पद पाप लहौंगो। ईस ह्वै सीस धरौं पै डरौं प्रभुकी समता बड़ दोष दहौंगो॥ इस पदसे ऐसा भाव ध्वनित होता है। स्नान समय सिरपर चढ़ानेसे शिवरूप, पदस्पर्शसे विष्णुरूप और पात्रमें भरकर ले चलनेपर ब्रह्मरूप होनेका भाव कहा गया।

कुछ ऐसाही प्रयोग बालकांडमें 'महिमा अवधि' का हुआ है। वहाँ गोस्वामीजी महाराज श्रीदशरथजी और महारानी श्रीकौशल्या अंबाजीके विषयमें लिखते हैं, " जिन्हहिं बिरचि बड़ भयउ बिधाता। महिमा

अवधि रामपितु माता ॥ " श्रीदशरथ कौशल्याजीको उत्पन्न करनेसे ब्रह्माजी महिमाकी अवधि हुए। प्रतिष्ठित हुए। वैसेही यहाँ बिधि हर हरोंकी अतिशय महिमाकी कारण गंगाजीको कह रहे हैं। गंगाजी स्वयं तो महिमाकी अवधि हैही। यथा 'अमित महिमा अमितरूप' (१९) पर ब्रह्माजीने आपको कमंडलमें रक्खा जिससे ब्रह्मकमंडली नाम पड़नेसे ब्रह्माकी महिमा बढ़ी। हरिपदनखनिर्गता होनेसे, विष्णुपदी कहलानेसे, विष्णुमहिमा अतिशय प्रसिद्ध हुई। 'जटाशंकरी,' 'त्रिपुरारीसिर-धामिनी' इत्यादि नामोंसे शिवमहिमा पराकाष्ठाको पहुँची। तात्पर्य कि गंगाजीके संबंधसे त्रिदेवकी महिमा जगत्में अतिशय फैली। आपको देखकर इनकी महिमाका स्मरण हो आता है कि धन्य हैं वे जिनके चरणोंसे निकलीं, जिनके कमंडलमें रहीं वे धन्य हैं और जिनके सिरपर सदा विराजमान् हैं वे शंकरजीभी धन्य हैं। संभवतः इसी भावसे पद्माकरजीने कहा है कि 'पुछतो को नंगे को जो न गंगे सीस धरतो।' यदि दिगंबर अवधूत वेषधारी शिवजी आपको अपने सिरपर न धारण करते तो उनको जानताही कौन ? कोईभी तो नहीं ?

४ 'करु बानि बिमल बिमल बारि बरनि' इति। 'बिमल बारि बरनि' को संबोधन मानकरभी अर्थ किया जा सकता है। 'हे स्वच्छ वर्णवाली ! हे निर्मल जलवाली ! मेरी वाणी निर्मल कर दीजिये।' 'बिमल बारि' और 'बिमल वर्ण' साभिप्राय संज्ञाएँ हैं। विमल वर्णवालीही दूसरेकी वाणीको निर्मल करनेमें समर्थ हो सकती है। इस प्रकार यहाँ 'परिकरांकुर अलंकार' है। (वीर)

श्रीगङ्गास्तुति—श्रीगंगाजीकी स्तुति चार पदोंमें (पद १७, १८, १९ और २० में) की गयीं। चार पदोंमें इनकी स्तुति करनेका भाव कदाचित् यह हो सकता है कि 'त्रिपथगा' होनेसे अर्थात् स्वर्ग, पृथ्वी और पातालमें धारा प्रवाहरूप बहनेसे तीन पद्योंमें स्तुति की और एक स्तुति उनके दूसरे रूप अर्थात् भवभामिनी रूपकी की। भवभामिनी (शिवपत्नी) रूपवाली स्तुति चारोंमें सबसे बड़ी स्तुति है।

दे० द० शर्माजीका मत है कि गोस्वामीजीने गंगाजीसे विनय करते

हुए फलचतुष्टयकी कामना स्पष्ट की है। फल चार है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। विनयके गंगास्तुतिवाले चारों पदोंमेंसे प्रथम पद 'काम' का, द्वितीय 'धर्म' का, तृतीय 'मोक्ष' का और चतुर्थ 'अर्थ' का बोधक है।

तुलसीदासजीकी वन्दनाका क्रम लौकिक और आध्यात्मिक दोनों दृष्टियोंसे बहुतही मौंजूं (उपयुक्त) और अभिप्रायपूर्ण है।

शंकरजीकी वन्दनाके बाद भवानीकी वन्दना, गंगाजीकी वन्दना सम्प्रदाय परम्परा एवं व्यवहारकी दृष्टिसे उचितही है। यही कारण है कि यमुना आदि किसीभी पुण्यसलिलाकी वन्दनाको भवानीकी वन्दनाके-साथ सम्बद्ध नहीं किया है। तुलसीदासजी काशीवास कर रहे थे। भवानीशंकर और गंगाकी अमित कृपाके पात्र बनकर अपने इष्टसे संयुक्त होना चाहते थे। गंगा हरिपदद्रव हैं। उनमें फलचतुष्टय प्रदान करनेकी पूर्ण क्षमता है। तुलसीदासजी समझते हैं कि गंगा माता हैं। यह पुत्रके अपराधोंपर ध्यान न देकर फलचतुष्टय प्रदान करेंगी, जिनकी प्राप्ति होनेसे रघुपतिचरणरति सहज प्राप्त हो जायगी। इसीलिये वे कहते हैं कि जब जब मैं पैदा होउँ तो माँ तेरे किनारे पर बास करूँ और हरिभक्ति करूँ। वे शायद यहभी सोचते थे कि एक जन्ममें सिद्धि मिलना कठिन है। गंगा स्तुतिमें तुलसीदासजीके मध्यजीवनकी अस्पष्ट झाँकी है, जो लक्षणसे प्रतिभासित है।

२१ [२४] राग-बिलावल

जमुना ज्यों ज्यों लागी बाढ़न।
त्यों त्यों सुकृत सुभट कलिभूपहिं निदरि लगे बाँह[1] काढ़न ॥१॥
ज्यों ज्यों जलु मलीन त्यों त्यों जमगन मुख मलीन लहैं[2] आढ़न।
तुलसिदास जगदघ जवास ज्यों अनघ मेघ[3] (आगि) लागे डाढ़न ॥२॥

१ बाँह—६६, रा०, भा०, बे०, ६९। १५ में 'बाह लागे' का 'लगे भुज' बनाया है। बहि—ह०, ७४, भ०, दी०, वि०। बहु—५१ मु०, वै०। भुज—डु०। मात्रा बढ़ जाती है। संभवतः इसीसे लोगोंने पाठ बदला है। २ लहैं—६६, रा०, भा०, बे०, ६९, प्र०, ज०, ह०, दी०। लह—मु०, ५१, ७४। है—डु०, वि०। है—वै०। ३ आगि—६६, भा०, बे०, ह०, ५१, ७४। मेघ—ज०, आ० (दी०)। आप—च०, दी०।

शब्दार्थ—जमुना=यमुना नदी। यह प्रसिद्ध नदी हिमालयके यमनोत्तरी स्थानसे निकलकर प्रयागमें गंगामें मिलती हैं। यह ८६० मील लम्बी है। यहभी बहुत पवित्र मानी जाती है। पुराणानुसार यह यमकी बहिन यमी है जो सूर्यके वीर्यसे संज्ञाके गर्भसे उत्पन्न हुई थी और जो संज्ञाको सूर्यद्वारा मिले हुए शापके कारण पीछेसे नदी हो गयी थी। यमने कार्तिक शुक्ला २ के दिन अपनी बहिनके यहाँ भोजन किया और उसके प्रसादमें यह वरदान दिया कि जो इस दिन तुम्हारे जलमें स्नान करेगा वह यमदंडसे मुक्त हो जायगा। इसीको भैयाद्वीज कहते हैं। उस दिन बहिनके यहाँ भोजन करना और उसको कुछ देना मंगलकारक और आयुवर्द्धक माना जाता है। यथा, 'जमगन मुंह मसि जग जमुनासी।' (बा०) सुभट=उत्तम योधा। निदरि=निरादर करके। काढ़ना=(सं० कर्षण। प्रा० कड्ढन।) भीतरसे बाहर निकाल लाना। मलीन = उदास, बदरंग, कालिमादार। लहैं=पाते हैं। आढ़ (आड़)= ओट, ठिकाना, शरण। जगदघ=(जगत्+अघ) जवास। (सं० यवासक) एक कटील क्षुप अर्थात् छोटी डालियोंवाला पौधा। इसकी पत्तियाँ करौंदेकी पत्तियोंके समान छोटी होती हैं। यह नदियोंके किनारे बलुई भूमिमें आपसे आप उगता है। वर्षामें इसकी पत्तियाँ मुख्यतः पुष्य नक्षत्रमें और पावसकी वर्षासे गिर जाती हैं और आश्विनतक यह बिना पत्तियोंके नंगाही रहता है। वर्षाके बीत जानेपर यह फलता फूलता है। यथा '**अरक जवास पात बिनु भयऊ**', '**जिमि जवास परे पावस पानी।**' अनघ=(अन्+अघ) वह जो पाप न हो। पुण्य। डाहन = (सं० दग्ध। प्रा० डड्ढ + ना प्रत्यय) जलने, भस्महोने। लागे=लगे।

पद्यार्थ—(वर्षाऋतुमें) ज्यों ज्यों यमुनाजी बढ़ने लगीं, त्यों त्यों सुकृतरूपी सुभट कलि राजाको (बेइज़्ज़तीके साथ अर्थात् तिरस्कारपूर्वक) बाहु पकड़कर निकाल बाहर करने लगे।१। जैसे जैसे जल गँदला मटमैला होता है, तैसे तैसे यमदूतोंके मुँह मलिन होते हैं। उनको कहीं शरण नहीं मिलती। तुलसीदासजी कहते हैं कि पुण्यरूपी मेघ (वा अग्नि) जगत्-मात्रके पापोंको यवासेकी तरह जलाने लगे।२।

नोट—यह छठा फाटक है। इस द्वारपर यमुनाजी हैं। अतः अब उनका गुणगान करते हैं।

टिप्पणी—१ ' सुकृत सुभट कलि भूपहि निदरी ' इति। यहाँ वर्षामें यमुनाजलका बढ़ना सुकृतका बढ़ना है। सुकृतकी वृद्धिसे पापका क्षय होता है। यही कलि राजाका निकाल बाहर किया जाना है। तात्पर्य कि जहाँतक यमुनाका जल फैलता जाता है वहाँ वहाँ उसके दर्शन, स्पर्श, मज्जन और पानसे सुकृत उदय होते एवं बढ़ते जाते हैं और पापोंका नाश होता है। यज्ञ, योग, जप, तप, शम, यम, नियम, दया, क्षमा, संतोष, करुणा, दान, धर्म इत्यादि सुकृत हैं यही सुभट है। यहां ' परंपरित रूपकालंकार ' है। सुकृतको राजा मानें तो सुकृत सुभटका अर्थ होगा ' सुकृतरूपी राजाके सुभट। ' प० पु० स्वर्गखण्डमें युधिष्ठिरजीके प्रश्न करनेपर मार्कण्डेयजीने यमुनाजीका माहात्म्य यों कहा है कि ' जिस हिमालयसे गंगा प्रकट हुई उसीसे यमुनाकाभी आगमन हुआ है। सहस्रों योजन दूरसेभी नामोच्चारण करनेपर वे पापोंका नाश कर देती हैं। यमुनामें नहाने, जल पीने और उनके नामका कीर्तन करनेसे मनुष्य पुण्यका भागी होकर कल्याणका दर्शन करता है। गंगा और यमुना दोनोंही समान फल देनेवाली मानी गयी हैं। केवल श्रेष्ठताके कारण गंगा सर्वत्र पूजित होती हैं। '

२ ' निदरि लगे बाँह काढ़न ' इति। हाथ पकड़कर निकाल बाहर करना यह स्वयंही निरादरसूचक है। निकालनेका भाव यह है कि चलो, अब यहाँ हमारा दखल हो गया है। तुम्हारेलिये जगह नहीं है। यहाँ अब तुम्हारा काम नहीं है। ' लगे काढ़न ' में प्रश्न होता है कि 'कहाँसे काढ़ने लगे ?' वीरकविजीके और दीनजीके मतानुसार 'संसाररूपी राज्यसे ' निकालने लगे। इसकी पुष्टि ' जगदघ जवास ' से होती है। श्रीवैजनाथजीके मतानुसार ' धर्मवन्तों पुण्यात्माओंके हृदयरूपी राज्यसे जहाँ पूर्व अधर्म वा कलिका राज्य वा शासन हो रहा था ' वहाँसे निकालने लगे।

३ ' ज्यों ज्यों जल मलीन ' इति। भाव कि जलमें जो वर्षाके

कारण मलिनता दिख पड़ती है इसे जलकी मलिनता न समझो। यह यमगणोंके मुखोंको मलिन अर्थात् उनका मुँह काला करनेकेलिये स्याही समझो। जितनी अधिक मलिनता जलमें दीखे उतनाही अधिक समझो कि यमगणोंके मुखमें कालिख पुती है। सारी (जलकी) मलिनता इसी काममें खर्च होनेकेलिये होती है। इसीसे शरदऋतुमें जल निर्मल हो जाता है। तात्पर्य कि यमुनाजीके दर्शनादिसे यमसाँसतिका भय नहीं रह जाता। यमुनाजीके कारण यमगणोंका कुछभी वश वा अधिकार पापीपर न चलना यही उनके मुखोंपर कालिमाका लगना है। जल मलीन होनेसे यमगणोंके मुख मलिन होते हैं। इससे यह न समझ बैठना कि यमुनाके जलमें 'निर्मलता' दूषण थी और 'मलिनता' भूषण है। भाव यह है कि ग्रीष्म आदिमें जब जल निर्मल रहता है तब कम लोगोंको उसके दर्शन होते हैं और जब वर्षामें वही जल दूरतक फैलता है तब बहुत दूरतकके प्राणियोंका हित होता है। यमगणोंका मुख तो पूर्वभी मलिन रहता था पर अब और अधिक मलिन होता है। क्योंकि अधिकार घटता जाता है।

४ 'अघ जवास अनघ आगि लागे डाढन' इति। यही पाठ प्राचीनतम है और भागवतादि प्राचीन पोथियोंमेंभी है। पावसकी वर्षासे मुख्यतः पुष्यनक्षत्रमें जवासेकी पत्तियाँ गिर जाती हैं ऐसा शब्दार्थमें लिखा गया है। संभवतः इसी कारण कुछ लोगोंने प्राचीन पाठ 'आगि' के स्थानपर 'आप' (च०, दी०) और कुछने 'मेघ' (ज०, आ०) आदि पाठ कर लिये हैं। वर्षासे यवासा जल नहीं जाता। वह शरद्में फिर हराभरा हो जाता है। संभव है कि इसी भावसे 'आगि' की उपमा दी गयी हो। वीरकविजी लिखते हैं कि "अनघतामें अग्निका आरोपण इसलिये किया गया कि वर्षाजलका स्पर्श होतेही यवासाके वृक्ष जल जाते हैं। यहाँ समअभेद रूपक है।" प्रायः आगका जला हुआ पौधा फिर हरा नहीं हो पाता। कदाचित् इसीसे पुण्यको आगकी उपमा देकर पापका सर्वथा नाश दिखाया गया हो। श्रद्धेय पं० देवदत्तशास्त्रीजी 'मेघ' को उत्तम पाठ कहते हैं। उनका कहना

है कि १ पाठशुद्धिकेलिये गोस्वामीजीद्वारा प्रयुक्त क्रियापदोंकी ओर ध्यान देना चाहिये। 'लागे' पदसे यह ध्वनि स्पष्ट निकलती है कि यह बहुवचनका प्रयोग है। मेघ शब्दका प्रयोग प्रायः बहु वचनमेंही किया जाता है और आग शब्दका प्रयोग एकवचनमेंही किया जाता है। यदि यहाँ 'आगि' पाठ होता तो 'लागे' न होकर 'लाग' पद होता। २ कालपरभी ध्यान देना चाहिये। लागे क्रिया कार्य-समाप्तिका नहीं वरन् कार्य प्रारंभिका है। इससे यह कदापि नहीं व्यंजित होता कि जलाकर भस्मही कर डाला, अपितु 'जलाने लगे' अर्थ स्पष्ट है। ३ वर्षासे यवासा जलता नहीं। वह शरद्‌में फिर हराभरा हो जाता है। संभव है, इसी भावसे आगिकी उपमा दी गयी हो। यह तर्क या युक्ति हमारी दृष्टिमें संगति नहीं रखती। हमारा घर यमुनातटपरही है। कछारोंमें यवासोंका जंगल है। प्रयोजनवश किसानोंसे आग लगाये हुए यवासे कई बार देखे गये कि वे पुनः अंकुरित और हरित हो उठे। गांडर (खस) भी जलानेसे खूब पनपता है। हराभरा होता है। पहिलेसेभी कहीं अधिक। इसलिये यह कहना कि अग्निसे जला हुआ पौधा फिर हराभरा नहीं होता। प्रत्यक्ष देखे हुए प्रमाणोंसे युक्तियुक्त नहीं प्रतीत होता। ४ लेकिन यहाँ तो तर्कका स्थानही नहीं। 'डाढ़न लागे' क्रियासे यह कदापि अर्थ नहीं निकलता कि जला डाले, बल्कि जलाने लगे। अब इस संभावनामें प्रत्यवायकीभी संभावना तो की जा सकती है। किंचित् कालकीभी (विलंब) अपेक्षा की जा सकती है।

तुलसीदासजीकी उपमाएँ सदैव साधर्म्य और तादात्म्य संबंधसे सुसज्जित रहती हैं। जब उन्होंने जगदघको जवास बताया तो अनघको मेघ अवश्यही बतायेंगे। जवास और आगका तो कोई संबंध नहीं, संगति नहीं। जवास और मेघकी संगति गोस्वामीजीने 'अर्क जवास पात बिनु भयऊ' कहकर पावसबर्णनमें बैठायी है। तुलसीदास जैसे सार्वभौम, परिचयचारुतासम्पन्न, महाकवि जवासा और अग्निका साम्य या साधर्म्य कैसे जोड़ सकते हैं? तुलसीदासजी पूर्ण भुक्तभोगी थे। उन्हें अणु परमाणु सभीका ज्ञान था। फिर भला जवासा जो उनकी जन्मभूमि

(राजापुर) में यमुनाके दोनों किनारोंपर उत्पन्न होनेवाला पौधा है उसके विषयमें वे असंगत परिचय कैसे दे सकते हैं ? इन दलीलोंके आधारपर हमारी रायमें तो ' मेघ ' शब्दही उपयुक्त जँचता है।

श्रीलमगोड़ाजी ' पिण्ड सो ब्रह्मांड ' के अनुसार गंगा और यमुना, इंगला और पिंगला नाड़ियोंके प्राणप्रवाहकी द्योतक हैं और सुष्मनाके साथ मिलकर वहीं त्रिकुटीका संगम बनाती हैं। बहिरंगरूपसे गंगामें सत्वगुणकी प्रधानता है और यमुनामें रजोगुणकी। यदि दोनों नदियोंका इतिहास लिखा जाय तो यह स्पष्ट हो जायगा। इसीसे उत्तरायण मार्गमें गंगाका माहात्म्य है और दक्षिणायणमें यमुनाका। यमुनाजी रवितनया और भगवान् यमराजकी बहिन मानी गयी हैं। फ़ारसी कवियोंनेभी प्रशंसा की है कि 'आबश हमां कौकबे मुज़ाब अस्त। सैयारये मरकज़े तुराब अस्त॥' उसका जल मानों पिघला हुआ सितारा है और वह सैयारा नक्षत्र है जो पृथ्वीके धुरीपर घूमता है।

फ़तेहपुर ज़िलेके उत्तर गंगाजी हैं (भृगुचौरा यही है।) और दक्षिणकी ओर यमुनाजी। यहाँ गंगाकिनारेका सत्वगुण प्रधान और यमुना तटका रजोगुण प्रधान जीवन इतना स्पष्ट है कि प्रत्यक्षको प्रमाणकी आवश्यकता नहीं रहती।

विचारणीय विषय—१ पं० देवदत्तजी शास्त्री लिखते हैं कि किम्वदन्ती प्रसिद्ध है और लिखितभी है कि गोस्वामीजी अपनी युवती भार्याके वियोगको न सहकर वर्षाऋतुमें बढ़ी हुई यमुनाजीको तैरकर रातोंरात ससुराल पहुँचे और वहाँ सती भार्यासे उपदिष्ट होकर विरक्त बने। यह पद इसी घटनाओंको अभिमुख करके अपनी अज्ञता, धृष्टता स्वीकार करते हुए गोस्वामीजीने लिखा है।

तुलसीदासजीकी स्तुतिका क्रम निरा सत्य और क्रमबद्ध है। लौकिक एवं आध्यात्मिक दोनों दृष्टियोंसे शिवकी स्तुतिके बाद भवानीकी स्तुति लाज़िमी है। इसी प्रसंगपर शंकरमौलीविहारिणी गंगाको भूलना उचित नहीं था। अतः भगवती भागीरथीकी वन्दना भवानीके बादही की। इन सभी प्रारम्भिक वन्दनाओंमें हम तुलसीदासजीकी आत्मकथा आत्म-

निवेदनका आभास पाते हैं। लेकिन् बीचमें गंगास्तवनमें उन्होंने अपने मध्य जीवनकी गाथा गायी है जो मंडुकप्लुतन्याय है। यहाँ क्रम शिथिलही नहीं, भंग दीखता है। इसके बाद यमुनाजीके प्रसंगमें युवा-वृत्तिका उल्लेख है। यह मानी हुई बात है कि गोस्वामीजीका युवावस्थाके अनन्तर शेष जीवन गंगातटपरही व्यतीत हुआ। गंगा उन्हें प्रिय थीं। हरिपदद्रवित होनेसे और शंकरमौलिविहारिणी होनेसे उन्हें गंगाजीपर पूर्ण विश्वास था, भरोसा था कि मेरे आराध्य इष्टदेव राम और शिव दोनोंकी शरण यही प्राप्त करायेगी। शिवप्रिया होनेसे शिवस्तुतिके प्रसंगमें उनकी स्तुति की और उनकी गोदमें जिस अवस्थासे क्रीड़ा की उसका वर्णन किया। अतः गंगास्तुति क्रमबद्धही रही। इसके बाद पुनः जीवन-गाथाक्रमको प्रारंभ करनेकेलिये यमुनाजीका प्रसंग लेते हैं। बीचमें इसीलिये काशीकी स्तुति छोड़ देते हैं फिर यमुनाजीके बादही करते हैं। क्योंकि काशी तो मुक्तिकी खान है। इसका वर्णन तो मुक्तिप्रसंगमें तभी आयेगा जब जीवनके सभी स्थूल अध्याय समाप्त हो जायेंगे। सभी अपराध निवेदित हो जायेंगे। गंगा और यमुना दोनों पुण्यसरिताओंसे गोस्वामीजीके जन्म मरणका सम्बन्ध था। यही कारण है कि उन्होंने उक्त दोनों नदियोंका वर्णन व्यञ्जनाशक्तिसे किया है। अन्य किसीभी पुण्यसरितासे इस प्रकारका जीवनमरणसम्बन्धी प्रसंग न होनेसे उनका उल्लेख नहीं किया।

(२) विशेष रूपसे ध्यान देनेकी बात यह है कि शंकर, भवानी और गंगाजी आदिके विषयमें जो कुछ लिखा है वह विनयके रूपमेंही पाया जाता है। किंतु यमुनाजीके विषयमें यह बातही नहीं। विनय न होकर एक प्रकारका वर्णन है जिसमें कुछ रहस्य निहितसा प्रतीत होता है। ‘ यमुना ज्यों ज्यों लागी बाढ़न ’ पढ़तेही हृदयमें एक कौतूहल और जिज्ञासा जागरूक होती है कि यह कोई ऐसी घटना अवश्य है जो बढ़ी हुई यमुनाजीमें घटी। ऐसी दशामें बाबा बेनीमाधवदासजीकृत मूल गोसाईं चरितमें लिखित तथा राजापुर मण्डलमें परम्परासे कहावत-रूपमें प्रसिद्ध तुलसीदासजीका स्त्रीवियोगमें रातोंरात बढ़ी हुयी यमुना

पार करनेवाली घटना स्मृतिपटपर आकर सन्देह निवारण करती है। जिन्हें राजापुरमें स्थित यमुनाजीके कगारपर बने हुए तुलसीदासजीके घर (अब मन्दिर) देखनेका सुयोग प्राप्त हुआ है उन्हें विनयका यह पद स्वतः स्वार्थ बतला देता है। तुलसीदासका यथातथ्य वर्णन प्रत्यक्ष दृश्य देखनेसे सत्य प्रतीत होता है।

धर्मशास्त्रमें लिखा हैं कि वर्षाऋतुमें उमड़ी हुई नदियोंमें स्नान न करना चाहिये। क्योंकि उसकाल वे ऋतुमती रहती हैं। इस निषेधसे प्रतीत होता है कि गोस्वामीजीने बढ़ी हुई यमुनाजीका जो महत्व लिखा है वह सर्वसाधारणकेलिये नहीं अपितु आत्मानुभूत है। नव-यौवना स्त्रीके विरहसे व्याकुल तुलसीदासजी उमड़ती हुई यमुनाजीमें जब प्रविष्ट होते हैं और तैरते हैं तब एकके बाद एक तरंगें पार करते हैं। तुलसीदासजीमें कामुकता और कामान्धता प्रचूर रूपमें थी और यह युग (कलि) धर्मका प्रभाव है। तुलसीदासजीका जन्म यमुनाजीके अंचलमें हुआ था और वे अवतारी महापुरुष थे। यमुनाजी प्रकृति माता थीं। पुत्र (तुलसीदास) को विषयासक्त होकर तैरते हुए देखकर तो उन्हें पुत्रपर स्नेह और कलिपर क्रोध उत्पन्न हुआ। वह उर्मियोंद्वारा क्रमशः बढ़कर तुलसीदासजीको पार लगाने लगीं और कलिजन्म कामुक वृत्तियोंका प्रक्षालनभी करने लगीं।

हरएक समाजकी अपने समुदायकी संख्या बढ़ानेकी स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। वेदोंमेंभी लिखा है कि ‘ गोत्रान्नो वर्द्धन्ताम् ’। किसी नारकीय नर या प्राणीको प्राप्त कर यमपुर ले जानेमें यमदूतोंको विशेष आनन्द मिलता है। अखिल शास्त्रनिष्णात् अवतारी महापुरुष तुलसी-दासजीकी उस कामुक पतितावस्थाको देखकर यमगण भविष्यकेलिये मिलनेवाले एक अच्छे नारकीयके वृत्तको देखकर प्रसन्न होते हैं, यह नियम हैं। जो जितना उच्च होता है कदाचित् वह भ्रष्ट हुआ तो उतनाही पतित बनता है। माँ यमुना यमपाश छुड़ानेमें प्रसिद्ध है। उन्होंने देखा कि पुत्र विज्ञ होकरभी कलिके फंदेमें पड़कर नारकीय बनने जा रहा है। तुरन्त इस चिन्तासे उसका सारा बदन मलिन पड़ गया।

यमुनाजीको मलीन और चिन्ताग्रस्त देखकर यमदूतोंके चेहरे फीके पड़ गये कि अब यमुनाजी इसके उद्धारकेलिये कुछ न कुछ करेंगीही। अब तो वे भयभीत हो गये। उन्हें रक्षित होनेका ठिकाना मिलना मुश्किल हो गया। उधर यमुनाजी अपनी लहरोंको तीव्र कर तुलसीदास-जीको शीघ्र पार लगाने तथा पंक धोनेमें संलग्न हो गयीं।

जल मलीन होनेका भाव यहभी है कि वेदज्ञ तुलसीदासजी कामासक्त होकर इस प्रकार नारकीय बन रहे थे कि यमुनाके अस्वस्थ होतेही उनका जलभी मलिन हो गया। 'ज्यों ज्यों' का भाव है कि जैसे आगे आगे तैरते थे वैसे वैसे क्रमशः जल मलीन होता रहा।

जलसेही मेघ बनते हैं और मेघ पानी बरसाकर जवासाको जलाते हैं। किन्तु शरद्में जवास फिर पनपता है। तुलसीदासजीके पाप जवास षड्वर्गरूपी पत्तोंसे रहित तो हो गये किन्तु समूल नष्ट नहीं हुए। फिरसे पनपनेकी आशंका थी। क्योंकि मूलरूप वासना अभी कुछ अवशेष थी जो ससुराल जानेपर धर्मपत्नीद्वारा विनष्ट होती है। पत्नीके मुखसे '**लाज न लागत आपको दौरे आयेहु साथ। धिक् धिक् ऐसे प्रेमको कहा कहौं मैं नाथ॥ अस्थिचर्ममय देह मम तामें जैसी प्रीति। तैसी जो कभी राम महुँ होती न तौ भवभीति॥**' ये वचन सुनकर ज्ञान कपाट खुल गये। पाप जवासा समूल नष्ट हो गया और उलटे पाँव अपने इष्टदेवकी पुरीको चल पड़े और वहाँ पहुँचकर अघाय साँस ली और चित्तमें स्वस्थताका अनुभव करते हुए कहा कि '**बागुर विषम तोराय मनहु भाग मृग भाग बस।**'

२२ [२८] राग भैरव*

सेइअ[१] सहित सनेह देह भरि कामधेनु कलि कासी।
समनि[२] सोक संताप पाप रुज सकल सुमंगल रासी॥ १॥

*राग भैरव—रा०, ह०, ५१। ६६ के २६ वें पदमें 'राग भैरव' है। २७ वें, २८ वेंमें रागका नाम नहीं है। इससे संभव है कि इनमेंभी वही होनेसे नाम न दिया हो। ज० में 'मारू' और भा०, बे० में 'रामकली' है। १ सेइअ—६६, रा०। सेइय—भा०, बे०, ज०। २ समन—७४, ज०। समनि—औरोंमें।

मरजादा चहुँ ओर चरन बर सेवत[3] सुरपुर बासी।
तीरथ सब सुभ अंग रोम सिवलिंग अमित अबिनासी ॥ २ ॥
अंतर अयनु अयनु भल थन[4] फल बच्छ बेद बिस्वासी।
गलकंबल बरना[5] बिभाति जनु लूम लसति सरितासी ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—देहभरि = पूर्णआयुभर, जन्मभर। देह = जीवन। यथा, 'जनम जहाँ तहाँ रावरे सों निबहै भरि देह सनेह सगाई।' तीरथ (तीर्थ) = वह पवित्र वा पुण्यस्थान जहाँ धर्मभावसे लोग यात्रा, पूजा या स्नान आदिकेलिये जाते हैं। सुभ (शुभ) = सुंदर, मंगलमय। रोम = रोएँ, देहके बाल। लिंग = शिवजीकी एक विशेष प्रकारकी मूर्ति जो प्रायः सर्वत्र शिवालयोंमें देखी जाती है, शिवमूर्ति†। अंतरअयनु = अंतर्गृही, भीतरमें पड़नेवाले स्थान, अंतरक्षेत्र। ये हर बड़े तीर्थमें होते हैं। तीर्थोंमें प्रायः दो परिक्रमाएँ होती हैं। एक बड़ी, दूसरी छोटी, जिसे अंतर्गृही परिक्रमा कहते है। इसमें उस तीर्थके भीतरके सब प्रधान प्रधान स्थलोंकी परिक्रमा हो जाती है। अयनु (अयन)=गायके थनके ऊपरका वह घटाकार भाग जिसमें दूध भरा रहता है, दूधकी थैली। थन=स्तनका वह अग्रभाग जिसे मुंहमें लगाकर बचा दूध पीता है। फल=शुभ कर्मोंके परिणाम जो संख्यामें चार माने गये हैं, अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष। यथा, 'सेवत तोहि सुलभ फल चारी।' (बा०) बिस्वासी (विश्वासिन्)=विश्वास करने,

---

३ सेवत—६६, रा०, ज०, ५१, ७४, आ०, बे०। सेवित—भा०, प्र०, ह०, १५। ४ तन—बे०। थल—वै० (यह प्रेसकी कृपा हैं। अर्थमें 'थन' है।) ५ बरुना—आ०, ह०। बरना—६६, रा०, भा०, बे०, ७४।

†लिंग प्रस्तरकाही हो सो बात नहीं। प्राचीन कालमें तो मिट्टीके पार्थिवेश्वर पूजे जाते थे। धीरे धीरे पत्थरके, फिर धातुओंके और अब काग़ज़के चित्रोंकेभी पूजे जाते हैं। गरुड़पुराणमें गंधलिंग, पुष्पमयलिंग, शर्करामय, गोमय, लवणमय, रजोमय आदि सैकड़ों द्रव्यों धातुओंसे लिंग बनानेका वर्णन है।

मानने वा निष्ठा रखनेवाला। गलकंबल=गायके गलेके नीचेका वह भाग जो लटकता रहता है। गर्दनके नीचे बहुत दूरतककी इस लटकती हुई खालको काँवर, झालर, लोरी, ललरी, लहर आदिभी कहते हैं। यह देखनेमेंभी भली लगती है और इसका सोहराना गौको बहुत प्रिय लगता है। बरना=वरणा नदी। यह एक छोटी नदी है जो काशीमें आकर गंगाजी-में आदिकेशव तीर्थके पास मिली है। काशीमें उत्तर दिशामें यह बहती है और वाराणशी क्षेत्रकी उत्तरी सीमा है। चौकाघाट श्रीभरतमिलापका प्रसिद्ध स्थान है, जहाँ लीलास्वरूप श्रीहनुमान्‌जीकी परीक्षा अँग्रेजों आदिके समक्ष हुई थी, इसीके तटपर है। लूम=पूँछ, दुम। सरितासी (सरित+असी) = असी नामकी नदी। यह एक नदी है जो काशीके दक्षिण गंगासे मिली है, पश्चिम दक्षिण दिशाओंको लिये हुए है। अब यह एक नालेके रूपमें रह गयी है। असीगंगासंगमके तीर गोस्वामीजीका साकेत यात्रा करना (शरीर छोड़ना) कहा जाता है।

पद्यार्थ—कलियुगमें कामधेनुरूप, समस्त शोक संताप पाप और रोगोंको नाश करनेवाली और समस्त सुंदर मंगलोंकी राशि काशीका जन्मभर प्रेमसहित सेवन करना चाहिये।१। चारों दिशाओंकी हद्दें (सीमाएँ) कामधेनु काशीके सुंदर चारों चरण हैं। (कामधेनु स्वर्गमें रहती है। वहाँ उसकी सेवा देवता करते हैं, यहां काशी में।) काशीपुर-वासीरूपी देवता इस (काशी कामधेनु) की सेवा करते हैं। (काशीके) सब (पुण्य) तीर्थ इसके मंगलमय अंग प्रत्यंग हैं और अमित अविनाशी शिवलिंग इसके रोम हैं।२। अंतर्गृही इस कामधेनुका सुंदर (अर्थात् खूब दूधसे परिपूर्ण) अयन है। * चारों फल इसके चारों थन हैं। वेदमें

* हु०, वै०, वीरकवि वि०, आदि कई टीकाकारोंने 'अयन' का अर्थ 'रहनेका स्थान' या 'गोशाला' किया है। वैजनाथजीने दोनों अर्थ दिये हैं परन्तु 'अयन' के बाद 'थन' को कहनेसे अयनका संबंध थनसे विशेष संगत है। अंतर्गृहीमें चार फल अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष, वैसेही अयनमें चार थन यह समानता है। सोचनेकी बात यहभी है कि जब कामधेनुका पूरा शरीर काशी कहा गया और काशीकी चारों

विश्वास करनेवाले इसके बछड़े हैं। वरुणा नदी मानो गलकंबल है जो विशेष शोभा दे रही है और असी नदी मानों पूँछ (रूपसे) शोभित है।

नोट—१ इस पदमें काशीका कामधेनुसे साङ्ग (पूर्ण सावयव) रूपक बाँधा गया है। गोस्वामीजीका विशेष निवास काशीमें रहा। इसीसे उन्होंने इसकी महिमा खूब वर्णन की है।

२ श्री लाला भगवान्‌दीनजी लिखते हैं कि छठे फाटककी मुख्य अधिष्ठात्री देवी यमुनाजीकी विनय (पद २१ में) की। इसी फाटकके भीतर दाएँ बाएँ दो मुख्य वन हैं। एक आनंदवन जिसे काशीभी कहते हैं और दूसरा चित्रवन जिसे चित्रकूटभी कहते हैं। आनंदवन मुक्ति-दाता है और चित्रवन नित्य लीलाका आनंददाता है। आनंदवनके अधिष्ठाता शंकरजी हैं और चित्रवनके मुख्य रक्षक श्रीमारुतिजी हैं। ये दोनों वन स्वयंभी देवरूप हैं। यमुनाजीकी अनुमति पाकर जब तुलजीदासजी फाटकके अंदर जाते हैं तो दोनों ओर दिव्य रूप दो वन देखते हैं। उन वनोंको देख देवरूप समझ अब आगे उनकी प्रशंसा गाते हैं। पहले आनंदवन अथवा काशीकी प्रशंसा करते हैं। यह काशीकी प्रशंसा 'सांगरूपक अलंकार' में कही गयी है। ऐसा सुन्दर सुगठित रूपक हिंदी साहित्यमें हमने अन्यत्र नहीं देखा। उसके आगे चित्रकूटका बूट रूपकभी बहुतही मनोहर है। आनन्दवनको देखकर उसकी मनोहरताने ऐसा मन हरण कर लिया कि उसे देख जी फड़क उठे। रहा न गया। कहही डाला कि इसका सेवन जन्म भर करता रहूँ, ऐसा जी चाहता है।

३ बैजनाथजी लिखते हैं कि अब क्षेत्रपाल काशीपुरीके गुण गाते हैं।

टिप्पणी—१ (क) ' सेइअ सहित सनेह देह भरि ' इति। इस चरणमें तन मन वचनसे काशी सेवन करनेका उपदेश है। ' सहित सनेह ' यह मनका धर्म है, 'देह भरि' यह तनसे सेवना है और 'सेइअ'

ओरकी सीमाको चार चरण बताया। तब अंतर्गृही उसके रहनेका स्थान गोशाला कैसे हो सकता है? चरणोंके बाद भीतरको लिये हुए अयन होता है। वैसेही अंतर्गृही भीतरकी छोटी परिक्रमा है।

में वचनभी आ गया। सेवनमें निवास, पूजन, स्तवन, प्रदक्षिणा, प्रणाम इत्यादि सब भावोंका समावेश है। परन्तु 'निवास' अवश्य होना चाहिये, यह प्रधान है। 'सनेह सहित' यह सेवन विधि बतायी। विना 'स्नेहसहित' सेवनके चारों फलोंकी सद्यः प्राप्ति न होगी। (ख) 'कामधेनु कलि कासी' का भाव कि जैसे कामधेनु अर्थधर्मादि फलोंको देती है वैसेही कलिकालमें काशी चारों पदार्थोंकी देनेवाली है। कामधेनु अलभ्य है पर काशी सबको सुलभ है।

२ (क) 'तीरथ सब सुभ अंग' इति। 'सब' दीपदेहरी है। 'तीरथ सब' 'सब सुभ अंग' है, यह अन्वय होगा। शरीरके भागोंको अंग कहते हैं। सिरसे लेकर नेत्र, कान, नाक, मुँह, पेट, पीठ इत्यादि सब अंग हैं जिनका समूह स्थूल शरीर कहलाता हैं। इसीप्रकार काशीके जितने तीर्थ हैं, जहाँ यात्री दर्शन करने जाते हैं वे सब काशी क्षेत्रके अंगतीर्थ हैं। कामधेनुके अंगों और काशीके प्रधान तीर्थोंके नाम कवि आगे स्वयं दे रहे हैं। चरणोंको चौहद्दी कह चुके। चरणके अतिरिक्त अन्य सब अंगोंको तीर्थ कहा है।

(ख) कामधेनुके अंगोंको शुभ कहा। क्योंकि इसके अंगोंमें समस्त देवताओंका वास है, जैसे समस्त तीर्थोंमें देवताओंका वास रहता है। यही शुभ अंग और तीर्थमें सादृश्य है। प० पु० सृष्टिखण्ड अ० ४५ में नारदजीके प्रश्नपर कि 'गौकी तुलना ब्राह्मणसे कैसे हो सकती है?' ब्रह्माजीने कहा है कि "पहले भगवान्‌के मुखसे तेजोमय पुंज प्रकट हुआ। उस तेजसे सर्वप्रथम वेदकी उत्पत्ति हुई। तत्पश्चात् क्रमशः अग्नि, गौ और ब्राह्मण उत्पन्न हुए। अग्नि और ब्राह्मण देवताओंकेलिये हविष्य ग्रहण करते हैं और हविष्य गौसे उत्पन्न होता है। इसलिये ये चारोंही इस जगत्‌के जन्मदाता हैं। गौ साक्षात् देवस्वरूप है। प्राचीन कालमें सबके पोषणार्थ मैंने गौकी सृष्टि की थी। गौओंकी प्रत्येक वस्तु पावन है। छहों अंगों, पदों और क्रमोंसहित समस्त वेद गौओंके मुखमें निवास करते हैं। उनके सींगोमें भगवान् शंकर और भगवान् विष्णु सदा विराजमान् रहते हैं तथा उनके उदरमें कार्त्तिकेय, मस्तकमें ब्रह्मा, ललाटमें महादेवजी, सींगोंके अग्रभागमें

इंद्र, दोनों कानोंमें अश्विनीकुमार, नेत्रोंमें चन्द्रमा और सूर्य, दाँतोंमें गरुड़, जिव्हामें सरस्वतीदेवी, अपान (गुदा) में संपूर्ण तीर्थ, मूत्रस्थानमें गंगाजी, रोमकूपोंमें ऋषि, मुख और पृष्ठभागमें यमराज, दक्षिण पार्श्वमें वरुण और कुबेर, वामपार्श्वमें तेजस्वी और महाबली यक्ष, मुखके भीतर गंधर्व, नासिकाके अग्रभागमें सर्प, खुरोंके पिछले भागमें अप्सराएँ, गोबरमें लक्ष्मी, गोमूत्रमें पार्वती, चरणोंके अग्रभागमें आकाशचारी देवता, रंभानमें प्रजापति और थनोंमें भरे हुए चारों समुद्र निवास करते हैं। " इसी-तरह प० पु० पातालखण्ड अ० ३० में जाबालिमुनिने राजा ऋतम्भरसे कहा है कि 'गौके अंगोंमें देवताओंका निवास है। वह देवस्वरूपा है।' यह तो साधारण सभी गौओंके सम्बन्धकी बात है। इससे अधिक महिमा वेदमंत्रोंद्वारा अग्निकुंडसे निकली हुई कपिला नामक होमधेनुकी है और फिर सुरधेनुका कहनाही क्या ? कपिलाका वर्णन महाभारत आश्वमेधिक पर्वमें विस्तारसे है।

(ग) 'रोम सिवलिंग अमित अबिनासी' इति। शिवजीकी मूर्तियाँ अगणित हैं। वैसेही कामधेनुके रोएँ असंख्य हैं। शिवरूप, शिव-प्रतीक होनेसे लिंगकोभी अविनाशी कहा गया। शिवजी अविनाशी हैं। यथा '**नाम प्रसाद संभु अबिनासी।**' पद्मपुराण उत्तरखण्डमें कहा है कि 'काशीमें इतने तीर्थ और लिंग हैं कि उनकी गणना करना असम्भव है। वहाँ गुप्तरूपसे बहुत पुरातन सिद्ध पीठें हैं। यथा, '**काश्यां विधातुमरैरपि दिव्य भूमौ। सत्तीर्थलिंगगणनार्चनतो न शक्या॥ यानीह गुप्त विवृतानि पुरातनानि। सिद्धानि यौञ्जितकरः प्रणमामि तेभ्यः॥**'

३ शिवलिङ्ग–(१) लिङ्गपुराणमें लिखा है कि शिवजीके दो रूप हैं। निष्क्रिय आर निर्गुण शिव अलिङ्ग हैं और जगत्कारणरूप शिव लिङ्ग है। अलिङ्ग शिवसेही लिंग शिवकी उत्पत्ति हुई है। शिवको लिङ्गभी कहते हैं। वह इसलिये कि लिंग या प्रकृति शिवकी है। इसप्रकार लिंग जगत्कारणरूप शिवका प्रतीक है। पद्मपुराणके अनुसार कल्पके आरंभमें शंकरजीको दो बार यह शाप मिला है कि आपकी मूर्तिके बदले

योनि और लिंगकी पूजा लोकमें प्रचलित होगी और आपका नैवेद्य कोई ग्रहण न करेगा। एक बार जब त्रिमूर्तिकी परीक्षाकेलिये भृगुजी कैलाश गये, परन्तु नन्दीगणने उनको द्वारपर रोक दिया था कि पार्वती महेश्वर विहारमें हैं। दूसरी बार जब ब्रह्माकी सभामें भगवान् शंकर दक्षके सम्मानमें न खड़े हुए, न प्रणाम किया तबभी भृगुजी रुष्ट हुए और ब्राह्मणोंकी ओरसे भृगु और गणोंकीओरसे नन्दी दोनोंमें शापाशापी हुई। हमारा अनुमान है कि शैव वैष्णव विरोधके कारण, जो गत और वर्तमान शताब्दिके प्रारंभमें बहुत ज़ोर पकड़े हुए था, पद्मपुराणके इस उद्धरणको लेकर कुछ लोगोंने 'लिङ्ग' पूजाका अश्लील अर्थ करके शिवलिंगार्चनको अश्लील ठहरानेका प्रयत्न किया होगा। हम पूर्व पदों १०, ११, १२ में विशेषकर दिखाते आये हैं कि वस्तुतः एक परब्रह्म परमात्मा परमेश्वरही विभिन्न कार्योंकेलिये विभिन्न रूप धारण करता है। उसके कलांशावतार, स्वांशावतार, विभुअवतार और आवेशावतार इत्यादिसे जो कार्य होते हैं वे सब कार्य उसीके हैं और उन उन कार्योंके समय आवेशादि होनेसे वे ब्रह्मही हैं और उनकी महिमा, उनके चरित इत्यादि अपार कहे गये हैं। उस समय तत्त्वतः ब्रह्म और उन रूपान्तरोंमें अभेद है। सब नाम उसी एक भगवान् वा ब्रह्मके हैं। सबमें उसकी पूजा होती है। जो हिन्दू धर्ममें बहुदेववाद बताते हैं, वे भूल करते हैं। जिस पुराणमें देखियेगा एकही ब्रह्म प्रतिपादित मिलेगा। उसी एकके अनेक नाम और रूप हैं।

(२) 'लिङ्ग' का अर्थ शास्त्रोंमें क्या बताया गया है यह बताकर फिर 'लिंगार्चन' का रहस्य जो विद्वानोंने लिखा है उसीको हम यहाँ उद्धृत करेंगे।

(क) लिंगका अर्थ चिह्न वा पहचान है। दर्शनसूत्रोंमें यह शब्द इस अर्थमें आया है। यथा '**विषाणी ककुद्मान् प्रान्ते बालधिः सास्नावानिति। (गोत्वे दृष्टं लिङ्गम्)**' (वै०, द०, अ० २, आ० १ सू० ८) 'सींग, ककुद (थूहा), पूंछ, गलेमें कम्बलकी भाँति लटकती हुई सास्ना' ये गो जातिके लिङ्ग हैं। तथा '**आकृति-**

जातिलिङ्गाख्या '। (न्या० द० अ० २, आ० २, सू ७०) आकृतिही जातिकी पहिचान है। पहचान करानेवाले चिन्हको लिङ्ग कहते हैं, जैसे पुरुषका लिंग मूँछ है।

(ख) शिवलिंगका क्या अर्थ है इसका स्पष्टीकरण शिवपुराणमें इस प्रकार है कि 'लिङ्गानांच क्रमं वक्ष्ये यथावच्छृणुते द्विजा। तदेव लिङ्गं प्रथमं प्रणवं सार्वकामिकम् ॥ सूक्ष्म प्रणवरूपं हि सूक्ष्मरूपं तु निष्कलम्। स्थूल लिङ्गहि सकलं तत्पञ्चाक्षरमुच्यते ॥ तयोः प्रजा तपः प्रोक्तं साक्षान्मोक्ष प्रदेउभे। पुरुष प्रकृतिभूतानि लिङ्गानि सुबहूनिच ॥ तानि विस्तरतो वक्तुं शिवो वेत्ति चापरः।' (शिव० विद्येश्वर सं०) 'ब्राह्मणो! मैं लिङ्गोंका यथावत् क्रम तुमसे कहता हूँ। सबसे प्रथम शंकरका लिङ्ग प्रणव है। वह समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। शिवका सूक्ष्मलिङ्ग प्रणवरूप है और सूक्ष्मही निष्कल हुआ करता है। शंकरका स्थूल लिंग यह समस्त ब्रह्माण्ड है। इसका नाम पंचाक्षर है। स्थल तथा सूक्ष्म इन दो प्रकारके लिङ्गोंकी पूजाही तप है। दोनोंही प्रकारकी पूजाएँ साक्षात् मोक्षकी देनेवाली हैं। पुरुष प्रकृति तथा आकाशादि पंचमहाभूत इत्यादि शंकरके अनेक लिङ्ग हैं। उन समस्त लिङ्गोंको शिवजीही जानते हैं, दूसरा नहीं।'

(ग) पं० श्री लक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकरजी लिखते हैं कि " लिंग, शिवलिंग, महालिंग परब्रह्मके वाचक और लिंगपूजा परमात्माकी पूजा है। शिवजीका जो लिंग देखनेमें आता है उसे 'महालिंग' कहते हैं। उसके दो भाग हैं। एक पिण्डी और दूसरा पिण्डीका आधारभूत सबके नीचेका भाग वेदी। वेदीमें मूलपीठ और ऊर्ध्वपीठ ऐसे दो भाग हैं। मूलपीठ, ऊर्ध्वपीठ और पिण्डी सबको मिलाकर शिवसंप्रदायमें 'महालिंग' कहते हैं। मूलपीठ ब्रह्मा अर्थात् रजोगुणका चिन्ह है, ऊर्ध्वपीठ विष्णु अर्थात् सत्त्वगुणका चिन्ह और पिण्डी शिव अर्थात् तमोगुणका चिन्ह है। इस प्रकार संपूर्ण महालिंग ब्रह्मा विष्णु महेशात्मक त्रिमूर्तिरूप परब्रह्मका है।"

" लिंग शब्द लिंग् (जानना) से बना हुआ है, जिससे लिंगका अर्थ होता है 'परमेश्वरीय ज्ञान अथवा आत्मज्ञान।' इन सबोंका

विस्तृत वर्णन लिंगपुराण, कूर्मपुराण और मत्स्य पुराणमें मिलेगा। लिंग मस्तक है और महालिंग शिवशरीर है। समाधिस्थितिमें योगीका शरीर महालिंगके आकारवाला हो जाता है। ऐसा कहते हैं कि अनेक क्षेत्रोंमें जो स्वयंभू महालिंग देखनेमें आते हैं, वे सब महायोगियोंके शरीरही हैं।"

(३) अब दूसरा भाव लिखा जाता है। पं० श्रीभवानीशंकरजी लिखते हैं कि 'माया प्रकृति है और महेश्वर प्रकृतिके अधिष्ठाता मायी हैं। मायाकेद्वारा उन्हींके अवयवभूत जीवोंसे समस्त संसार परिव्याप्त हो रहा है। इसप्रकार यह अव्यय सदाशिव सृष्टिकी रचनाकेलिये दो हो जाते है। क्योंकि सृष्टिबिना द्वैत (आधार आधेय) होही नहीं सकता। आधेय (चैतन्यपुरुष) बिना आधार (प्रकृति उपाधि) व्यक्त नहीं हो सकता। इसीकारण इस सृष्टिमें जितने पदार्थ हैं, उनमें अभ्यन्तर चेतन और बाह्यप्राकृतिक आधार अर्थात् उपाधि (शरीर) देखे जाते हैं। दृश्यादृश्य सब लोकोंमें इन दोनोंकी प्राप्ति होती है। इसी कारण इस अनादि चैतन्य परम पुरुष परमात्माकी शिवसंज्ञा सृष्ट्युन्मुख होनेपर अनादि लिंग है और उस परम आधेयको आधार देनेवाली अनादि प्रकृतिका नाम योनि है। क्योंकि ये दोनों इस अखिल चराचर विश्वके परम कारण हैं। शिव लिंगरूपमें पिता और प्रकृति योनिरूपमें माता हैं। गीतामें इसी भावको इस प्रकार प्रकट किया गया है। '**मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्। संभवःसर्वभूतानां ततो भवति भारत॥**' (१४।३) महद्ब्रह्म (महान प्रकृति) मेरी योनि है, जिसमें मैं बीज देकर गर्भका संचार करता हूं और इसीसे सब भूतोंकी उत्पत्ति होती है। यह लिंगयोनि जिसका व्यवहार श्रीशिवपूजामें होता है प्रकृति और पुरुषके संयोगसे होनेवाली सृष्टिकी उत्पत्तिकी सूचक है। इस प्रकार यह परम परात्पर जगत्पिता और श्यामयी जगत्माताके आदिसंबंधके भावकी द्योतक है। इसमें अश्लीलताका आक्षेप करना ठीक नहीं। यह अनादि प्रकृति पुरुषका संबंध परम सृष्टियज्ञ है जिसका परिणाम यह सुंदर सृष्टि है। इसप्रकार

शिवलिंगका अर्थ ' ज्ञापक ' अर्थात् प्रकट करनेवाला है। क्योंकि इसीके व्यक्त होनेपर सृष्टिकी उत्पत्ति हुई है। दूसरा अर्थ ' आलय ' है। यह प्राणियोंका परमकारण और निवासस्थान है। तीसरा अर्थ है 'लीयते यस्मिन्निति लिङ्गम्' अर्थात् सब दृश्य जिसमें लय हो जायँ, वह परमकारण लिंग है। लिंग परमानन्दका कारण है जिससे क्रमशः ज्योति और प्रणवकी उत्पत्ति हुई है। लिंगपुराण अ० १७ में कहा है कि सृष्टिके प्रारंभमें विष्णु और ब्रह्मामें श्रेष्ठताका विवाद निबटानेकेलिये एक बृहत् ज्योतिर्लिंग दिखलायी पड़ा जिसके आदि अंतका पता दोनोंही न लगा सके। वेदनामक ऋषिने प्रकट होकर समझाया कि प्रणव अकार ब्रह्मा हैं, उकार विष्णु हैं, मकार शिव हैं। मकारबीज लिंगरूप है जो सबका कारण है।

(४) आजकल लिंगका अश्लील अर्थ करके लोग शिवपूजाका मज़ाक उड़ाते हैं। अतः उसपर कुछ विशेष प्रकाश डालनेकेलिये पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज (प्रिंसिपल, गवर्नमेंट संस्कृत कालेज, काशी) के ' लिङ्गरहस्य ' नामक लेखसे जो शिवाङ्कमें है, कुछ अंश यहाँ उद्धृत किया जाता है। इस लेखमें तीसरे प्रकारसे 'लिङ्ग' की अश्लीलता और श्लीलतापर विचार करते हुए उसका रहस्य खोला गया है।

प्रश्न—लिङ्गोपासनाके मूलमें जो एक अश्लीलभाव है, उसे क्या आप अस्वीकार करना चाहते हैं ? और यदि न कर सकते हों तो फिर सभ्य समाजमें इसका किस प्रकार समर्थन किया जा सकता है ?

उत्तर—वत्स ! श्लील और अश्लीलका विचार नव्यरुचिसंपन्न युवकोंकी विकृत दृष्टिके निर्णयके अनुसार नहीं हो सकता। व्यक्तिगत संस्कार तथा सामाजिक मनोभावोंसे संवेष्टित प्रकृतिके अनुसार आपेक्षिकरूपसे श्लील और अश्लीलका निर्धारण हो सकता है। नग्नकाय पवित्र चित्त छोटेसे शिशुकी दृष्टिमें संसारमें कहीं कुछभी अश्लील नहीं देखा जाता। यही बात ज्ञानसंपन्न परमहंसकी दृष्टिमेंभी समझनी चाहिये। अन्यत्र जिसका जिस प्रकारका संस्कार होता है, वस्तुसत्ता उसके निकट उसी प्रकार प्रतिभासित हुआ करती है। भगवान्‌की सृष्टिमें अपवित्र कहलाने-

वाली कोईभी वस्तु नहीं है। परन्तु कलुषित हृदयद्रष्टा अपने अंदरकी कालिमाका आरोपण कर वस्तुविशेषको अपवित्र समझ लेता है। शुद्ध चित्तसे जिस ओर देखो उसी ओर सत्यकी उज्वल मूर्ति देखकर आनंद प्राप्त किया जाता है। फिर किसीभी स्थानमें संकोचका कारण नहीं प्रतीत होता। लिंग और योनि ये दोही सृष्टिके मूल रहस्य हैं। पुरुष और स्त्रीके पारस्परिक संयोगके विना सृष्टि प्रभृति कार्य संपन्न नहीं हो सकते। शिव और शक्ति, ईश्वर और माया, पुरुष और प्रकृति प्रस्थान भेदसे चाहे जिस नामको लिया जाय सर्वत्रही दो मूल शक्तियोंके पारस्परिक संघर्षसे सृष्टिप्रभृति कार्य संपन्न होते हैं। जबतक द्वैतजगत्का अतिक्रमण नहीं किया जाता तबतक इन दो शक्तियोंकोही मूलशक्ति मानना पड़ता है। कार्यक्षेत्रमेंभी मूलतः यही प्रतीत होता है और युक्तिसेभी यही बात सिद्ध होती है। वस्तुतः इस द्वैतके मूलमें नित्य अनुस्यूतभावसे अद्वैत सत्ताही है। सृष्टिके प्रारंभमें यद्यपि प्रकृति और पुरुष दोनों पृथक्रूपमें उपलब्ध होते हैं, तथापि यह जान लेना चाहिये कि सृष्टिकी आदिभूत बीजावस्थामें ये दोनोंही शक्तियाँ अभिन्न रूपमेंही विराजमान रहती हैं। इसे चाहे ईश्वर कहो या महाशक्ति। उसमें कुछ अंतर नहीं पड़ता। उस अवस्थामें एक ओर जैसे प्रकृति और पुरुष परस्पर भेदरहित और एकाकार हैं, वैसेही दूसरी ओर वह अद्वैत ईश्वरसत्ताभी निरंजन निष्कलसत्ताके साथ एकीभूत है। यह अव्यक्त अवस्था है। इसको एक ओर सृष्टिका बीज कहा जानेपरभी दूसरी ओर यह नित्य सृष्टिसे अतीत, प्रपंचहीन, शान्त और निस्पन्द शिवभावमात्र है। इसीकी स्वतंत्रताके उन्मेषवश इस अक्षोभ्यचित् सत्ताके ऊपर वाक् और अर्थके समान नित्यसम्पृक्त परन्तु भेदयुक्त पुरुष और प्रकृतिरुप तत्त्वद्वयका आविर्भाव होता है। ये पुरुष और प्रकृति एक होते हुएभी भिन्न हैं और भिन्न होते हुएभी एक हैं। क्योंकि इनमेंसे एकको छोड़कर दूसरा अपनी सत्ताका संरक्षण नहीं कर सकता। पारमार्थिक दृष्टिसे यह अव्यक्त अवस्था न होनेपरभी सांसारिक दृष्टिसे सृष्टिकी अभिव्यक्ति न होनेके कारण इसको एक प्रकारसे अव्यक्त कहा जा सकता है।

शास्त्रके मतसे यह अलिंग अवस्था है। किन्तु पारमार्थिक दृष्टिसे निष्कल अवस्था अलिङ्ग है। अतः उसको महालिङ्ग अवस्था कहा जा सकता है। लिङ्ग और अलिङ्ग इन दो शब्दोंका तात्पर्य आपेक्षिक भावसेही समझना पड़ेगा। परिचायक चिन्हको 'लिङ्ग' कहते हैं। जिसकी अभिव्यक्ति नहीं है उसका कोईभी निदर्शन नहीं दिखलाया जा सकता। किन्तु इस अव्यक्त सत्तासे जो तेजोमय और ज्योतिर्मय तत्त्व आविर्भूत होता है, उसे स्वयम्भू कहा जाता है। यही अव्यक्त अवस्थाका परिचायक है। इसीलिये यह लिङ्ग पदवाच्य है।

श्री लमगोड़ाजी उपर्युक्त लेखका समर्थन करते हुए कहते हैं कि (क) 'यह बिल्कुलही ठीक है। भगवान्‌ने गीतामेंभी प्रकृतिको अपनी 'योनि' और अपनेको बीज स्थापन करनेवाला कहा है। हम अपने विकारोंको भगवान्‌की तरफ फेर देते हैं। विवाहके पूर्वही श्रीपार्वतीजीने कहा है कि वे शिवजीको सदासेही 'सदाशिव योगी' ही मानती हैं, भोगी नहीं। इसीपर सप्तर्षि चुप हो गये थे। जिसने कामको भस्म कर दिया, उसे 'कामी' मानना अज्ञान है। (ख) अधिकतर 'ज्योतिर्लिङ्ग' शब्द आता है। अग्निकी लौका वही रूप होता है जो शिवमूर्तिका। त्रिदेव निर्णयमेंभी शिवको अग्निरूप कहा है। पर वहाँ भौतिक वादहीकी भरमार है जैसा कई जगह संकेत किया गया है। बाइबिलमेंभी प्रकाश तथा ज्योति स्तंभरूपमें भगवान्‌का दर्शन है। 'Lead me kindly unto Light' प्रसिद्धही है। (ग) एकताका चिन्हभी तो सभी जगह वैसाही है। हमारा लिङ्गशरीरभी तो अंगुष्ठ रूपही माना गया है। हृदयगुह्यमें जो ज्योतिर्बिम्ब भगवान्‌के प्रत्यक्ष होनेका चिह्न कहा जाता है वहभी अंगुष्ठरूपही है। (घ) अंतिम सत्ता जिसमें सब कुछ लीन हो जाय वहभी लिङ्गही है और वह ब्रह्माण्ड (अंग) रूप तो होती है।

(५) पं० श्री रामदास गौड़जी अपने 'लिंगरहस्य' नामक लेखमें लिखते हैं कि 'विज्ञान यह नहीं कह सकता कि विश्वसृष्टिके नियमनमें मैथुनीक्रिया प्रकृतिमें अपने आप उपजी या किसी चेतना शक्तिवालेने

इसका आरंभ किया। विज्ञानका अनुमान है कि पचासों करोड़ वर्षोंमें धीरे धीरे विकास पाकर अयोनिजसे योनिज सृष्टि होने लग गयी है। विज्ञान तो ईश्वरको जानता नहीं। ईश्वरवादी वैज्ञानिकके शब्दोंमें यों कहना चाहिये कि ईश्वरने जीवकी सृष्टिके पचासों करोड़ वर्ष पीछे मैथुनी सृष्टिकी विधि विकसित की। यह पचासों करोड़ वर्ष क्यों लगे? क्योंकि ईश्वर प्रयोगपर प्रयोग करता था, बनाता और बिगाड़ता था, बराबर सीखता था। यहाँतक कि उसे आते आते मैथुनसृष्टि आ गयी और उसने इस विधिमें सुखानुभव इसलिये रक्खा कि जीवमात्र वृद्धिमें प्रवृत्त हो। अब वैज्ञानिक और पौराणिक ईश्वरमें बहुत बड़ा अंतर नहीं रहा। पौराणिक ईश्वर ब्रह्माने पचासों करोड़ वर्ष सृष्टिपर हाथ माँजनेमें लगा दिये। बारंबार तपस्याएँ कीं। अंतमें अर्धनारीश्वरकी कृपासे मैथुनी सृष्टिकी उद्भवना हुई। कामदेवकी उन्होंने उत्पत्ति की थी। वह लाभकी बात हुई। ब्रह्माने किस प्रकारकी रचना मैथुनी सृष्टिकेलिये की इसका विस्तार पुराणोंमें नहीं है। विस्तारकी कमी विज्ञानने पूरी की। नास्तिक यह कह सकता है कि यह मनुष्यकी बुद्धिकी कल्पना है कि उसने जगत्की प्रवृत्ति काम वासनाकी ओर देखकर समस्त प्राणियोंको काममोहित पाकर लिंग और योनिकी उपासनाकी निव डाली। परन्तु इस शंकाका यह उत्तर है कि लिंगकी उपासनाके साथ वैराग्यका तत्त्व और कामपर विजयभी यदि उन्हीं मनुष्योंकी कल्पना है तोभी उन मनुष्योंने उपासनाकी कोई अनुचित विधि नहीं निकाली। फिर यहभी विचार करना चाहिये कि पुराण उस कालके लिखे ग्रंथ हैं जब कि आधुनिक वैज्ञानिक कल्पनाएँ स्वप्नमेंभी किसीको सूझी न थीं। फिरभी मैथुन सृष्टिमें अर्धनारीश्वर और लिंग और योनिका अंग जो महाभारत और पुराणोंमें देखनेमें आता है आधुनिक वैज्ञानिक निष्कर्षोंसे इतना मेल क्यों खाता है? लिंगोपासना सृष्टिके परम रहस्यका साक्षी है। प्रवृत्तिमार्गका ठीक पता देता है और धीरेधीरे जब इस उपासनाका रहस्य उपासकके अनुभवमें आता है तब वह लिंगोपासनासेही निवृत्तिमार्गपर आरूढ़ हो जाता है।

भगवान् शंकरके अनेक नामोंमेंसे पशुपति और लिंग यह

दो शब्द समझमें कम आते हैं। लिंग शब्दका साधारण अर्थ चिह्न वा लक्षण हैं। सांख्यदर्शनमें प्रकृतिको, प्रकृतिसे विकृतकोभी लिंग कहते हैं। देव चिह्नके अर्थमें लिंग शब्द शिवजीकेहीलिये आता हैं और प्रतिमाओंको मूर्त्ति कहते हैं। कारण यह है कि औरोंका आकार मूर्त्तिमानके ध्यानके अनुसार होता है। परन्तु लिंगमें आकार या रूपका उल्लेख नहीं है। वह चिह्न मात्र है।

स्कंदपुराणमें '**लयनाल्लिंगमुच्यते**' कहा है। लय या प्रलय होता है इसीसे उसे लिंग कहते हैं। प्रलयसे लिंगका क्या सम्बन्ध है? प्रलयकी अग्निमें सभी कुछ भस्म होकर शिवलिंगमें समा जाता है। वेदशास्त्रादिभी लिंगमेंही लीन हो जाते हैं। फिर सृष्टिके आदिमें लिंगसेही सबके सब प्रकट होते हैं। अतः लयसेही लिंग शब्दका उद्भव ठीकही है। उससे लय या प्रलय होता है और उसीमें संपूर्ण विश्वका लय होता है। यह एक संयोगकी बात है कि लिंगशब्दके अनेक अर्थोंमें लोकप्रसिद्ध अर्थ अश्लील है। वैदिक शब्दोंका यौगिक अर्थ लेनाही समीचीन माना जाता है। यौगिक अर्थमें कोई अश्लीलता नहीं रह जाती। इसके सिवा अश्लीलता प्रसंगसे आती है। विषयात्मिक वर्णनमें जो अश्लील और अनुचित दीखता है वही वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक वर्णनोंमें श्लील और समुचित हो जा सकता है। पशुपति और लिंग शब्दकाभी यही हाल है। लिंगार्चनमें अश्लीलताके भावकी कल्पना परम मूर्खता, परम नास्तिकता और घोर अनभिज्ञता है। (शिवाङ्कसे)

पं० देवदत्तशर्माजी कहते हैं कि 'लिङ्ग भारतकी उच्च आध्यात्मिकताकी एक वह लघु रश्मि है जिसने अखिल विश्वमें ईश्वरके अस्तित्व और महत्वको प्रकाशित कर दिया। हम निष्पक्ष होकर विचार करते हैं तो मानवजीवनका परम फल ज्ञान प्राप्त करनाही ज्ञात होता है। हमारे प्राचीन आध्यात्मिक पूर्वजोंने लिङ्ग और योनिके आकार (मूर्ति) द्वारा प्रकृति और पुरुषके संगमसे सृष्टिका क्रम अज्ञानी जगत्को सुझाया है। इन्हीं हमारे पूर्वजोंने सृष्टिस्थितिलयकारी अव्ययात्माको निराकारत्व अपनोदन कर क्रमशः लिंगरूपमें उनके साकारत्वकी कल्पना की, जो कुछ कालमेंही

अखिल विश्वका उपास्य चिन्ह हो गया। चीन, ग्रीस, रोम, मिश्र, यूनान, इटली, सुमात्रा और जावा आदि सभी देशोंमें शिवलिंगकी पूजा होती रही। अबभी क्वचित् क्वचित् प्रकारान्तरसे मौजूद है। बाइबिल, कुरान और जेन्दाआवरन्तामें इस लिंगपूजाके उदाहरण मौजूद हैं। मक्कामें मक्केश्वरलिंग अबभी मौजूद है। यूनानमें वृषमूर्त्ति अबभी है। चीनमें 'ह्विंग हि फुद' नामसे लिंग पूजा अबभी होती है। यही तिब्बतमें प्रचलित है। प्रकृति परमेश्वरके निदर्शनस्वरूप लिंगकी उपासनाने कालक्रमात् सम्प्रदायोंका रूपधारण किया। किन्तु उनमेंभी दार्शनिकताका, वैज्ञानिकताका पुट निहित रहा। दक्षिण तैलंग प्रांतमें त्रिमूर्तिलिंग, इलोराकी गुफ़ाओंमें चतुर्मूर्त्ति, मथुराके ध्वंसावशेषोंमें पंचमूर्त्ति तथा इतिहास प्रसिद्ध उदयपुर (मेवाड़) में एक लिंगनाथके निदर्शन विद्यमान हैं। खजुराहोमें अनेक शिवमूर्त्तियाँ एकमुकी, चतुर्मुखी और पंचमुखी हैं। प्रयागके शिवकोटि-स्थानमें करोड़ों शिवलींग हैं। भारतमें प्रसिद्ध द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग लींगोपासनाके ज्वलंत दृष्टान्त हैं। कहनेका तात्पर्य यह कि यह 'लींग' ईश्वरके अस्तित्वका निदर्शक मात्र है। वास्तवमें ब्रह्महीं लिंग है। लिंगसेही ॐ की उत्पत्ति सिद्ध की जाती है। यथा, 'अस्य लिंगादभूद्वीजमकारं वीजिनः प्रभोः। उकार यानौ वै क्षिप्तप्रवर्द्धत समन्ततः॥' बिना योनिके लिंग कहीं नहीं स्थापित होता। लिंग ब्रह्म है, योनि शक्ति हैं। ब्रह्मके साथ शक्तिकी पूजा होनीही चाहिये। यथा, 'पीठाकृतिरूमादेवी लिंगरूपश्च-शङ्करः। प्रतिष्ठाप्य प्रयत्नेन पूजयन्ति सुरासुराः॥'

गोस्वामीजीनेभी इसी लिंगब्रह्मका विशेषण अविनाशी रखकर अपनी दार्शनिक पटुताका परिचय दिया है।

पुराणोंके गूढ़ाशयगर्भित वाक्योंका समझना बहुत कठिन हैं। साथही विज्ञानभित्तिपर आरूढ़ किये हुए वर्णनोंकाभी समझ लेना सर्वसाधारणकेलिये सहज नहीं। जहाँतक हमको समझ पड़े विद्वानोंके मतोंको हमने यहाँ उद्धृत कर दिया है।

३ (क) 'अंतर अयनु अयनु भल' इति। यहाँ 'अयनु' शब्द दो बार भिन्न भिन्न अर्थोंमें आया है। यहाँ यमकालंकारभी है। अयनमें

दूध भरा हैं। थनरूपी फल सामने हैं जिनसे फलका सुखभोगरूप दूध प्राप्त हो सकता है। पर जबतक वत्स न हो, गौ न पन्हायेगी और न दूध मिलेगा। यथा, 'बत्स पाइ तब धेनु पन्हाई।' इसी प्रकार अंतर्गृही परिक्रमामें फलकी प्राप्ति है। पर यदि वेदोंमें वर्णित काशीमाहात्म्यपर विश्वासही नहीं है तो वह फलभोग क्योंकर प्राप्त होगा? गौ थन छूनेही न देगी। अविश्वासी प्राणी समीप आवेंगेही नहीं। इसीसे 'अयनु' और 'थन' कहकर 'बच्छ बेद बिस्वासी' भी कहा। दूध परिपूर्ण भरा होनेसे 'अयनु' को 'भल' कहा। दूध क्या है? फलका सुखभोगही दूध है। किसी किसीके मतानुसार 'भगवत्प्राप्ति' दूध है। (ख) 'गलकंबल बरना बिभाति' इति। गलकंबल पूर्व, वैसेही बरणा नदी पूर्वदिशामें, यह दोनोंमें समानता है। (ग) 'लूम लसति सरितासी' इति। पुच्छ (पूँछ) लंबी पतली पश्चिम ओर होती है जो परम पावन मानी जाती है। (इसमें रमाका निवास रहता है। पूँछ पकड़कर गोदान करनेकी विधि है।) इसी प्रकार 'असी' नदी पश्चिम दिशामें लंबी चली गयी है। (घ) 'गलकंबल और लूम दोनों चरणोंसे बाहर हैं। वैसेही बरना और असी दोनों नदियाँ सीमासे बाहर दूरतक फैली हुई हैं।'

अनुसंधान [२२]

दंडपानि भैरव बिषान मल रुचि खलगन भयदासी।
लोलदिनेस तिलोचन[६] लोचन करन घंट घंटासी॥ ४॥
मनिकरनिका[७] बदन ससि सुंदर सुरसरि सुख[८] सुखमासी।
स्वारथ परमारथ परिपूरन पंचकोस महिमासी॥ ५॥
बिस्वनाथ पालक कृपाल चित लालति नित[९] गिरिजासी।
सिद्धि सची सारद पूजहिं मनु[१०] जुगवत[११] रहति रमासी॥ ६॥

---

६ त्रिलोचन—ह०, ५१, १५, ७४, आ०। तिलोचन—६६, रा०, प्र०, ज०,। ७ मनिकर्निका—ह० ५१, १५, ७४, आ० (भ०) ८ सुख—६६, रा०, भा०, बे०, ह०, ७४, प्र०, ज०, १५। मुख—च०, दी०। ९ नीति—रा०, भा०। १० मनु—६६। मन—प्रायः औरोंमें। ११ जुगवत—६६, प्र०, भा०, बे०, १५, ५१, आ०। जोगवत—रा०, ७४, ह०, डु०।

शब्दार्थ—दंडपानि (दंडपाणि) = जिसके हाथोंमें दंड नामक अस्त्र हो जो दंडेके आकारका होता हैं। काशीमें दंडपाणि नामकी एक मूर्ति भैरवकी है जिसके हाथमें दंडभी है। भैरव = शिवजीके एक गण जो शिवजीका अवतार माने जाते हैं। पद ११ देखिये। बिषान (विषाण) = सींग। मल रुचि = जिनकी पापमें रुचि है। भयदा = भय देनेवाली। सी = है, (सं० आसीत्‌से) (दी०) समान, सदृश। लोलदिनेस = लोलार्क नामक सूर्य, लोलार्केश्वर शिवलिंग जो असी घाटके समीप है। लोलार्क कुंडभी प्रसिद्ध तीर्थ है। तिलोचन = त्रिलोचन महादेव। यहभी एक शिवलिंग विशेष है जो प्रसिद्ध तीर्थ है। इनके नामसे महल्लेकाभी नाम यही पड़ गया है। करन घंट = यह एक शब्द माननेसे ' घंटाकर्ण तीर्थ ' अर्थ होगा। अलग अलग होनेसे 'कर्ण' (कान) और ' घंट ' दो अर्थ होंगे। घंटा = धातुका एक बाजा जो केवल ध्वनि उत्पन्न करनेकेलिये होता है। यह औंधे बरतनके आकारका होता है जिसमें एक लंगर लटकता रहता है और जो लंगरके हिलनेसे बजता है। मनिकरनिका (मणिकर्णिका) = एक परम प्रसिद्ध तीर्थ जिसके पास श्मशान है। सुखमा = परम शोभा। स्वारथ (स्वार्थ) = अपना प्रयोजन, उद्देश्य वा हित, लोकसंबंधी सुखके पदार्थ। परमारथ (परमार्थ) = सबसे बढ़कर वस्तु, सार पदार्थ, परलोकसंबंधी पदार्थ, मोक्ष, भगवत्प्राप्ति। परिपूरन (परिपूर्ण) = भरपूर। ' परि ' संस्कृत उपसर्ग है जिसके लगनेसे शब्दमें इन अर्थोंकी वृद्धि होती है। १ चारों ओर। (परिक्रमण) २ सर्वतोभाव, अच्छी तरह। (परिपूर्ण) ३ पूर्णतया। (परित्याग, परिताप) ४ अतिशय। (परिवर्द्धन) ५ दोषाख्यान। (परिहास, परिवाद) ६ नियम, क्रम। (परिच्छेद) पंचकोस = पंचक्रोशी, परिक्रमा। हिंदी शब्द सागरमें ' पांच कोसकी लंबाई चौड़ाईके बीच बसी हुई काशीकी पवित्र भूमि ' यह अर्थ है। परंतु जो परिक्रमा पंचक्रोशी नामकी आजकल होती है वह लगभग ६० कोसकी है। महिमा = माहात्म्य, बड़ाई। विश्वनाथ = विश्वनाथ नामके महादेव। येभी द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंमेंसे एक हैं। पालक = पालन करनेवाला।

भोजन वस्त्र आदि आवश्यक वस्तु देकर प्राणकी रक्षा करना ' पालन ' है। पालन = पशुको घरमें रखकर चारा पानी देना। लालति (सं० लालन) = लाड़ प्यार करना, चूमना, मीठे वचन कहकर पुचकारना इत्यादि सब भाव इसमें भरे हैं। यथा, ' चाहि चुचकारि चूमि लालत लावत उर तैसे फल पावत जैसे सबीज बये हैं। ' (गी०) ' कलपबेलि जिमि बहु बिधि लाली। सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली '। (अ०) नित = नित्य। जुगवति = (सं० योग + अवना) जुगवना, खयाल रखना, देखते जोहते रहना। यथा, ' काय न कलेस लेस लेत मानि मनकी। सुमिरे सकुचि रुचि जुगवत जनकी। ', ' ता कुमातु को मन जुगवत ज्यों निज तन मर्म कुघाउ। ' (विनय) जिस प्रकार सुख मिले वही करना।

पद्यार्थः—दंडपाणि और कालभैरव काशी कामधेनुकी सींगें हैं जो पापरुचि दुष्ट जनोंको भय देनेवाली हैं।* लोलार्क और त्रिलोचन तीर्थ नेत्र हैं। घंट घंटाकर्ण हैं (घण्टाकर्ण तीर्थ गलेमें बँधा हुआ घंटा है) । ४। मणिकर्णिका तीर्थ इसका चंद्रसमान सुंदर मुख है। गंगाका आनंद (मुखकी) परम शोभा है। स्वार्थ परमार्थसे परिपूर्ण पंचक्रोशी परिक्रमा इसकी महिमा है। ५। दयालुचित विश्वनाथजी इसके पालक हैं। गिरिजा जैसी शक्ति नित्य इसका लालन करती रहती हैं। (स्वर्गमें देववधूटियाँ कामधेनुको पूजती हैं और काशी कामधेनुको

---

*अर्थान्तर—१ वीरकविजी ' भयदासी ' का अर्थ ' भयदा असि ' करते हैं। वे पापमें प्रीति रखनेवाले खलोंके भयदायक तलवार हैं। वे लिखते हैं कि यहाँ तलवार उपमानका गुण सींग उपमेयमें स्थापन करना ' द्वितीय निदर्शना ' है। आगे चलकर ' सी ' का अर्थ ' के समान ' वा ' बराबर ' किया है। बैजनाथजी आदिने ' सरीखा, जैसा, समान ' इत्यादि अर्थ किया है। २ ' मलरुचि ' = गौकामल (गोबर) पुण्यात्माओंकी रुचि है। ' खलगणकी रुचि गोबर है ' (रा० त० बो०) यह अर्थ संगत नहीं जँचता।

अष्टसिद्धियाँ, इन्द्राणी और सरस्वती पूजती हैं और लक्ष्मी ऐसी (त्रैलोक्य ऐश्वर्य स्वामिनी) इसका मन जुगवती रहती हैं। ६।

नोट:—पापमें रुचि कैसे होती है इस विषयमें भीष्मजीने जो कहा है वह मननयोग्य है। वह यह है कि "मनुष्य विषयोंको जाननेकेलिये उनमें इच्छापूर्वक प्रवृत्त होता है। इससे जिस विषयमें उसे राग होता है उसे पानेकेलिये वह बहुतसे काम करता है। वह अपने प्रिय रूप, रस गंधादिका बार बार सेवन करना चाहता है। इससे उसके मनमें राग होता है और फिर उसपर क्रमशः द्वेष, लोभ और मोहकाभी अधिकार हो जाता है। इस प्रकार लोभमोहादिसे ग्रस्त होकर उसकी बुद्धि धर्ममें प्रवृत्त नहीं होती। वह केवल कपटसेही धर्मका आचरण करता है और कपटसेही धन कमाना चाहता है। इस प्रकार बुद्धिकी कपटमें प्रवृत्ति हो जानेसे उसकी पापमेंही रुचि हो जाती है। राग और मोहके कारण उसका तीन प्रकारका अधर्म बढ़ता है। वह पाप चिंतन करता है, पापही बोलता है और पापही करता है। इस प्रकार पुरुष पापी बनता है।" (महाभारत शान्तिपर्व)

टिप्पणी—१ (क) 'दंडपानि भैरव बिषान' इति। दंडपाणि भैरव और विषाणमें समता यह है कि दोनों भयदायक हैं और दोनों दो दो हैं। किसी किसीने 'दंडपानि' को 'भैरव' का विशेषण और किसीने दोनोंको दो तीर्थ माना है। प्रथम चरणसेही ग्रंथकार उपमान और उपमेय बराबरके देते आ रहे हैं। चरण चार और मर्यादा चार दिशाओंकी। कामधेनुसेवक सुरगण और काशीसेवक पुरवासी। अंग अनेक वैसेही तीर्थ अनेक। रोम अमित शिवालिंग अमित। अयन एक वैसेही अंतर्गृही एक। थन चार तथा फल चार। वत्स (बछड़ा) एक और वेदविश्वासी एक। गलकंबल और बरणा, लूम और असी एक एक। इसी प्रकार दो सींगोंका रूपक दो तीर्थोंसे है। एक दंडपाणि जो दुष्टोंको दंड दिया करते हैं। दूसरे कालभैरव जो कोतवाल हैं और बड़े भयंकर हैं।

दंडपाणि—काशीखण्डमें लिखा है कि पूर्णभद्रनामक एक यक्षको हरिकेश नामका एक पुत्र था जो बड़ा शिवभक्त था। एक बार इसके

घोर तपसे प्रसन्न हो शिवपार्वतीजी इसके पास आकर बोले कि तुम काशीके दण्डधर हो। वहाँके दुष्टोंका शासन और साधुओंका पालन करो। संभ्रम और उद्भ्रम नामके मेरे दो गण तुम्हारी सहायताकेलिये सदा तुम्हारे पास रहेंगे। विना तुम्हारी पूजा किये कोई काशीमें मुक्ति न पा सकेगा।

भैरव—पुराणानुसार जिससमय अंधक राक्षसके साथ शिवजीका युद्ध हुआ था, उससमय अंधककी गदासे शिवजीके सिरके चार टुकड़े हो गये थे और उनमेंसे लहूकी धारा बहने लगी थी जिससे पाँच भैरवोंकी उत्पत्ति हुई थी। तांत्रिकों और कुछ पुराणोंके अनुसारभी भैरवोंकी संख्या साधारणतः आठ मानी जाती है। नामोंमें मतभेद है। संहारभैरव, असितांग, रुरु और क्रोधभैरवको दोनों मानते हैं। पद १०, ११ में 'भैरव' की उत्पत्ति दूसरे प्रकारकीभी कह आये है। काशी माहात्म्यके कालभैरवके अतिरिक्त आठ भैरव और कहे हैं। इस प्रकार स्पष्ट हो गया कि दंडपाणि और भैरव दो पृथक् पृथक् नाम हैं।

(ख) 'लोलदिनेस तिलोचन लोचन' इति। लोलार्क और तिलोचन दोनों नाम नेत्र संबंधी हैं, यही सादृश्य है।

(ग) 'करन घंट घंटासी' इति। पदमें गौके अंगोंमें अबतक 'कर्ण' नहीं कहे गये और घंटा अंग नहीं है। इससे 'कर्ण' और 'घंट' को पृथक् पृथक् दो शब्द मानकर अर्थ करनेसे '(दो) कर्ण घंट और घंटा हैं' यह अर्थ होगा। परंतु प्रायः सभी टीकाकारोंने 'कर्णघंट घंटा है' यही अर्थ किया है। * परन्तु इस अर्थमें यह त्रुटि है कि अभी काशी काम-

---

*१ घंटाकर्ण—शिवजीका एक उपासक था जो कानोंमें इसलिये घंटा बाँधे रहता था कि जब कहीं राम, नारायण या विष्णु नाम लिया जाय तब वह अपना सिर हिला दे और घंटेके शब्दके कारण वह नाम न सुन पावे। इसके नामसे कर्णघण्टेश्वर महादेव हैं और वह महल्लाभी इसी नामसे ख्यात हो गया है।

२ घंट और कर्णका संबंध है। घंटाकर्णका संबंध घंटा और कर्ण दोनोंसे है। इसलिये यदि 'कर्ण' का अन्वय दो बार कर लें तो 'कर्ण

धेनुके अंगोंका वर्णन किया जा रहा है इस नख शिख वर्णनमें काशी कामधेनुके कर्ण (कान) रह जाते हैं जिससे एक तो नख शिख अधूरा रहा जाता है और दूसरे वह बूची (बिना कानकी) कहलायेगी। अतत: इस दीनकी समझमें तो घंट और घंटाको काशी कामधेनुके कान मानना चाहिये।

२ 'सुरसरि सुख सुखमासी' इति। गंगाजीके तरंगोंके विलासका, सदा किनारेपर गँभीर जलका, निरंतर स्थिरतासे बहनेका और हिंसक जलचर (कछुए, मगर आदि) से रहित होनेसे स्नानादि इत्यादिका सुख 'सुरसरि सुख' है। सुरसरि सुख और शशि मुखकी सुखमामें समानता यह है कि परम शोभासेभी सुख होता है। यथा, 'देखि सीय सोभा सुख पावा।' (बा०) † यहाँतक अंगोंका वर्णन हुआ।

३ (क) 'स्वारथ परमारथ परिपूरन पंचकोस महिमासी।' इति। 'पंचक्रोशी' और 'कामधेनुकी महिमा' में दातृत्व गुणकी समानता है। पंचक्रोशी स्वार्थ परमार्थ परिपूर्ण है। स्वार्थसाधक परमार्थदायक है और कामधेनु चारों पदार्थ देती है। अर्थ, धर्म और काम 'स्वार्थ' है, मोक्ष परमार्थ है।*

कर्णघंट और घंटा हैं' यह अर्थ हो सकेगा जिसमेंभी फिर कोई शंका नहीं रहती। विज्ञ पाठक विचार कर लें।

३ टीकाकारोंका मत कि '(गलेका) घंटा घंटाकर्ण है' ठीक माननेमें आपत्ति यह है कि घंटा गौका अंग नहीं है और कर्ण अंगका नखशिखमें वर्णन करना बहुत आवश्यक है।

† भावार्थान्तर—"गायके सुख होता है। आंतरिक सुख और बाहर तनमें शोभा रहती है। वैसेही यहाँ काशीमें मणिकर्णिका सुख है। सुरसरिमें स्नानादिका सौलभ्य सुख है। सुरसरि सुखरूप है और निकटका दिव्य घाट मंदिर विकट धारा आदि शोभा सरीखे हैं।" (वै०, ङु०)

* पंचक्रोशीकी महिमा इतनेसे हद है कि शंकरजी इसकी स्वयं प्रदक्षिणा करते हैं। सनत्कुमारसंहितामें वे कहते हैं कि 'दक्षिणे चोत्तरे चैव ह्यने सर्वदा मया। क्रियते क्षेत्रसाक्षिण्यं भैरवस्य भयादपि॥' मैं भैरवके भयसे दोनों अयनों में (उत्तरायण और दक्षिणायन) इसकी परिक्रमा सदा

(ख) 'विश्वनाथ पालक कृपाल चित' इति। गौके पालने और लालन करनेवाले होते हैं। पालनेवाला प्राय: ग्वाल या और कोई पुरुषही होता है और घरकी स्त्रियाँ बराबर उसको देखती रहती हैं। यही बात यहाँ कहते हैं। चारा पानीका प्रबंध पालक करता है। उसको दयालु होना चाहिये। नहीं तो आजकलके समान गौको दुहभर लेंगे, गायको भूखी मारेंगे, मैला खानेको छोड़ देंगे। अतः 'कृपाल चित' विशेषण दिया। दयापूर्वक पालन पोषण करनेवाले विश्वनाथजी हैं। ये काशीपति हैं। गिरिजाजी घरकी मालिकिनि (गृहस्वामिनी) हैं। अतः उनका लालन करना कहा। शची, शारदा और अष्टसिद्धियाँ मनोवाञ्छित ऐश्वर्यकी प्राप्तिकेलिये पूजती हैं।

४ 'सिद्धि सची सारदा पूजहिं मनु जुगवत रहति रमा सी' इति। इसका एक अर्थ पद्यार्थमें दिया है। बाबा रामदासजी अर्थ करते हैं कि 'अष्टसिद्धियाँही शची और शारदा हैं जो इसे पूजती हैं।' वेदांतशिरोमणि श्रीरामानुजाचार्यजी महाराज इसका भावार्थ यह कहते हैं कि "शची, शारदा और सिद्धियाँ सेवा करते हुए काशीके मनोनुकूल इसीतरह चलती हैं जैसे कि रमाजीकी सेवा करके उनके मनोनुकूल चलती हैं।" यहाँ 'सी' उपमावाचक है। 'रमा सी' अर्थात् 'रमाके समान'। यथा 'संतसमाज पयोधि रमा सी।' 'श्रियः श्रीश्चे भवेग्या कीर्तेः क्षितेः क्षमा।' (बाल० रा०) पद्यार्थमें दिये हुए अर्थके अनुसार भाव यह है कि इन्द्राणी आदि तो मनोरथ

करता हूँ। नारदीयपुराणमें शिवजीने इसका माहात्म्य कहा है कि इसकी परिक्रमासे सारी पृथ्वीकी परिक्रमा हो जाती है। 'काशी प्रदक्षिणायेन कृत त्रैलोक्य पावनी। सप्तद्वीपा साब्धिशैला कृता तेन प्रदक्षिणा ॥' काशीखण्ड अ० ४५ में चैत्र कृ० १ को इसकी परिक्रमाका बड़ा फल बताया है। यथा, 'चैत्रकृष्ण प्रतिपदि तत्र यात्रा प्रयत्नतः। क्षेत्रविघ्नप्रशान्त्यर्थं कर्तव्या पुण्यकृज्जनः। ५२।' (श्रीहरिजनलालकी श्रीकाशी वार्षिक यात्रावलीसे)

चाहती हैं। अतः उनका पूजना कहा। रमाका मन 'जुगवना' कहा। रमाजी सब ऐश्वर्यकी अधिष्ठात्री शक्ति (देवी) हैं। यथा, '**रमानाथ जहँ राजा सो पुर बरनि कि जाइ। अनिमादिक सब संपदा रही अवध सब छाइ॥**' (उ०) रमा उसकी खातिरदारी करती हैं, रुचि देखती रहती हैं कि इसको क्या चाहिये, जो इसे ज़रूरत हो वही उसे दें। वह सबको चारों फल देती है। कभी उसके ऐश्वर्यमें कमी न होने पावे यह रमाजी बराबर देखती रहती हैं और मुक्ति प्रदान करनेकेलिये तो बिन्दुमाधवरूपसे लक्ष्मीपति यहाँ रहतेही हैं, साथमें रमाभी हैं।*

श्रीलमगोड़ाजी लिखते हैं कि 'स्वामी विवेकानन्दने ठीकही लिखा है कि किसी स्थान विशेषकी आध्यात्मिक महानताका विचार तर्कके विरुद्ध नहीं। जहाँ वातावरणमें सतोगुणकी प्रधानता है वहीं तो तीर्थ कहे जाते हैं। सामवेदमें स्पष्ट मन्त्र हैं जिन्हें आप जयदेवजी विद्यालंकारके भाष्यमेंभी देख सकते हैं जिनमें स्पष्ट है कि यहाँके शिखरपर और नदियोंके तटपर 'मेधावी' पुरुष बनते हैं। क्यों? यहाँके वातावरणका असर बुद्धि (मेधा) पर नहीं? दूसरी ओर भागवतका कथन है कि संत तीर्थ बनाते हैं। यह महात्माओंके तपका प्रभाव नहीं तो क्या है? शंकरजीने यदि हमारेलिये काशी, ईसाने जेरोसेलम और एक इसलामी महात्माने काबा (मक्का) बना दिया तो आश्चर्य क्या?'

अनुसंधान [२२]

पंचाच्छरी प्रान मुद माधव गव्य सुपंचनदा सी।
ब्रह्म जीव सम राम नाम दोउ[१२] आखर बिश्वबिकासी॥ ७॥

---

*महाभारत आश्वमेधिक पर्वमें कहा गया है कि रति, मेधा, क्षमा, स्वाहा, श्रद्धा, शान्ति, धृति, स्मृति, कीर्ति, दीप्ति, क्रिया, कान्ति, तुष्टि, पुष्टि, संतति, दिशा और प्रदिशा आदि देवियाँ सदा कपिला गौका सेवन किया करती हैं।

१२ जुग—भ०, मु०, वै०, दी०, वि०। दोउ—प्रायः और सबोंमें।

चारितु चरित करम कुकरम करि मरत जीवगन घासी।
लहत परमपद पय पावन जेहि चहत प्रपंच उदासी॥ ८॥
कहत पुरान रची केसव निज कर करतूति कला सी।
तुलसी बसि हरपुरी राम जपु जौं[13] भयो[14] चहै सुपासी॥ ९॥

शब्दार्थ—पंचाच्छरी (पंचाक्षरी) = शिवमंत्र, 'नमःशिवाय' जिसमें पाँच अक्षर हैं।* माधव = माधवभी कई हैं परन्तु इनमेंसे बिन्दुमाधव विष्णु विग्रह तीर्थ विशेष हैं जो पंचगंगापर थे। यवनराजाके आक्रमणके समय वह मूर्ति वहाँसे हटा दी गयी। एक माधवकी मूर्ति एक गुजराती ब्राह्मणके यहाँ काठकी हवेलीके पीछे कही जाती है। पर मैंने वहाँ जाकर जब जाँच ताँच की तो उन्हीं लोगोंसे मालूम हुआ कि वह मूर्ति बेनीमाधव है न कि बिन्दुमाधवकी। अब जो विग्रह बिन्दुमाधव नामसे पंचगंगापर मंदिरमें स्थापित है वह दो सौ वर्षके लगभगकी है। पुराना मंदिर यवनों-द्वारा गिराकर मसजिद कर लिया गया। गव्य = गौसे उत्पन्न वा प्राप्त, पंचगव्य। गौसे प्राप्त होनेवाले पाँच द्रव्य जैसे दूध, दही, घी, गोबर और मूत्र

१३ जौं—६६। जौ—रा०। जो—प्रायः औरोंमें। १४ भा—मु०।

*'पंचाक्षर' इति। श्रीगौरीशंकरजी गनेड़ीवाला लिखते हैं कि महादेवजीने इसका माहात्म्य पार्वतीजीसे यों कहा है कि 'प्रलयकालमें स्थावर, जंगम, देव, असुर और नाग इत्यादि नष्ट हो जाते हैं। तुमभी प्रकृतिके रूपमें लीन हो जाती हो। तब हम एकाकी रहते हैं। कोई दूसरा अवशिष्ट नहीं रहता। उससमय वेद और शास्त्र हमारी शक्तिद्वारा पालन किये हुए पंचाक्षर मंत्रमें निवास करते हैं। तब हमारी प्रकृतिही मायामय शरीर धारण कर नारायण रूपसे समुद्रमें शयन करती है। उसके नाभीकमलसे पंचमुख ब्रह्मा उत्पन्न हो सृष्टि करनेकी सामर्थ्यकेलिये प्रार्थना करते हैं। एक बार ब्रह्माजीकी प्रार्थना सुन उनके हितकेलिये मैंने पाँचमुखोंसे पाँच अक्षरोंका उच्चारण किया। उन वर्णोंको ब्रह्माजीने पाँचमुखोंसे ग्रहण किया और वाच्य वाचक भावकेद्वारा परमेश्वरको जाना।' इन पाँच अक्षरोंके वाच्य शिवजी है। यह पंचाक्षर शिवजीका वाचक है। [किसी ग्रन्थका प्रमाण इस लेखमें नहीं दिया गया है। शिवाङ्क पृष्ठ ३९० से उद्धृत।]

जो बहुत पवित्र माने जाते हैं और पापोंके प्रायश्चित्त आदिमें खिलाये जाते हैं। प्रत्येक द्रव्यका परिमाण इस प्रकार है। घी, दूध, गोमूत्र एक एक पल, (चार तोला वा सोलह तोला) दही एक प्रसृति (१६ तोला) और गोबर तीन तोला। पंचनदा = पंचगंगा। यह काशीका एक प्रसिद्ध स्थान है जो मणिकर्णिकाके समीप है। यहाँ गंगाजीके साथ किरण और धूतपापाका संगम कहा जाता है। ये दोनों नदियाँ अब पटकर लुप्त हो गयी हैं। गंगा, यमुना, सरस्वती, किरण और धूतपापा, अथवा गंगा, वरुणा, असी, किरण और धूतपापा इन पाँच नदियोंका समूह होनेसे पंचनद नाम पड़ा। आखर = अक्षर। बिश्वबिकासी = विकास। किसी पदार्थके उत्पन्न होकर अंत या आरंभसे भिन्न भिन्न रूप धारण करते हुए उत्तरोत्तर बढ़नेको 'विकास' कहते हैं। जैसे बीजसे पेड़ोंका और गर्भादिसे शरीरका विकास, इसी प्रकार रकार मकार (राम) से सृष्टिका विकास हुआ। 'विकास' का दूसरा अर्थ 'प्रकाश' है। यथा '**ध्रुव बिश्वास अवीध राका सी। स्वामि सुरति सुरबीथि बिकासी।**' (अ०) प्रसार और फैलावभी इसके अर्थ हैं। इसतरह 'विश्वविकासी' का अर्थ हुआ कि जगतके प्रकाशक। उन्हींकी सत्ता (चैतन्यता) से जड़ जगत् सत्य चैतन्य प्रतीत हो रहा है। यथा '**जगत प्रकास्य प्रकाशक रामू।**', '**जासु सत्यता ते जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया॥**' (बा०) चारितु = पशुओंके चरनेका चारा। यथा '**धरनि घेनु चारितु चरित प्रजा सुबच्छ पेन्हाय। हाथ कछू नहिं लागि है किये गोड़की गाय॥**' (दो०) पशुओंके खानेकी घास, पत्ती, डंठल आदि वस्तुओंको 'चारा' कहते हैं और घूम घूमकर घास आदि चारा खानेको 'चरना' कहते हैं। घूम फिरकर चारा चरनेसे दूध अधिक और उत्तम होता है। जीवगन=(जीवगण) यहाँ जीवसे प्राणी वा प्राणियोंके शरीर अभिप्रेत हैं। क्योंकि जीव पदवाच्य भोक्ता, चैतन्य, अपरिच्छिन्न, निर्मल, ज्ञानस्वरूप और नित्य कहा गया है। घासी = घास, तृण आदि चारा। टि० १२ देखिये। प्रपंच = संसार और उसके व्यवहारोंका विस्तार, जंजाल इत्यादि। क्षिति, जल, पावक, समीर और आकाश इन पंचतत्त्वोंके पंचीकरण

प्रकृतियोंसे अनेक भेदोंके विस्तारको संसार वा प्रपंच कहते हैं। यथा, 'बिधि प्रपंच गुन अवगुन साना'। 'लागे लाभ न हानि कछु तिमि प्रपंच जिय जोउ।' (अ०) उदासी = विरक्त, त्यागी, विषयोंसे अलग रहनेवाला। प्रपंची उदासी = प्रपंचशून्य। यथा 'नाम जीह जपि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच बियोगी॥' (बा०)। उदासी और वियोगीको पर्यायवाची शब्द सूचित किया है। केशव = भगवान्‌का एक नाम है। विशेष टि० ६ देखिये। करतूति (करतूत, सं० कर्तृत्व) = गुण, हुनर, कलाकौशल। यथा 'कहि न जाइ कछु नगर बिभूति। जनु एतनिय बिरंचि करतूती। (अ०) कला = किसी कार्यको भली भाँति करनेका कौशल। कारीगरी। रचना = कारीगरीके साथ सँवारकर बनाना, निर्माण करना। सुपासी = परम सुखी। सुपास = सुख, सुभीता। यथा 'चित्रकूट गिरि करहु निवासू। तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू॥' (अ०)

पद्यार्थ:—पंचाक्षरी मंत्र इसका प्राण है, माधव आनंद है, सुंदर पंचगंगा पंचगव्य है, विश्वमात्रके विकास करनेवाले श्रीरामनामके दोनों अक्षर ब्रह्म और जीवके समान हैं। ७। (कामधेनु चारा चरती है, यहाँ काशीरूपी कामधेनु) प्राणी जो भले बुरे कर्म करके मरते हैं, वही कर्म-कुकर्मरूपी घासका चारा चरती है।* (मरनेपर वे प्राणी) परमपदरूपी पवित्र दूध प्राप्त करते हैं, जिसे विरक्त योगी चाहते हैं।८। पुराण कहते हैं कि केशव भगवान्‌ने इसे अपने हाथों रचा है। यह उनके कला कौशलका नमूना तद्रूप वा मूर्ति है। तुलसीदासजी कहते हैं कि यदि तू सुखी होना चाहता है तो हरकी पुरीमें बसकर राम राम जप। ९।

---

*दूसरा अर्थ—' सुकर्मकुकर्मरूपी चारा चरती है जो जीवगणरूपी घासी (अर्थात् घास देनेवाले, सुकर्मकुकर्म करनेवाले) मरते हैं।

वीरकविजीका अर्थ—सुकर्मकुकर्म करके मरनेवाले जीवसमूहोंके चरित्रही चरनेकी घास (चारा) है।' वे 'चारितु' का अर्थ (चरित्र) लिखते हैं। वैजनाथजी और शुक्लजी ' चारितु ' का अर्थ ' चरहा ' (चरागाह) लिखते हैं।

टिप्पणी—१ 'पंचाच्छरी प्रान' इति। प्राणभी पाँच माने गये हैं। प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान। मंत्रमेंभी पाँच अक्षर हैं। न, मः, शि, वा, य। यही दोनोंमें समानता है। प्राण शरीरकी उस वायुका नाम है जिससे मनुष्य जीवित रहता है। महाभारत आश्वमेधिक-पर्व ब्राह्मण ब्राह्मणी संवादान्तर्गत पंचप्राणोंके पारस्परिक संबंधके विषयमें कहा गया है कि "वायु प्राणकेद्वारा पुष्ट होकर अपानरूप, अपानके द्वारा पुष्ट होकर व्यानरूप, व्यानसे पुष्ट होकर उदानरूप और उदानसे पुष्ट होकर समानरूप होता है। अपान प्राणके वशमें है और प्राण अपानके। समान व्यानके अधिकारमें है और व्यान उदानके वशमें है। पाँचों प्राणोंका धारणरूप धर्म एक दूसरेपर अवलंबित है। अतः ये सभी अपने अपने स्थानपर श्रेष्ठ हैं। ये एक दूसरेके हितैषी रहकर परस्पर-की उन्नतिमें सहायता पहुँचाते हुए एक दूसरेको धारण किये रहते हैं।"

पंचाक्षरी (नमःशिवाय) को प्राणसे रूपक देनेका भाव यह है कि काशीमें जीवोंके स्वास्थ्यकी रक्षा पंचाक्षरीसे होती है। स्मरण रहे कि पंचप्राण (सबके सब) मनुष्यके शरीरके भिन्न भिन्न स्थानोंमें काम किया करते हैं और उनके प्रकोपसे मनुष्यके शरीरमें अनेक प्रकारके रोग उठ खड़े होते हैं। जिस वायुको नथुनेद्वारा साँससे भीतर ले जाते हैं उसे 'प्राण' कहते हैं। इसका मुख्य स्थान हृदय है। पंचाक्षरों और पंचप्राणोंका मिलान और माहात्म्य नीचे दिया जाता है।

पंचप्राण	प्राणोंकेस्थान	पंचाक्षर	पंचाक्षर माहात्म्य (रुद्रयामलग्रंथसे)
प्राण	हृदय	न	'नकारे धनसंपत्तिर्बहुलाभो भविष्यति। आरोग्यं सफलं कार्यं भवेत्तत्र न संशयः॥' धनसंपत्ति, बहुलाभ, आरोग्यता, कार्य सफलता प्राप्त होती है।
अपान	गुदा	मः	'मकारे निधनंनाशमापदश्च पदे पदे। न भोगो लभते तस्य तत्सर्वं निष्फलं भवेत्॥' आपदा, अनिष्ट, अमंगलका नाशक है।

समान	नाभि	शि	'शकारे कार्यसिद्धिश्च सफलं च दिने दिने। अर्थलाभंभवेन्नित्यं सर्वलाभं भविष्यति ॥' कार्यसिद्धि सबप्रकारका लाभ देता है।
उदान	कंठ	वा	'वकारे धननाशं च तत्सर्वं निष्फलं भवेत्। अकारे विजयं सौख्यं सर्वलाभं भविष्यति ॥' यश देता है।
व्यान	शरीरभर	य	'यकारेचार्थलाभश्च धनधान्यसमन्वितः। सौभाग्यं भवेत्तस्य शुभं भवति सर्वदा ॥' शुभ सौभाग्य धनधान्यादिका दाता है।

२ (क) 'मुद माधव' इति विष्णु भगवान् माधवके काशीमें मूर्तिरूपसे विराजमान होनेकी कथा काशीखण्डमें इस प्रकार है कि "एक बार शिवजीकी सम्मति पाकर वे यहाँ आये और राजा दिवोदासको (जिसने शिवजीको काशीसे निकाल दिया था) यहाँसे निकाला। उस समय अग्निविन्दु ऋषिने भगवान्‌की स्तुति करके उनको प्रसन्न कर लिया और यह वर माँगा कि मोक्षाभिलाषियोंके हितार्थ आप पंचनदतीर्थपर अवस्थान करें और हमारे नामसे प्रसिद्ध होकर सबको मुक्ति प्रदान करें। 'एवमस्तु' कहकर आधा नाम 'बिन्दु' अपने नाममें जोड़कर 'बिंदुमाधव' नामसे भगवान्‌ने यहाँ वास करनेको कहा और यहभी कहा कि पंचनदतीर्थभी बिंदुतीर्थ कहलाएगा।" मुदको माधव कहा, क्योंकि भगवान् आनंदकंद हैं।

(ख) 'गव्य सुपंचनदा सी' इति। शब्दार्थमें बताया है कि पंचगव्यसे शारीरिक पापोंका प्रायश्चित होता है, देहकी शुद्धि होती है। प० पु० सृष्टि० ४५ में ब्रह्माजीका वाक्य है कि "गौओंकी प्रत्येक वस्तु पावन है। गौका मूत्र, गोबर, दूध, दही और घी इन पंचगव्योंका पान कर लेनेपर शरीरके भीतर पाप नहीं ठहरता। इसलिये धार्मिक पुरुष प्रतिदिन गऊका दूध, दही और घी खाया करते हैं। गव्य पदार्थ संपूर्ण द्रव्योंमें श्रेष्ठ, शुभ और प्रिय हैं। जिसको गायका दूध, दही और घी

खानेका सौभाग्य नहीं प्राप्त होता, उसका शरीर मलके समान है।" पंचगंगातीर्थस्थानकाभी यही फल है, यही दोनोंमें समानता है। इसे विष्णुतीर्थभी कहते हैं। का० शु० ८–१५ तथा एकादशीको इसके दर्शन और स्नानका बड़ा माहात्म्य कहा गया है।

३ 'ब्रह्म जीव सम राम नाम दोउ आखर०' इति। (क) 'सम' का भाव कि 'ब्रह्म और जीव दोनों निरन्तर सखारूपसे समस्त शरीरोंमें साथ साथ निवास करते हैं। यथा 'तैं निज करमजाल जहँ घेरो। श्रीहरि संग न तज्यो तहँ तेरो।' (१३६), ब्रह्मजीव सम सहज सँघाती।', 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समाने वृक्षे परिषस्वजाते।' (श्वे० उ०) तथा 'ज्ञा ज्ञौ द्वावजौ' (श्वे० उ०)। वैसेही रकार मकारका संग कभी नहीं छूटता। इनका सहज स्नेह समुद्र सेतुबंधनसे निर्विवाद सिद्ध है।

(ख) 'ब्रह्म बिस्वबिकासी' इति। भाव कि जैसे ब्रह्म और जीवके बिना शरीर एवं प्राणभी नहीं रह सकते, वैसेही काशीरूपी शरीरमें जितनीभी चेतनाशक्ति है वह सब रामनामसे है। इसीको शिवजी निरन्तर जपते और गली गली उपदेश करते हैं। यथा, 'पेयं पेयं श्रवणपुटके रामनामाभिरामं, वीथ्यांवीथ्यामटति जटिलं कोपि काशीनिवासी॥' राम नामके दोनों अक्षरोंको ब्रह्म और जीव समान कहा। इनमेंसे कौन अक्षर ब्रह्म और कौन जीव सूचित किया गया है? राकारको ब्रह्म और मकारको जीव स्वरूप दर्शाया है। यथा 'रा शब्दस्तु परब्रह्म मकारो तस्यसेवकः'। रुद्रयामलमें श्रीशिवजीने दोनों अक्षरोंका अर्थ विस्तारसे कहा है। यथा 'रकारार्थो राम सगुण परमैश्वर्य जलधिर्मकारार्थो जीवः सकल विधि कैंकर्यनिपुणः। तयोर्मध्याकारो युगल संबंधयोरनयोरनन्यार्हं ब्रूते त्रिनिगमस्वरूपोऽयमतुलः॥' 'र' का अर्थही है 'सर्वगुणविशिष्ट ब्रह्म' और 'म' का अर्थ है 'दासभूत जीव'। दोनोंके मध्यका आकार सेवक और सेव्यको अपृथक् सिद्ध बतलाता है। सेव्यसे सेवक अतिरिक्त नहीं है। यही भाव 'ब्रह्म जीव सम राम नाम दोउ आखर' में है।

४ 'चारितु चरति करम कुकरम' इति। भाव यह है कि जैसे घास गऊके पेटमें जानेसे दूध बन जाती है वैसेही सुकर्मी कुकर्मी काशीमें मरनेसे मुक्त हो जाते हैं। यहाँ शुभ कर्म हरी घास है और कुकर्म सूखी है। शुभ कर्मोंसे स्वर्गादिकी प्राप्ति होती है, अशुभसे नरक आदिकी। शुभाशुभ दोनोंही कर्म बंधनमें डालनेवाले हैं। जबतक दोनोंमेंसे कोईभी शेष रहते हैं तबतक आवागमन नहीं छूटता। शुभाशुभ कर्म जबतक भस्म न हो जायँ तबतक जन्ममरणसे निवृत्ति नहीं हो सकती। काशीकी महिमा है कि '**मरणान् मुक्तिः**'। यहां विशेषतः कर्मकांडी रहते हैं। तब मुक्ति कैसे हो? क्योंकि ज्ञानी और उपासकके मुक्तिप्रकरणमें शास्त्रोंका कहना है कि ब्रह्मवेत्ता भगवदुपासकके शरीरका चाहे जहाँ जैसे जब (देशकालादिके नियम बिना) परित्याग होता हो वह अर्चिरादि मार्गसे भगवद्धामको चलाही जाता है और उसके पुण्य प्रशंसकोंमें (साधुसेवा इत्यादि करनेवालोंमें) तथा उसके पाप (भक्तद्रोहियों) निंदकोंमें चले जाते हैं। यथा '**देहावसानकाले सुकृत दुष्कृते मित्रामित्रयोर्निक्षियन्**' (य० म० दी०) परन्तु कर्मकाण्डी लोगोंका तो पुण्य पाप दूसरेमें जाताही नहीं। जब शुभाशुभ कर्म समूल नष्ट हो जाते हैं तभी मोक्षकी प्राप्ति होती है ऐसा श्रुतिका आदेश है। यथा '**सदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदिस्थिताः। अथमर्त्योऽमृतोभिभवत्यत्र ब्रह्मसमश्नुते**'। का० उ० २।३।१४। तथा '**तदा विद्वान्पुण्यपापेति धूय निरंजनः परमं साम्यमुपैति**॥ (मु० ३।१।३।)' अतएव इस शंकाकी (मुक्ति कैसे हो) निवृत्तिकेलिये कहते हैं कि काशीपुरी उन समस्त कर्मोंको स्वयं पचाकर जीवोंको मोक्षप्राप्तियोग्य बनाकर परमपद देती है।

यहाँ वेद विश्वासी जीवगण वत्स हैं। वत्स जब पैदा होता है तब गऊ उसपर लिपटा हुआ मल स्वयं चाटकर बछड़ेको निर्मल बना देती है। इसी तरह काशी कामधेनु वेद विश्वासी अपने वत्सको निर्मल बनाकर परमपदप्राप्तिरूपी दूध पान कराती है।

५ 'जेहि चहत प्रपंच उदासी' इति। भाव यह है कि अन्यत्र रहनेवाले विरक्त योगी, ज्ञानीभी इसकेलिये तरसते रहते हैं। वही यह मुक्ति यहाँ

कुकर्मीओंकोभी सहजही प्राप्त हो जाती है। यथा 'जोग कोटि करि जो गति हरि सों मुनि माँगत सकुचाहीं। बेदबिदित तेहि पद पुरारिपुर कीट पतंग समाहीं।' (४), 'जो गति अगम महामुनि दुर्लभ कहत संत श्रुति सकल पुरान। सो गति मरनकाल अपने पुर देत सदासिव सबहिं समान॥' (३)

६ 'कहत पुरान रची केसव निज कर०' इति। (क) भगवान्‌के सब कार्य संकल्पमात्रसे होते हैं। यहां 'निज कर' से 'रची' कहकर मानसी संकल्पसे उसके निर्माणका निषेध करते हुए उसमें परिश्रम करना दिखाया है। ध्यान देकर, सँवारकर निर्माण किया तब उसके ऐसे गुणसंपन्न होनेमें आश्चर्यही क्या?

(ख) 'केशव' इति। भगवान्‌के 'केशव' नामकी व्युत्पत्ति इस प्रकार कही जाती है कि (१) ब्रह्मा और शिवजीकी उत्पत्ति इनके अंगसे हुई, अतः केशव नाम हुआ। (२) 'के जले शववच्छयनं करोतीति केशवाः।' प्रलय महार्णवमें विना किसी घबराहट वा कष्टके शववत् निश्चेष्ट होकर शयन करनेसे 'केशव' कहे जाते हैं। (३) 'कश्च इशश्च केशौ तौ वहतीति केशवः।' ब्रह्मा और शिवको वहन (धारण, रक्षण) करनेसे 'केशव' कहे जाते हैं। (४) हरिवंशपुराण २७९। ४७ में शिवजीका जो वाक्य है कि "क" इति ब्रह्मणो नाम ईशोऽहं सर्वदेहिनाम्। आवांतवांगसम्भूतौतस्मात् नामवान्।" "क" (ब्रह्मा) और सर्वप्राणियोंका ईश्वर जो मैं (शिव) हूँ, हम दोनों आपके अंगसे उत्पन्न हुए इस कारण आप केशव नामवाले हैं। भगवद्गुणदर्पणभाष्यमेंभी केशवनामकी निरुक्ति ऐसीही दी गयी है। 'ब्रह्मेशयोः स्वांगजत्वात् केशवः परिकीर्त्तितः। (५) 'अंशवो ये प्रकाशंते मम ते केश संज्ञिताः। सर्वज्ञः केशवं तस्मात् प्राहुर्मां द्विजसत्तमाः॥ आदिकेशवनामक एक तीर्थ काशीमें पूर्वदिशामें वरणातटपर है।

(ग) 'करतूति कला सी' इति। अपना सारा कलाकौशल इसके बनानेमें खर्च कर दिया है। करतूति और कला पर्यायी शब्द हैं।

इससे एकका अर्थ 'कला कौशल' और दूसरेका स्वयं 'कला' यहाँ गृहीत होगा। भावार्थ यह हुआ कि कारीगरीका जितना चातुर्य वा कौशल है उसके तद्रूप, उसीकी मूर्त्तिसी यह काशी बनायी गयी है।

(घ) 'राम जपु जौं भयो चहै सुपासी' इति। इससे जनाया कि काशीपुरीमेंभी सबका सुपास-श्रीरामनामसेही होता है, अन्यथा नहीं।

पं० देवदत्तशास्त्रीजी लिखते हैं कि गोस्वामीजीने काशीस्तुति करके अपने हृदयके अनेक गूढ़तम भावोंको व्यक्त किया है। इस वर्णनसे वैष्णवोंकी सांप्रदायिक संकीर्णताका पर्दा फ़ाश होता है। जो कट्टरपंथी वैष्णव शिवकी उपासनाका खण्डन करते हैं, उन्हें गोस्वामीजीके इस वक्तव्यसे शिक्षा लेनी चाहिये। तुलसीदासजी 'नमःशिवाय' को उतनाही महत्व देते हैं जितना 'रां रामायनमः' को। पंचाक्षरीको प्राण कहा हैं और रकार मकारको ब्रह्म और जीव। तुलसीदासजी काशीस्तुतिद्वारा अपने संप्रदाय, (वैष्णव) शिक्षास्थल (पंचगंगाघाट) और निवासस्थल (असी) का परिचय अनोखे ढंगसे स्पष्टरूपसे देते हैं। अन्तमें 'सुपासी' कहकर तो ग़ज़बही कर देते हैं। आत्मबोधन करते हुए कहते हैं कि 'हे तुलसी! यदि तू शैशवकालकी भाँति माता पार्वती और पिता शिवके-द्वारा प्राप्त हर प्रकारका सुख सुपास चाहता है तो अब हरपुरीमेंही रह।'

२३ राग-बसंत [कानरा-प्र०]

सब सोच बिमोचन चित्रकूट। कलिहरन करनकल्यान बूट ॥१॥
सुचि अवनि सुहावनि आलबाल। कानन बिचित्र बारी बिसाल ॥२॥
मंदाकिनि मालिनि सदा सींच। बर बारि बिषम नर नारि नीच ॥३॥
साखा सुश्रृंग भूरुह सुपात। निरझर मधुवर[1] मृदु मलय वात ॥४॥

शब्दार्थ—सोच=चिंता, दुःख। यथा 'तुलसीके दुहूँ हाथ मोदक है ऐसे ठाँय जाके जिये मुये सोच करि हैं न लरिको।' (बाहुक) बिमोचन=बिलकुल छुड़ानेवाला। कलि=पाप, कलह, अकल्याण। यथा

---

१ मधुकर—भा०, प्र०, ज०, ह०, रा०। मधुवर—बे०, मु०, भ०, बै० (टीकामें), ७४, दी०, वि०।

'कुपथ कुतर्क कुचालि कलि कपट दंभ पाखंड। दहन रामगुनग्राम जिमि ईंधन अनल प्रचंड।' कलिकी बाधा, कलिके पाप। बूट (सं० विटप)=वृक्ष, पेड़, पौधा। यथा 'प्राकृतिहूं बट बूट बसत पुरारी हैं।', 'सीतारामलखन निवास मुनिनको सिद्धि साधुसाधक विवेक बूट सो।' अवनि=पृथ्वी, भूमि। आलबाल=थाल्हा। बिचित्र=सुन्दर, विलक्षण। बारी=रूँधान। बाग, वृक्ष, खेत आदिकी प्राय: पशुओंसे रक्षाके-लिये चारों ओर बेरी, बबूल आदि कटीले वृक्षोंकी डालियों और कटीली झाड़ियोंको रूँधकर जो घेरा बना दिया जाता है, बाड़। यथा 'अस कवन सठ हठि कटि सुरतरु बारि करिहि बबूरही।' (कि०), 'रूँधहु करि उपाय बर बारी।' (अ०) घेरान। टि० २ देखिये। मंदाकिनी = यह नदी श्रीअनुसूयाजीके तपोबलसे अनुसूया पर्वतसेही निकलकर चित्रकूटमें बहती है। बारि=रूँधान। यथा 'जनु इंद्रधनुष अनेक की बर बारि तुंग तमाल ही।' (लं०) जल। 'विषम', 'बर बारि'=टि० ५ देखिये। सुशृंग=सुन्दर शिखर। शृंग=पर्वतका ऊपरी भाग, चोटी या कँगूरा। भूरुह=वृक्ष। सुपात=सुन्दर पत्ते। निर्झर =किसी ऊँचे स्थानसे निकला हुआ पानीका झरना या जलप्रवाह, सोता। मधुवर=महुवर, मधुचक्र, शहदका छत्ता। बुँदेलखंडके अशिक्षित जन अबभी शहदके छत्तेको 'महुवर' कहते हैं जो मधुवरका अपभ्रंश है। 'ध' और 'ह' बदल जातेही हैं। मृदु=मंद, धीमी धीमी। मलय=यह पर्वतका नाम है जिसपरके तथा जहाँतकके वृक्षोंतक इसके (मलय) चंदन वृक्षकी सुगंध पवनद्वारा पहुँचती है वहाँतकके समस्त (निंब, कंकोल, कुटजा आदि कड़वेभी) वृक्ष चंदनवत् सुगंधित हो जाते हैं। इसीसे यह शब्द समीर, पवन, वायु आदि शब्दोंके आदिमें समस्त होकर सुगंधित और दक्षिणी वायुका अर्थ देता है।

पद्यार्थ—चित्रकूट सब चिन्ताओंको एकदम छुड़ानेवाला, कलिके पापोंका हरने और कल्याणका करनेवाला वृक्ष है।१। (वहाँकी १२ कोसकी लंबी चौड़ी) पवित्र सुंदर भूमि इस वृक्षका थाल्हा है। बिचित्र बन इसकी लंबी चौड़ी रंग बिरंगकी विलक्षण बारी है।२।

मंदाकिनी मालिन है जो इसे अपने श्रेष्ठ जलसे सदा सींचती रहती है। तीक्ष्ण कठोर स्वभाववाले (कोल किरातादि) नीच स्त्री पुरुष इसकी श्रेष्ठ बारि हैं। ३। सुंदर शिखर शाखाएं हैं, वृक्ष सुंदर (हरे सघन) पत्ते हैं, झरने शहदके छत्ते हैं और श्रेष्ठ (शीतल), मंद, सुगंधित पवन है। ४।

नोट—१ श्रीसीतारामजीका विहारस्थल जानकर श्रीचित्रकूटके गुण गाते हैं। श्रीमद्गोस्वामीजीको श्रीरामलक्ष्मणजीके साक्षात् दर्शनभी यहीं श्रीरामघाटपर हुए थे। 'चित्रकूटके घाटपर भइ संतन की भीर। तुलसीदास चंदन घिसत तिलक देत रघुबीर॥' यह दोहा तो बच्चेसे बूढ़ेतककी जिव्हापर रहा करता है। फिर उनकी जन्मभूमिभी तो इसीके पास है!

२ चित्रकूटकी महिमाका वर्णन दो पदोंसे किया गया है। इस प्रथम पदमें चित्रकूटका वर्णन वृक्षके साङ्गरूपकद्वारा किया गया है। वृक्षकेलिये थाल्हा चाहिये जिसमें वह लगाया जाता है। उसकी रक्षाके लिये थाल्हाके चारों ओर बारी (घेरान) चाहिये। बारी कटीली होनी चाहिये जिसमें पशु वृक्षके पास न जा सकें। सींचनेवाला चाहिये जिसमें पौंधा सूख न जाय। इस रूपकमें वृक्षके ये सब अंग कहे गये हैं।

३ श्रीलालाभगवान्दीनजी लिखते हैं कि 'चित्रकूट तीन वस्तुओंका बोधक है। १ कामदगिरि, २ घनुषा नालेके पास वाली बस्ती, ३ बारह कोसका लंबा चौड़ा जंगल जिसके मध्यमें कामदगिरि है। यह पद समष्टिरूपसे तीनोंको लेकर और तीनोंको एक रूप मानकर कहा गया है। साहित्यिक विचारसे इस पदमें बहुतही उत्तम साङ्गरूपक अलंकार है।'

टिप्पणी—१ (क) 'सब सोच' अर्थात् लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकारकी चिन्ताएँ। यहाँ सुखभोगकी, कष्ट निवारणकी और अन्तमें भगवत् प्राप्ति इत्यादिकी चिन्ताएँ 'सब सोच' हैं। (ख) 'करन कल्यान बूट' से कल्पवृक्षकाभी भाव ले सकते हैं। मानस अयोध्याकांडमें कुछ महिमा ग्रंथकारने वर्णन की है। उसको

'सब सोच बिमोचन, कलिहरन करनकल्यान' का भावार्थ कह सकते हैं। यथा 'लषन दीख पय उतर करारा। चहुँ दिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा॥ नदी पनच सर सम दम दाना। सकल कलुष कलि साउज नाना॥ चित्रकूट जनु अचल अहेरी। चुकइ न घात मार मुठभेरी॥' 'भरत दीख बन सैल समाजू। मुदित छुधित जनु पाइ सुनाजू॥ ईति भीति जनु प्रजा दुखारी। त्रिबिध ताप पीड़ित ग्रह भारी॥ जाइ सुराज सुदेस सुखारी। होहि भरतगति तेहि अनुहारी॥'

२ 'कानन बारि बिसाल', 'बर बारि बिषम नरनारि' इति। प्रथम चित्रकूटके चारों ओरके बनको 'बारी' कहा और फिर नीच नर नारियोंको 'बर बारि विषम' कहा। 'बारी' का अर्थभी घेरान होता है। यथा 'रामचंद्र करकंज कामतरु बामदेव हितकारी। सिय सनेह बर बेलि बलित बर प्रेम बंधु बर बारी॥' (गी० उ०)। 'बारि' का अर्थभी 'घेरान' है। श० सा० में 'बारी' के औरभी अर्थ ये दिये हैं, १ वह स्थान जहाँ किसी वस्तुके विस्तारका अन्त हुआ हो। २ पेड़ोंका समूह या वह स्थान जहाँसे पेड़ लगाये गये हों। बगीचा। दो बार एकही शब्द आ जानेसे अर्थमें आपत्ति पड़ते देख टीकाकारोंने भिन्न भिन्न अर्थ किये हैं। बाबू शिवप्रकाशजीने 'बारी' का अर्थ 'बगीचा' किया है और यही अर्थ भट्टजी, वीरकवि, दीनजी और शुक्लजीने स्वीकार किया है। 'बारी' का अर्थ बाबू शिवप्रकाश और दीनजीने 'रुँधान, घेरा, कटीली झाड़ियाँ' इत्यादि किया है। वीरकविजी और वियोगीजीने 'जल' अर्थ किया है। वैजनाथजी और वियोगीजीने 'बारी' का अर्थ 'घेरा, रुँधान' किया है। 'बारी' का अर्थ 'बगीचा' संभवतः इस विचारसे किया गया है कि दो जगह 'रुँधान' कैसे कह सकते हैं? यदि कानन घेरा है तब नीच नर नारिको रुँधान कैसे कहेंगे? 'बगीचा' अर्थसे भाव यह होगा कि 'अपूर्व वृक्ष वाटिकामें लगाया जाता है। यह वृक्ष विचित्र काननरूपी बाटिकामें लगाया गया है।' (डु०)

'रुँधान, घेरा' अर्थ लेनेका अभिप्राय यह कहा जाता है कि प्रथम बार 'बाड़, घेरान' का लंबा, ऊँचा और सघन होना कहा है। जिस समयका यह वर्णन है उस समय चित्रकूटके चारों ओर घना जंगल रहा है। अबभी तीन तरफ़ तो खासा बन है। दूसरी बार 'बर बारि बिषम' कहकर जनाया है कि वह पूर्वकथित बारी विषम है, कटीली है। विषम नीच नर नारि, कोल भील किरात आदिही कटीली झाड़ियोंकी डालें वा झाड़ियाँ हैं जिनसे वह घेरान दृढ़ और दुर्गम है। 'बर बारि' का अर्थ वै०, भ०, वीरकवि, और वि० ने 'श्रेष्ठ जल' किया है। उनके भावार्थ क्रमसे ये हैं कि वै०—"कुटिल स्वभाववाले स्त्रीपुरुष तथा म्लेच्छ चांडालादि पतित जीव श्रेष्ठ जल है जिससे वृक्ष सींचा जाता है। सींचनेसे वृक्ष हराभरा रहता और फूलता फलता है। कुटिल नीच नर नारि स्नान करके पावन होते हैं। यह माहात्म्यही वृक्षका हरित रहना है। पावन होनेपर जो जपतपादि साधन बनता है वही फूलना है और अर्थ धर्म काम मोक्षकी प्राप्ति होना फलना है।" वि०—"विचित्र बन, उसे रूँधनेकेलिये बड़ी भारी बारी है। अपने उत्तम जलसे इस भाँति सींचती रहती है जैसे दुष्ट स्वभाववाले स्त्री पुरुष और नीच चांडाल आदि। तात्पर्य यह कि मंदाकिनीमें बड़े बड़े पापी और नीच जन स्नान करते हैं, पर उनके दुष्कर्मोंका प्रभाव वृक्षपर कुछ नहीं पड़ता, वह ज्योंका त्यों हरा भरा रहता है।" वीरकवि—"बन बड़ा बगीचा है जिसको मंदाकिनीरूपी मालिन श्रेष्ठ जलसे कठिन नीच स्त्री पुरुष रूपी पौधोंको सींचती है।" सू० दी० शुक्ल—"नीच स्त्री पुरुषोंकी विषमताही जलका उत्तम नित्य सींचना है।"

इन उपरोक्त अर्थोंसे दासकी समझमें रूपकको कोई लाभ नहीं होता और 'बिषम नर नारि नीच' शब्द व्यर्थसे हो जाते हैं, इनके न रहनेपरभी कोई हानि नहीं होती। 'बिषम नर नारि नीच' को 'श्रेष्ठ जल' अथवा 'पौधा' (जो शब्द मूलमें नहीं है) कहना दासकी समझमें तो कुछ ठीक नहीं जँचता। विज्ञ पाठक स्वयं विचार कर लें।

३ ' मंदाकिनी मालिनि सदा सींच । बर बारि ' इति । (क) वृक्षोंको सींचने, पौधोंको ठीक यथायोग्य स्थानोंमें लगाने और उनकी रक्षा करनेकी विद्या जानने और उसीका व्यवसाय करनेवाला पुरुष ' माली ' कहलाता है । यह काम प्रायः पुरुषही करते हैं । परन्तु यहाँ मालिनका सींचना कहा है, यहभी साभिप्राय है । इससे कविकी सावधानता, उनका सँभार और उनके रहस्यज्ञ होनेकी सूचना मिलती है । श्रीचित्रकूट श्रीसीतारामजीका विहार स्थल है । यथा ' रामकथा मदाकिनी चित्रकूट चित चारु । तुलसी सुभग सनेह बन सियरघुबीरबिहारु ॥ ' (बा०) अतएव यहाँ यह काम मालिन करती है । मालिन स्त्रीकेलिये मंदाकिनी स्त्रीलिंग शब्दकी उपमा दी गयी है ।

(ख) ' बर बारि बिषम नर नारि नीच ' इति । ' बर बारि ' दीपदेहरी है । ' मालिनि सदा सींच बर बारि ' और ' बर बारि बिषम नर नारि ' । बारि शब्द यहाँ ' जल ' और ' कटीली झाड़ियोंका घेरान ' दोनों अर्थोंमें प्रयुक्त हुआ है । बर बारि = श्रेष्ठ जल । ' बर बारि ' = दृढ़ कटीली झाड़ियोंका रुँधान जिसे कोई तोड़कर भीतर न जा सके अर्थात् अगम्य रुँधान ।

मंदाकिनी इस वृक्षको श्रेष्ठ जलसे सदा सींचती है । इस कथनसे जनाया कि यह नदी चित्रकूटभरमें है तभी तो चित्रकूटरूपी वृक्षको सींच सकती है ! काननको ' बारी ' और ' बिषम नर नारि नीच ' को ' बर बारि ' कहनेसे पाया गया कि चित्रकूटकी हद चारों दिशाओंके बनतक है और ये विषम नीच नर नारि उस बनमें रहते हैं ।

' बिषम ' भी दीपहरी है । ' बारि ' और ' नर नारि ' दोनोंमें लगता है । ' बारी ' के संबंधसे ' बिषम ' का अर्थ होगा ' भीषण; तीक्ष्ण काँटेदार ' । ' नरनारि नीच ' के संबंधसे उसका अर्थ होगा ' कठिन, कुटिल, तीक्ष्ण स्वभाववाले ' । यथा ' बन हित कोल किरात किसोरी । रची बिरंचि बिषय सुख भोरी ॥ पाहन कृमि जिमि कठिन सुभाऊ । तिन्हहिं कलेसु न कानन काऊ ॥ '

(ग) 'नर नारि नीच' इति । 'नीच' से जातिके नीच एवं पामर और पापात्मा जनाया । यथा 'हम जड़ जीव जीवनघाती । कुटिल कुचाली कुमति कुजाती ॥ पाप करत निसि बासर जाहीं । नहिं पट कटि नहिं पेट अघाहीं ॥ सपनेहु धरमबुद्धि कस काऊ ॥' (अ०) 'नीच नर नारि' को 'बर' (बारि) कहनेमें यहभी भाव हो सकता है कि यद्यपि ये नीच हैं तथापि चित्रकूटके निवास संबंधसे श्रेष्ठ हो गये हैं । (डु०)

४ 'साखा सुशृंग भूरुह सुपात' इति । (क) चित्रकूटरूपी वृक्षका थाल्हा, घेरान, सींचनेवाला और रुँधान किन कटीली झाड़ियोंका है यह कह चुके । वृक्षमें शाखाएँ, शाखाओंमें पत्ते और मधुमक्खीके छत्ते होते हैं । चित्रकूटरूपीवृक्षमें ये क्या क्या हैं यह अब कहते हैं । पत्ते होनेपर इनकेद्वारा पवनका संचार होता है । अतः शाखा, पत्ते, छत्ते और पवन क्रमसे कहे गये । (ख) 'सुपात' इति । पत्तोंकी सुंदरता सघन होनेमें है । सघन होनेसे छाया और वायु शीतल होगी । 'सुपात' कहकर जनाया कि ये पत्ते कभी झड़ते नहीं, सदा हरेभरे रहते हैं । प्राकृत वृक्षके पत्ते काल पाकर झड़ जाते हैं । इससे वे 'सुपात' नहीं हैं । (ग) शाखा ऊँचेपर वैसेही शृंग पर्वतोंपर, पत्ते बहुत और सघन वैसेही विविध प्रकारके वृक्ष बहुत और सघन यह समानता है ।

५ 'निर्झर मधुबर मृदु मलय बात' इति । 'मधुबर' का अर्थ हमने 'महुवर', 'शहदका छत्ता' किया है जो बुँदेलखंडकी बोली है और 'बर' को दीपदेहरीन्यायसे 'बात' के साथमें अर्थ करते समय ले लिया है । 'मृदु मलय बात' के साहचार्यसे 'बर' 'शीतल' अर्थ देता है, यही वायुकी श्रेष्ठता है । गर्म वायु 'बर' नहीं कहाती । 'बर' को साथ ले लेनेसे 'बर मृदु मलय बात' शीतल मंद सुगंध त्रिविध समीरका बोधक होता है । इस चरणका अन्वय हमने इस प्रकार किया है, 'निर्झर मधुबर (है), बर मृदु मलय बात (है) ।' त्रिविध समीरके अर्थके लिये 'बर' को दीपदेहरी माना और उपमेय और उपमान एकही है यह स्पष्ट करनेको 'बात' शब्दका अन्वय दो बार किया । आगेभी 'फल चारि चारु' में

'फल' का अन्वय दो बार होगा। क्योंकि यह दोनोंके साथ है। वायु जलके संबंधसे शीतल, वृक्षोंके कारण मंद और सुगंधित पुष्पोंके संबंधसे सुगंधित है। वै०, भ०, वीर, वि० आदिने 'मधु' और 'बर' को दो शब्द मानकर 'मधु' का अर्थ 'मकरंद', 'शहद' वा 'जल' किया है। इस तरह कतिपय महानुभावोंने भिन्न भिन्न अर्थ किये हैं। वै०, भ०, वि० 'पर्वतसे जो झरने बहते हैं वही वृक्षका उत्तम मकरंद रस है'। वीर—'झरनोंका उत्तम जल मकरंद है।' 'मृदु मलय बात' का अर्थभी टीकाकारोंने भिन्न भिन्न किया है। डु०— 'वृक्ष कोमल तथा सुगंधित होता है। यहां सुगंध वायु जो बहती है वही कोमलता और सुगंधता है। यहां वृक्षके आश्रयसे जो मंद, सुगंध तथा शीतल वायु बहती है वह यहां सर्वकाल बहती है' वै०—वृक्षसे मधुर सुगंध आती है। यहां शीतल मंद सुगंध बयारि जो चल रही है वही मृदु मलय अर्थात् मधुर सुगंध है।' भ०—'वृक्षमें कोमलता होती है सो यहां जो चंदनकी सुगंधसे युक्त पवन चलती है वही इसकी कोमलता है।' वीर—'सुगंधित पवन कोमलता है।' वि०—'मलयमिश्रित त्रिविध समीर इसकी कोमलता और सुगंधकी सूचना देती है।' दी०—'यह वृक्ष स्वाभाविकही मंद सुगंधित वायु संचालित किया करता है।' इन उद्धरणोंसे स्पष्ट है कि उन महानुभावोंने एक तो 'मृदु'-का अर्थ 'कोमलता' किया है, दूसरे वृक्षकी कोमलताको 'मलय बात' का रूपक माना है। निर्झरसे जल प्राप्त होता है, छत्तेसे मधु मिलता है, वायु शीतल, मंद और सुगंधित है यही समानता है।

अनुसंधान [२३]

सुक पिक मधुकर मुनिबर बिहारू।
साधन प्रसून फल चारि चारु॥ ५॥
भव घोर घाम हर सुखद छांह।
थप्यो थिर प्रभाउ जानकी नांह॥ ६॥
साधक सुपथिक बड़े[1] भाग पाइ।
पावत अनेक अभिमत अघाइ॥ ७॥

१ बड़-ह०, ५१, ७४। बड़े-रा०, भा०, बे०, ज०, १५।

रस एक रहित गुन करम काल ।
सिय राम लखन पालक कृपाल ॥ ८ ॥
तुलसी जो रामपद चहिअ[२] प्रेम ।
सेइय गिरि करि निरुपाधि नेम ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—विहार=मन बहलावकेलिये धीरे धीरे टहलना, घूमना, फिरना । साधन=जप, तप, शम, दम, नियम, संयम, योग, यज्ञ आदि कर्म जिनसे कोई काम सिद्ध किया जाय, उपाय । प्रसून=फूल । छाँह=छाया । थप्यो=पद ४ देखिये । थिर=दृढ़, अचल । सुपथिक=सुंदर (बड़भागी) यात्री । पथिक=राह चलनेवाला, मुसाफिर । साधक=कुछ प्राप्तिकी इच्छासे अनुष्ठानादि साधन करनेवाले । अभिमत=मनोवांछित, मनचाही वस्तु, मनोरथ । यथा 'अभिमतदानि देवतरुवरसे ।' अघाइ=पेटभर । रस=प्रकार, रूप । यथा 'एकही रस दुनी न हरषसोक साँसति सहति ।' रहित=हीन । निरुपाधि=निर्विघ्न ।

पद्यार्थ—मुनिवरोंके विहार†शुक, पिक (कोयल) और मधुकर (भौंरे) हैं, साधन फूल हैं, अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष ये चारों सुन्दर फल (जो चित्रकूट देता है) हैं ।५। भवरूपी भयंकर घामकी हरनेवाली §सुख देनेवाली छाया है । श्रीजानकीपति रघुनाथजीने यह प्रभाव अचल (त्रिकालमेंभी न टल सके) स्थापित कर दिया है ।६। साधक सुंदर पथिक हैं जो बड़े भाग्यसे (इस वृक्षकी छाया)

---

२ चहहि-प्र० । चहसि-वै० । चहै-ज० ।

†अर्थान्तर—विहार-१ विहार करनेवाले, बिचरनेवाले । (दी०, गीता प्रेस) २ जो यहाँ विहार करते हैं (वि०) । ३ '(सब श्रेष्ठ मुनि, सुवा, पपीहा, भ्रमररूप) विहार करते हैं ।' (हु०, टी०) ऐसाही अर्थ हो सकता है कि 'मुनिवर शुकादि हैं । चित्रकूटरूपी वृक्षपर मुनिवर रूपी शुक पिकादिका विहार है ।' परन्तु इससे रूपक उतना सुंदर नहीं रह जाता । 'विहारका अर्थ' 'विहार करनेवाला' कैसे हो सकता है ?

§अर्थान्तर—'संसाररूपी घोर घामको दूरकर इसकी छाँह सुख देनेवाली है ।' (वीर, दी०, वि०)

पाकर अपने अनेक प्रकारके मनोरथ भरपूर पाते हैं ।७। यह वृक्ष गुण कर्म कालरहित सदा एकरस बना रहता है (सदा हराभरा और फल फूलसे लदा रहता है) यह विशेषता है । श्रीसीता, राम लक्ष्मणजी इसके कृपाल पालक हैं ।८। श्रीतुलसीदासजी कहते हैं कि यदि तुझे श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें अनुरागकी चाह हो तो निर्विघ्न (दृढ़) नियम करके चित्रकूट कामदगिरिका सेवन कर ।९।

टिप्पणी—१ 'सुक पिक मधुकर मुनिवर विहार ।' इति । (क) यहाँ वृक्षकी शाखा और शाखाके पत्ते कहे । छत्ते और पवनका संबंध डाल पातसे है इसीसे उनको एकसाथ एक चरणमें कहा । पक्षी सघन पत्तोंकी रक्षामें छिपकर बैठते और बसेरा लेते हैं । पत्तोंके बाद फूल और फल होते हैं। ये सब शाखाहीसे संबंध रखते हैं। इसीसे इनको प्रथम कहकर तब वृक्षके नीचे चलते हैं । वृक्षके नीचे उतरतेही छाया मिलती है; अतः उसे कहा । (ख) फूल फलका संबंध शुक पिक मधुकरसे है । अतः इन सबोंको एकसाथ एक पंक्तिमें कहा । जैसे फूल फलके भोक्ता मधुकर शुक, पिक, वैसेही चारों फलोंके भोक्ता मुनिवर । जैसे शुक, पिक उड़ते, सुन्दर स्वरसे बोलते, चहचहाते, मधुकर गुंजार करते, फूलोंपर मँड़राते और उनका रस लेते और फल खाते हैं, वैसेही मुनिवर जप, तप, यम, नियम, उपासना आदि करते और सिद्धियाँ एवं चारो फल प्राप्त करते हैं। शुक, पिक वे हैं जिनको साधनका फल प्राप्त हो रहा है, मधुकर पुष्परसरूपी सिद्धि प्राप्त कर रहे हैं । उनको फलकी प्राप्ति नहीं हुई है । साधनसे चारों फल मिलते हैं और फूलसेही फल मिलता है । यह दोनोंमें समता है । (ग) 'फल चारि चारु' इति । 'चारु' विशेषण देकर जनाया कि साधारण वृक्षके फल सुंदर नहीं होते और चित्रकूट वृक्षके फल 'चारु' हैं, चमचमा रहे हैं, जगमगा रहे हैं । कल्पवृक्षभी जो फल देता है वह सब सुन्दर नहीं होते । वह तो अभिमत चाहे अहित हो तोभी वह अंधे सरीखा बेविचारे दे देता है । वह सांसारिक फल देता है और चित्रकूट दिव्य फल मोक्षभी देता है । 'चारु' से जनाया कि इसके चारों फल 'चारु' अर्थात् दिव्य हैं । (घ) 'सुखद छांह' इति । सघन होनेसेही

छाया गर्मीमें शीतल और शरद्‌में गर्म होनेसे सुखद हो सकती है। इसीसे 'सुखद' से 'सघन' का भावभी लिया गया।

२ 'भव घोर घाम हर सुखद छांह।' इति। (क) वृक्षकी छाया कड़ी धूपकी तपनको हरकर सुख देती है और भव (बारंबार जन्म मरण) रूपी घोर घामको चित्रकूटरूपी वृक्ष हर लेता है जिससे आनंदसिंधुकी प्राप्ति होती है, यह दोनोंमें समानता है। (ख) दोनोंकी 'छांह' सुखद है। परन्तु 'सुखद छांह' पर विराम देकर 'थप्यो' को अलग करके दूसरे चरणमें रखकर जनाया कि प्राकृत वृक्षकी छांहका सुख अचल नहीं है और चित्रकूटरूपीवृक्षकी छांयाका सुख अचल है, विनाशरहित है और सर्वकालमें प्राप्त होनेवाला है। (ग) 'थप्यो थिर जानकीनांहु' इति। 'जानकीनांहु' का भाव कि ये वह हैं कि जो बिधि हरि हरको उत्पत्ति, पालन और संहारकी शक्ति देते हैं। तब यह प्रभाव चित्रकूटको प्रदान करनेमें आश्चर्य क्या? यथा '**हरिहरहि हरता बिधिहि बिधिता श्रियहि श्रियता जेहिं दई। सो जानकीपति मधुरमूरति मोदमय मंगलमई ॥', 'कामद भो गिरि रामप्रसादा। अवलोकत अपहरत बिषादा ॥'** (अ०)। परन्तु छायाके नीचे आनेपरही शरदातप हरण होता है, अन्यथा नहीं। इसी तरह यहाँ निवास करके साधन करनेपर यह फल मिलेगा, बाहर नहीं।

३ 'साधक सुपथिक बड़े भाग पाइ' इति। भाव कि 'भूरिभागभाजन' होनेसे बहुत सुकृत होनेपर इसकी प्राप्ति होती है, थोड़े सुकृत या साधारण भाग्यवालोंको नहीं। मनोरथ अघाकर पाते हैं अर्थात् मनोरथसे अधिक पाते हैं*।

---

*'प्रभाउ थप्यो' इति। यथा (बृहद्रामायणे) "पुराकृत युगस्यादौ ब्रह्मा लोकपितामहः। तपस्तेपे पुरा तत्र यक्षार्थं दारुणं प्रभुः ॥ ततः प्रादुर्भूदेव वरदानाय राघवः।" ब्रह्मोवाच—"स्थानानि पुण्यतीर्थानि पृथिव्यां संति ते प्रभो। शतमष्टोत्तरं स्थानं तच्छ्रेष्ठं च वदस्व मे ॥" भगवानुवाच—"गिरिः श्रीचित्रकूटाख्यो यत्र मंदाकिनी नदी। तयोर्मध्ये सुकिस्तीर्णे त्रिशद्धनुषमायता ॥ एतत्क्षेत्रं प्रियतमं न कस्मैचित्प्रकाशितम्। तत्र

४ 'रस एक रहित गुन करम काल' इति। (क) आगे विनय पद १३० में कहा है कि 'काल करम गुन सुभाउ सबके सीस तपत।' कोई इनके आक्रमणसे बचता नहीं, एकरस कोईभी रहने नहीं पाता। तब यह एकरस कैसे रहता है? इसका उत्तर यह है, 'जेहि राखा रघुबीर सो उबरा तेहि काल महँ।' जिसके रक्षक रघुबीर हों वही इनसे बच सकता है। रामराज्यमें इनका बस नहीं चलता। यथा 'बिबिध कर्म गुन काल सुभाऊ। ए चकोर सुख लहहिं न काऊ।' (उ० ३०) श्रीरघुनाथजी तो 'काल करम सुभाउ गुण भच्छक' हैं, और चित्रकूटरूपी वृक्षके रक्षक तो श्रीसीता राम लक्ष्मण, एक नहीं तीन तीन मूर्ति हैं। तब काल कर्म गुणरहित और एकरस क्यों न रहे! रक्षक होनेका फल यही है कि रक्ष्यपर काल कर्मादिका ज़ोर न चल सके। त्रेतायुगका रामराज्य इसका प्रमाण है। यथा 'रामराज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं। काल कर्म सुभाउ गुन कृत दुख काहुहि नाहिं॥' (ख) वसन्तरागमें यह पद कहकर साहित्य और संगीतका समन्वय यहाँ कैसा अच्छा किया है! (ग) चित्रकूट बूटको 'रस एक रहित गुन करम काल' कहकर जनाया कि यहाँ वसन्त ऋतु लुब्ध होकर सदा बनी रहती है। इसी कारण कविने इसे इसी रागमें कहा है। (पं० रा० कु०)। (घ) यहां 'गुन काल करम रहित' कहा। इसीसे अगले पदमें अनायास महाफल कहा है। क्योंकि अन्यत्र काल, कर्म और गुण जीवोंमें व्याप्त हो जाते हैं। सत्वगुणसे स्वभाव शान्त हो सत्कर्ममें लग जाता है, रजोगुणकी प्रवृत्तिसे ऐश्वर्यभोगी कर्म करता है और तामसी स्वभाव होनेसे असत्कर्ममें प्रवृत्त हो जाता है। इसी तरह काल (सत्ययुग आदि एवं भले बुरे काल) के प्रभावसे स्वभाव बदल जाता है। इसीसे पूरा फल नहीं होने पाता।

त्वं धनुषक्षेत्रे यक्षं कुरु पितामह। इति दत्त्वा वरं तस्मै तत्रैवांतर्दधे हरिः॥ 'प्रयागं राघवं नाम सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम्। यत्किंचित्क्रियते कर्म तदक्षयमिहोच्यते। स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायो देवतार्चनम्। संध्योपास्यं तर्पणंच श्राद्धं पितृसमर्चनम्। शताश्वमेधिके तीर्थे सकृत्स्नात्वा नरोत्तमः॥' (वै०)

(ङ) 'पालक कृपाल' इति । पद २२ टिप्पणी ७ (ख) में देखिये ।

५ 'जो रामपद चहिअ प्रेम' इति । यहाँ गिरिसेवनका फल 'रामपद प्रेम' बताया । 'करि निरुपाधि नेम' यह सेवनकी विधि बतायी ।

६ 'श्रीसीताराम लक्ष्मणजीका नित्य विहारस्थल जानकर अब आगेके पदमें उस चित्रवनके अंदर जानेकी लालसा प्रगट करते हुए उसमें दाखिल होते हैं ।' (दी०)

२४ राग कान्हरा (बसंत-प्र०,)

अब चित चेति[1] चित्रकूटहि चलु ।
कोपित कलि लोपित मंगल मग बिलसत बढ़त मोह माया मलु ॥१॥
भूमि बिलोकि[2] रामपद अंकित बन बिलोकि[3] रघुबर बिहार थलु ।
सैल शृंग भवभंग हेतु लखि दलन कपट पाखंड दंभ दलु ॥२॥
जहं जनमे जगजनक जगतपति बिधि हरि हर परिहरि प्रपंच छलु ।
सकृत प्रबेस करत जेहि आश्रम बिगत बिषाद भये पारथ नलु ॥३॥

शब्दार्थ—चित=मनकी उत्पत्ति केवल सात्विक अहंकारसे है । मनकोही अवस्थाभेदसे बुद्धि, चित्त और अहंकार नामसे विशेषित किया जाता है । अन्य दस इन्द्रियाँ सात्विक और राजस अहंकारसे उत्पन्न हैं । इसलिये वेदान्तानुसार अन्तःकरणकी चार वृत्तियों (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) मेंसे एक 'चित्त' है । संकल्पविकल्पात्मक वृत्तिको मन, निश्चयात्मक वृत्तिको बुद्धि आर इन्हीं दोनोंके अन्तर्गत अनुसंधानात्मक (चेष्टा, विचार, प्रयत्न या खोज करनेवाली) वृत्तिको चित्त और अभिमानात्मकको अहंकार कहते हैं । पतंजलिजी इसे दृश्य जड़ पदार्थ मानकर आत्माको इसका प्रकाशक कहते हैं । योगसूत्रके अनुसार चित्तवृत्ति पाँच प्रकारकी है । १ प्रमाण, (प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द) २ विपर्यय, (एकमें दूसरेका भ्रम) ३ विकल्प, (स्वरूप-

---

१ चेति—रा०, भा०, प्र०, ह०, ७४, आ० (मु०) । चेतु—बे०, ज० । २ बिलोकि—रा०, भा०, ह०, ७४, प्र०, डु०, मु० । बिलोकु—बे०, ज०, भ०, वै०, दी०, वि० । ३ बिलोकि—रा०, भा०, ह०, ७४, प्र०, डु० । बिलोकु—बे०, ज०, आ० (डु०) ।

ज्ञानके विना कल्पना) ४ निद्रा, (सब विषयोंके अभाव) और ५ स्मृति। (कालान्तरमें पूर्व अनुभवका आरोप) मानसी शक्ति जिससे धारणा, भावना, आदि की जाती हैं। साधारण बोलचालमें मन, चित्त अंतःकरणके पर्याय हैं। चेति = सावधान हो। कोपित = कुपित, कोप-युक्त, क्रोधमें आकर। लोपित = (लोपना, सकर्मक क्रिया) मिटाना। यथा '**कलि सकोप लोपी सुचालि निज कठिन कुचाल चलाई।**' बिलसत = (बिलसना, अकर्मक क्रिया) चमकना, अंकुरित होना, क्रीड़ा करना। अंक = चिह्न, निशान। कपट, पाखंड, दंभ—टि० ४ देखिये। परिहरि = छोड़कर। प्रपंच = धोखा, ढोंग, छल कपट। यथा, '**रचि प्रपंच भूपहिं अपनाई**। (अ०) प्रपंच छलु = छल कपट। धोखा देनेकेलिये जो व्यवहार किया जाय वह 'छल' है। धूर्तता, ठगपना। सकृत = एक बार। प्रबेस (प्रवेश) = भीतर जाना। आश्रम=तपोवन, पवित्रस्थान, साधुसंतोंके रहनेकी जगह। पार्थ=अर्जुन। पृथा (कुंती) के पुत्र युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन। नकु=नकुल। नकुल, सहदेव ये दोनों भाई माद्रीके पुत्र।

पद्यार्थ—अरे चित्त! अब (भी) सावधान हो जा और चित्रकूटको चल। (क्यों चलें ? इसका कारण बताते हैं कि) कलिने कुपित होकर मंगल कल्याणके मार्ग लुप्त कर दिये हैं। माया, मोह और पाप जगमगा रहे हैं और बढ़ते जाते हैं * । १। श्रीरामपद अंकित (जिसपर श्रीरामजीके चरण चिन्ह बने हैं उस) भूमिको (चलकर) देख, वनको देख जो रघुबरका विहारस्थल है और पर्वतशिखरोंको देख जो भवके नाशके कारण और कपट दंभ पाषंडके दल (सेना वा गिरोह) के

---

* अर्थान्तर—१ 'मायाजनित मल बढ़ता है (अर्थात्) शब्दादि विषयोंके सुखमें इन्द्रियोंद्वारा मनकी चाह अधिक होती जाती है, जिसके प्रभावसे कामना बढ़ती है। कामनाकी हानिसे क्रोध उपजा, उससे मोह हुआ। मोह अपनी सहायता पाकर आनंदित होता जाता है।' (वै०) २ योंभी अर्थ कर सकते हैं कि 'मोह बढ़ता है जिससे माया और पाप शोभित हो रहे हैं।'

नाशक हैं । २ । जहाँ जगत्‌के उत्पन्न करनेवाले, जगत्‌के स्वामी ब्रह्मा, विष्णु और महेशने छलप्रपंच छोड़कर जन्म लिया, जिस आश्रममें कुन्तीके पुत्र और नल केवल एक बार प्रवेश करने (मात्र) से दुःखरहित हो गये । ३ ।

टिप्पणी--१ (क) 'अब चित चेति चित्रकूटहि चलु' इति । 'अब' का भाव कि चित्रकूटका प्रभाव पहले मालूम न रहा हो । पर अब तो मालूम हो गया, जैसा कि पूर्व पदमें बताया है कि यहाँ कालकर्म गुणका ज़ोर नहीं चल पाता, यहाँ सब प्रकारसे सुपास है, अन्यत्र कलिसे बचत नहीं । पुनः भाव कि 'अब' भी कुछ गया नहीं है । अभी अवसर है । कलिने बहुत सताया, अब तो चेत जा ! चेतकर चित्रकूट चलनेका औरभी कारण आगे बताते हैं । (ख) 'चेति' शब्दसे जनाया कि अभीतक अचेत वा बेसुध पड़ा है । 'चित्रकूट' अर्थात् निश्चय करके चित्रकूटहीको चल, अन्यत्र नहीं । (ग) 'कोपित कलि' इति । कलियुगके कोपके कारण अब यहाँ रहने योग्य नहीं, रहना उचित नहीं । इसने आतेही धर्मके तीन चरण तो पहलेही तोड़ दिये । रहा चौथा सो उसेभी तोड़ रहा है । आगे औरभी कारण कहकर उत्साहित करते हैं ।

२ (क) 'लोपित मंगल मग बिलसत बढ़त मोह माया मलु' इति । 'बिलसत' का भाव कि वेदमार्गके लुप्त हो जानेसे 'मोह माया मल' ये सबके सब जुगुनूकी तरह चमक रहे हैं । अंधकारके कारण इनकी बड़ी शोभा दिखायी दे रही है । ठीक इसी भावसे मानस किष्किंधाकांडमें '**निसि तम घन खद्योत बिराजा**' कहा गया है । 'बिराजा' (विशेष शोभित हैं) और 'बिलसत' का एकही भाव है । तात्पर्य कि कलियुगमें इन्हींकी प्रतिष्ठा हो रही है, वेद और वेदज्ञ प्रतिष्ठा नहीं पाते । भागवतमेंभी कहा है, '**निशामुखेषु खद्योतास्तमसा भांति नो ग्रहा । यथा पापेन पाखंडा नहि वेदाः कलौ युगे ॥**' १०।२।८। अब येही प्रतिष्ठाके साधन हो गये हैं । यही शोभाकी सामग्री यहाँ रह गयी है । अतः अब यहाँसे चल देना उचित है । (ख) 'लोपित मंगल

मग ' इति। मानस उत्तरकांड 'सो कलिकाल कठिन उरगारी। पापपरायन सब नरनारी ॥' ९६ (८) से 'सुनु ब्यालारि काल कलि मल अवगुन आगार।' १०२। तक इसीकी व्याख्या समझिये। (ग) इस चरणमें यहाँ न ठहरनेका कारण कहा और यहाँ रहना अयोग्य बताया। आगे वहाँ जानेका लाभ दिखाते हैं।

३ (क) 'भूमि बिलोकि रामपद अंकित ' इति। ये सब बातें रामभक्तको ललचा देनेवाली हैं। अपने इष्टके चरणचिन्ह एवं उनके विहारके स्थान उनके स्मारक हैं। उनके कौन न दर्शन करना चाहेगा ? दर्शनका दर्शन और मनुष्यदेह धारण करनेका लाभ 'भवबंधनसे मोक्षकी प्राप्ति'! कथनका भाव यह कि इनका दर्शन कर लेनेपर फिर तू संसारी न होगा, संसारमें न पड़ेगा। (ख) 'रघुबर' से कोई कोई श्रीराम-लक्ष्मण दोनोंका भाव लेते हैं। यथा 'माया मानुषरूपिणौ रघुबरौ' (कि०) क्योंकि लक्ष्मणजीभी यहां साथ थे। (ग) रामपद अंकित भूमि और विहारवाले वन देखनेको कहनेमें भाव यह है कि जिनके पदरजस्पर्शमात्रसे अहल्या और दंडकवन पावन हो गये, भला उनके चरणोंसे अंकित भूमिके दर्शनसे पाप ताप क्यों न दूर होंगे ? भगवत्-विहारस्थलके दर्शनसे भक्तके हृदयमें आनंद और विरहाग्नि उत्पन्न होगी जिससे सब विकार नष्ट हो जायँगे। जिस स्थानमें कोई परमभक्त रह जाता है उसके संबंधसे वह भूमि पूजनीय और पापनाशिनी हो जाती है। भक्तमाल भक्तिरसबोधिनी टीकासे यह स्पष्ट है। टीका कवित्त २२ 'चले मग जात उभय खेरे मग दीठि परे करे परणाम हिये भक्ति लागी प्यारी है। पारबती पूछें किये कौन को जू कहो मोसों दीसत न जन कोउ तब सो उचारी है। बरष हजार दश बीते तहां भक्त भयो नयो और द्वै है दूजी ठौर बीते धारी है। सुनि कै प्रभाव हरिदासनिसों भाव बढ़्यो रढ़्यो कैसे जात चढ़्यो रंग अति भारी है।' तब भला उस भूमिके प्रभावका कहनाही क्या कि जहां ब्रह्म राम स्वयं बहुत काल तक रहे!

(घ) 'सैल शृंग भवभंगहेतु लखि' इति। इससे विशेषकर

श्रीकामदगिरिके (तथा श्रीचित्रकूटके अन्य शैल) शिखरोंके दर्शनका माहात्म्य कहा। शिखरदर्शन करना कहकर जनाया कि ये दूरसे देख पड़ते हैं। दूरसे दर्शनका यह माहात्म्य है कि आवागमन छूट जाता है और कपट आदिका नाश हो जाता है। तब पाससे दर्शन करनेके माहात्म्यका क्या कहना ?

४ 'दलन कपट पाखंड दंभ दलु' इति। कपट, पाखंड और दंभमें बहुत थोड़ा थोड़ा अंतर है। अभिप्राय साधनार्थ हृदयकी बातको छिपानेकी वृत्ति 'कपट' है। इसमें ऊपरसे कुछ और भीतरसे कुछ और होता है। ऊपरसे मीठा बोलना और भीतरसे छुरी चलानेकी सोचना इत्यादि 'कपट' है। यथा 'कपट सनेह बढ़ाइ बहोरी। बोली बिहँसि नयन मुंह मोरी।' (अ०), 'लखी न भूप कपट चतुराई', 'जौं कछु कहउँ कपट करि तोही। भामिनि रामसपथ सत मोही।' (अ०), 'जो जिय होत न कपट कुचाली। केहि सुहात रथ बाजि गजाली।' (अ०) 'पाषंड' इति। वह भक्ति या उपासना जो केवल दूसरोंके दिखानेकेलिये की जाय और जिसमें कर्त्ताकी वास्तविक निष्ठा वा श्रद्धा न हो 'पाषंड' है। इसीका नाम ढोंग, आडम्बर, मकरजाल और ढकोसला है। 'दंभ' इति। महत्त्व दिखाने, पुजाने या प्रयोयन सिद्धि करनेकेलिये, लोगोंको धोखेमें डालनेकेलिये ऊपरी दिखावट साधुवेषादि 'दंभ' है। 'दम्भ्यते अनेन दंभः।' धार्मिक कार्योंमें अपनी प्रसिद्धि करना 'दंभ' है। इसमें कुछ झूठी ठसक या अभिमानकीभी मात्रा रहती है। यथा 'निसी तम घन खद्योत बिराजा। जिमि दंभिन्ह कर जुरा समाजा।' 'मिथ्यारंभ दंभरत जोई। ता कहं संत कहहिं सब कोई।। सोइ सयान जो परधनहारी। जो कर दंभ सो बड़ आचारी।' 'कलिमल ग्रसे धरम सब लुप्त भए सदग्रंथ। दंभिन्ह निज मति कलपि करि प्रगट किये बहुपंथ।।' उपर्युक्त उद्धरणोंसे 'दंभ' का भावार्थ स्पष्ट हो जाता है। पाषंड और दंभमें बहुत सूक्ष्म भेद है। प्रायः दोनों पर्यायवाची शब्दकी तरह प्रयुक्त होते हैं। पाषंडके विषयमें कविने स्वयं

कहा है, 'हरित भूमि त्रिन संकुल समुझि परै नहिं पंथ। जिमि पाषंड बाद ते लुप्त होहिं सदग्रंथ' ॥ दुष्ट तर्कों और युक्तियोंके बलसे सद्ग्रंथोंके प्रति बड़े बड़ोंको संदेहमें डाल देते हैं; जिससे यह नहीं समझ पड़ता कि वेदमार्ग कौन है, जिसपर हम चलें। पाषण्डी वेदमर्यादा ध्वस्त करा देते हैं। पाषण्डवाद कोई मार्ग नहीं हैं किन्तु तृणके समान मार्गका भ्रम करानेवाला है। यह काम पाषण्डी करते हैं। दम्भी अपने बुद्धिविलाससे नवीन मार्ग कल्पित कर खड़ा करते हैं। जब वेदमार्ग लुप्त हो गये तब ये चमकने लगे। मानस उत्तरकांड कलिवर्णन प्रकरणमें कपट, दंभ, पाखंडके अनेक उदाहरण देकर कवि अंतमें कहते हैं, 'सुनु खगेस कलि कपट हठ दंभ द्वेष पाषंड। मान मोह-मारादि मद व्यापी रहे ब्रह्मंड ॥१०१॥' कलिमें कपट, दंभ, पाषंड, मोह, माया आदि पूर्ण व्यापा करते हैं। ये सब कलियुगके कार्य हैं। विशेष 'मानसपीयूषतिलक' के किष्किंधा और उत्तरकांडोंमें देखिये। कोई ऐसा कहते हैं कि कपट मनसे, पाषंड वचनसे और दंभ कर्मसे होता है। पूर्व कहा था कि 'बिलसत बढ़त मोह माया मलु'। कपट, दंभ और पाषंड माया कटकके भट हैं। यथा, 'व्यापि रहेउ संसारा महुँ माया कटकु प्रचंड। सेनापति कामादि भट दंभ कपट पाषंड ॥'

५ 'जहँ जनमे जगजनक जगतपति' इति। (क) जनक शब्द 'जनी प्रादुर्भावे' धातुसे 'णवुल' प्रत्ययके लगनेसे बनता है, जिसका अर्थ होता है 'उत्पन्न करनेवाला'। जगजनक = जगत्को उत्पन्न करनेवाला। जगत्पति = जगत्की रक्षा वा पालन करनेवाला। विधि हरि हर तीनोंहीं जगत्के उत्पन्न और पालन करनेवाले हैं। यथा, 'जो सृजि पालै हरै बहोरी। बालकेलि सम बिधि मति भोरी।' (अ०), 'उत्पति पालन प्रलय समीहा' (भगवान), 'विश्वभवदंशसंभव पुरारी' (१०), 'जगदात्मा महेस पुरारी जगतजनक सबके हितकारी' (बा०)। इस तरह 'जगजनक' और 'जगतपति' तीनोंके विशेषण हैं। 'जगजनक ब्रह्मा, जगत्पति हरि और सबका हरण (संहार)

करनेवाले हर ' ऐसाभी अन्वय कर सकते हैं। 'हर' शब्दही संहारसूचक है। इससे विशेषण कोई न दिया गया।

(ख) ' जहँ जनमे जगजनक जगतपति बिधि हरि हर ' इति। इस कथनसे श्रीचित्रकूटकी अतिशय पावनता प्रगट हुई। जब इस भूमिको सर्वोत्तम और अतिशय पवित्र समझा होगा तब तो यहाँ तीनोंके तीनोंने आकर जन्म लिया। जो जगत्के पिता हैं वेही यहां आकर पुत्र बने। जो जगत्के स्वामी हैं, जगका पालन करते हैं, वे स्वयं आकर पुत्र बने और अपना पालनपोषण कराया। श्रीमद्भागवत स्कंध ४ अ० १ श्लोक १६–३३ में श्रीविदुरजीके प्रश्न करनेपर कि ' जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और अंत करनेवाले सर्वश्रेष्ठ देवोंने अत्रि मुनिके यहां क्या करनेकी इच्छासे अवतार लिया था ? ' श्रीमैत्रेयजीने त्रिदेवके जन्मकी कथा कही जो संक्षेपसे इस प्रकार है। ' अपने पिता ब्रह्माजीसे प्रजोत्पादनकी आज्ञा प्राप्त कर महर्षि अत्रि अपनी धर्मपत्नी सतीशिरोमणि देवी अनुसूयाको साथ लेकर कुलाद्रि ऋक्षपर्वतपर तपस्याके निमित्त गये। वहाँ जाकर उन्होंने सौ वर्षतक एक पैर पर खड़े रहकर, केवल वायु भक्षण कर मनोनिग्रहके-लिये प्राणायामका साधन किया और यह संकल्प किया कि जो कोई इस संसारके स्वामी हैं वे कृपाकर हमें अपनेही समान पुत्ररत्न प्रदान करें। हम उन्हींकी शरण हैं।' उनकी घोर तपस्याके प्रभावसे ऋषिके मस्तक-मेंसे एक अग्नि प्रादुर्भूत हुई जो प्राणायामसे वृद्धिको प्राप्तिकर समस्त त्रिलोकीको संतप्त करने लगी। यह देखकर जगत्के तीनों अधीश्वर, ब्रह्मा, विष्णु और महेश, ऋषिके आश्रममें एक साथ पहुँचे। उनके एकही साथ प्रकट होनेसे ऋषिका अन्तःकरण उद्भासित हो गया और ज्योंही उन्होंने आँखें खोलीं तो क्या देखते हैं कि तीनों देवता अपने अपने वाहनों हंस, गरूड़ एवं वृषभके साथ अपने अपने चिह्नोंको धारण किये हुए ऋषिके सामने उपस्थित हैं। दण्डवत् प्रणाम और विधिवत् पूजा करके ध्यानमें मग्न हो वे गद्गद्स्वरसे स्तुति करने लगे और बोले, ' मैंने तो संतानकी कामनासे आप लोगोंमेंसे केवल एकका स्मरण किया था। अहोभाग्य मेरे कि आप तीनोंनेही मुझ दीनपर अनुग्रह

किया। पर मैंने जिनको बुलाया था आममेंसे वे कौन महानुभाव हैं ?' इसपर तीनों एकसाथ बोल उठे, 'मुनिवर्य ! तुम्हारे सत्य संकल्पकाही यह फल है कि हम तीनोंको तुम्हारे पास आना पड़ा। तुम जिस जगदीश्वरका ध्यान करते थे वह हम तीनोंही है।' 'वद्धै ध्यायति ते वयम्।' यह कहकर मुनिको इच्छित वर दे वे अंतर्धान हो गये। ब्रह्माजीके अंशसे चन्द्रमा ऋषि, विष्णुके अंशसे दत्तात्रेयजी और शिवजीके अंशसे दुर्वासा ऋषि उत्पन्न हुए।

बृहद्रामायणमें अत्रिजीका दंडकके उत्तर मन्दारपर्वतपर स्त्रीसहित तपस्या करना, त्रिदेवका आना और महादेवजीका वर देना कहा है। यथा, "**दंडकादुत्तरेभागे मन्दरो नाम पर्वतः। तपस्तेपे महाबुद्धिरत्रिर्नाम महातपाः॥ आगतास्तत्र ते देवा ब्रह्माविष्णुमहेश्वरः।**" महादेव उवाच। "**वरं वरयभद्रंते वरदेशावयंत्रयः॥**' (मुनिरुवाच) '**वायुर्यथा सर्वगतो ह्येवं पुत्रा भवन्तु मे।**' "**प्रत्युवाच महातेजास्त्र्यम्बकः प्रहसन्निव। एवं विधास्ते तनया भविष्यन्ति न संशयः॥ दत्तात्रेयो हरेरंशाच्चन्द्रमा ब्रह्मणस्तथा। ममांशाच्चैव दुर्वासा भविष्यन्ति न संशयः॥**" (वै०)

इस उद्धरणमें महादेवजीका अत्रिसे वर माँगनेको कहना लिखा है। वे कहते हैं कि हम तीनों वरदाताओंके स्वामी हैं, हमसे वर माँगो। उसपर मुनिने कहा कि जैसे वायु सर्वगत है ऐसेही पुत्र हमारे हों। इसपर शिवजीने हँसकर कहा कि हम तीनों इस प्रकार तुम्हारे पुत्र होंगे कि हरिके अंशसे दत्तात्रेय होंगे, ब्रह्माके अंशसे चंद्रमा (ऋषि) और हमारे अंशसे दुर्वास होंगे, इसमें संशय नहीं।

६ 'परिहरि प्रपंच छलु' इति। (क) 'परिहरि' में यह भाव ध्वनित होता है कि विधि हरिहरने प्रपंचछल किया है अथवा किया करते हैं। 'वह प्रपंचछल क्या है?' इसमें मतभेद है। बाबू शिवप्रकाशजीका मत है कि 'प्रपंच (संसारका) छल अर्थात् संसारका व्यापार, उत्पत्ति, पालन और संहार जो उनका पृथक् पृथक् निर्दिष्ट कार्य है।' वे 'छल' का अर्थ 'व्यापार' करते हैं और

लिखते हैं कि 'छल पद इस निमित्त दिया कि अपना धर्म जो पालन है उसकी रक्षाकेलिये हरिने छल किये। जैसे कि जलंधर वधकेलिये वृन्दाका व्रत भंग किया। मत्स्य, वराह, नृसिंह, कच्छपादि रूपोंको धारण किया। रावणवधकेलिये ऐश्वर्य छिपाकर नररूप धारण किया। मोहिनी-रूपसे दैत्योंको और वामनरूपसे बलिको छला'। इसी तरह ब्रह्माजीने सरस्वतीको प्रेरित कर पहले कुम्भकर्णकी मति फेर दी तब उसको वर दिया। देवता, दैत्य, दानवादि सब ब्रह्माकेही तो पुत्र, नाती, पनाती इत्यादि हैं, पर वे देवताओंका पक्ष लेकर भगवान्‌के हाथों दैत्यादिका संहार कराते रहते हैं। यही हाल शंकरजीका है। पहले तो मुँह माँगा वर देते हैं। फिर उन्हींके निधनका उपाय देवताओंको बताते हैं। वैजनाथजी, भट्टजी और वियोगीजी आदिने प्रायः उसी टीकाका अनुसरण किया है। अन्तर केवल इतना है कि वैजनाथजी विधि और हरका प्रपंच अर्थात् 'जगत्‌रचना पद' और 'संहारकर्त्ता पद' छोड़कर और हरिका 'छल' त्यागकर वहाँ जन्म लेना कहते हैं और भट्टजी 'संसारके प्रपंच (उत्पत्ति, पालन, संहार) और छल छोड़कर जनमे' ऐसा अर्थ करते हैं। वीरकविजी '(संसारके उत्पन्न, पालन और प्रलयके) विस्तारके बहाने छोड़कर' ऐसा अर्थ करते हैं अर्थात् 'छलु' का अर्थ 'बहाना' करते हैं। पं० रामकुमारजी अपने खर्रेमें लिखते हैं, 'पूर्व इन्होंने बहुत प्रपंच किये थे। उन्हींकी ओर यहां इशारा है।' परन्तु उन्होंने कोई उदाहरण नहीं दिये हैं जिससे उनके हृदयके भाव हमें स्पष्ट हो जाते। जो कथाएँ (श्रीअत्रिजीके यहां इनके जन्मकी) हमको मिलीं वह हम टि० ५ में लिख आये हैं। उनसे हमें कोई सहायता इस गुत्थीके सुलझानेमें नहीं मिलती।

(ख) त्रिदेवोंने अनुसूयाजीके साथ क्यों और कैसा प्रपंचछल किया और उसका परित्याग कैसे हुआ? इसका वर्णन श्रीरसिकविहारी-कृत 'राम रसायन' के चतुर्थ विधानके अष्टम विभागमें विस्तारसे है। वह कथा इस प्रकार है कि जब श्रीरघुनाथजी द्वादशवर्ष चित्रकूटमें रहकर तेरहवें वर्ष वहांसे पंचवटीकी ओर चलने लगे तब सब मुनि आकर

मिले। मुनियोंने सीताजीसे कहा कि 'पतिको सुख देनेवाली जानकी! तुम धन्य हो। पातिव्रत्य धर्म सदा धन्य है कि जिससे बिधि हरि हर सभी डरते रहते हैं। पातिव्रत्यबलसे अनुसूयाने त्रिदेवकी गति प्रत्यक्ष दिखा दी।' यह सुनकर श्रीसीताजीने 'त्रिदेवगति' की बात पूछी और उन्होंने निम्नप्रकारसे कही।

'एक समय मिलि उमा रमा अरु धात्री तीनहुँ नारी।
लखि रहस्य सुर गंगतीर थल भूषन बसन उतारी॥
मज्जन करत हुती तहँ प्रमुदित ता छिन नारद आये।
तिनहिं बिलोकि लजाय अधिक तिहुँ तिय निज अंग छिपाये॥३१॥

सो बिलोकि मुनि रिस करि बोले क्यों तुम मोहि न जानी।
भई चहति हौ जनु अनुसुइया सम पतिव्रता जानी॥
यों कहि गमन कियो ऋषि तहँ ते पुनि यों तिहुँ ठहराई।
पतिव्रत भंग अति तियको जिमि होय सु रचिय उपाई॥३२॥

करि विचार निज निज गृह गवनीं तिहूँ मान बहु ठानो।
बिधि हरि हरहि रोष तियको लखि सकल अनंद भुलानो।
अमित बार बूझी तब बोलीं और कछू नहिं भाषैं
अनुसुया को पतिव्रत खंडै तौ हम निज तनु राखैं॥३३॥

तिहूँ नारि निज निज पति सों इमि बचन कहे बिलखाई।
रमा उमा ब्रह्मानी बहु बिधि हरि हर विधि समुझाई।
नहिं मानी तब देव सोच बस इक इक पास सिधारे।
काहू गति कोऊ नहिं जानै चले जतन निरधारे॥३४॥

भई भेट तिहुँ बीच पंथमें तिहुँ सशोक तिहुँ देखे।
चकित कछू कहि सके न काहू बदन परस्पर पेखे॥
पुनि धरि धीर तिहूँ तिहुँ बूझी तिहूँ तिहूँ प्रति बरनी॥
तिहूँ हीय भो दुखी और सुनि तिहूँ ठौर इक करनी॥३५॥

तिहूँ देव ह्वै विवश मंत्र करि यही बात ठहराई।
पतिव्रत भंग कीजिये तिय को कछु छलछंद बनाई॥
यों बिचारि निज निज गृह बेगै जाय सुधीर धराई।
चले उताल बहुरि तिहि मारग मिले बीच पुनि आई॥३६॥

तहां विष्णु बिधि शंभु मनुज ह्वै अतिथि भेष तिहुँ धारे।
सिकताकन लै लये कमंडलु गये अत्रि के द्वारे।
ता छिन मुनि नहिं रहे भवनमें अनुसुइया लखि आई।
करि प्रणाम लैजाय सबन फल धरे सामुहें लाई॥३७॥

सो लखि सकन अतिथियों बोले और न अशन कराहीं।
ये हम सिकताकन लै आए पक्क होय तौ खाहीं।
पै जिहि बिधि भाषैं ताही बिधि करौ सुभोजन करि हैं।
नतरु क्षुधित तिहुँ अत्रि भवन तें निज निज मारग धरि हैं॥३८॥

अत्रितिया सुनि बचन मुनिनके भई सोच बस भारी।
पक्क होय किहि बिधि सिक्ताकन इन नहिं बात बिचारी॥
अतियि क्षुधित जो जायँ द्वार ते तो गृहधर्म नशावै।
इहि बिधि करहिं अनेक जल्पना हिय न कछू ठहरावै॥३९॥

पुनि पतिव्रता नारि बिचारी जु पै धर्म हौं साची।
तौ पै पक्क होइगी सिकता रंच रहै नहिं काची।
ह्वै प्रमुदित बोली अनुसुया अतिथि कहा कन दीजे।
जिहि बिधि कहौ पक्क करि आओ रुचिमय भोजन कीजे॥४०॥

सुनि तिहुँ कही अनल जल बिनु कन करमें पक्क बनावो।
बहुरि नग्न ह्वै निलज हाथ निज भोजन हमें करावो।
नब बोली सो अतिथि न भाषौ महा असंभव बानी।
तव सुकर्म मम धर्म रहै जिमि देहु रजायसु ज्ञानी॥४१॥

पुनि सो तजि तिन और न भाषी तब निज हीय बिचारी।
'अतिथि नहीं ले छली कोउ हैं' यों गुनि कै मुनिनारी।
पति पद सुमरि ध्यान शुचि कीनो सकल चरित दरसाये।
जानी बिधि हरि शंभु पतिव्रत भंग करन मम आये॥४२॥

तब सुधर्मचारी बर नारी सकल शीश कर फेरे।
भये अयान बालबपु तीनौ लै सुपालने गेरे।
पुनि ह्वै नग्न लिये कन अंजुलि अनुसुइया यों बोली।
पक्क होय तो यह सिक्ता जौ हौं पतिधर्म न डोली॥४३॥

कहतहिं भले एक सिक्ताकन मृदु शुचि शुभ्र सुहाये।
सो निज कर ते तिहूँ शिशुन मुख दै भोजन करवाये।
पुनि पट धारि झुलावन लागी ता छिन मुनि गृह आये।
लखि बूझी बालक ये किहि के निज सब चरित सुनाये ॥४४॥

मगन भए ऋषि देवचरित लखि मनही मन मुसकाने।
योंही शंभु विरंचि विष्णु को बासर सात सिराने।
उमा बिधात्री रमा उतै तिहुँ सोच बिवश अकुलानी।
पुनि नारद कैलास पधारे त्रिकालज्ञ बर ज्ञानी ॥४५॥

बोले हँसि मुनीश गिरिजा सें लखों देव तिहुँ जाई।
पतिव्रता अनुसुया निज गृह राखे बाल बनाई॥
सुनि ह्वै बिकल शिवा उठि धाई धात्रिहि सुगति सुनाई।
दोउ तिय अकुलाय कही सब सिंधुसुता ढिग आई ॥४६॥

सोच संकोच बिवश तिहुँ बनिता ह्वै जिय निपट हिरासा।
भूर गरूर दूर धरि गमनी अत्रि तिया के पासा।
आय लजाय धाय ऋषितिय के पायँ परीं अकुलाई।
अनुसुया करि प्यार बधू सम गहि निज हृदय लगाई ॥४७॥

पुनि तिहुँ बालन शीश धरो कर लहे शुद्ध निज रूपा।
बिदा किये सबही तिय संयुत कहि बर बचन अनूपा।
निज निज धाम गये हरि हर बिधि कहैं परस्पर माहीं।
कोऊ अनुसुया सम तिहुँ पुर बर पतिव्रता नाहीं ॥४८॥

इस कथाको ऋषिपत्नियोंसे सुनकर सीताजीके मनमें श्रीअनुसूयाजीके दर्शनकी लालसा हुई। कथाका सारांश यह है कि एक बार त्रिदेवकी शक्तियोंको अनुसूयाजीके पातिव्रत्यपर ईर्ष्या हुई और उन्होने अपने अपने पतिसे अनुसूयाजीके पतिव्रतको भंग करनेकेलिये हठ ठानी। तीनों (विधि, हरि, हर) पृथक् पृथक् अपनी अपनी पत्नियोंकी हठ रखनेकेलिये चले। राहमें तीनों मिले। यह मालूम होनेपर कि तीनों एकही उद्देश्यसे जा रहे हैं उन्होंने आपसमें सलाह कर अतिथि मुनियोंका रूप धारणकर अनुसूयाजीके यहां उस समय कि जब अत्रिजी आश्रमपर नहीं थे आकर उनसे कहा कि हम भूखे हैं, हमारे पास कमंडलोंमें सिकताकण हैं, यदि तुम उन्हें अपनी

हथेलीपर रखकर बिना आग और जलके पकाकर जिस विधिसे हम कहें हमें भोजन करा दो तो हम भोजन करेंगे, नहीं तो यहाँसे क्षुधा-तुरही चले जायेंगे। अतिथि द्वारसे भूखा लौट जानेसे गृहधर्मका नाश हो जाता है यह विचार कर श्रीअनुसूयाजीने अपने पातिव्रत्यके बलपर सिक्ताकणको पका देनेकी बात सोचकर मुनियोंसे सिक्ताकण माँगे और कहा कि जिस विधिसे कहो मैं पकाये लाती हूं, आप रुचिसे भोजन करें। तब वे बोले कि तुम नंगी होकर अपने हाथसे हमें भोजन कराओ। अनुसूयाजीने बहुत समझाया पर उन्होंने हठ न छोडा। तब यह जानकर कि यह अतिथि नहीं हैं, कोई छलिया हैं, उन्होंने ध्यानावस्थित हो सब बात जान ली। फिर इनके सिरोंपर हाथ फेरा। हाथ फेरतेही वे अबोध शिशुरूप हो गये। अनुसूयाजीने नग्न हो सिक्ताकण पकाकर अपने हाथसे खिलाये और तीनोंको सुंदर पालनेमें डालकर झुलाने लगी। इस तरह सात दिन बीत गये। तब नारदसे समाचार पाकर उनकी शक्तियाँ लज्जित होकर अनुसूयाजीके पास आ उनके चरणोंपर गिरीं। उन्होंने पुत्रवधू मानकर सबका आलिंगन और प्यार किया। वे अपने पतियोंको न पहचान सकीं। तब अनुसूयाजीने शिशुओंके सिरोंपर पुनः हाथ फेरकर उनको पूर्ववत् देवरूप प्रदान कर शक्तियोंसहित बिदा कर दिया।*

(ग) 'परिहरि प्रपंच छलु' इस कथनसे पाया गया कि इन्होंने बहुत 'प्रपंच छल' किये थे परंतु चित्रकूटमें इनके छल प्रपंच एकभी न चले। चित्रकूटने उनके छल प्रपंचको हर लिया। इससेभी चित्रकूटका माहात्म्य दिखाया कि जब जगत्पिता आदिका छल यहाँ हर लिया गया तब प्राकृत मनुष्यों और देवताओंके प्रपंचका हर लेना कौन बड़ी बात है?

---

* 'रामरसायन' श्रीअयोध्या कनकभवनके महंत श्रीजानकीप्रसादजी (उपनाम रसिकबिहारीजी तथा रसिकेशजी) की बनायी हुई है। उन्होंने छब्बीस ग्रंथ और रचे थे। यह ग्रंथ मेवाड़में उदयपुरके समीप स्थान कानोड श्रीमद्भागवत साहब श्रीनारहरसिंहजीके यहां उन्हींके समयमें रचा गया और संवत् १९७८ वि० में छपा।

७ पार्थ–इनके जन्मकी कथा इस प्रकार है। दुष्यन्त और भरतके वंशका उच्छेद देख सत्यवतीने व्यासका स्मरण किया और उनके आनेपर उसने अपने भाईके वंशकी रक्षा करनेको कहा। माताकी आज्ञासे व्यासजीने अंबिकासे धृतराष्ट्र और अंबालिकासे पाण्डु तथा उनकी दासीसे विदुरको उत्पन्न किया। धृतराष्ट्रके दुर्योधन और दुशासन आदि सौ पुत्र हुए और पांडुकी पत्नी कुंतीसे तीन पुत्र युधिष्ठिर, भीमसेन और अर्जुन हुए तथा उनकी दूसरी पत्नी माद्रीसे नकुल और सहदेव दो पुत्र हुए। पाण्डुके इन पाँचों पुत्रोंका विवाह द्रुपदराजाकी पुत्री द्रौपदीसे हुआ। इसके अतिरिक्त युधिष्ठिरजीकी दूसरी पत्नी 'देविका' थीं। भीमसेनका विवाह काशिराजकी कन्या बलन्धरासेभी हुआ। अर्जुनका विवाह सुभद्रासे हुआ जिसके पुत्र अभिमन्यु हुए। नकुलका विवाह करेणुमतीसे और सहदेवका विजयासे हुआ।

पाण्डुको वैराग्य हो जानेपर वे सपत्नीक वनमें रहे और राज्यका कार्य धृतराष्ट्र (जो जन्मसे अंधे होनेके कारण राजा न हो सकते थे) करते रहे। वनमें पाण्डुके सब पुत्र उत्पन्न हुए थे। टि० १० देखिये। पाण्डुके मरनेपर शतशृंग पर्वतके (जहांपर ऋषियोंकी शरणमें ये रहते थे) तपस्वियोंने कुंती और पाँचों बच्चोंको हस्तिनापुर आकर भीष्म और धृतराष्ट्रको सौंप दिया।

बचपनसेही भीमसेनका बल देखकर दुर्योधन पाण्डवोंसे जलने लगा और इसने उनके बापका राज्य हड़पनेके विचारसे इनके मार डालनेके बहुतेरे उपाय किये। पर वे भगवत्कृपासे बचते गये। इसका विस्तृत वृत्तान्त '**सो धों कहा जो न कियो सुयोधन**' पद १३७ और पद २३८ में दिया गया है। द्रोणाचार्यजीकी आज्ञासे सब कौरव और पाण्डव द्रुपद राजापर चढ़ धाये। कौरव द्रुपदकी सेनाके सामने न ठहर सके। रोते चिल्लाते पाण्डवोंके पास भाग आये। तब अर्जुनने द्रुपदका मुक़ाबला किया और उसको पकड़ लाकर द्रोणाचार्यजीको सौंप दिया। इसके एक वर्ष बाद धृतराष्ट्रने युधिष्ठिरजीको युवराज बना दिया। युधिष्ठिरजीके गुणप्रभावकी वृद्धिसे धृतराष्ट्रको चिन्ता हो गयी।

उसने कणिककी कूटनीतिका आश्रय लिया। दुर्योधनभी भीम और अर्जुनका बल देखकर चिन्तातुर रहता था। कर्ण और शकुनी (अपने मामा) से मिलकर उसने पाण्डवोंके मारनेके जो जो उपाय रचे वे सब निष्फल हो गये। तब दुर्योधनकी सलाहसे धृतराष्ट्रने युधिष्ठिरको वारणावतका मेला देख आनेके बहाने लाक्षाभवनमें रहनेको भेज दिया। पाण्डव लाक्षाभवनसे बचकर निकल गये और वेष बदले घूमने लगे। द्रौपदीके स्वयंवरके पश्चात् कौरवोंको ज्ञात हुआ कि पाण्डव जीवित हैं। विदुर पाण्डवोंको हस्तिनापुर लाये। इन्द्रप्रस्थमें उनका राज्य स्थापित हुआ। युधिष्ठिरजीने राजसूय यज्ञ किया। सभामंडपमें दुर्योधनने धोखेपर धोखा खाया जिससे उसकी हँसी हुई। इसने कर्ण और शकुनीसे सलाह कर युधिष्ठिरको कपटद्युतमें जीत लिया और द्रौपदीको नंगी करना चाहा। अंतमें इनको बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष किसी नगरमें अज्ञातवासके बाद पुनः राज्य लौटानेकी शर्तपर वनवास हुआ। उस वनवासके तेरह वर्षोंमें जो कष्ट पाण्डवोंने भोगे उनका विस्तृत वर्णन महाभारतके वनपर्व और विराटपर्वमें पाठक पढ़ लें। इतनेपरभी दुर्योधनने राज्य न लौटाया जिसका फलस्वरूप महाभारत-युद्ध और कौरवों तथा समस्त वीरोंका नाश हुआ। अंतमें युधिष्ठिर राजा हुए।

८ नल—नल निषधदेशके चन्द्रवंशीराजा वीरसेनके पुत्र थे। वे बड़े सुन्दर गुणवान्, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, वेदज्ञ, ब्राह्मणभक्त, अश्वविद्या, अश्वकी पहिचान और संचालनमें तो एकही थे। वीर. योद्धा और प्रबल पराक्रमीभी थे। उन्हीं दिनो विदर्भदेशमें भीमक नामके एक राजा राज्य करते थे। उनके तीन पुत्र (दम, दान्त, दमन) और एक कन्या दमयन्ती थी। दमयन्ती देवकन्याओंसेभी अधिक रूपवती थी। निषध और विदर्भदेशके लोगोंमें आनेजानेका व्यवहार था। इससे नलके सौंदर्य आदिकी प्रशंसा दमयन्तीतक पहुंच गयी थी। बिना देखेही दोनोंमें पारस्परिक अनुराग अंकुरित हो गया। एक हंसद्वारा नलके पुरुषरत्न होनेका संदेश दमयन्तीतक और दमयन्तीके स्त्रीरत्न होनेका नलतक पहुँचा। भीमकने स्वयंवर रचा। राजाओंको निमंत्रण भेजा।

वे सब आये। उधर देवर्षि नारद और पर्वतद्वारा देवलोकोंमेंभी समाचार पहुँचा। लोकपाल, इन्द्र, वरुण, अग्नि और यमादिभी विमानोंपर चले। उस समय नलभी चले। इनकी लोकोत्तर रूपसंपत्तिसे देवता चकित हुए। अतः उन्होंने नीचे आकर इनसे कहा कि 'राजन्! आप बड़े सत्यव्रती हैं। हम आपसे सहायता चाहते हैं। दूत बनाकर आपको एक जगह भेजना चाहते हैं।' राजाने प्रतिज्ञा की और पूछा कि 'आप कौन हैं और मुझे दूत बनाकर कौनसा काम लेना चाहते हैं?' तब उन्होंने सब प्रकट कर दिया। दमयन्तीके पास दूत बनकर जानेको कहा। उसपर राजा नलने कहा कि 'देवराज! वहाँ आप लोगोंके और मेरे जानेका एकही प्रयोजन है। इसलिये मुझे दूत बनाकर भेजना उचित नहीं। मुझे क्षमा कीजिये।' देवताओंने कहा कि 'तुम प्रतिज्ञा कर चुके हो, उसे मत तोड़ो, अविलंब वहाँ जाओ। तुम वहाँ बेरोकटोक हमारी कृपासे जा सकोगे।' राजा नल बेरोकटोक दमयन्तीके पास पहुँच गये। देवताओंका संदेशा सुनाया कि 'उनमेंसे जिसको चाहो अपने पतिके रूपमें वरण कर लो। उन देवताओंके प्रभावसेही मुझे कोई द्वारपाल देख नहीं पाये। मैंने संदेशा कह दिया। अब तुम्हारी जो इच्छा हो सो करो।' दमयन्तीके कहनेपर कि 'मैं तुम्हें वरण कर चुकी हूँ', नलने उसे समझायाभी कि 'तुम अपना मन उन्हींमें लगाओ। देवताओंको अप्रिय करनेसे मनुष्यकी मृत्यु हो जाती है।' दमयन्ती घबड़ाकर आँसू भरे हुए कहने लगी कि 'मैं सब देवताओंको प्रणाम करके आपकोही पतिरूपमें वरण कर रही हूँ। यह मैं सत्य शपथ खा रही हूँ।' राजा नलसे यहभी कहा कि 'आप सबके साथ स्वयंवरमें आवे, मैं वहीं सबके सामने आपको वरण करूँगी जिसमें आप निर्दोष रहें।' राजाने आकर सत्यसत्य सब देवताओंसे कह दिया। स्वयंवरमें चारों लोकपाल नलका रूप धारण कर नलके पास बैठ गये। दमयन्ती पहचान न सकी तब देवताओंकी शरण गयी। वे उसके आर्तविलाप, दृढ निश्चय इत्यादिको देखकर प्रसन्न हुए। उसने देखा कि देवताओंके शरीरपर पसीना नहीं है, पलकें गिरती नहीं, वे धरती छूते नहीं इत्यादि लक्षणोंसे नलको पहिचान कर उसने

उनके गलेमें माला डाल दी। दोनोंने प्रेमसे एक दूसरेका अभिनंदन किया और देवताओंकी शरण ग्रहण की। देवताओंने उनको आठ वरदान दिये। १ तुम्हें यज्ञमें मेरा दर्शन होगा। २ उत्तम मति मिलेगी। (इंद्र)। ३ जहां तुम स्मरण करोगे मैं प्रगट हो जाऊँगा। ४ मेरेसमान प्रकाशमान लोक तुम्हें प्राप्त होंगे। (अग्नि)। ५ तुम्हारी बनाई रसोई बहुत मीठी होगी। ६ तुम अपने धर्ममें दृढ़ रहोगे। (यम)। ७ जहां तुम चाहोगे वहां जल प्रकट हो जायगा। ८ तुम्हारी माला उत्तम गंधसे परिपूर्ण रहेगी। (वरुण)

जब लोकपाल लौट रहे थे, राहमें कलियुग और द्वापरसे भेंट हुई जो स्वयंवरमें जा रहे थे। लोकपालोंसे समाचार पानेपर कलिने क्रोधमें भरकर कहा कि 'ओह ! तब तो महा अनर्थ हुआ। उसने देवताओंकी उपेक्षा करके मनुष्यको अपनाया, इसलिये उसको दंड देना चाहिये।' देवताओंने समझाया कि दमयन्तीने हमारी आज्ञा प्राप्त करके नलको वरण किया है। नल उसके योग्य है।

कलियुगने द्वापरसे कहा कि 'तुम जुएके पाँसोंमें प्रवेश करके मेरी सहायता करो। मैं नलके शरीरमें प्रवेश करूँगा। एक दिन अपवित्र अवस्थामें राजाको देख कलि उनके शरीरमें प्रवेश कर गया और दूसरे रूपसे जाकर पुष्करको उनसे जुआ खेलनेको प्रवृत्त किया। महीनों जुआ हुआ। राजा नल सब कुछ हार गये। दमयन्तीसहित (दोनों केवल एक वस्त्र पहने हुए) राजा नल नगरसे निकल गये। तीन दिनरात केवल जल पीकर रहे। चौथे दिन मारे भूखके कुछ फल फूल खाकर आगे बढ़े। एकदिन कुछ पक्षियोंको पास बैठे देखा जिनके पंख सोनेकेसमान चमक रहे थे। उनको पकड़नेके विचारसे अपना वस्त्र उनपर राजाने फेंका। वे वस्त्र लेकर यह कहते हुए कि 'हम पक्षी नहीं हैं, जूवेके पाँसे हैं' उड़ गये।

'दमयन्ती सच्ची पतिव्रता है, कोईभी इसके सतीत्वको भंग नहीं कर सकता, इसे छोड़ यदि मैं चला जाऊँ तो संभव है कि इसे सुख मिल जाय' यह सोचकर वे उसे सोती छोड़ कर चल दिये। उनके शरीरमें कलियुगका प्रवेश होनेसे उनकी बुद्धि नष्ट हो गयी थी। दमयंती पतिको

न पाकर उन्मत्त और शोकग्रस्त हो विलाप करती तीन दिनरात घूमती घूमती एक आश्रमपर पहुँची जहाँ उसे वसिष्ठ और भृगु आदिका दर्शन हुआ। उन्होंने उसको भविष्य बताया और अंतर्धान हो गये। चलते चलते एक जगह कुछ व्यापारी देख पड़े। उनके सरदारसे यह जानकर कि वे राजा सुबाहुके राज्य चेदिदेशमें जा रहे हैं, दमयन्ती उनके साथ सुबाहुके नगरमें पहुँची। महलके नीचेसे निकलते समय राजमाताने उसे देख बुलावा भेजा। दमयन्तीने वहां इस शर्तपर रहना स्वीकार किया कि 'मैं कभी जूठा न खाउँगी, किसीके पैर नहीं धोऊँगी और पर पुरुषके साथ किसी प्रकारभी बातचीत न करूँगी। यदि कोई पुरुष मुझसे दुश्चेष्टा करें तो आपको उसे दंड देना होगा। बार बार ऐसा करनेपर उसे प्राणान्त दण्डभी देना होगा। मैं अपने पतिको ढूँढनेकेलिये ब्राह्मणोंसे बातचीत करती रहूँगी।'

नल दमयन्तीको छोड़कर आगे बढ़े। उस समय वनमें दावानल लग रहा था। नलको कर्कोटक नागने पुकारा कि मुझे आकर बचाओ। अग्निमें घुसकर उसको दावानलसे निकालनेपर उसने कहा कि तुम मुझे लिये हुए कुछ दूरतक गिनती करते हुए चलो। नलने ज्योंही 'दस' कहा, त्योंही उसने डस लिया, जिससे नलका रूप बदल गया और कर्कोटक अपने रूपमें हो गया और बोला 'अब तुमको कोई पहचान न सकेगा। कलियुग मेरे विषसे तुम्हारे शरीरमें बहुत दुखी रहेगा। अब तुमपर किसी विषका प्रभाव न पड़ेगा। तुमको किसीसे भय न रहेगा। युद्धमें सदा जय होगी। तुम अपना नाम बाहुक रख लो और द्यूतकुशल राजा ऋतुपर्णकी नगरी अयोध्यामें जाओ। तुम उन्हें घोड़ोंकी विद्या बतलाना और वे तुम्हें जूवेका रहस्य बतला देंगे। जब रूप बदलना हो, मेरा स्मरण करना और मेरे दिये वस्त्र धारण करना।' नलने अयोध्या जाकर ऋतुपर्णके यहाँ नौकरी की। वे अश्वशालाके अध्यक्ष बनाये गये।

उधर विदर्भनरेश भीमकने जूवेका समाचार पाकर दामाद और पुत्रीका पता लगानेकेलिये ब्राह्मणोंको सब ओर भेजा। सुदेवने चेदिनरेशके यहाँ पुण्याहवाचन होतेसमय दमयन्तीको पहचाना। तब राजमाताको

सब समाचार ज्ञात हुआ और उसने अपनी बहिनकी लड़कीको पहचाना। दमयन्ती पिताके घर आ अपने बच्चोंसे मिलीं। नलको ढूँढनेकेलिये ब्राह्मण भेजे गये। दमयन्तीने उन ब्राह्मणोंसे कहा कि 'आप लोग जिस राज्यमें जायँ, वहाँ मनुष्योंकी भीड़में यह बात कहें कि मेरे प्यारे छलिया, तुम मेरी साड़ीमेंसे आधी फाड़कर तथा मुझ दासीको वनमें सोती छोड़कर कहाँ चले गये? तुम्हारी वह दासी अबभी उसी अवस्थामें आधी साड़ी पहने तुम्हारे आनेकी बाट जोह रही है और तुम्हारे वियोगके दुःखसे दुखी हो रही है।' ऐसीही बात कहियेगा जिससे वे प्रसन्न हों और मुझपर कृपा करें। मेरी बात सुननेपर यदि कोई उत्तर दे तो वह कौन है, कहाँ रहता है इन बातोंका पता लगा लीजियेगा और उत्तर याद रखकर मुझे सुनाइयेगा। यहभी ध्यान रहे कि उसे यह न मालूम होने पावे कि आप यह बात मेरी आज्ञासे कह रहे हैं। बहुत दिनोंबाद पर्णादने अयोध्यासे लौटकर बाहुकका उत्तर 'कुलीन स्त्रियाँ घोर कष्ट पानेपरभी अपने शीलकी रक्षा करती हैं और अपने सतीत्वके बलपर स्वर्ग जीत लेती हैं। कभी उनका पति त्यागभी दे तो वे क्रोध नहीं करतीं, अपने सदाचारकी रक्षा करती हैं। त्यागनेवाला पुरुष आपत्तिमें पड़नेके कारण दुखी और अचेत हो रहा था, इसलिये उसपर क्रोध करना उचित नहीं है। माना कि पतिने अपनी पत्नीका योग्य सत्कार नहीं किया। परंतु वह उस समय राज्यलक्ष्मीसे च्युत, क्षुधातुर, दुखी और दुर्दशाग्रस्त था। जब वह अपनी प्राणरक्षाकेलिये जीविका चाह रहा था, तब पक्षी उसके वस्त्र लेकर उड़ गये। उसके हृदयकी पीड़ा असह्य थी' ऐसा सुनाकर उसका हुलिया तथा पता आदि दिया।

दमयन्तीने तुरंत सुदेवको बुलाकर कहा कि 'आप शीघ्रातिशीघ्र अयोध्या पहुँचकर राजा ऋतुपर्णसे जाकर कहें कि भीमकपुत्री फिरसे स्वयंवरमें स्वेच्छानुसार पति वरण करना चाहती है। बड़े बड़े राजा और राजकुमार जा रहे हैं। स्वयंवरकी तिथि कलही है। यदि आप पहुँच सकें तो वहाँ जाइये। नलके जीने वा मरनेका पता किसीको नहीं है। इसलिये वह कल सूर्योदयके समय दूसरा पति वरण करेगी।'

समाचार पाकर ऋतुपर्णने बाहुकसे बात की। बाहुकने इतनी शीघ्र पहुँचा देनेका बीड़ा उठाया। रास्तेमें रथकी फुर्ती और ऋतुपर्णकी गणितविद्याकी चतुराईका वर्णन है। बाहुकने कहा कि 'आप मुझे पाँसोंकी वशीकरण विद्या सिखा दें तो मैं आपको घोड़ोंकी विद्या सिखा दूँ। राजाने ज्योंही पाँसोंकी विद्या सिखा दी त्योंही कलियुग विष उगलता हुआ निकल पड़ा। रथकी घरघराहटसे दमयन्तीको विश्वास हो गया कि अवश्य रथका हाँकनेवाला मेरा पतिही होगा। क्योंकि एकही दिनमें चार सौ कोस घोड़ेके रथसे कोई और नहीं पहुँच सकता। दमयन्तीने कई प्रकार परीक्षाभी कर ली। दोनों मिले। राजा नलको जब विश्वास हो गया कि स्वयंवरकी युक्ति केवल नलको वहां बुलाने और पहचान लेनेकेलिये थी तब उन्होंने कर्कोटकका स्मरण किया और दिये हुए वस्त्र पहन लिये जिससे वे अपना पूर्वरूप पा गये। बातकी बातमें सबको खबर हो गयी। सब प्रसन्न हुए। फिर अपने नगरमें आ पुष्करसे सारा राज्य जूवेमें जीतकर उसको उसका राज्यभी दे दिया।

९ 'बिगत बिषाद भये पारथ नल' इति। चित्रकूटमाहात्म्यके संबंधमें बृहद्रामायणमें लिखा है कि पाण्डवोंने यहां आकर विधिवत् मंदाकिनीस्नान, तपस्या, प्रदक्षिणा, दान इत्यादि किये जिससे उनकी विपत्ति छूट गयी और राजा नलकाभी सब दुःख चित्रकूटमें आकर मंदाकिनीमें स्नान करने इत्यादिसे दूर हो गया। दोनोंके राज्य पुनः प्राप्त हुए। यथा "कुरुभिर्हृतराज्यस्तु पार्थो भ्रातृसमन्वितः। धौम्येन गुरुणा युक्तो कुंत्या द्रुपदकन्यया॥ चित्रकूटे शुभे क्षेत्रे श्रीरामपद-भूषिते। तपश्चचार विधिवद्धर्मराजो युधिष्ठिरः॥ स्नात्वा मंदाकिनीनीरे प्रदक्षिणमथा करोत्। दानं ददौ सविधिवच्छ्री-कृष्णप्रीतिहेतुकम्। तीर्थराजप्रभावेन स्नानदानानुकूलतः। विपत्ति-र्नाशमगमत्तस्य राज्ञो महात्मनः॥" "दमयंतीपतिर्वीरो राज्यं प्राप्यहताशुभः। मंदाकिनी पुण्यतमा गंगा त्रैलोक्यविश्रुता॥"

पार्थको कैसा विषाद था इसका अंदाजा पाठक युधिष्ठिरजीके वाक्योंसे लगा लें जो उन्होंने समय समयपर कहे हैं। काम्यकवनमें

महर्षि बृहदश्वके आगमनपर उन्होंने उनसे कहा है कि 'महाराज! कौरवोंने कपटबुद्धिसे मुझे बुलाकर छलके साथ जूआ खेला और मुझे अनजानको हराकर मेरा सर्वस्व छीन लिया। इतनाही नहीं, उन्होंने मेरी प्राणप्रिया द्रौपदीको घसीटकर भरी सभामें अपमानित किया। उन्होंने अंतमें हमें काली मृगछाला उढ़ाकर घोर वनमें भेज दिया। महर्षी! आपही बतलाइये कि इस पृथ्वीपर मुझसा भाग्यहीन राजा और कौन है? क्या आपने मेरे जैसा दुखी और कहीं देखा या सुना है?' इसीपर महर्षिने नल दमयन्तीकी कथा कही। इसके पश्चात् महर्षि धौम्यने तीर्थोंका वर्णन किया।

द्रौपदीके जयद्रथद्वारा हरण और फिर भीमद्वारा उससे छुटकारा पानेके बाद धर्मराज युधिष्ठिरने मार्कण्डेयजीसे कहा था कि 'यह सौभाग्यशालिनी यज्ञकी वेदीसे प्रकट हुई। इसने कभी पाप या निंदित कर्म नहीं किया। यह धर्मके तत्वको जानती और उसका पालन करती है। ऐसी स्त्रीकाभी अपहरण पापी जयद्रथने किया। यह अपमान हमें देखना पड़ा। सगे संबंधियोंसे दूर जंगलमें रहकर हम तरह तरहके कष्ट भोग रहे हैं। अतः पूछते हैं कि आपने हमारे समान मन्दभाग्य पुरुष इस जगत्में कोई औरभी देखा या सुना है?' इसपर मुनिने श्रीरामवनवासकी कथा कही।

१० यहां 'पारथ' (पार्थ) नामभी साभिप्राय है। वस्तुतः युधीष्ठिर, भीमसेन और अर्जुन पाण्डुके वीर्यसे नहीं हैं। वे कुंतीके पुत्र देवांशसे हैं। इसकी कथा इस प्रकार है। यदुवंशी शूरसेनके पृथा नामकी बड़ी सुन्दरी कन्या थी। वसुदेवजी इसीके भाई थे। इस कन्याको शूरसेनने अपनी बुआके संतानहीन लड़के कुंतिभोजको गोद दे दिया। यह कुंतिभोजकी धर्मपुत्री पृथा अथवा कुंती बड़ी सात्विक और गुणवतीभी थी। कुंतीने स्वयंवरमें पाण्डुको वरण किया और दोनोंका विधिपूर्वक विवाह हो गया। भीष्मपितामहने इनका एक और विवाह मद्रराजकी कन्या शल्यकी बहिन माद्रीसे करा दिया।

एकबार राजा पाण्डुने वनमें एक यूथपतिमृगको अपनी पत्नी मृगीके साथ विहार करते देख पाँच बाण मारे जिससे दोनों घायल

हो गये। तब मृगने कहा कि 'राजन्! अत्यन्त कामी, क्रोधी, बुद्धिहीन और पापी मनुष्यभी ऐसा क्रूर कर्म नहीं करते। आपकेलिये तो उचित यह है कि पापी और क्रूरकर्मा मनुष्यको दंड दें। मुझ निरपराधको मारकर आपने क्या लाभ उठाया ? मैं किंदन नामका तपस्वी मुनि हूँ। मनुष्य रहकर यह काम करनेमें मुझे लज्जा मालूम हुई, इसलिये मृग बनकर अपनी मृगीके साथ मैं विहार कर रहा था। मुझे मारनेमें आपको ब्रह्महत्या नहीं लगेगी परन्तु आपने मुझे जिस अवस्थामें मारा है वह सर्वथा मारनेके अनुपयुक्त थी। इसलिये यदि कभी आप अपनी पत्नीके साथ सहवास करेंगे तो उसी अवस्थामें आपकी मृत्यु होगी और वह पत्नी आपके साथ सती हो जायगी।'

मुनि और मुनिपत्नी दोनोंका शरीर छूट गया। पाण्डुको बहुत दुःख हुआ। मनही मनमें सोचने लगे कि बड़े बड़े कुलीनभी अपने अंतःकरणपर वश न होनेके कारण कामके फंदेमें फँस जाते हैं और अपनेही हाथों अपनी दुर्गति करते हैं।' उनको वैराग्य हुआ, उन्होंने वस्त्र, भूषण उतारकर दान कर दिये, सेना आदि हस्तिनापुर लौटा दी और स्वयं वानप्रस्थाश्रममें रह वनोंमें विचरने लगे। एक बार महर्षियोंको ब्रह्माजीके दर्शनार्थ ब्रह्मलोक जाते देख येभी उनके साथ चल पड़े। ऋषियोंने समझाया कि मार्गपर तुम्हारी स्त्रियां न चल सकेंगी। तुम यह यात्रा स्थगित रक्खो। तब राजाका हृदय यह सोचकर संतप्त होने लगा कि पितरोंका ऋण मेरे सिरपर है। महर्षियोंने कहा कि आपके देव समान पुत्र होंगे। आप इसका उद्योग करें। उनके चले जानेपर राजा शापको यादकर चिंतित हो गये। एक दिन उन्होंने कुंतीसे पुत्रोत्पत्तिकेलिये प्रयत्न करनेको कहा। तब कुंतीने अपने बालपनेके आशीर्वादका वृत्तान्त सुनाया। ' पिताने अतिथि स्वागत सत्कारका काम मुझे सौंप रक्खा था। एक बार दुर्वासजी आये। मेरी सेवामें प्रसन्न हो उन्होंने मुझे एक मंत्र बतलाकर वर दिया कि तुम इस मंत्रसे जिस देवताका आवाहन करोगी वह तुम्हारे आधीन हो जायगा। आपकी आज्ञा होनेपर मैं जिस देवताका आवाहन करूँगी, उसीकी कृपादृष्टिसे मुझे संतान होगी।'

पांडुने धर्मराजका आवाहन करनेको कहा जिसमें परम धर्मपरायण पुत्र हो। कुंतीने ऐसाही किया। धर्मराजके आनेपर उनसे पुत्र माँगा। इनकी कृपासे धर्मपुत्र युधिष्ठिर हुए। कुछ दिनोंके बाद भयंकर पराक्रमी और बलशाली पुत्रकी इच्छासे पांडुकी आज्ञासे कुंतीने वायु देवसे भीमसेनको उत्पन्न किया। तत्पश्चात् 'मेरे विश्वविख्यात् सर्वश्रेष्ठ एक पुत्र हो,' पांडुकी इस इच्छाकी पूर्तिकेलिये एक वर्षतक कुंतीने व्रत किया और पांडुने स्वयं सूर्यके सामने एक पैरसे खड़े होकर तपस्या की जिससे इन्द्र प्रकट हुए और बोले कि 'तुम्हें मैं विश्वविख्यात्, ब्राह्मण, गौ, सुहृदोंका सेवक तथा शत्रुओंको संतप्त करनेवाला श्रेष्ठ पुत्र दूँगा।' यह वर प्राप्त करनेके बाद उन्होंने कुंतीको उनका आवाहन करनेको कहा। इससे कार्त्तवीर्य, अर्जुन और शंकरके समान पराक्रमी पुत्र अर्जुन हुए। इसके पश्चात् माद्री और पांडुकी इच्छापर कुंतीने माद्रीको अश्विनीकुमारोंका आवाहन करनेको कहा। अश्विनीकुमारोंने उन्हें नकुल और सहदेव दो जुड़वाँ पुत्र दिये। एक बार कामके नशेमें पांडु ऐसे चूर हो गये कि माद्रीको उन्होंने पकड़कर उसके साथ बलात्कार किया। बस ऐसा करतेही उनके प्राण निकल गये।

अनुसंधान [२४]

न करु बिलंबु बिचारु चारु मति
बरष पाछिले[४] सम अगिलो[५] पलु।
मंत्र सो जाइ जपहि जो जपत[६] भए[७]
अजर अमर हर अँचइ हलाहलु ॥ ४ ॥

राम नाम जप जाग करत नित मज्जत
पय पावन पीवत जलु।

---

४ पाछिले—रा०, भा०, प्र०, ज० ह०, ५१, १५, ७४, आ०। पाछिलो—बे०। ५ अगिलो—रा०, १५, ७४, ५१, डु०, मु०, वै०, दी०। अगिले—प्र०, ह०, भ०, वि०। आगिलो—बे०, ज०। आगिले–भा०। ६ जपि—वै०, वि०। ७ भै—भा०, बे०। भये—७४। भय—१५। भे—भ०, वै०, मु०, दी०, वि०।

करि हैं राम भावतो मन[८] को
सुख साधन अनयास महाफलु ॥ ५ ॥
कामदमनि कामता कल्पतरु[९] सो
जुग जुग जागत[१०] जगती तलु ।
तुलसी तोहि बिसेष[११] बुझिये
एक प्रतीति प्रीति एकै बलु ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—बिलंबु (विलंब) = देर । बिचारु = बिचार कर, सोच समझ । पाछिले = पिछले, बीते हुए, गत । यथा, 'पाछिल मोह समुझि दुखमाना ।' अगिलो = आगेका । अँचइ = पीकर । अँचवना (सं० आचमनसे)=पीना । जपजाग=मंत्रजपरूपी यज्ञ । पीवत = पीते हुए, पीनेसे । भावतो=प्रियतम; बहुत भला लगनेवाला । यथा, 'नीरज नयन भावते जी के ।' मनको भावतो = मनको भाया हुआ, मनका सोचा या चाहा हुआ । सुख=यहां 'सुख' विशेषण है । सुकर, जिसमें कुछ कठिनाई न हो, सहजमें होनेवाला । पय = पयस्विनी । मानस और विनयके मतानुसार मंदाकिनी और पयस्विनी एकही हैं । पद २३ में 'मंदाकिनि मालिनि सदा सींच' कहा था और यहाँ 'मज्जत पय पावन' कहा । इसी तरह 'मंदाकिनि मज्जन तिहुं काला' यह अवध-पुरवासीयोंका संकल्प (अयोध्याकांडमें) कहा गया और उसकी पूर्त्तिमें कहा कि पावन पय तिहुं काल नहाहीं ।' अनयास (अन् + आयास) = विना परिश्रम । कामदमनि = कामनाओंकी देनेवाली मणि, चिंतामणि । कामता = कामद्गिरि, चित्रकूट, कामतानाथ । यथा 'कह कपीस कामता सिधारी । बैठहु कालिह राम उर धारी ।' जगतीतल (सं०) = पृथ्वी; पृथ्वीपर । विशेष = खास कर । बूझियें = चाहिये । यथा 'ऐसी तोहि न बूझिये हनुमान हठीले ।' एकै = एकही ।

पद्यार्थ—अब देर न कर । सुन्दर बुद्धिसे अगले एक पलको

---

८ मी—ज०, प्र०, १५ । ९ सुरतरु सो जो—रा० । कल्पतरु जो—ज० । १० जागति—भ०, मु० । ११ बिसेषि—रा०, भा०, बि० ।

पिछले वर्षोंके समान विचार। (चित्रकूट बिना अब पलभरभी व्यर्थ न खो, वहां) जाकर वही मंत्र जप जिसे जपते हुए शिवजी हालाहल विष पीकर (भी) अजर अमर हो गये। ।४। नित्य रामनाम रूपी जपयज्ञ करते, पावन पयस्विनीमें नित्य नहाते और उसका जल नित्य पीते श्रीरामचंद्रजी तेरा मनभाया करेंगे। सुख साधन और बिना परिश्रमही महाफल। (पयस्विनीमें स्नान कर लेना, वहाँ जल पीना और राम राम करना कितना सरल साधन है और फल उसका कितना बड़ा! लोकमें सुख और अंतमें भगवद्धाम।) ।५। (कामनाएँ पूर्ण करनेकेलिये) कामता चिंतामणि और कल्पवृक्षही है, यह बात युगयुगान्तरसे पृथ्वीपर प्रसिद्ध है। तुलसीदासजी कहते हैं कि (रे चित्त!) तुझे तो खासकर एक इन्हींका विश्वास, इन्हींसे प्रेम और इन्हींका बल भरोसा (रखना) चाहिये ।६।

टिप्पणी—(क) 'न करु बिलंबु' इति। भगवत्सन्मुख होनेमें किंचित्भी विलंब करना उचित नहीं यह उपदेश यहां दे रहे हैं। आगेभी एक जगह ऐसाही कहा है कि '**बेगि बिलंबु न कीजिये लाजै उपदेस। बीजमंत्र जपिये सोई जोइ जपत महेस**'। गीतावलीमें विभीषणजीकोभी श्रीशंकरजीका उपदेश यही है। यथा '**तहँई मिले महेस दियो हित उपदेस रामकी सरन जाहि सुदिन न हेरैं॥ जाको नाम कुंभज कलेस सिंधु सोखिवे को मेरो कह्यो मानि तात बाँध जनि बेरैं।**' भाव कि शुभ दिन शुभ शकुन आदि विचारनेकी ज़रूरत नहीं। भगवत्सन्मुख जिस घड़ीमें हो जाय वही शुभ है। कहाभी है कि '**सर्वं त्यक्त्वा हरि भजेत्।**'

(ख) 'बिचारु चारु मति' इति। सुंदर बुद्धिसे विचार करनेपर इस तत्त्वको पहुँचोगे, यही सार निकलेगा, साधारण बुद्धिसे नहीं। दुर्बुद्धिको यह बात नहीं सूझ सकती कि 'बरष पाछिले सम अगिलो पलु' है। वे तो सदा इसके विपरीतही समझते रहते हैं। वे तो यही विचार करते हैं कि अभी क्या गया है, अभी तो ४० वर्षही बीते हैं, अभी तो खेलने खानेके दिन हैं, आगे बहुतसमय पड़ा है, चौथा पन

आवेगा तब भजन कर लेंगे। 'बिचारु चारु मति' कहकर जनाया कि तू ऐसा न विचार। ऐसा विचार 'चारु मति' का विचार नहीं है।

(ग) 'बरष पाछिले सम अगिलो पलु' इति। जैसे पिछले तमाम वर्ष बीत गये वैसेही यह अगला पलभी बीताही समझो। सुंदर बुद्धिसे बिचार करनेसे तुझे साफ़ समझ पड़ेगा कि सारी उम्र बीत गयी। काल सिरपर है, न जाने अगले क्षणमें कालका कलेवा बन जाऊँ। अतः अब इस बचीखुची आयुको पल समान समझकर इसे अमूल्य और शीघ्र बीतता हुआ जान अपनी बिगड़ी बना ले, व्यर्थ न जाने दे। सीधे अर्थके अनुसार तो यह भाव कहा गया। दूसरा प्रकारसे इसका भावार्थ यहभी कह सकते हैं कि 'तू यह न पछताता बैठ कि सारी आयु तो बीत गयी, कुछ न किया, अब क्या होगा? ऐसा विचार मनमें न ला। किंतु यह सोच कि जो बीता सो बीता। अब रहा सहा जो एक पलभी बचा है यहभी वैसेही न व्यर्थ चला जाने पावे। इस एकही पलमें वह काम हो सकता है जो सारी उम्रमें न हुआ था। एक पल बहुत है। इतनेमेंही जीवन सफल हो सकता है। यथा 'बिगरी जन्म अनेक की सुधरै पल लगै न आधु। पाहि कृपानिधि कहे को न राम कियो साधु॥' 'बिगरी जनम अनेक की सुधरै अबहीं आजु। होहि राम को राम भजु तुलसी तजि कुसमाजु॥' तात्पर्य कि आगेवाला पल पिछली सारी उम्रसे कम नहीं है। किंतु उससे अधिक मूल्यवान् है। इसे व्यर्थ न जाने दे। अब एक पलका बीत जाना ऐसा समझ कि वर्षके वर्ष व्यर्थ बीते जा रहे हैं।

२ 'मंत्र सो जाइ जपहि जो जपत' इति। (क) भगवान् शंकर कौन मंत्र जपकर अजर अमर हो गये और कालकूट पी गये? राम नामही वह परम मंत्र है। यथा 'नाम प्रसाद संभु अबिनासी', 'नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फल दीन्ह अमीको।', 'तुम्ह पुनि राम राम दिनराती। सादर जपहु अनंग अराती।' पूर्व पद ३ में यह प्रमाणोंके उद्धरणोंसेभी स्पष्ट कर दिया गया है कि भगवान् शंकर निरंतर रामनाम जपते हैं। रामनामके बलसेही वे काल-

कूटको पी गये, विष उनको अमृत हो गया। पाठक वहाँ देख लें। (ख) यहाँ प्रथम पर्यायोक्ति और विरोधाभास अलंकार हैं। (ग) संभव है कि 'मंत्र' से कोई कुछ और समझ ले। इसलिये पूज्य कवि उसे आगे स्वयंही स्पष्ट कर देते हैं।

३ (क) 'राम नाम जप जाग करत नित' इति। यदि कहो कि 'अब शेष आयुमें साधनही क्या हो सकता है? मंत्र जपनेको कहते हो सो मंत्र जप विधिभी तो कठिन है!' इसपर कहते हैं कि यहां कोई कठिन साधन नहीं करना है। सुखसे बैठे राम राम जपो। 'राम' नामही वह मंत्र है। इसके जपमें कोई खास विधिकी आवश्यकता नहीं है और फल इससे वह प्राप्त हो जाता है जो बड़े बड़े यज्ञोंसेभी नहीं प्राप्त हो सकता। जपयज्ञ सबसे सरल है और उसका फल सबसे विशेष है। जपयज्ञ भगवान्‌का रूपही है। यथा, 'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि'। (गीता०)

(ख) 'मज्जन पय पावन सुख साधन अनयास महाफलु' इति। 'पयस्विनी स्नान, जलपान और सुखसे बैठे राम राम जपना' बस यही साधन है। ऐसा सुखमय साधन और विना परिश्रम परमपदरूपी महाफलकी प्राप्ति! भला इसकेलिये कौन न ललचायेगा? अवश्यही इसमें तुरंत लग जा। बता तो भला इसमें कुछभी परिश्रम है?

(ग) 'महाफल' इति। 'महा' कहकर जनाया कि फल तो अर्थ, धर्म, काम और मोक्षभी हैं। पर ये साधारण फल हैं जो अन्य साधनोंसेभी प्राप्त हो जाते हैं। 'चित्रकूटमें राम नाम जपने, पयस्विनीमें स्नान करने और उसीका जल पीने' इस साधनसे मनोवांछित सब फल तो प्राप्तही होते हैं और साथही साथ श्रीरामजीके चरणोंमें निर्भर अमल अविनाशिनी भक्ति वा प्रेमभी प्राप्त हो जाता है जो बड़े बड़े ज्ञानियोंकोभी दुर्लभ है।

इस पदमें चतुष्टय अन्तःकरणमेंसे चित्त, बुद्धि (मति) और मन तीनको उनके व्यापारके अनुसार यहाँतक कहा। 'अब चित चेति' चेत करनेमें चित्तका, 'बिचारु चारु मति' विचार करनेमें

बुद्धिका और ' करि हैं राम भावतो मनको ' अर्थात् इच्छापूर्त्तिमें मनका प्रयोग किया गया ।

४ ' कामदमनि कामता कलपतरु ' इति । (क) यहाँ कामताको कामदमणि और कल्पतरु कहा । चिन्तामणि और कल्पवृक्ष दोनों स्वर्गमें हैं । वे दुर्लभ हैं और कामता सुलभ है । जो फल वे वहाँके निवासियोंको देते हैं वे सब कामतासे इस पृथ्वीपर प्राप्त होते है । उतनेही नहीं किन्तु भक्ति और मुक्तिभी प्राप्त होती है जो चिन्तामणि और कल्पवृक्षके अधिकारके बाहरकी बातें हैं ।

(ख) ' सो जुग जुग जागत जगतीतलु ' इति । यह बात सदासे जगत्में विख्यात् चली आ रही है । तात्पर्य कि प्रत्यक्षको प्रमाणकी आवश्यकताही क्या ? यह प्रभाव तो सब दिन और सब युगोंमें प्रत्यक्ष देखा गया है, इसीसे सब युगोंमें प्रसिद्ध है । दूसरा भाव यह है कि किसी तीर्थका माहात्म्य सत्ययुगमें विशेष था, किसीका त्रेतामें विशेष माहात्म्य था, तो किसीका द्वापरमें और किसीका कलियुगमें विशेष माना गया है । परन्तु कामदगिरि (चित्रकूटका) माहात्म्य चारों युगोंमें एकसा बना रहता है । यथा, **'सुवर्णकूटं रजताभिकूटं माणिक्यकूटं मणिरत्नकूटम् । अनेककूटं बहुवर्णकूटं श्रीचित्रकूटं शरणं प्रपद्ये ॥ १ ॥ ' ' असारे खलु संसारे चित्त चिन्तां परित्यज । अखिलानंददं धाम चित्रकूटं चलाचलम् ॥ २ ॥ '** (स० दा०) **' चित्रकूटं महातीर्थं परमनिर्वाणकारकम् । धर्माभिलाष बुद्धीनां धर्म्मराशिकरं परम् ॥ अर्थिनामर्थदातारं परमार्थप्रकाशकम् । कामिनां कामदं श्रेष्ठं मुमुक्षूणांच मोक्षदम् ॥ '** (बृह० रा०, वै०)

(ग) ' तोहि बिसेष बूझिये ' इति । ' विशेष ' कहनेका भाव कि चाहिये तो सभीको पर तुझको विशेष चाहिये । क्योंकि तुझे तो इसीसे सब कुछ प्राप्त हुआ है । विशेष इससे कि तेरेलिये तो ' बिधि गति दूसरी न निर्मई । ' साधारणतः एक श्रीरामकीही गति है ।

(घ) ' एक प्रतीति प्रीति एकै बलु ' इति । एकही विश्वास, एकही प्रीति और एकही बल है यह श्रीरामकाही है । मिलान किजिये ' एक

भरोसो एक बल एक आस विश्वास। एक राम घनश्याम हित चातक तुलसीदास ॥' दो० २७७।

(ङ) 'कामदमनि कामता कलपतरु' में समअभेद रूपक है। 'जुग जुग' में पुनरुक्ति प्रकाश है। 'तोहि बिसेष बूझिये' में विशेषक अलंकार है।

५ कान्हरा रागका समय रात्रिका दूसरा प्रहर है। चित्तको बाहर निकल जानेका, चित्रकूटको चुप चाप भाग निकलनेके उपदेशका यही सर्वोत्तम समय है। 'देखो सब निद्रावश सो रहे हैं, भाग चलनेका अच्छा मौका है।' 'अब चित चेति चित्रकूटहि चलु।' इस गीतका कान्हरा रागमें होनेसे संगीतशास्त्रज्ञान और साहित्यका कैसा अच्छा सम्मिश्रण हुआ है!

६ चित्रकूट वर्णन—पं. देवदत्तशास्त्रीजी लिखते हैं कि "गोस्वामी-जीकी जीवनीका क्रम अभी चालू है। एक एक करके वे अपनी जीवनगत घटनाएँ और जीवनी बतला रहे हैं। चित्रकूटवर्णनमें तो उन्होंने हर प्रकारसे दिल खोलकर कह दिया है कि मैं चित्रकूटप्रान्तका उत्पन्न पुत्र हूँ। चित्रकूटसंबंधी पदोंकी व्याख्या, विशेषताओंके उद्घाटनमें तो एक स्वतंत्र पुस्तक लिखी जा सकती है, जो गोस्वामीजीकी स्वकथित जीवनी कही जा सकती है। हम यहां पदप्रयोजन, शब्दनिरुक्ति न करके केवल सारांश और मुख्य विशेषताएँ लिख रहे हैं।

गोस्वामीजीने चित्रकूटवर्णन वसन्तरागमें गाया है जो साहित्यिक दृष्टिसे बेजोड़ही नहीं वरं 'न भूतो न भविष्यति' ही कहा जा सकता है। साहित्यिक आलोचनाकेलिये यहां स्थानही नहीं। अतः हम उनके हृदयके अन्तरतम भावोंको प्रकट करते हैं।

राग वसन्त—संगीत दामोदरके अनुसार वसन्तराग छः रागोंमेंसे एक राग है। संगीत रत्नाकरके अनुसार यह राग पंचवक्त्र शिवके द्वितीय मुख वामदेवसे उत्पन्न हुआ। यह पहलेही कहा जा चुका है कि वामदेव शंकर चित्रकूटप्रान्तमें एक प्रधान सिद्ध और पूज्य हैं। उन्हींके नामसे बाँदा नाम बसा है। तुलसीदासजी इसी प्रान्तके निवासी थे।

वामदेवके उसी प्रकार परम भक्त थे जैसे काशीवासकालमें विश्वनाथजीके। अतः अपनी जन्मभूमिके प्रान्तके वर्णनमें प्रान्तपति वामदेवसे उत्पन्न राग वसन्तका अवलंबन किया। वसन्तकालके कविवर्णनीय विषय ये हैं, 'सुरभौ दोला कोकिल मारुत सूर्यगतिरुदलोद्भिदाः। जा तीतर पुष्पचयामंजरी भ्रमरझंकाराः॥' (कवि कल्पलता १ स्तवन)

गोस्वामीजीने उक्त विषयोंका यथातथ्यवर्णन चित्रकूटमें करके अपनी कवित्वशक्ति और परिचयचारुताका परिचय दिया है। किन्तु चित्रकूटमें तो बारहो मास वसन्तकी बहार रहती है। उसका गान बारहों मास वसन्तरागसे गेय है। चित्रकूट वर्णनमें स्वाभाविकता है, आत्मीयता है और है एक अतीतकी ताज़ी स्मृति, जो कविको विह्वल, उन्मत्त बना देती है। काशीवास करते हुए कवि चौंक उठता है और कहता है कि 'अब चित चेति चित्रकूटहि चलु।' बलिहारी! क्यों न हो! काशीवासी विरक्त महात्माके हृदयमेंभी 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' का उत्तम भाव अक्षुण्ण है। सिद्धावस्था, विरक्तावस्थामेंभी एक बार पुनः जन्मभूमिके दर्शनको भावुक हृदय अधीर हो उठता है और एकाग्र तपःनिष्ठ मनको चेत कराने लगता है। याद दिलाता है अपने इष्टदेवके विहारथलकी आड़से अपने शैशवकी विहारस्थलीका। इतनाही नहीं बाल युवाकी सारी घटनाएँ अनोखे ढंगसे कहकर जन्मभूमिभी सिद्ध करता है 'जगतपति जगजनक' की आड़से। कवि परिचय दे रहा है कि मैंही नहीं, मेरे जनकभी वहीं जनमे हैं। वह मेरी बपौती है और पुण्यभूमि है। कविको गर्व है कि मैं ऐसी पुण्यभूमिमें उत्पन्न हुआ जहाँ विधिहरिहरभी जनमें, रघुबर बसे, पार्थ विगतबिषाद हुए।

तुलसीदासजीका वर्णनही हमें उनके चित्रकूट प्रान्तवासी होनेका परिचय देता है। यदि हम पदके अन्तर्भावोंकी समीक्षा करते हैं तो संदेहकी कोई गुंजाइशही नहीं रह जाती।"

समाप्त

संबंध सूचि

संबंध	पृष्ठ
अगस्त्यमुनि	१९५
असुर	२२
अरुण	२६, ३१
अनुप्रास	३१
अमृतकुंड	४०
अष्टसिद्धियाँ	७३
अविनाशी	१०१
अहिभूषण	१०३
अवधूत	१११
अग्नि	११५
अर्धनारीश्वररुप	११९
अवतार	१३५
अधर्म	१३७
अधि उपसर्ग	१४३
असि	१५०
अजीत	१५०
अव्यक्तगुण	१६०
अव्यक्त	१६०
अजीताक्ष	१७२
अवस्थाएँ	१९१
अहंकार	१९६, २०१
अष्टयोगिनीयाँ	२५२
असुरसेवि	२५३
असुरयुद्ध	२५९
असमंजस	२६९
अलकनंदा	२७१
अज	२७९, २८२
आधिभौतिक	८७, ९१
आनंदद	१७७
आगम	२४७
ईश्वरका शरीर	१४६
ईश्वर	१७२
उपपुराण	३४
उदारता	४७
उदार	५१
उमापति	५७
उमा	५७
उदार कीर्ति	९९
उपाधि	७४
उमाकंत	२११
उरबसी	२२२
उर्वीधर	२३६
उर्वी	२३६
उग्रतार	२५१
ऋषि	९७
ऋतु	२१८
एकदेववाद	१८४
एकजटा	२५१
ओढरदानी	७३
ओढरढरनी	७८
अंशुमान	२६९
अंतरअयनु	३०९
अंतःकरण	३७७
करमाली	२३, ३१
करी	३१
कल्पतरु	३४, ४६, ४७, ३७८
करुणा	७५, ९९, १९७
कस	७६
करुणाकर	७६
कल्प	९७
कर्पुर	१११, ११४, १९७
करुणाकंद	११६
करण	१४१
कला	१४२, १४३
कलाधर	१४३
कल्पांत	१५१
कलीकाल	१५९, १९४
कर्पुरगौर	१९९, २०६
करुणाउदार	२०६
कराली	२३९, २५६
कपाली	२३९
कपील	२६८
कर्णघंटा	३२४, ३२७
कला	३३८
कपट	३५
कालकूट	३६
कालकूटकी कथा	३६
काशीमें मुक्ति	४४, ७८, १०५, ३३७
कामरिपु	४७, ८४, ९७, १०१
काम	७२, २२२, २२३, २२४
कामदेव	९७, ११४, १७५
कामारि	१०१
काशी	१३१, ३३०
काममदमोचन	१७४, १७५, १९०
काली	२३९

संबंध	पृष्ठ
कार्तिकेय	२४२
कार्तिकेयकी जन्मकथा	२४२
कालिका	२५१, २५८
कालिकाके नाम	२५७
कामधेनु	३१२, ३२८
काबा	३३०
कामदमणि	३७८
कामदगिरी	३७८
कामता	३७८
किर	२१७
किरण	२५२
किंकर	९१, ९२
कुंदेंदु	११०, ११४
कुंडल	१११
कुबेर	१४८
कुच	२२०
कुंभिज	२३६
कृपासिंधु	११
कृपानिधान	४८
कृत्तिवासा	११८
कृष्णवर्णा	२५१
केहरी	३१
केशव	३३३, ३३८
कैवल्य	४४, १३७
कैलास	१३१
कैवल्यसुख	१३७
कोक	१८, २७४
कोकनद	३१
कौशिकी	२५६, २५८
कंद	१११
कंकाली	२४१
खेचर	१५०
खंजन	२२७
गण	२
गणपति	५, ११
गणेश विवाह	६
गणेशजीकी मातृभक्ति	६, १०
गणेशजीकी अग्रपूजा	६, १०
गणेशजन्म	७, ९
गणेशजीका शरीर	७
गजबदन	७, ९, ११, १३
गणेशजीकी पितृभक्ति	१०
गणेशवंदना	१५
गति	४४, ५०
गरलकंठ	११६, १८९
गजचर्म	११८
गतभेदमाया	१२९
गलकंबल	३१०
गव्य	३३१
ग्रह	२५३
गाइअै	४
गायत्रीमंत्र	३०
गिरजापति	७३
गिरजा	११८
गीताके असूर	२६०
गुण	१२, १९८
गुणनिधि	७७
गुणअयन	१००
गुरु	१६६, १६७
गुण नायक	१९६
गुर्वी	२३५
गोस्वामीजीकी अनन्यता	१६
गोस्वामीजीको काशीसे भगाना	९२
गोस्वामीजीकी गूढता	२७७
गौर	१८७, २३९
गौरीशंकर	१४६
गंगा	११८, १४६, १८९
गंगावतरण	१४६
गंगाधर	१८९
गंगाकी कथा	२७१, २७२, २७३
गंगाकी श्रेष्ठता	२७३
गंगाकी पूजा	२७६
गंगाकी महिमा	२८९, २९६
गंगा स्तुति	२९९
घरबात	६५
घोर	१७१
घंट	३२४
चकवा	२५
चकई	२५
चतुर्भुजा	२५१
चारखानी	१६०
चातक चौतिशा	२४९
चारा	३३२, ३३३
चारु	३४८
चारुमति	३७५
चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म	१३४
चिताभस्मालेपी	१५९

संबंध	पृष्ठ
चित्रकूट	३४१, ३५३
चित	३५१
चित्तवृत्ति	३५१
चित्रकूट माहात्म्य	३५०
चित्रकूट वर्णन	३७९
चुटकी	६०
चोर	१९४
चोर शिखामणी	१९४
चौदह लोक	१५१
चंपक	२०८
चंद्र	११५
चंद्रिका	२५९
छालिका	२६४
छाह	३४९
छिन्नमस्ता	३३९
छः आयुध	१५५
छः मुख	२३४
छः मुखी	२४०
छः मुखीकी जन्मकथा	२४०
जगदंबा	२३९
जगदंबिका	२४३
जगत्जननि	२५३
जगत्पिता	२५५
जगन्माता	२५५
जन्हू	२६३
जलचर	२६७
जलके गुण	२७५
जल भरणी	२९७
जयशंकी	२९९
जगदघ	३०१
जवास	३०३
जनक	३५६

संबंध	पृष्ठ
जगबंदन	५, ११
जगव्यापक	१२
जलजनयन	९६, १००
जटा	१११, १४७
जटामुकुट	११६
जगद्गुरु	१६७
जल	१९५
जालिका	२५७
जान्हवी	२६३
जाया	२३४
जीवगण	३३२
जीवब्रह्मैक्य	८५
जीववैषम्य	१०५
जीव	११७, १४४
जुतुकामिनि	२८७
जेरुसलेम	३३०
जंबुद्विप	१३२
जंत्रमंत्र	१५०
टागोर	२७८
डमरु	१२५, १३०, १८८
डाकिनी	१५०
डिंडिमी	१२५
तर	७५
तक्ष	१२६
तत्व	१२६
तत्वज्ञान	१२६
तरण	१४१
तमाल	२०८
तप	२५६
त्रयगामिनी	२९२
तारकासुर	४१
तारणतरण	१४२

संबंध	पृष्ठ
ताप	१५२
ताम्र रस लोचनं	१९०
तापस	२५६
त्यागी	१९१
त्यागरुप	१५६
त्रासहरिनि	२९१
त्रिलोचन	३२४
त्रिपुर	४०, ४१
त्रिशूल	१११, ११८, १८७, १९२
त्रिगुणात्मक सृष्टी	१३४
त्रिपुर मर्दन	१५९
त्रिविध शूल	१९०
त्रिविध भव	१९०
त्रिपुर सुन्दरी	२३९
त्रिपथगा	२६४
त्रिपुरारि	२८३
त्रिपुरारि शिरधामिनि	२९९
त्रिदेवकी जन्मकथा	२५७
त्रिदेवोंका प्रपंच छल	३५९
त्रिदेव सूर्य	२८
त्रिनयन	२०७
तीन गुणोंके भेद	१३४
तीन रुप	१३४
तीनलोक	१५१
तीन अवस्था	१९०
तीन शरीर	१९०
तीन गुण	१९०
तीन काल	२०७
तीन ताप	२५३

संबंध	पृष्ठ
तीन स्थान	२७६
तुलसी	९४
तूवा	३४
तेजरासी	२५
तेज	११५
त्रैलोक शोकहर	२०६
त्रैतापहारी	२७५
तांडव	१२५, १२९
थलच्चर	२६७
थालिका	२६५
दनुज	३३
दर	१११, ११४
दस विद्याएँ	२५७
दानकी रीति	६२
दाताबडे	८८, ८९
दाया	२३२
दिवाकर	२०, २२, ३१, १०४
दिव्य	२२७
दिग्गज	१५२
द्विज	७५
द्विजचंद्र	२०१
दीनदयाल	२०, ३१, ३५
दुरित	२३
दुख	२३, २३१
देवा	२२, ३१
देतदयेबिनु	६१
देव बडे	८८
देव	११३
देवि	२३१
देवसरि	२८९
देवियाँ	३३०
देविसंपत्ति	२४६
द्वैतबुद्धि	१०५
दोष	२३, २२७, २३०
द्रोनी	२७९
द्रौपदीका अपहरण	३७१
दंभ	३५५
दंडपाणी	३२४, ३२६
धरनि धराभं	१४१
धर्म	१३५
धन्य	२८९
धर्मज्ञ	१२७
धर्मके अंग	१३७
ध्वनि	१३०
धुमध्वज	११८
धुमकेतु	११८
नवधाभक्ति	१४४
नल	३६५
नरहर्यानंदजी	१६६
नमः शिवाय	३३९
नारीकी उत्पत्ति	५३
नाद	१३०
नारद	१५३
नारायण	१६४, १८३, १८४, १८५
नाग	२६२
निगम	२४७
निज	२३६
निजमाया	९९
निष्काम	१०१
निर्गुण	१३४
निरुपाधि	१३४
निवृत्तिधर्म	१३७
निर्विकार	१७०
निर्मूलिनं	१९२
निशुंभ	२३५
नील	२८५
नृकपाल	१८८
पन	३६
परमसुजान	४६
परोपकारिणि गिरिजा	१०५
परब्रह्म	१३२
परमेश्वर	१३२
परमविष्णु	१३२
पर्व	२५२
पपीहा	२३६, २४९
पराग	२७९
परि उपसर्ग	३२४
परि अव्यय	१७०
पयस्विनी	३७४
प्रतापरासी	२५
प्रवर	१३०
प्रवृत्तिधर्म	१३७
प्रलयकारी सद्भाव	१७१
प्रमथ	१९७
प्रपंच	२१७, २२२, ३३२
प्रकृति	२५२
प्रपंचछल	३५२
प्रजापति	११०
पाखंड	३५५
पार्थ	३६४
पाप	१५२

संबंध	पृष्ठ
पार्वतीपति	३५, ४६, ४७
पांच मंडल	१५७
पार्वती	२३९
पापछालिका	२६६, २७५
पाथोजबन	२८५
प्राणोंके स्थान	३३४
पिक	२१७, ३४८
पिनाक	१११
पिशाचिनी	१५०
पिशाच	२५२
पुतना	२५२
पुरजन	२६५
पुराण	३३
पूजा	२५४
पूजोपहार	२६५
प्रेत	२५३
पंचबान	२१७, २१८
पंचक्रोसी	३१८
पंचाक्षरी	३३१, ३३४
पंचनदा	३३२
पंचप्राण	३३३
पंचाक्षर	३३५
पंचगव्य	३३५
पांडवोंकी कथा	३३१
फल	३०९
बरबात	६५
बरबानी	६८
बहुरुप	१७२
बसंत	२०८, २२२
बकुल	२१७
बरही	२१७

संबंध	पृष्ठ
बलिदान	२५४
बरना	३१०
बरबारी	३४३, ३४४
ब्रह्मतारक मंत्र	५७
ब्रह्मांड	१२५
ब्रह्मांडमंडल	१२६, १३१
ब्रह्मचारी	१५४
ब्रह्ममयबारी	२७८
बामदेव	८९, ९०, १७६, २०७
बाम	२३८
बामा	२३८
बारी	३४०, ३४२
बानी	२३८
बालमृग	२२७
बालससी	११४, ११८
बाधा	९१
बावरो	५९, ६२
ब्राह्मी	२३९
ब्याल	१११, १८८
ब्यालाद	१५९
बिंद्राविनि	२७९
बिभासी	२७४
बिभीषण	१४८
बुद्धि	३
बुद्धिविधाता	७, १३
बांदा	१७७
भगवान्	३२
भगवान्के अवतार	१६
भगतआरतिहर	३५
भगवान्का साक्षात्कार	१५६

संबंध	पृष्ठ
भगीरथ	२७०
भगीरथनंदिनी	२६७, २७३
भगवती	२५९
भगवतपदी	२७१
भव	१९५, २६४
भयहरनी	२५३
भवानी	२४३
भवभामिनी	२९१
भवानीनंदन	६, ९, ११
भय	१०५
भयंकर	१४४
भस्म	११५, ११८, १५६
भानु	१९२, १९३
भीमा	२३९
भीमासी	२३३
भीषणकार	१४०, १४४
भुकैलास	१३२
भुजदंड	२३५
भुजगेन्द्रहार	१९९, २०६
भूचर	१५०
भूत	२५२
भूतनाथ	९१, १४४
भृगु	१५८
भेदभाव	१०५
भेदमति	८४
भेदबुदि	८५, १३९
भैरव	९२, १४४, १६६, ३२४, ३२६, ३२७.

संबंध	पृष्ठ
भैरवरुपीरुद्र	१६१
भोरे	८६, ८९
भँवर	२७५
भृंगी	१६६
मदनदहन	५२
मदनरिपु	१०१
मदनमर्दन	१९०, २००
मनुज	२२
महापुराण	३३
मय	४०
मसाननिवासी	१०५
महाकल्प	१२५
महाकल्पांत	१३१
महाप्रलय	१३१
महाकैलास	१३१
महाव्यावृत्ति	१५१
महारुद्र	१६१
महाकाल	१६६
महेश्वर	१७१, १७२, २००
महादेव	१७१
महामूलमाया	२२७, २३२
महीश	२३५
महेश्वरी	२३९
महीषासुरवध	२४४, २४५
महासरस्वती	२५५, २५९
महालक्ष्मी	२५५
महाकाली	२५५
महीषा	२६१

संबंध	पृष्ठ
महाफल	३७७
मधुबर	३४५
मधुकर	३४०, ३४८
मधुकैटभवध	२४५
मलय	३४०
मणिकर्णिका	३२४
मरुत	१९५
मा	२५०
मानस	९७
माला	१५०
मालधारी	१८८
मार	२२८, २३२
मारु	२२८
माधव	३२१
माली	३४४
माया	९९,१००,११०
मुनि	२२, ९७
मुनिवर	३४८
मुदमाधव	३३५
मुदमंगलदाता	१२
मुमुक्षुकी सामग्री	११४
मुदमंगलसिद्धि	२५१
मूल गोसाई चरित	१७८
मृत्युंजय	१४४
मृदुलचित	१५६
मोदकप्रिय	९, १२, १४
मोह	१०४, १०८, १४४, १९२
मोहमहीषकालिका	२७७
मौली	१११
मौलीमालेव	१४५
मंदाकिनी	३४०, ३७४

संबंध	पृष्ठ
मुंड	२३५
मुंडमाल	१५६
यक्ष	२८५
यमुना	३०१
यामिनी	२८५
योग	४०
योगी	१३१, १६९
योगीश्वर	१२
योगीनी	१५०
योगीन्द्र	१६८
योनी	१२८,१५२,१६०
यंत्र	१५१
रति	२२८, २३२
रघुवंसवीर	२७७
रसरासी	२५
रवी	३०, ११५
रब्बुल आलमीन	३०
रविवार	३०
रत्न	३०, ३४
रम्य	१५४
रस	२२१
रसके रंग	२२१
रसके देवता	२२१
राम	२३६
रामा	२३८
रामरामायनमः	३३९
राम रसायन	३६२
राम मंत्र	३७६, ४५
रामसिय	१५
रामभक्त शिवजी	३५
रामप्रिय शिवजी	१०१
रामरुपी रुद्र	१६१, १६५, २०५

संबंध	पृष्ठ
रामनाम	१७३
रामोपासना	१६५
रावरो	५९
रुंडमुंडधारी	१५९
रुद्र	१०८,११३,१५२, १६५,१७१,१८३
रुद्रकी उत्पत्ति	१०८, १६४
रुद्रके नाम	१०९, ११०
रुद्रमंडल	१५७
रूपरासी	२५
रेत	१२१
रैबाई	३०
रोग	२३
रौद्री	२३९
लक्ष्मी	६४
लिपि	५९
लिंग	३०९, ३५७
लोकनाथ	१९२, १९४
लोकप्रकासी	३१
लोकस्वामीनि	२५८
लोल दिनेस	३२४
वसु	१२७
वसंत	३७९
वर्म	२५२
वायु	१२१, १४७, ३४६
विनायक	११
विनय	१७
विद्या	३
विद्या बारिधी	१२
विषपान	३८, ४०
विष्णु	१८२
विश्वरूप	१७२
विश्वनाथ	१६४
विश्वमूलासी	२३२
विष्णु पदसरोज-वासी	२७४,२७५
विष्णु पादोदकी	१८१
विश्वविकासी	३३२
विशिष्टाद्वैत	८५
विमान	४०
वि उपसर्ग	७१
विग्रह	१११
विद्युच्छटा	११६
विपत्तिहर्ता	१४३
विभूति	१५७, १५८
विभंग	२६४
विहार	३४७
वृष	१२१
वृषभ	१२१, १८९
वैराग्य	१२७
वैताल	१६६
वैष्णवी	२३९
व्योमकेश	१४७
शची	३२९
शठ	९४
शरद्चन्द्रवदनी	२५६
शरबरीसवदनी	२५६
शाक	९५
शाकिनी	१५०
शाखा	९५
शाखी	९५
शाक्तागम	१३०
शारदा	१५३, ३२९
शांतिमय सद्भाव	१७१
शिव	९७, १७१, १७२, १७७, १७८, १९९, २०६
शिवसेवा	४५
शिवदाता	५१
शिवशंभु वरदान	५२
शिवका स्वरूप	११५, १८७
शिवजीके तीन नेत्र	१४८
शिवजीकी वंदना	१६१
शिवजीकी अष्ट मूर्तियाँ	१७६
शिवजीके पांच मुख	१७६
शिवजीका अवतार	१८१
शिवजी वैष्णव	१८२
शिवा	२३९
शिवलिंग	३१३
शिवजीके विशेषण	२०६
शील	२३३
श्री	२२८
श्रीफल	२२०
शुक	३४८
शूलिनं	१९०
श्रुति	३३
शेष	१५४
शैवागम	१३०
शैलात्मजा	११६
शोक	१९०
शंकर	१७२
शंकर राग	१७३

संबंध	पृष्ठ
शंभू	२०५
शंभुजाया	२३८, २४३
शुंभ	२३५
शुंभ निशुंभ	२६०
शुंभनिशुंभ वध	२४५
षडैश्वर्य	३२
षोडष महाविद्याएँ	२५७
सबलायक	११, १२
सहस्त्रांशु	२३
समर्थ	३५
सदासिव	४४
सरस्वती	६४
सपना	९७
सरन	११०
स उपसर्ग	१२८
सनातन धर्म	१३०
सम अव्यय	१६८
सनकादि	१६८
सहस्त्राक्षी	१७२
सहस्त्रचक्षु	१९३
समुद्र शोषणकी कथा	१९२
सर्वगम	१९५
सप्तरात्रीके असूर	२६०
सगर	२६८
सरितासी	३१०
सघन	३४९
सत्यं शिवं सुंदरं	१७८
सज्जनानंददं	१७३
सर्वतोक्षमय	१७२
सतव्यावृत्ति	१५१
सच्चिदानंद	११७
स्मरण	८६
स्वर्ग सोपान	२८७
सात पाताल	१५१
सातलोक	१५७
साधन	३४७
सार	१९६
स्थायी भाव	२२०
स्थाणु	१७१, १०८
सिहोरा	९५
सिद्ध	९७, १६८
सिद्धि	२
सिद्धियाँ	३२९
सिद्धिसदन	७, ११, १२
सीता	२५५
सुख	७०, ८९, १९९
सुखद	३४९
सुर	२२
सुविशाल	११०
सुभग	१२७
सुपात	३४५
सुकृत	३०२
सूत्र	१३०
सूर्यके बारहरूप	२२
सूर्य तेज	२३
सूर्य स्नान	२४
सूर्य ब्रह्म	२४
सूर्योपासना	२४
सूर्य प्रार्थना	२४
सूर्य मंत्र	२५
सूर्य रथ	२७
सूर्यपुराण	३०
सेवक	१०४
सेवत सुलभ	३५
सेवा	२२
सैलकन्यावरं	१७४
सोक	१९७
सोपाधी	१३४
सौभाग्य	१२७
संकर सुअन	६, ११
संकुल	१११, ११६
संकल्प	२५०
संध्या	२४
संपदा	६४, ७१, ८९
संपत्ति	७१
संताप	१५२
संसृति	१५२
संसार	१५२
संप्रदं	१७३
सुंदरं	१७४
स्कंध	२४१
हर	१९४
हरि बोल	५७
हवै	१८५
हिमतम	३१
हिमालय	१८८
हिमशैलबालिका	२५७
हेरंब	२३४
हेरंबा	२४०
क्षेत्रपाल	१६५
ज्ञान	१२७
ज्ञानदं	१८०
ज्ञानी	१७५